श्री गौरपार्षद
एवं
गौड़ीय वैष्णवाचार्यों
का
संक्षिप्त चरितामृत

द्वितीय खण्ड

अखिल भारतीय
श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ रजि०

श्रील भक्ति बल्लभ तीर्थ महाराज

श्री श्रीगुरु गौरांगौ जयतः

श्रीगौरपार्षद एवं गौड़ीय वैष्णवाचार्यों के संक्षिप्त चरितामृत

द्वितीय खंड

अखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता
नित्यलीला प्रविष्ट ॐ 108 **श्री श्रीमद् भक्ति दयित माधव**
गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी के प्रियतम
शिष्य व प्रतिष्ठान के आचार्य **त्रिदण्डिस्वामी**
श्री श्रीमद् भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी
महाराज जी द्वारा सम्पादित

श्री चैतन्य गौड़ीय मठ,
सैक्टर 20 – बी,
चण्डीगढ़ ।

सम्पादक –
त्रिदण्डिस्वामी श्री श्रीमद् भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज

अनुवाद सम्पादक –
त्रिदण्डिस्वामी श्री श्रीमद् भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज

अनुवादक –
श्रीपाद चिद्घनानन्द दास ब्रह्मचारी

प्रूफ रीडिंग –
श्रीपाद देवकीनन्दन दास ब्रह्मचारी
श्री चक्रवर्ती राज जौहर
डा. श्री विष्णु दत्त पाण्डेय
श्री कुलदीप चोपड़ा, श्री बाबू राम अरोड़ा

प्रथम संस्करण
उत्थान एकादशी, 7 नवम्बर 2000

विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रील गौर किशोर दास बाबा जी महाराज
जी के तिरोभाव और विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्ति दयित माधव
गोस्वामी महाराज जी की 96वीं आविर्भाव तिथि
पूजा के शुभ अवसर पर
मूल बंगला भाषा से अनुवादित

लेज़र टाइपसैटिंग : लोटस कम्प्यूटर सैंटर, सैक्टर 29 – डी, चण्डीगढ़ ।

सूची पत्र

प्रस्तावना

परम करुणामय श्री श्रीगुरु गौरांग गान्धर्विका गिरिधारी जी की अपार करुणा से अखिल भारतव्यापी श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के वर्तमान अध्यक्ष एवं आचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी द्वारा सम्पादित "श्रीगौर पार्षद और गौड़ीय वैष्णव आचार्यों का संक्षिप्त चरितामृत" नामक ग्रन्थरत्न के द्वितीय खण्ड ने आत्मप्रकाश किया है। इससे पहले 9 सितम्बर, 1992 में श्री श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी की शुभ आविर्भाव–तिथि–पूजा के दिन इस ग्रन्थ का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ था।

श्री चैतन्य चरितामृत की अन्त्य लीला, सातवें परिच्छेद के सातवें ही पयार में लिखा है कि 'कलिकालेर धर्म–कृष्णनाम–संकीर्तन। कृष्णशक्ति बिना नहे तार प्रवर्त्तन।' (अर्थात कृष्ण नाम संकीर्त्तन ही कलियुग का धर्म है और कृष्ण शक्ति के बिना इस का प्रवर्त्तन (प्रचार) नहीं हो सकता।)

हमारे गुरुपादपद्म, नित्यलीला प्रविष्ट, परमाराध्य, श्री श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के अत्यन्त स्नेहपात्र तथा उनके निजजन एवं मेरे गुरु भाई, त्रिदण्डियतिराज, श्री श्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज, जो कि श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता भी हैं, उनके गुरु सेवामय आदर्श चरित्र में मुझे इस वाक्य की सार्थकता को

अपनी आंखों से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। 'आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया'— महावाक्य का शत प्रतिशत अनुसरण करते हुए उन्होंने पूरे भारतवर्ष में श्रीगुरुमुखपद्म वाणी का अनथक एवं परमोत्साह के साथ प्रचार किया। उनके द्वारा शुद्ध भक्ति वाणी के इस प्रचार से ही वे श्री श्रील प्रभुपाद जी के अपार स्नेह के पात्र बने। श्री श्रील प्रभुपाद जी की अप्रकट लीला के पश्चात भी उनके श्रीमुख से निःसृत शुद्ध भक्ति सिद्धान्त वाणी का पूरे भारत में प्रचार करते हुए उन्होंने विभिन्न स्थानों पर प्रचार केन्द्र स्वरूप कई मठों की स्थापना की। अपने इन प्रचार केन्द्रों के द्वारा वे असंख्य भाग्यवान व भाग्यवती नर – नारियों को शुद्धभक्ति पथ के पथिक बना गये। उनके ही स्नेहधन्य हैं तीर्थ महाराज, जो कि उनकी ही शिक्षा – दीक्षा से परिपुष्ट हैं तथा उनकी कृपाशक्ति द्वारा ही संचारित हैं। अपने प्रकट काल में ही पूज्यपाद माधव गोस्वामी महाराज जी ने इन्हें अपने विराट प्रतिष्ठान के आचार्य पद पर अभिषिक्त कर दिया था। पूज्यपाद माधव गोस्वामी महाराज जी के अप्रकट काल में श्रीगुरु देव जी की श्रीचरण – रेणु को मस्तक पर धारण करके व उनके सेवा के आदर्श का अनुसरण करते हुए श्रील तीर्थ महाराज असाध्य साधन कर रहे हैं। वर्तमान में 70 साल से अधिक आयु होने पर भी अक्लान्त परिश्रम करते हुए आप भारत के विभिन्न स्थानों में शुद्धभक्ति सिद्धान्त वाणी का विभिन्न भाषाओं में पाठ – कीर्तन व भाषणादि द्वारा एवं 'श्रीचैतन्यवाणी' नामक मासिक पत्रिका तथा भक्ति

ग्रन्थों का सम्पादन करते हुए श्री श्रीगुरु गौरांग जी के मनोभीष्ट का प्रचार कर रहे हैं। आपके इन गुणों से मुग्ध होकर ही मैं सर्वान्तःकरण से श्रीभगवत्पादपद्मों में आपके लिये श्रीहरिगुरुवैष्णवसेवामय सुदीर्घ जीवन की प्रार्थना करता हूँ।

व्रज के व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण ही तो व्रजधाम से अभिन्न श्रीधाम नवद्वीप मायापुर में श्रीशची – जगन्नाथ मिश्र के नन्दन – गौरसुन्दर के रूप में लीला कर रहे हैं। इसलिये उन्हीं कृष्ण की व्रजलीला के परिकर नदिया में गौरलीला के परिकर हैं। व्रज में श्रीकृष्ण की माधुर्यप्रधान औदार्यलीला है और नवद्वीप में गौरहरिजी की औदार्य प्रधान माधुर्य आस्वादन लीला है। अत्यन्त दुर्लभ व्रजप्रेम, जो कि पहले किसी भी युग में व किसी भी अवतार में नहीं दिया गया था, आज श्रीकृष्ण अपने गौरावतार में स्वयं उसी सुदुर्लभ व्रज प्रेम के दाता बने हैं। इसीलिये श्रीराधा जी की अत्यन्त प्रियतमा श्रीरूप मंजरी जी, श्रीरूपगोस्वामी के रूप में महाप्रभु जी को महावदान्य कह कर प्रणाम कर रही हैं : –

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदायते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः।

(अर्थात – महावदान्य, कृष्ण – प्रेमप्रदाता, कृष्ण स्वरूप, कृष्ण चैतन्यनामा, गौररूपधारी प्रभु – आपको नमस्कार है)

महावदान्य महाप्रभु जी के परिकर लोग भी महावदान्य हैं अर्थात महाप्रभुजी के पार्षद भक्त भी उन्ही की तरह परम उदार हृदय वाले हैं। इन परम उदार महाप्रभुजी के पार्षद भक्तों की अहैतुकी कृपा से ही हम श्रीगौरकृपा और उनके द्वारा प्रदत्त सुदुर्लभ व्रजप्रेम की प्राप्ति की योग्यता अर्जन कर सकते हैं। परमदयालु महाप्रभु जी ने अपने श्रेष्ठ पार्षद– श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीराय रामानन्द प्रभु जी के माध्यम से कर रहे हैं कि उनके द्वारा प्रवर्तित नामसंकीर्त्तन ही इस व्रजप्रेम की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। उन्होंने नाम में सर्वशक्ति का संचार कर दिया और नाम ग्रहण करने में कोई समय आदि का भी विचार नहीं रखा। तृण से भी सुनीच, वृक्ष के समान सहनशील, स्वयं सम्मान की इच्छा न करना व दूसरों को मान देना – इन चार गुणों से गुणी होकर तथा दस अपराधों से रहित हो कर नाम करने मात्र से ही हरिनाम की कृपा से अतिशीघ्र ही उपरोक्त सुदुर्लभ व्रजप्रेम रूपी सम्पदा का अधिकारी हुआ जा सकता है। इसीलिये महाप्रभु जी ने अपने निजजनों के माध्यम से आदेश दिया है कि प्रतिगृहे याइ कर एइ भिक्षा। बल कृष्ण, भज कृष्ण, कर कृष्ण शिक्षा।।'

अर्थात प्रत्येक घर में जाकर लोगों से ये भिक्षा मांगिये कि आप कृष्ण बोलो, कृष्ण भजो और कृष्ण शिक्षा करो।

'यारे देख, तारे कह कृष्ण – उपदेश। आमार आज्ञाय

गुरु हइया तार एइ देश।'
याँहा ताँहा प्रेमफल देह या रे ता रे,
भारतभूमिते हैल मनुष्य जन्म या रे।
जन्म सार्थक करि' कर पर उपकार।।' इत्यादि।

अर्थात जिसे देखो, उसे कृष्ण का उपदेश दो, मेरी आज्ञा से तुम गुरु बन कर इस देश का उद्धार करो। हर जगह हर व्यक्ति को प्रेमफल प्रदान करो। भारत भूमि पर जिस का जन्म हुआ है, उसे चाहिये कि वह अपना जीवन सार्थक कर दूसरों पर भी उपकार करे।

भक्तवत्सल भगवान अपने भक्तप्रेम के वश में हैं, इसलिये भगवत्कृपा, भक्त कृपा के पीछे – पीछे चलती है। श्रीभगवान ने भी अपने श्रीमुख से कहा है 'मद्भक्तपूजाभ्यधि – का'। 'आमार भक्तेर पूजा आमा हइते बड़। वेदे भागवते प्रभु इहा कैल दृढ़।।'

अर्थात भगवान ने वेदों एवं भागवत में ये सिद्धान्त निश्चय किया है कि मेरे भक्त की पूजा मेरी पूजा से बड़ी है।

सब प्रकार की आत्मेन्द्रिय प्रीतिवाँच्छा शून्य एवं कृष्णेन्द्रिय प्रीतिवाँच्छामय निर्मल हृदय भगवान् को आराम प्रदान करने का विश्रामस्थल है। इसीलिये महाजन वाणी है "भक्तेर हृदये गोविन्देर सतत् विश्राम। गोविन्द कहेन मम भक्त से पराण।।"

अर्थात भक्त का हृदय गोविन्द का सतत् विश्राम स्थल

है। गोविन्द स्वयं कहते हैं कि मैं भक्तों का प्राण हूँ।

साधवो हृदयं मह्यं साधुनां हृद्यन्त्वहम्।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि।।

अर्थात भगवान् कह रहे हैं कि साधु मेरा हृदय हैं और मैं साधुओं का हृदय हूँ। साधु लोग मुझे छोड़कर किसी को नहीं जानते और मैं भी उन साधुओं के अतिरिक्त किसी को नहीं जानता।

शुद्ध भक्त – साधु भगवान का बड़ा प्रिय है। इसलिये भगवद्भक्त के जीवनामृत का आस्वादन श्रीभगवान की कृपा प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है।

ऐकान्तिक भक्त के आनुगत्य में भजन कर सकें तो उससे शीघ्रातिशीघ्र भगवत् कृपा प्राप्त हो जाती है। श्रील तीर्थ महाराज जी स्वयं इस भक्तजीवनामृत का आस्वादन कर इसे ग्रन्थाकार में प्रकाशित करते हुए निर्मत्सर शुद्ध भक्तों की आत्यन्तिकी प्रीति के भाजन हो रहे हैं एवं स्वयं भगवान श्रीगौरसुन्दर और उनके निजजन – परमाराध्य प्रभुपाद एवं उनके निजजन – श्रीपादमाधव गोस्वामी महाराज जी भी उनके प्रति अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं – इसमें कोई सन्देह नहीं है। श्रीभगवान् का एक नाम है – 'भक्तभक्तिमान'। यही कारण है कि भगवान अपनी पूजा से भी अधिक अपने भक्त की पूजा से प्रसन्न होते हैं। भक्त गुणगान सुनने से उन्हें बड़ा

ही आनन्द होता है। भक्तों के गुणों का कीर्त्तन करते हुये वे आत्मविस्मृत हो उठते हैं (अपने आप को भूल जाते हैं)।

भगवान भक्त के ऋण को न चुका पाने के कारण अपने को भक्तों का ऋणी मानते हैं। कृष्ण अपने सखा अर्जुन को निमित्त बना कर कह रहे हैं –

ये मे भक्तजना: पार्थ न मे भक्ताश्च ते जना:।
मदभक्तानान्तु ये भक्तास्ते मे भक्तोत्तमा मता:।।

अर्थात हे अर्जुन! जो लोग मेरे भक्त के रूप में अपना परिचय देते हैं, वे मेरे वास्तविक भक्त नहीं हैं, किन्तु जो मेरे भक्तों के भक्त हैं, वे ही मेरे वास्तविक भक्त हैं।

श्रीमद्तीर्थ महाराज जी ने सपार्षद श्रीभगवान गौरसुन्दर जी की परम प्रियतम भक्तलीला के परिकरों के परम पवित्र चरितामृत को ग्रन्थ के रूप में लिपिबद्ध किया है, जिससे वे निर्मत्सर गौड़ीयवैष्णवों तथा आत्मकल्याणार्थी सारग्राही सज्जन समाज की प्रीति के भाजन हो रहे हैं। ऐसा लगता है कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रीभगवान गौरसुन्दर और उनके परम प्रिय भक्तों का आशीर्वाद उनपर निरन्तर वर्षित हो रहा है।

जब हम परम पवित्र भक्त – चरितामृत का निरन्तर आस्वादन करेंगे तो हमें ये मालूम होगा कि भजन – साधन किसे कहते हैं व किस प्रकार से हम परमदयालु महाप्रभु जी के स्नेह भाजन हो सकते हैं? इस ग्रन्थ के पठन से हम अपने

अनियमित जीवन को संयत व नियमित करना सीरव कर व्रज के पथ के पथिक बन पायेंगे तथा हमें अपने अधन्य जीवन को भक्त और भगवान् की कृपा से धन्य करने का सौभाग्य प्राप्त होगा। मैं आशा करता हूँ एवं श्रीहरि – गुरु – वैष्णव चरणों में सर्वान्तःकरण से प्रार्थना ज्ञापन करता हूँ कि ऐसे महामूल्य ग्रन्थ रत्न का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हो एवं दसों दिशाओं में इसकी महिमा अधिक से अधिक प्रचारित हो। इस सारे ग्रन्थरत्न के उपायन संग्रहादि के विषय में ग्रन्थकर्ता महाराज को बहुत कष्ट उठाने पड़े हैं। इसलिये श्रीभगवान गौरसुन्दर और उनके नित्यसिद्ध परिकर, महाराज जी की कृष्ण – कार्ष्णा की इन्द्रियों को तर्पण करने की भरपूर सेवा चेष्टा का अवश्य ही सुफल प्रदान करेंगे। कहा भी जाता है कि – 'कीर्तनेर परिश्रम जाने गोराराय'। इस ग्रन्थ के मुद्रणकार्य में हमारे विशेष स्नेहभाजन त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवारिधि परिव्राजक महाराज ने प्रूफ संशोधनादि विभिन्न विषयों में काय – मन – वाक्य द्वारा सर्व अन्तःकरण से जो अक्लान्त परिश्रम किया है, वह वर्णनातीत है। हमारे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के सभी ग्रन्थों एवं सामयिक पत्रिकादि के मुद्रण कार्य में उनकी जो निर्लस उत्साहमयी सेवा प्रचेष्टा है, वह अपने आप में एक आदर्श है। इसके द्वारा वे श्री श्रीगुरु वैष्णव भगवान् के अशेष आशीर्वाद के भाजन हो रहे हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। मैं श्रीभगवच्चरणों में उनके लिये इस प्रकार के सेवाप्रचेष्टामय सुदीर्घ जीवन की प्रार्थना करता हूँ। हमारे

श्रीमठ के जिन सेवकों ने 'वृहद्मृदंग' स्वरूप 'प्रेस' में ग्रन्थ – पत्रिकादि मुद्रण सम्बन्धी जो भी सेवा की है या कर रहे हैं, वे सभी श्रीश्रीहरिगुरु वैष्णव की प्रचुर कृपा और आशीर्वाद के भाजन हो रहे हैं, ये सुनिश्चित है।

दीनातिदीन

वैष्णवदासानुदास

श्रीभक्ति प्रमोद पुरी

(प्रस्तुत प्रस्तावना श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ के संस्थापक, नित्यलीला प्रविष्ट परमपूज्यचरण श्री श्रीमदभक्ति प्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज जी ने अपने जीवन काल में तब लिखी थी जब ये ग्रन्थ 24 फरवरी, सन 1994 को श्रीनित्यानन्द त्रयोदशी के दिन हमारे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, कलकत्ता से बंगला भाषा में छपा था)

श्रीश्रीगुरु गौरांगौ जयतः

श्रीगौरपार्षद और गौड़ीयवैष्णवाचार्यों का संक्षिप्त चरितामृत

श्रीअच्युतानन्द

"योगमाया भगवती गृहिणी तस्य (अद्वैतस्य) साम्प्रतं ।
सीतारूपेणावतीर्णा श्रीनाम्ना तत्प्रकाशतः ।।
तस्य पुत्रोऽच्युतानन्दः कृष्णचैतन्यबल्लभः।
श्रीमत् पण्डितगोस्वामिशिष्यः प्रिय इति श्रुतं ।।
यः कार्तिकेयः प्रागासीदिति जल्पन्ति केचन।
केचिदाहु रसविदोऽच्युतानाम्नी तु गोपिका ।।
उभयन्तु समीचीनं द्वयोरेकत्र संगतात् ।
कार्तिकेयः कृष्ण मिश्रस्तत्साम्यादिति केचन ।।"

- गौ०ग० 86/88

भगवती योगमाया अपने धर्म को अवलम्बन कर श्रीअद्वैताचार्य जी की गृहणी – सीता देवी के रूप में अवतीर्ण हुयी थीं। इनका प्रचलित नाम 'श्री' था। अच्युतानन्द इनके पुत्र थे जो श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के प्रिय थे तथा पण्डित गोस्वामी के शिष्य एवं उनके प्रिय रूप में विख्यात थे। कोई-कोई रसवेत्ता कहते हैं कि कृष्ण लीला में कार्तिकेय एवं अच्युता नाम की जो गोपियां थीं, वे दोनों ही एक साथ

मिलित होकर अच्युतानन्द रूप से अवतरित हुयी हैं। इसके अतिरिक्त कोई-2 कहता है कि कृष्ण मिश्र भी कार्तिकेय के अवतार हैं।

श्री अच्युतानन्द 1428 शकाब्द में श्री अद्वैताचार्य और श्रीसीतादेवी को अवलम्बन कर शान्तिपुर में आविर्भूत हुये थे। किसी किसी के मत में इनका आविर्भाव सन् 1426 शकाब्द में हुआ था। श्री अच्युतानन्द श्रीअद्वैताचार्य जी के ज्येष्ठ पुत्र थे तथा ये श्रीचैतन्य शाखा में गिने जाते हैं। श्रीचैतन्यामरतरोर्द्वितीयस्कन्धरुपिण: श्रीमदद्वैतचन्द्रस्य शाखारूपान् गणान्नुम: ।।' चै0च0 आदि 12/3 अर्थात चैतन्य नामक अमर वृक्ष के द्वितीय स्कन्धरूपी अद्वैत प्रभु की शाखा के सभी गणों को मैं नमस्कार करता हूँ। 'अच्युतानन्द-बड़ शाखा, आचार्यनन्दन। आजन्मसेविला तेंहो चैतन्य चरण।।' चै0च0 आदि 12-13 श्रीअद्वैताचार्य जी के छ: पुत्र थे जिनमें से तीन पुत्र श्री अच्युतानन्द, श्रीकृष्ण मिश्र, श्री गोपालदास तो सारग्राही थे जबकि बलराम, स्वरूप और जगदीश असारग्राही थे। श्रीअद्वैत चरितग्रन्थ में इस प्रकार वर्णित है :-

"अच्युत: कृष्णमिश्रश्च गोपालदास एव च।
रत्नत्रयमिदं प्रोक्तं सीतागर्भादि सम्भवम्।।
आचार्यतनयेष्वेते त्रयो गौरगणा: स्मृता:।
चतुर्थबलरामश्च स्वरूप: पन्चम: स्मृत:।।
षष्ठस्तु जगदीशाख्य आचार्यातनया हि षट्।।"

श्रीचैतन्य चरितामृत के अपने अमृतप्रवाह भाष्य में इस सम्बन्ध में श्रील सच्चिदानन्द ठाकुर जी इस प्रकार लिखते हैं कि पहले तो अद्वैतप्रभु के परिवार के सभी सदस्यों का एक ही मत था। किन्तु बाद में दैव वशत: कुछ लोगों का मत अलग हो गया। इनमें से जो लोग तो आचार्य जी के मत के अनुसार चले वे तो सारग्राही शुद्ध वैष्णव बन गये और जिन्होंने दैव के वशीभूत होकर आचार्य के द्वारा उपदेश दिये मत से अलग अपने-2 मत चलाये वे सब असारग्राही कहे जाते हैं। असारग्राही व्यक्तियों के नामों से हमारा कोई मतलब नहीं है। फिर भी सारग्राही वैष्णवों को असारग्राहियों से पृथक रखने के अभिप्राय से ही पहले दोनों के नाम एक साथ दे रहा हूँ तथा बाद में जैसे भूसी से धान अलग किया जाता है उसी प्रकार अद्वैत आचार्य के पुत्रों में जो सारग्राही शुद्ध वैष्णव हैं उनके नामों का उल्लेख करूँगा।

"आचार्येर मत येइ, सेइ मत सार।
ताँर आज्ञा लंघि' चले, सेइ त' असार।।"

चै0च0 12/10

"ये ये लैल श्रीअच्युतानन्देर मत।
सेइ आचार्येर गण 'महाभागवत'।
सेइ सेइ, आचार्येर कृपार भाजन।
अनायासे पाइल सेइ चैतन्यचरण।।"

चै0च0आ 12/73-74

अर्थात श्रीअद्वैताचार्य जी का जो मत है वह मत ही सार

है और जो उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर के चलते हैं उनका मत ही असार है। जिस जिस ने श्री अच्युतानन्द जी के मत को स्वीकार किया है वही आचार्य के गण एवं महाभागवत् हैं। वही आचार्य की कृपा के भाजन हैं उन्होंने अनायास ही श्रीचैतन्य चरण प्राप्त किये हैं।

काटोया में संन्यास ग्रहण करने के पश्चात जब श्रीमन्महाप्रभु शान्तिपुर में अद्वैत भवन में आये थे, उस समय अच्युतानन्द जी की आयु मात्र तीन वर्ष की थी। किसी-2 के मत के अनुसार पाँच वर्ष की थी।

"दिगम्बर शिशुरूप अद्वैततनय।
नाम श्रीअच्युतानन्द महोज्योतिर्मय।।
परम सर्वज्ञ तिंहो अचिन्त्य-प्रभाव।
योग्य अद्वैतेर पुत्र सेइ महाभाग।।
धूलामय सर्व अंग, हासिते हासिते।
जानिया आइला प्रभु-चरण देखिते।।
आसिया पड़िला गौरचन्द्र-पदतले।
धूलार सहित प्रभु लइलेन कोले।।"

- चै०भा० अ 1/213-216

अर्थात श्रीअद्वैताचार्य जी का महाज्योतिर्मय श्रीअच्युतानन्द नाम का दिगम्बर शिशु परम सर्वज्ञ था तथा उसका प्रभाव तर्क रहित था। वास्तव में वह महाभाग ही श्रीअद्वैत जी का योग्य पुत्र था। अंग में धूलि लिपटी हुयी थी तथा हंस रहा था,

प्रभु को आया हुआ जानकर चरणदर्शन करने आया व आकर गौरचन्द्र के चरणों में गिर पड़ा। तब गौरचन्द्र ने धूलि में लिपटे हुए को ही गोद में ले लिया।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने अच्युतानन्द को गोद में लिया और स्नेह से गदगद् हो कर कहा - क्योंकि श्रीअद्वैताचार्य इसके पिता हैं, इसलिये सम्बन्ध से ये मेरा भाई है। महाप्रभु जी के मुखारविन्द से ऐसा सुनकर श्रीमन्महाप्रभु जी के तत्त्व को प्रकाशित करते हुये अच्युतानन्द ने कहा - ये तो जीव मात्र के ही सखा हैं, श्रुति शास्त्रों ने इन्हें ही सबके पिता के रूप में निर्दिष्ट किया है। भक्तगण अच्युतानन्द के इस सिद्धान्त को सुनकर विस्मित हो गये। श्रील वृन्दावनदास ठाकुर जी ने स्वरचित श्रीचैतन्य भागवत (अन्त्य खण्ड 4 अध्याय) में बालक अच्युतानन्द की अद्भुत श्रीचैतन्य-निष्ठा का इस प्रकार वर्णन किया है -

एक बार एक सन्यासी अद्वैत भवन में आये और उन्होंने आचार्य जी से जिज्ञासावश पूछा कि "केशव भारती महाप्रभु जी के क्या लगते हैं?" इसके उत्तर में अद्वैताचार्य जी ने व्यवहारिक विचार से ही कहा कि 'वे केशव भारती तो महाप्रभु जी के गुरु हैं।' बस इतना सुनना था कि पाँच वर्ष के दिगम्बर शिशु ने क्रोधित होकर कहा - जब सारे जगत् के गुरुओं के गुरु स्वयं भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु हैं तो फिर उनका गुरु और कौन हो सकता है? अपने पाँच वर्ष के पुत्र

के मुख से सिद्धान्त वाणी सुनकर श्रीअद्वैताचार्य बोले कि अच्युतानन्द ही मेरा पिता है और मैं उसका पुत्र हूँ। अपने द्वारा किये अपराध के लिये जब अद्वैताचार्य ने पुत्र से क्षमा मांगी तो अच्युतानन्द जी का मुख शर्म से झुक गया। श्रीचैतन्य चरितामृत में श्री कविराज ने भी बहुत सुन्दर रूप से वर्णन किया है –

"चैतन्य-गोसाञिर गुरु-केशव भारती ।
एइ पितार वाक्य शुनि' दुःख पाइल अति।।
जगद्‌गुरुते तुमि कर ऐछे उपदेश।
तोमार एइ उपदेशे नष्ट हइल देश।।
चौद्दभुवनेर गुरु चैतन्य-गोसाञि।
ताँर गुरु अन्य, एइ कोन शास्त्रे नाइ।।
पन्चम वर्षेर बालक कहे सिद्धान्तेर सार।
सुनिया पाइला आचार्य सन्तोष अपार।।
– चै०च० 12/14-17

अर्थात श्री अच्युतानन्द जी को पिता अद्वैताचार्य जी के ये वाक्य सुनकर कि "श्री चैतन्य गोस्वामी के गुरु केशव भारती हैं" बड़ा दुःख हुआ। श्री अच्युतानन्द जी ने पिता जी से कहा कि श्रीचैतन्य महाप्रभु तो जगत-गुरु हैं। उनके सम्बन्ध में यदि आप ऐसी बात कहेंगे तो इससे जगत का नाश हो जायेगा अर्थात आप जैसे प्रामाणिक व्यक्ति के मुख से ऐसा सुनकर जगत के लोग श्री चैतन्य देव को साधारण जीव मान बैठेंगे,

जिससे उनका अनिष्ट होगा। स्वयं भगवान होने के कारण, श्रीचैतन्य गोसाञि जी तो चौद्दह भुवनों के गुरु हैं। उनका भी कोई और गुरु हो सकता है – ये बात कोई भी नहीं कहता अर्थात उनका कोई गुरु नहीं है। वही सबके गुरु हैं। श्री अच्युतानन्द जी उस समय पाँच वर्ष के बालक थे। उनके मुख से इस प्रकार सिद्धान्त का सार सुनकर श्रीअद्वैताचार्य जी परम आनन्दित हुये।

जिस समय श्रीअद्वैताचार्य और अन्य-2 भक्त अच्युतानन्द के इस अलौकिक आचरण से मुग्ध थे उसी समय महाप्रभु जी ने अद्वैत भवन में आकर अच्युतानन्द को कृपा आशीर्वाद दिया था। नवद्वीप में महाप्रभु जी की महाप्रकाश लीला से पहले जब श्रीमन्महाप्रभु जी ने अद्वैताचार्य जी को अपने पास बुलाने के लिए श्रीराम पण्डित को शान्तिपुर भेजा था एवं जिस समय अद्वैताचार्य जी ने भक्ति के विरोध में ज्ञानपरक व्याख्या करने की लीला की थी व परिणामस्वरूप श्रीमन्महाप्रभु जी ने उनपर प्रहार लीला की थी – इन सब लीलाओं में श्री अच्युतानन्द भी उपस्थित थे। श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत के अपने अनुभाष्य में लिखा है कि श्री अच्युतानन्द बाल्यावस्था से ही महाप्रभु के भक्त थे। ऐसा कहीं नहीं सुना जाता कि अच्युतानन्द जी ने विवाह कर संसार धर्म अपनाया था। श्रीअद्वैतशाखा के वर्णन में उनके शिष्यों के बारे में जो जानकारी मिलती है उनमें सबसे पहला

नित्यानन्द, कभी हरिदास ठाकुर, कभी अच्युतानन्द व कभी वक्रेश्वर पण्डित और कभी अन्यान्य भक्तों ने महाप्रभु जी की इच्छा से नृत्य किया था।

"प्रात:काले स्नानकरि' देखि जगन्नाथ।
संकीर्त्तने नृत्य करे भक्तगणसाथ।
कभु अद्वैते नाचाय, कभु नित्यानन्दे।
कभु हरिदासे नाचाय कभु अच्युतानन्दे।।
कभु वक्रेश्वरे, कभु आर भक्तगणे।
त्रिसन्ध्या कीर्त्तन करे गुण्डिचा-प्रांगणे।।

– चै०च०म 14/70-72

श्रीनरहरि दास जी द्वारा लिखित श्री नरोत्तमविलास ग्रन्थ में श्री अच्युतानन्द जी द्वारा खेतरी उत्सव में योगदान की बात जानी जाती है। महाप्रभु जी के प्रकटकाल तक अच्युतानन्द जी पुरी में ही रहे थे। श्रीनरहरि जी के मत के अनुसार महाप्रभु जी के अप्रकट होने के पश्चात् अच्युतानन्द जी का बाकी समय शान्तिपुर के गृह में ही बीता।

महाराज श्रीप्रतापरुद्र देव

'इन्द्रद्युम्नो' महाराजो जगन्नाथार्चक: पुरा।
जात: प्रतापरुद्र: सन् सम इन्द्रेण सोऽधुना।।'

गौ०ग० 118

'पूर्वकाल में भगवान जगन्नाथ जी के पूजक जो इन्द्रद्युम्न महाराज थे उन्होंने ही महाप्रभु जी की लीला में इन्द्रतुल्य ऐश्वर्यशाली प्रतापरुद्र के नाम से जन्म ग्रहण किया।'

महाराज प्रतापरुद्र के पूर्ववंश के सम्बन्ध में उड़ीसा की मादलापंजी में जो वर्णन है उससे मालूम होता है कि गंगा वंश के अन्तिम राजा श्रीकज्जलभानु जब अपनी विजय यात्रा पर थे तो उनकी अनुपस्थिति में उनके मंत्री श्रीकपिलेन्द्र देव ने राज सिंहासन पर अधिकार कर लिया। यही कपिलेन्द्र देव या

1. ब्रह्मा के द्वितीय परार्द्ध में किसी सतयुग में इन्द्रद्युम्न नामक सूर्यवंशीय एक परम विष्णु भक्त राजा था। वह मालव देश का अधिपति था। अवन्तिनगर उसकी राजधानी थी। इन्द्रद्युम्न महाराज का राजपुरोहित विद्यापत्ति भी विष्णुभक्त वैष्णव था। प्रथम परार्द्ध में पतित जीवों के उद्धार के लिये जगन्नाथ देव नीलमाधव के रूप में नीलाचल में प्रकट हुये थे। शबरदेश के अधिपति विश्वावसु उनकी सेवा करते थे। उपरोक्त नीलमाधव भगवान ने ही महाराज इन्द्रद्युम्न, विद्यापत्ति और विश्वावसु को अवलम्बन कर श्रीजगन्नाथ रूप से प्रकाश लीला की है। इन्द्रद्युम्न महाराज पर कृपा करने के लिये भगवान नीलमाधव जी का तीन दारुब्रह्म के रूप में आविर्भाव हुआ। ये तीन दारुब्रह्म ही बलदेव, सुभद्रा और जगन्नाथ रूप से प्रकटित हुये।

कपिलेश्वर देव ही उड़ीसा के गजपति राजवंश के प्रतिष्ठाता बने। कपिलेन्द्र देव और श्रीपार्वती देवी को अवलम्बन कर श्री पुरुषोत्तम देव का जन्म हुआ। इन्हीं पुरुषोत्तम देव के पुत्र हैं महाराज प्रतापरुद्र। प्रतापरुद्र की जननी श्रीपद्मावती देवी (या श्रीरूपाम्बिका) थीं। राजा प्रतापरुद्र श्रीमन्चैतन्य महाप्रभु जी के पार्षद हैं तथा गदाधर शाखा के अन्तर्गत इनके नाम का उल्लेख आता है। ये महाप्रभु जी के समय के विशेष प्रतापशाली स्वाधीन राजा थे। कटक इनकी राजधानी थी। महाराज प्रतापरुद्र, इनकी पत्नियाँ एवं राजपुत्र - सभी महाप्रभु जी के भक्त थे। पत्नियों में से श्रीगौरी प्रधाना महिषी थीं। पाँच पुत्रों में से एक पुत्र गौरी का भी था। पाँचों में से ज्येष्ठ पुत्र का नाम श्रीपुरुषोत्तम जाना था। 'प्रतापरुद्र राजा, आर उड़् कृष्णानन्द। परमानन्द महापात्र, उड़् शिवानन्द।।' चै0च0आ 10/135 "महाराज श्रीप्रतापरुद्रेर कुमार। पुरुषोत्तम जाना' नाम, सर्वांशे सुन्दर।।" (भक्तिरत्नाकर 6/65) राजा प्रतापरुद्र ने श्रीकाशीमिश्र जी को गुरु रूप से स्वीकार किया था तथा अत्यन्त निष्ठा के साथ वे उनकी सेवा किया करते थे। वे जितने दिन भी पुरी में रहते थे उतने दिन वे काशीमिश्र भवन में जाकर दोपहर के भोजन के पश्चात् अपने श्रीलगुरुदेव श्रीकाशीमिश्र जी की चरण सेवा किया करते थे एवं साथ ही जगन्नाथ जी की सेवा ठीक प्रकार से हो रही है कि नहीं, गुरु जी से जिज्ञासा करते रहते थे।

प्रतापरुद्रेर एक आछये नियमे। यत दिन रहे तेंह श्रीपुरुषोत्तमे नित्य आसि' करे मिश्रेर पादसम्वाहन। जगन्नाथ सेवार करे भियान श्रवण।। (चै0च0 अ 9/81-82) काशीमिश्र के भवन में ही महाप्रभु जी का वास स्थान बताया जाता है। श्रीमन्महाप्रभु जी काशीमिश्र के घर के आंगन में बने एक छोटे से कमरे में रहते थे। उड़िया भाषा में छोटे गृह को 'गम्भीरा' कहा जाता है।

श्रीरायरामानन्द जी द्वारा रचित 'श्रीजगन्नाथवल्लभ' नाटक को पढ़ने से मालूम होता है कि महाराज प्रतापरुद्र असाधारण प्रभावशाली शौर्यवीर्य सम्पन्न राजा थे। इतना होते हुये भी उन्हें किसी भी प्रकार का कोई अभिमान नहीं था बल्कि वे तो उदारहृदय के परम वैष्णव थे। उनके जीवन से ये भी मालूम पड़ता है कि वे विद्वानों को उत्साह देते रहते थे। उनके लगभग सभी चरित्र ग्रन्थों में ये वर्णित है कि उन्हें गौरांग महाप्रभु जी की अपार कृपा प्राप्त थी। कवि श्रीकर्णपूर जी ने स्वरचित 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय' नाटक में राजा प्रतापरुद्र जी की शौर्यवीर्यता का उल्लेख किया है। महाराज प्रतापरुद्र ब्राह्मण धर्म के संरक्षक एवं वैष्णव धर्म के विशेष परिपोषक थे। तत्कालीन रचित बहुत से वैष्णव ग्रन्थों में ये लिपिबद्ध है कि राजा प्रतापरुद्र जी श्रीमन्महाप्रभु, श्रीरायरामानन्द जी, श्रीकाशी मिश्र और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य आदि सभी के अत्यन्त प्रिय पात्र थे। 'श्री सरस्वती विलास', 'श्रीप्रताप मार्तण्ड',

'श्रीकौतुकचिन्तामणि' व 'निर्णयसंग्रह' इत्यादि ग्रन्थों को श्रीप्रतापरुद्र जी द्वारा रचित बतलाया जाता है। वस्तुतः ऐसा जाना जाता है कि राजा प्रतापरुद्र के सभा पण्डित श्रीलोल्ला लक्ष्मीधर जी ने 'श्री सरस्वती विलास' एवं श्रीरामकृष्ण जी ने 'श्रीप्रताप मार्त्तण्ड' की रचना की थी।

कहावत है कि श्रीमन्महाप्रभु जी वृन्दावन जायेंगे, ये सुनकर विरह से कातर होकर राजा प्रतापरुद्र ने श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की एक लकड़ी की मूर्ति प्रकट की थी एवं 54 पण्डों को उस मूर्ति की सेवा का भार सौंपा था और उसके लिये काफी ज़मीन भी दान की थी। पुरी के राजमहल में अन्यान्य मूर्तियों के साथ श्रीगौर-नित्यानन्द जी और श्रीगौर गदाधर जी की मूर्तियाँ भी विराजित हैं।

उस समय राजा प्रतापरुद्र का राज्य वर्तमान आन्ध्रप्रदेश के राजमहेन्द्री नामक स्थान तक फैला हुआ था। इस विषय की ऐतिहासिक घटनाओं को बता कर विस्तृत रूप से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं समझता हूँ। संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण ये है कि राजा प्रतापरुद्र के पिता श्री पुरुषोत्तम देव ने अपने पिता के राज्य के हारे हुये स्थानों को पुनः जीता एवं उड़ीसा के राज्य को अपनी क्षमता से राजमहेन्द्री तक फैलाया था। श्री पुरुषोत्तम देव जी भगवान श्री जगन्नाथ देव के अनन्य-शरण भक्त थे। ऐसा कहा जाता है कि श्रीजगन्नाथ देव जी ने युद्धक्षेत्र में स्वयं आकर उनकी सहायता की थी।

इस सम्बन्ध में एक घटना संक्षेप में वर्णन की जा रही है – जब श्री पुरुषोत्तम के साथ कान्ची नगर की राजकुमारी पद्मावती का विवाह निश्चित हुआ तो कान्ची के राजा वर को मिलने के लिए पुरी आये। जब कांची के राजा पुरी में पहुंचे तो उस समय रथयात्रा का समय था और राजा पुरुषोत्तम देव सोने के झाड़ू से रथ का रास्ता साफ कर रहे थे। ऐसा देख कान्चीराज ने यह सोचकर कि एक झाड़ूदार चाण्डाल के साथ वह अपनी कन्या का विवाह नहीं करेंगे, उन्होंने विवाह करना अस्वीकार कर दिया। कांची राजा गणेश जी का भक्त था। उसकी जैसी श्रद्धा गणेश जी में थी, वैसी जगन्नाथ जी में नहीं थी। श्री पुरुषोत्तम देव को जब अश्रद्धा की बात मालूम हुई तो वे क्षुब्ध हो उठे और एक बड़ी सेना के साथ उन्होंने कान्चीराज पर आक्रमण कर दिया किन्तु पहली बार सफलता उनके हाथ न लग पायी अतः वे हताश होकर जगन्नाथ जी के शरणापन्न हुये। जगन्नाथ जी के द्वारा ये आश्वासन देने पर कि वे युद्ध में उसकी सहायता करेंगे, उसने पुनः कान्ची राज पर आक्रमण कर दिया। पुरी से 12 मील दूर आनन्दपुर नामक गाँव में एक ग्वालिन राजा को देखकर बोली कि "दो अश्वरोही सैनिकों ने उसके पास से दूध-दही और लस्सी पी है और उसके मूल्य के बदले उन्होंने एक अंगूठी दी है और ये अंगूठी आप को देकर आप से मूल्य लेने की बात बोल गये हैं" अंगूठी देखकर पुरुषोत्तम देव को समझने में देर नहीं लगी कि ये दोनों सैनिक श्रीजगन्नाथ और बलराम जी को छोड़ कोई दूसरा नहीं था।

राजा ने ग्वालिन को पुरस्कार दिया। राजा ने युद्ध में जय प्राप्त कर कान्चीराज के मणियों से बने सिंहासन को हरण कर लिया और उसे श्री जगन्नाथ जी की सेवा में समर्पण कर दिया। वे कान्ची राजकुल के पूजित 'गणेश' जी को भी पुरी में ले आये। दर्पहारी मधुसूदन ने कान्चीराज के दर्प को चूर्ण कर दिया। ऐसा कहा जाता है कि नाना प्रकार से पुरुषोत्तम देव के युद्ध में विघ्न उत्पादन करने के कारण 'गणेश' जी 'भण्डगणेश' के नाम से प्रसिद्ध हुये। कान्चीराज अपनी कन्या पद्मावती को स्वयं पुरी लाये एवं रथयात्रा के समय स्वर्ण के झाड़ू से स्वयं रथ का रास्ता साफ करते हुए उन्होंने अपनी कन्या पुरुषोत्तम देव के हाथों में समर्पण कर दी। इससे पुरुषोत्तम देव की प्रतिज्ञा की रक्षा हुयी। सन् 1497 तक पुरुषोत्तम देव ने राज्य किया। उसके पश्चात् राजा प्रतापरुद्र ने राज्य पर अभिषिक्त होकर 1540 तक राज्य किया। राजा प्रतापरुद्र की प्रधाना महिषी गौरी के अतिरिक्त महाराज की श्रीपद्मा, श्रीपद्मालया, श्रीइला और श्रीमहिला नाम की चार और महिषियाँ थीं।

गजपति राजवंश के राजा प्रतापरुद्र जी श्रीराधाकृष्णमिलित तनु स्वयं भगवान श्री गौरसुन्दर जी की कृपा भाजन थे एवं ये महाप्रभु जी के पार्षद के रूप में गिने जाते थे। राजदर्शन संन्यासी के लिए अहितकर है, इसलिये लोकशिक्षक श्रीमन्महाप्रभु जी ने पहले-पहले अनुकूल भाव नहीं दिखाया था किन्तु शुद्ध भक्तिवश भगवान श्रीगौरसुन्दर जी ने राजा पर निष्कपट

रूप से अहैतुकी कृपा वर्षण की थी। श्रीचैतन्य चरितामृत में श्रील कृष्ण दास कविराज गोस्वामी जी ने राजा को अवलम्बन कर जगदवासियों को महाप्रभु जी ने जो शिक्षाएँ प्रदान करने की अलौकिक लीला की, उसका विस्तृत भाव से वर्णन किया है। श्रीचैतन्य चरितामृत की मध्यलीला के ग्यारहवें परिच्छेद में ये विषय वर्णित है कि राजा प्रतापरुद्र महाप्रभु जी के दर्शनों के लिये अत्यन्त व्याकुल हो कर बार-बार सार्वभौम भट्टाचार्य जी से प्रार्थना करते कि वे महाप्रभु जी की उन पर कृपा करवायें। भट्टाचार्य जी ने ये बात महाप्रभु जी के सन्मुख निवेदन की। इस बात को सुनते ही महाप्रभु जी ने अपने कानों पर हाथ रख लिये और बोले :- 'विरक्त संन्यासी आमार राजदर्शन। स्त्री-दर्शन-सम विषेर भक्षण।।'

अर्थात : मैं विरक्त संन्यासी हूं। मेरे द्वारा राजा का दर्शन, स्त्री दर्शन के समान है जो कि विरक्त संन्यासी के लिए ज़हर खाने की तरह ही है। यद्यपि राजा श्रीजगन्नाथ जी के श्रेष्ठ सेवक-भक्त हैं, फिर भी 'राजा' शब्द कालसर्प के समान भय प्रदान करने वाला है।

राजा की रायरामानन्द के माध्यम से महाप्रभु से मिलने की प्रचेष्टा

एक बार राजा प्रतापरुद्र रायरामानन्द और अपने मित्रों के साथ पुरुषोत्तम धाम में आये। श्रीमन्महाप्रभु के दर्शनों के लिये राजा की प्रबल उत्कण्ठा जानकर रायरामानन्द जी ने

महाप्रभु से मिलकर उनके प्रति राजा की प्रगाढ़ प्रीति की बात बतायी और कहा कि राजा ने सम्पूर्ण मासिक वेतन के साथ राजकार्य से निवृति प्रदान कर मुझे आपके नजदीक रहने का सुअवसर प्रदान किया है। राजा की इस प्रकार प्रेमार्ति और भक्त सेवा की बात सुन कर महाप्रभु जी ने कहा :-

तोमाते ये एत प्रीति हइल राजार।
एइ गुणे कृष्ण तारे करिवे अंगीकार।।

अर्थात : तुम्हारे प्रति जो राजा की इतनी श्रद्धा हुई है उसके इसी गुण से संतुष्ट होकर श्रीकृष्ण उसे अंगीकार करेंगे।

ये मे भक्तजनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जनाः
मद्भक्तानान्च ये भक्तास्ते में भक्तमा मताः।।
- आदि पुराण

अर्थात : हे अर्जुन! जो लोग मेरे भक्त के रूप में अपना परिचय देते हैं, वे मेरे वास्तविक भक्त नहीं हैं, किन्तु जो मेरे भक्तों के भक्त हैं, वे ही मेरे वास्तविक भक्त हैं।

महाराज प्रतापरुद्र की महाप्रभु जी के दर्शनों के लिये कैसी व्याकुलता थी एवं उनकी महाप्रभु जी के प्रति कैसी गाढ़ भक्ति थी, ये श्री चैतन्य चरितामृत की मध्यलीला के एकादश एवं द्वादश परिच्छेद के वर्णन से मालूम होता है। राजा प्रतापरुद्र को सार्वभौम भट्टाचार्य जी से जब ये मालूम हुआ कि महाप्रभु राजा का दर्शन नहीं करेंगे और यदि उन्हें बार-बार इसके लिए कहा गया तो वे इस स्थान को छोड़ कहीं और चले

जायेंगे, तब विरह-व्याकुल अन्तःकरण से अतीव खेद के साथ राजा ने कहा था -

"पापी नीच उद्धारिते ताँर अवतार।
जगाई मधाइ करियाछेन उद्धार।।
प्रतापरुद्र छाड़ि' करिबे जगत निस्तार।
एइ प्रतिज्ञा करि' करियाछेन अवतार।।
ताँर प्रतिज्ञा मोरे न करिबे दर्शन।
मोर प्रतिज्ञा ताँहा बिना छाड़िब जीवन।।
यदि सेइ महाप्रभुर न पाइ कृपा धन।
किवा राज्य, किवा देह-सब अकारण।।"
चै०च०म 11/45-46, 48-49

अर्थात पापी नीच लोगों के उद्धार के लिये तो उनका अवतार है और उन्होंने जगाई मधाई का उद्धार किया है। मालूम होता है कि उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा के साथ अवतार लिया है कि वे प्रतापरुद्र को छोड़कर बाकी सभी का उद्धार करेंगे । किन्तु यदि उनकी ऐसी ही प्रतिज्ञा है कि वे मेरा दर्शन नहीं करेंगे तो मेरी भी प्रतिज्ञा है कि मैं उनके बिना इस जीवन का त्याग कर दूँगा। यदि मैं उन महाप्रभु जी की कृपा रूपी धन को प्राप्त नहीं कर पाया तो मेरा राज्य और देह सब कुछ बेकार है।

राजा प्रतापरुद्र की ऐसी व्याकुलता को देखकर वासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य ने उन्हें महाप्रभु से साक्षात्कार करने का

उपाय बता दिया कि जब श्रीमन्महाप्रभु जी रथ के आगे नृत्यकीर्त्तन करते हुए भक्तों के साथ पुष्पोद्यान में प्रवेश करेंगे तब आप अपने राजवेश को त्याग कर साधारण वस्त्रों में वहाँ प्रवेश करना एवं महाप्रभु जी को रासपन्चाध्यायी का एक श्लोक सुनाना क्योंकि बाह्यज्ञानहीन अवस्था में ये श्लोक सुनकर वे प्रेमाविष्ट हो जायेंगे और प्रेमाविष्ट होकर वे अवश्य ही तुम्हारा आलिंगन करेंगे। ये मन्त्रणा सुनकर राजा को आश्वासन मिला। दक्षिण देश भ्रमण करने के पश्चात महाप्रभु जी जब वापिस पुरुषोत्तम धाम में आये तो राजा प्रतापरुद्र ने पुनः एक पत्र द्वारा वासुदेव सार्वभौम जी से निवेदन किया। तब वासुदेव सार्वभौम ने वह पत्र भक्तों को दिखाया जिससे राजा प्रतापरुद्र की महाप्रभु जी के प्रति असीम भक्ति देख सभी भक्त विस्मित हो गये। महाप्रभु जी को राजा के साथ मिलने की बात न कह कर केवल राज व्यवहार की बात ही कहेंगे, ऐसा संकल्प लेकर श्री नित्यानन्द प्रभु जी ने महाप्रभु जी से निवेदन किया :-

"योग्यायोग्य तोमाय सब चाहि निवेदिते।
तोमा न मिलिले राजा चाहे योगी हैते।।
काणे मुद्रा लइ मुञि हइब भिखारी।
राज्यभोग नहे चित्ते बिना गौरहरि।।
देखिब से मुख चन्द्र नयन भरिया।
धरिब से पादपद्म हृदये तुलिया।।"

चै०च०म 12 / 19 - 21

अर्थात :- प्रभु मैं योग्य-अयोग्य सब बातें आपसे निवेदन करना चाहता हूँ। राजा का कहना है कि यदि मुझे महाप्रभु जी के दर्शन नहीं हुये तो मैं योगी बन जाऊँगा। कानों में मुद्रायें डालकर भिखारी बन जाऊँगा, क्योंकि श्री गौरहरि के बिना राज्य के भोग भी मेरे चित्त को नहीं सुहाते हैं। राजा आपके मुखमण्डल को जी भर कर देखना चाहता है एवं श्रीपादपद्मों को हृदय पर धारण करना चाहता है।

यद्यपि प्रतापरुद्र की व्याकुलता को सुनकर महाप्रभुजी का मन कोमल हो गया था तथापि लोकशिक्षा के लिये मन को कठोर करते हुये उन्होंने कहा कि परमार्थ विचार से संन्यासी के लिए राजा का दर्शन करना मना है। यदि ऐसा निषिद्ध कार्य किया गया तो सबसे पहले दामोदर पण्डित ही उसकी समालोचना करेगा। महाप्रभु जी की ऐसी बात सुन दामोदर पण्डित ने कहा :-

"आमि कोन क्षुद्र जीव, तोमाके विधि दिव?।
आपनि मिलिबे ताँरे, ताहाओ देखिब।।
राजा तोमारे स्नेह करे, तुमि स्नेह वश।
ताँर स्नेहे करावे ताँरे तोमार परश।।
यद्यपि ईश्वर तुमि परम-स्वतन्त्र।
तथापि स्वभावे हओ प्रेमपरतन्त्र।।"

चै०च०म 12 / 27 - 29

अर्थात प्रभो! आप स्वतन्त्र भगवान हैं और कर्तव्य

तथा अकर्तव्य सब आप जानते हैं। मैं एक क्षुद्र जीव हूं मुझमें क्या सामर्थ्य कि मैं आपको उपदेश दे सकूँ? किन्तु यह मैं जानता हूँ और हम सब यह देखेंगे कि आप स्वयं उसे दर्शन देंगे और उससे मिलेंगे। उसका कारण यह है कि राजा आपसे स्नेह करता है और आप केवल मात्र स्नेह के अधीन हैं। उसका स्नेह ही उसे आपके चरणों का स्पर्श करा देगा। यद्यपि आप परम स्वतन्त्र ईश्वर हो, फिर भी अपने स्वभाव (प्रेमाधीनत्व) के कारण आप प्रेमी के वशीभूत हो जाते हो।

अनुरागी व्यक्तियों को यदि उनके इष्ट न मिलें तो वे प्राण तक त्याग देते हैं, ऐसा कहकर नित्यानन्द प्रभु जी ने राजा की प्राण-रक्षा के लिये महाप्रभु का बहिर्वास (संन्यासियों के पहनने वाला एक वस्त्र) माँगा, जिसे देने में महाप्रभु जी ने कोई आपत्ति नहीं की। नित्यानन्द प्रभु जी ने वह बहिर्वास वासुदेव सार्वभौम जी के माध्यम से राजा के पास भेज दिया जिसे प्राप्त कर राजा प्रतापरुद्र परमानन्दित हुए। वे उस वस्त्र को महाप्रभु जी से अभिन्न जानकर उसकी पूजा करने लगे। राजा की अनुमति से रायरामानन्द दक्षिण से पुरी में आकर रह रहे थे। उस समय फिर जब राजा प्रतापरुद्र की महाप्रभु जी के दर्शनों के लिए व्याकुलता बढ़ी तो रायरामानन्द जी ने पुनः महाप्रभु जी से राजा को दर्शन देने के लिये विशेष प्रार्थना की। पहले तो लोकशिक्षा के लिये महाप्रभु जी ने संन्यासी के आचरण के सम्बन्ध में सावधान करते हुए कहा कि जैसे सफेद वस्त्र पर लगी स्याही की बूँद को छिपाया नहीं जा सकता,

ठीक उसी प्रकार संन्यासी का थोड़ा सा दोष भी सब की दृष्टि में आता है। दूध से भरा हुआ कलश भी जिस प्रकार एक बूँद शराब से अपवित्र हो जाता है, उसी प्रकार सब तरह से गुणवान होने पर भी एक 'राजा' नाम ने प्रतापरुद्र को मलीन कर दिया है। रायरामानन्द जी के शुद्ध प्रेम के वशीभूत महाप्रभु जी रामानन्द जी के आवेदन को पूरी तरह नकार नहीं पाये और 'आत्मावै जायते पुत्रः' इस नीति के अनुसार – राजा, पुत्र के मिलन से मिलित हो सकते हैं, ऐसा निर्देश दे दिया। महाप्रभु की इच्छा को जानकर प्रतापरुद्र जी ने अपने पुत्र को महाप्रभु जी के पास भेजा। किशोर अवस्था, पीताम्बरधारी, श्यामलवर्ण एवं कमलनेत्रों वाले सुन्दर राजपुत्र को देख कर महाप्रभु जी को कृष्ण स्मृति हो आयी। महाप्रभु जी ने जब उस बालक का आलिंगन किया तो महाप्रभु जी के स्पर्श से राजपुत्र के शरीर में प्रेम के विकार प्रकट हो गये। बाद में जब पुत्र पिता के पास वापस गया तो प्रतापरुद्र जी ने भी उसे आलिंगन कर डाला। आज पुत्र का स्पर्श पाकर उन्हें ऐसा अनुभव हुआ जैसे उन्होंने महाप्रभु जी का ही आलिंगन किया हो। पुत्र के इस अद्भुत आलिंगन को पाकर राजा प्रेमाविष्ट हो उठे।

अभिमानरहित, निष्कपट व प्रपन्न व्यक्ति ही भगवान की कृपा प्राप्त करने में समर्थ हैं। 'दीनेर अधिक दया करेन भगवान्। कुलीन पण्डित धनीर बड़ अभिमान।।' अर्थात दीन व्यक्ति पर भगवान अधिक कृपा करते हैं क्योंकि कुलीन, पण्डित, धनी में बहुत अभिमान होता है।

महाराज प्रतापरुद्र सर्वगुणों से गुणी एवं प्रतिष्ठावान व्यक्ति होने पर भी निराभिमानी थे। श्रीमन्महाप्रभु जी द्वारा ऐसा अति कठोर भाव कि 'दर्शन नहीं देंगे' अवलम्बन करने पर भी राजा की तुच्छ सेवा देख कर उनके हृदय में उसके प्रति कृपा उमड़ आयी और वे संतुष्ट हो गये।

"तवे प्रतापरुद्र करे आपने सेवन।
सुवर्ण-मार्जनी लइया करे पथ समार्जन।।
चन्दन-जलेते करे पथ निषेचने।
तुच्छ सेवा करे वसि' राजसिंहासने।।
उत्तम हइया राजा करे तुच्छ सेवन।
अतएव जगन्नाथेर कृपार भाजन।।
महाप्रभु सुख पाइल से-सेवा देखिते।
महाप्रभुर कृपा हैल से-सेवा हइते।।"

चै0च0म 13/15-18

अर्थात : उस समय राजा प्रतापरुद्र अपने हाथों से सेवा कर रहे थे। वे सोने में मढ़ी हुई झाड़ू लेकर रास्ते को झाड़ रहे थे एवं चन्दन-मिश्रित जल का छिड़काव कर रहे थे। राजा सिंहासन पर विराजमान होते हुए भी एक छोटी सेवा कर रहे थे। वे सर्वोत्तम होकर भी तुच्छ सेवा कर रहे थे। इसलिए वे श्रीजगन्नाथ जी की सेवा-कृपा के पात्र भी थे।

श्रीमहाप्रभु जी राजा प्रतापरुद्र की यह सेवा देखकर

बहुत सुखी हुए और इसी सेवा के कारण ही राजा को श्रीमहाप्रभु की कृपा प्राप्त हो गयी।

भगवान की कृपा अहैतुकी होती है। वे कब किस पर कैसे कृपा करेंगे, वह वही जानते हैं। कई बार प्रत्यक्ष रूप से कृपा न कर वे अप्रत्यक्ष रूप से भी कृपा करते हैं। राजा की तुच्छ सेवा को देखकर महाप्रभु जी प्रसन्न हो गये। इसीलिए साक्षात् रूप से राजा पर कृपा करते हुए न दिखने पर भी महाप्रभु जी ने अप्रत्यक्ष रूप से अपना स्वरूप दिखा कर राजा को कृतार्थ किया था। श्रीचैतन्य चरितामृत के मध्यलीला के 13वें परिच्छेद में महाप्रभु जी की राजा के प्रति कृपा-लीला का प्रसंग वर्णित है। रथ यात्रा के समय जब सात सम्प्रदायों (टोलों) के भक्त अलग-अलग संकीर्त्तन कर रहे थे तो उस समय महाप्रभु जी की अलौकिक शक्ति के प्रभाव से सभी सम्प्रदायों के भक्तों को ऐसा अनुभव हुआ कि महाप्रभु जी कृपा करके केवल उन्हीं की सम्प्रदाय में हैं, औरों में नहीं, जबकि महाप्रभुजी अपने सात स्वरूपों से सातों ही सम्प्रदायों में थे। महाप्रभु जी की अपरिसीम कृपा से राजा प्रतापरुद्र महाप्रभु जी की इस अतीव अद्भुत लीला का दर्शन कर विस्मित एवं प्रेमाविष्ट हो उठे थे। यही महाप्रभु जी की परोक्ष कृपा का निदर्शन स्वरूप है। महाप्रभु जी की जब स्वयं रथ के सामने नृत्य करने की इच्छा हुयी तो उन्होंने सातों सम्प्रदायों के भक्तों को एकत्रित किया। महाप्रभु जी की रक्षा के लिये

भक्तों ने तीन घेरे डाल लिये। पहले घेरे में श्रीनित्यानन्द प्रभु, दूसरे में श्रीकाशीश्वर पण्डित व मुकुन्दादि भक्त एवं तृतीय घेरे में राजा प्रतापरुद्र और उनके गण थे। राजा प्रतापरुद्र अपने सेवक हरिचन्दन के कन्धे पर हाथ रखकर प्रेमविह्वल चित्त से महाप्रभु जी के नृत्य का दर्शन करने लगे। उसी समय श्रीवास पण्डित राजा के सामने आकर खड़े हो गये। प्रेमभाव के कारण वे ये नहीं समझ पाये कि उनके कारण राजा को महाप्रभु जी के दर्शनों में बाधा हो रही है। इस पर जब राजा के सेवक हरिचन्दन ने हाथ से बार-बार श्रीवास को एक तरफ होने के लिए कहा तो श्रीवास जी ने क्रोधित होकर जोर से एक थप्पड़ हरिचन्दन को दे मारा। इससे पहले कि हरिचन्दन क्रोधवश कुछ जवाब देते राजा ने उसको रोकते हुए कहा :-

'भाग्यवान तुमि-इहाँर हस्त स्पर्श पाइला।
आमार भाग्ये नाहि, तुमि कृतार्थ हैला।।'

चै0च0 13/97

अर्थात : तुम बहुत भाग्यवान हो कि ऐसे भक्त के हाथ का स्पर्श तुझे प्राप्त हुआ, ऐसे तो मेरे भी भाग्य नहीं, तुम तो कृतार्थ हो गये हो।

महाप्रभु जी की लीला में प्रेम की पराकाष्ठा का भाव, लोकशिक्षा एवं कृपा का सामंजस्य बड़े ही चमत्कृत रूप से अभिव्यक्त हुआ है।

सूर्यग्रहण के उपलक्ष में कृष्ण अपने पार्षदों के साथ

द्वारका से जब कुरुक्षेत्र आये तब राधारानी और गोपियों का कृष्ण के मिलन से जो भाव उदित हुआ था, उसी भाव में विभावित होकर महाप्रभु जी व्रजेन्द्रनन्दन स्वरूप श्री जगन्नाथ देव जी का रथ खींच रहे थे। वे रथ को श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य लीलामय स्थान श्रीक्षेत्र अथवा नीलाचलरूपी कुरुक्षेत्र से सुन्दराचल रूपी माधुर्य भूमि जो कि वृन्दावन से सर्वथा अभिन्न है-गुण्डिचा की तरफ खींचते हुये ले जा रहे थे। गोपीभाव की सामर्थ्य को समझने के लिए कभी महाप्रभु जी पीछे की ओर चलने लगते हैं तो कभी जगन्नाथ देव महाप्रभु जी के भाव को समझकर अपनी गति धीमी कर लेते हैं। इस प्रकार श्री जगन्नाथ देव और महाप्रभु जी दोनों के भावों के धक्कम धक्के में जब महाप्रभु जी दिव्य उन्माद अवस्था में प्रतापरुद्र जी के सन्मुख गिरने को हुये तो राजा ने घबराते हुये उन्हें संभाला। वास्तव में राजा के प्रति प्रसन्न होकर महाप्रभु जी ने अपने श्रीअंग का स्पर्श उन्हें प्रदान करवाने के लिए ही ये लीला की थी। किन्तु साथ ही साथ लोकशिक्षा के लिये विषयी का स्पर्श होने के कारण उन्होंने अपने-आपको धिक्कारा भी। अचिन्त्य भगवद्‌चरित्र में विभिन्न भावों की चमत्कारिता और लोकशिक्षा को समझ पाना साधारण बुद्धि से संभव नहीं है।

'राजा देखि' महाप्रभु करेन धिक्कार।
छि छि, विषयीर स्पर्श हइल आमार।।

यद्यपि राजारे देखि हाड़िर सेवने।
प्रसन्न हइयाछे तारे मिलिवारे मने।।

तथापि आपन गणे करिते सावधान। बाह्ये किछु रोषाभास कैला भगवान्।। चै0चै0म0 13/182,184-85

गिरता हुआ देखकर अति शीघ्र महाप्रभु को राजा प्रतापरुद्र ने पकड़ लिया। राजा को देखते ही श्रीमहाप्रभु का आवेश उतर गया और कहने लगे 'मुझे धिक्कार है, छिः छिः, मुझे तो विषयी का स्पर्श हो गया।' उस समय श्रीनित्यानन्द जी भी प्रेमाविष्ट थे, श्री काशीश्वर एवं श्रीगोविन्द भी प्रभु से दूर खड़े थे। इनमें से कोई भी प्रभु के पास न था। केवल श्री प्रतापरुद्र राजा ही पास थे जिन्होंने प्रभु को सम्भाल लिया । यद्यपि राजा प्रतापरुद्र की श्री जगन्नाथ जी की झाडू-सेवा देखकर प्रभु राजा पर प्रसन्न थे और उसे मिलना भी चाहते थे तथापि अपने सेवकों को सावधान करने के लिए श्रीमहाप्रभु ने बाहर कुछ क्रोध दिखलाया। जगन्नाथ मन्दिर और गुण्डिचा के बीच के स्थान को 'बलगण्डि' कहते हैं। बलगण्डि श्री जगन्नाथ देव जी का दोपहर के समय विश्राम करने का स्थान है। थकावट के कारण सेवक भी वहीं विश्राम करते हैं। वहां ऐसी प्रथा है कि छोटे-बड़े सब भक्तों द्वारा बहूत से विचित्र-विचित्र भोग वहां जगन्नाथ जी को निवेदित किये जाते हैं। भोग के समय भीड़ हो जाने के कारण महाप्रभु जी उपवन में अर्थात पुष्पोद्यान में जाकर विश्राम करने लगे। तभी राजा प्रतापरुद्र

सार्वभौम भट्टाचार्य की सलाह को स्मरण कर वैष्णव वेश में वहां पहुंचे और महाप्रभु जी की श्रीचरण सेवा करने लगे। साथ ही साथ वे रासपन्चाध्यायी के दो श्लोक[2] महाप्रभु को पढ़ कर सुनाने लगे। श्लोक सुनने की देरी थी कि महाप्रभु जी ने 'भूरिदा' 'भूरिदा' कहते हुए प्रेमाविष्ट हो राजा का आलिंगन किया। सर्वज्ञ होते हुए भी महाप्रभु जी ने जब उनका परिचय पूछा तो प्रतापरुद्र ने दासों के दास के रूप में अपना परिचय दिया जिससे प्रसन्न होकर महाप्रभु जी ने साथ-2 उन्हें अपना ऐश्वर्य दिखाया। राजा के भाग्य को देखकर भक्तगण उल्लसित हो उठे। बलगण्डि से गुण्डिचा की ओर यात्रा के समय पहलवानों तथा बलशाली हाथियों द्वारा भी रथ के टस से

---

2. 'जयित तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते।।
तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीड़ितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः।।'
भागवत 10/31/1,9

गोपियों ने कहा, हे दयित आपके आविर्भाव के कारण वैकुण्ठ आदि लोकों से भी व्रजमण्डल की महिमा बढ़ गई है। तभी तो महालक्ष्मी वैकुण्ठ को छोड़कर यहां नित्य निरन्तर निवास करने लगी हैं। महानन्द से परिपूर्ण इस व्रजधाम में आपकी प्रेयसी गोपियों ने आपके लिये ही प्राण धारण किये हुये हैं और चारों तरफ तुम्हें अन्वेषण करते हुये विहल हो उठी हैं, इसलिये उन्हें एक बार दर्शन दीजिये।'
(इन्दिरा - लक्ष्मी, धृतासव - धृतप्राणः)

मस न होने के कारण राजा प्रतापरुद्र बड़े चिन्तित से हो उठे। भक्तों के उद्वेग को देखकर महाप्रभु जी स्वयं आये और सभी पहलवानों और हाथियों को उन्होंने एक ओर हटा दिया और स्वयं रथ खींचने लगे। महाप्रभु जी ने जब रथ को पीछे से मस्तक के द्वारा धकेला तो वह हड़हड़ करता हुआ चलने लगा। महाप्रभु की महिमा को देखकर राजा प्रतापरुद्र और उनके सभी पात्र विस्मित एवं प्रेम से सराभोर हो उठे। गौड़ीय वैष्णव चार महीने महाप्रभु जी के साथ रह कर श्रीजगन्नाथ देव जी की विभिन्न लीलाओं का दर्शन करते थे। जब श्रीनन्दोत्सव के दिन महाप्रभु जी ने गोपवेश में भक्तों के साथ ब्रजलीला के नाटक का अभिनय किया था, उस समय जिन-जिन भक्तों ने उस नाटक में अभिनय किया था उनमें राजा प्रतापरुद्र भी एक थे। विजयदशमी के दिन वृन्दावन की ओर यात्रा करते

आपका कथामृत आपके विरहकातर व्यक्तियों का जीवन स्वरूप है। प्रह्लाद, ध्रुव इत्यादि भक्त भी उसका स्तव करते रहते हैं। वह प्रारब्ध, अप्रारब्ध पाप को नाश करने वाली, श्रवण करने मात्र से मंगल करने वाली, प्रेम सम्पत्ति देने वाली एवं कीर्तनकारियों द्वारा विस्तृत है इसलिये जो व्यक्ति ऐसी कथा का गान करते हैं वही सर्वश्रेष्ठ दाता हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी जी द्वारा किये गये अनुभाष्य में अन्वय :- हे जनाः भूवि (संसारे) तप्तजीवनं (विरहतापक्लिष्टानां प्राणस्वरूपं) कविभिः (कृष्णरसविद्भिः) इड़ितम् (आराधितं) कल्मषापहं (विरहज्वरदुःखविनाशकं) श्रवणमंगलं (कर्णरसायनं) श्रीमत् (सर्वशक्तिसमन्वितं) तव (हरेः) कथामृतं (सुधात्मिकां कथाम्) आततं (विस्तृतं) गृणन्ति (कीर्तयन्ति), ते (एव) जनाः भूरिदाः (वदान्यवराः)।

समय महाप्रभु श्रीरायरामानन्द के साथ कटक में आये। वहीं एक उपवन में बकुल वृक्ष के नीचे वे राजा प्रतापरुद्र से भी मिले थे। यहां भी राजा के हृदय की आर्ति देखकर महाप्रभु जी ने आलिंगन करते हुए उसे अपने आंसुओं से भिगो डाला था। तबसे श्रीगौरसुन्दर जी का एक नाम हुआ - 'श्रीप्रतापरुद्र-संत्राता'। जब भवानन्द राय के पुत्र गोपीनाथ पट्टनायक द्वारा राजा का धन नष्ट करने पर प्रतापरुद्र के ज्येष्ठ पुत्र ने उसे चांग पर चढ़ा कर मृत्यु-दण्ड की सजा सुनायी तो भक्त लोग गोपीनाथ पट्टनायक के प्राणों की रक्षा के लिए महाप्रभु जी के पास आये। तब श्रीमन्महाप्रभु जी ने असंतुष्ट होकर कहा कि यदि बार-बार मुझसे ये बात कहोगे तो मैं अलालनाथ चला जाऊँगा। उस समय महाप्रभु जी के अलालनाथ जाने की बात सुनकर व उन्हें पुरी में ही रोकने के लिए जो आर्त भाव प्रतापरुद्र जी का देखा गया व महाप्रभु जी को रोकने के लिए उसने जो प्रयास किये वे राजा की महाप्रभु जी के प्रति प्रेम की पराकाष्ठा के परिचायक हैं।

"एत शुनि' कहे राजा पाइया मने व्यथा।
सब द्रव्य छाड़ों, यदि प्रभु रहेन एथा।।
एकक्षण प्रभुर यदि पाइये दरशन।
कोटिचिन्तामणिलाभ नहे तार सम।।
कोन् छार पदार्थ एइ दुइलक्ष काहन?
प्राण-राज्य करों प्रभुपदे निर्मन्च्छन।।"

चै०च० अ 9/94-96

अर्थात: चैतन्य चरितामृत में वर्णन मिलता है कि जब राजा ने सुना कि महाप्रभु जी पुरी से जा रहे हैं तो मन ही मन वे अत्यन्त व्यथित होकर बोले कि यदि महाप्रभु जी अपना अलालनाथ जाने का कार्यक्रम रोक दें और यहीं पुरी में रहें तो मैं गोपीनाथ पट्टनायक का सारा रुपया माफ कर दूँगा। मेरी तो धारणा यह है कि मात्र एक क्षण के लिये भी यदि महाप्रभु जी का दर्शन मिले तो अनन्त चिन्तामणियों की प्राप्ति भी उस के समान नहीं है। अरे ये संसार के तुच्छ पदार्थ क्या चीज़ हैं मैं तो अपना पूरा का पूरा राज्य व अपने प्राणों तक को महाप्रभु जी के पादपद्मों में समर्पण कर सकता हूं। श्रीवृन्दावन दास ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य भागवत की अन्त्यलीला के पाचवें अध्याय में प्रतापरुद्र की महाप्रभु जी के दर्शनों के प्रति उत्कण्ठा एवं उनके द्वारा स्वप्न में श्रीजगन्नाथ देव और श्रीगौरसुन्दर जी के अभिन्नत्व के दर्शन की बात वर्णन की है। दिव्य-उन्माद की अवस्था में महाप्रभु जी के मुख से लार एवं श्रीअंगों पर धूलि देखकर राजा कुछ स्निग्ध चित्त हो गये थे। पहले उन्होंने स्वप्न में श्री जगन्नाथ जी के श्रीअंगों को धूलि से धूसरित देखा और फिर बाद में धूलि से धूसरित श्रीचैतन्य महाप्रभु जी को सिंहासन पर श्री जगन्नाथ देव जी के साथ विराजित देखा। स्वप्न में ऐसी अद्भुत लीला दर्शन करने से वे समझ पाये कि श्री गौरसुन्दर और जगन्नाथ जी अभिन्न तत्त्व हैं।

"सेई धूला लाला देख सर्वांगे आमार।
तुमि महाराजा-महाराजार कुमार।।
आमार स्पर्शिते कि तोमार योग्य हय?
एत वलि 'भृत्ये चाहि' हासे दयामय
सेइक्षणे देखे राजा सेइ सिंहासने।
चैतन्य गोसाञि वसि' आहले आपने।।"

चै0भा0अ 5/175-177

कलकत्ता बंगीय साहित्य परिषद की एक बंगला पुस्तक में प्रतापरुद्र के नाम से युक्त बंगाली भाषा में लिखे पदों का उल्लेख सुना जाता है। किन्तु ये पद प्रतापरुद्र जी द्वारा रचित हैं कि नहीं इसमें सन्देह है। पद का एक अंश –

(राधा जी के प्रति उक्ति) :-

"आभरण-माझे ह'ब दुखानि नूपुर।।
नखचन्द्रेर चकोर, पदकमले भ्रमर।
ओ रूपे मुकुर ह'व निरोग चामर।।
आर एक साध आमि करियाछि मने।।
अतिक्षीण रेणु हैया थाकिव चरणे।।
रेणु हैते न पाइ यदि मने अनुमानि।
प्रतापरुद्रे कृपा करह आपनि।"

श्रीमन्महाप्रभु जी के अप्रकट होने पर महाराज प्रताप रुद्र की तीव्र विरह दशा का भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में वर्णन है :-

"हेनकाले प्रभु-अदर्शन कथा शुनि।
अंग आछाड़िया राजा लोटाय धरणी ।।
शिरे कराघात करि' हैल अचेतन।
रायरामानन्द मात्र राखिल जीवन ।।
प्रभुर वियोग राजा सहिते न पारे।
नीलाचल हइते रहिल कत दूरे।।"

– 3/217–19

अर्थात जब राजा ने महाप्रभु के अप्रकट होने की बात सुनी तो वे पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़े एवं सिर पीटते हुए बेहोश हो गये। मात्र रायरामानन्द जी ने उनके जीवन की रक्षा की। महाप्रभु जी का वियोग सहन न कर पाने के कारण राजा नीलाचल से कहीं दूर जा कर रहने लगे थे।राजा प्रतापरुद्र के पुरी में राज करने के बाद बाकी जो राजा आये उनमें से कुछ के नाम यहां दिये जा रहे हैं :- 1. कालुया प्रताप 2. कथारूया प्रताप 3. गोविन्द विद्याधर 4. चक्र-प्रताप 5. नरसिंह देव 6. रघुरामदेव 7. मुकुन्ददेव हरिचन्दन 8. रामचन्द्र देव 9. पुरुषोत्तम देव 10. नृसिंह देव 11. गंगाधर देव 12. बलभद्र देव 13. मुकुन्द देव 14. दिव्यसिंह देव 15. हरेकृष्ण देव 16. गोपीनाथ देव 17. रामचन्द्र देव 18. वीरकेशरी देव 19 दिव्यसिंह देव 20. मुकुन्द देव 21. रामचन्द्र देव 22. वीरकेशरी देव 23. दिव्यसिंह देव 24. मुकुन्द देव 25. श्रीरामचन्द्र देव 26. वीरकेशरी देव 27. दिव्यसिंह देव

श्री सुबुद्धि राय

श्री सुबुद्धि राय जी के माता पिता के परिचय व जन्म स्थान के विषय में कुछ भी नहीं जाना जाता है। इन्होंने कलियुग पावनावतारी श्रीमन्महाप्रभु जी के दर्शन किये थे और इन्हें महाप्रभु जी की विशेष कृपा प्राप्त हुयी थी। इसीलिये इनका पावन जीवन चरित स्मरणीय एवं कीर्त्तनीय है। बाहरी विचारों से पहले यह गौड़देश[3] के प्रसिद्ध राजा थे। ब्राह्मण घर में प्रकटे सुबुद्धि राय के पाण्डित्य की भी अच्छी प्रसिद्धि थी। सुबुद्धि राय जब गौड़देश के राजा थे तब हुसैन शाह उनके

3. गौड़ देश:- 'गौड़' मालदह जिले में अवस्थित बंग की प्राचीन राजधानी थी। एक समय गौड़नाम से समुदय बंगलादेश को 'गौड़' कहा जाता था। – आशुतोष देव रचित नूतन बंगला शब्दकोष

स्कन्द पुराण में पन्च गौड़ का उल्लेख आया है। पन्च गौड़ कहने से सारस्वत, कान्य कुब्ज, उत्कल, मैथिल और गौड़देश समझाया है। इनमें से मिथिला और बंग के बीच का गौड़राज्य ज्यादा प्रसिद्ध था। सेनवंशीय विजय सेन कर्णाट से आकर गौड़ के अधिपति बने थे। उनके वंश के लोग गौड़ेश्वर के नाम से ख्यात हैं। विजय सेन के पुत्र बल्लाल सेन ने गंगातीर के किनारे गौड़ नामक नगर की राजधानी स्थापन की थी। मालदह जिले के बीच में गंगा के प्राचीन गर्भ में प्राचीन गौड़ अवस्थित है। प्राचीन काल में बंगदेश में रहने वालों को गौड़ीय कहा जाता था। श्रीगौरांग महाप्रभु जी के आविर्भाव के पश्चात् उनके भक्त ही गौड़ीय शब्द से वाच्य हैं – गौड़ीय वैष्णव शब्दकोष

अधीन नौकरी करते थे। श्रीचैतन्य चरितामृत में वर्णन मिलता है।

"पूर्वे यवे सुबुद्धि राय छिला गौड़े अधिकारी।
हुसैन खां-सैयद करे ताँहार चाकरी।।"
(चै. च. म.25/180)

एक बार हुसैन शाह ने कोई गलती की थी (ऐसा कहा जाता है कि बड़े तालाब की खुदायी करते समय कोई गलती की थी) जिसके फलस्वरूप सुबुद्धि राय ने दण्ड के रूप में उसे चाबुक मारा था। दैववशतः यही हुसैन शाह कुछ समय बाद गौड़देश का बादशाह बन गया। किन्तु हुसैन शाह सुबुद्धि राय द्वारा किये गये उपकारों का स्मरण कर उनका बहुत सम्मान करता था। सुबुद्धि राय द्वारा मारे गये चाबुक का निशान अभी तक हुसैन शाह बादशाह की पीठ पर विद्यमान था। एक दिन उनकी पत्नी ने वह निशान देख कर जब उस विषय में पूछा तो उसे पता लगा कि जब सुबुद्धि राय राजा थे तो उन्होंने बादशाह को चाबुक मारे थे। ये सुनने के साथ-2 क्रोधित सी होकर उसने सुबुद्धि राय को प्राणदण्ड देने के लिए पति को उकसाया। किन्तु बादशाह द्वारा ये स्वीकार न करने पर बेगम ने सुबुद्धि राय की जाति नाश करने की बात कही। किन्तु बादशाह ने ये सोचकर कि जाति नाश करने पर सुबुद्धि राय आत्महत्या कर लेगा, बेगम की ये बात भी अस्वीकार कर दी। बेगम ने तब आत्महत्या करने की धमकी दी। तब बादशाह

ने कोई उपाय न देखकर स्त्री के कहने के अनुसार सुबुद्धि राय को अपने करवे (मिट्टी का बर्तन) का पानी पिलवा दिया। हिन्दू धर्म के विधान के अनुसार वह पानी पीने से सुबुद्धि राय की जाति नष्ट हो गयी। सुबुद्धि राय को पहले ही विषयों के प्रति वैराग्य हो गया था। इसलिये मौका पाकर वे घर-परिवार सब को छोड़कर काशी धाम में चले गये और वहाँ पण्डितों से अपने प्रायश्चित के बारे में पूछने लगे। ब्राह्मणों ने उन्हें खौलता हुआ घी पीने को कहा। गौड़ीय वैष्णव शब्दकोश में लिखा है कि ब्राह्मणों ने उन्हें जलती हुई भूसी के ढेर के ऊपर लेटकर वहीं जल-जल कर मरने की विधि बतायी थी। इस प्रकार की व्यवस्था की बात सुनकर किसी-किसी व्यक्ति ने कहा कि ये छोटे से दोष के बदले बड़ा भारी प्रायश्चित है। लोगों की बात सुनकर सुबुद्धिराय के मन में संदेह जाग उठा। अतः श्रीमन्महाप्रभु जी ने जब वाराणसी में शुभपदार्पण किया, तब सुबुद्धि राय ने सारा वृतांत उन्हें सुनाया। सारा वृतांत सुनने के पश्चात महाप्रभु जी ने उन्हें वृन्दावन में जाकर कृष्णनाम संकीर्त्तन करने का उपदेश दिया। श्रीचैतन्य चरितामृत (मध्य 191-193) में लिखा है -

प्रभु कहे - "इँहा हैते याह वृन्दावन।
निरन्तर कर कृष्ण नाम संकीर्त्तन।।
एक 'नामाभासे' तोमार पाप दोष यावे।
आर नाम लइते कृष्णचरण पाइवे।।

आर कृष्ण नाम लैते कृष्णस्थाने स्थिति।
महापातकेर हय एइ प्रायश्चित्ति।।"

अर्थात श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने कहा कि तुम यहाँ से सीधा वृन्दावन चले जाओ और निरन्तर श्रीकृष्ण का नाम संकीर्तन करो। एक नामाभास से ही तुम्हारे पाप दोष दूर हो जायेंगे, कृष्ण चरण पाओगे और उनके धाम की प्राप्ति हो जायेगी। महान से महान पाप का यही प्रायश्चित है। श्रीमहाप्रभु जी की आज्ञा से सुबुद्धि राय वृन्दावन की ओर जाते समय प्रयाग, अयोध्या होते हुए नैमिषारण्य में पहुंच कर कुछ दिन वहां रहे। क्रमश: नैमिषारण्य से मथुरा पहुंचे तो मालूम हुआ कि महाप्रभु जी तो वृन्दावन से प्रयाग चले गये हैं। श्रीमन्महाप्रभु जी के दर्शन न होने के कारण सुबुद्धि राय मर्माहत हुये। श्रीमन्महाप्रभु जी के विरह से उनमें वैराग्य और उदासीनता आ गयी। अब सब प्रकार के कष्टों को सहन करते हुए वे जंगल से सूखी लकड़ियां इकट्ठी करके लाते थे और मथुरा में बेचते थे। उससे जो उन्हें थोड़ा पैसा मिलता, उससे ही वे मात्र चने चबा कर जीवन धारण करते थे। हाँ कुछ पैसे जमा करके गौड़ीय वैष्णवों को दही व चावल इत्यादि खिलाते थे।

"शुष्क काष्ठ आनि राय बेचे मथुराते।
पाँच छय पयसा हय एक बोझाते।।
आपने रहे एक पयसार चाना चाबाइया।

आर पयसा वाणियास्थाने राखेन धरिया।।
दु:खी वैष्णव देखी तारे करान भोजन।
गौड़ीया आइले दधी, भात, तैलमर्दन।।"
चै. च. म. 25/197-199

इस प्रकार उनका वैराग्य और उनकी वैष्णव सेवा के लिये निष्कपट सेवा-प्रचेष्टा देखकर श्रील रूप गोस्वामी बहुत ही प्रसन्न हुये थे। श्रील रूप गोस्वामी जी ने सुबुद्धि राय को अपने साथ व्रजमण्डल की श्रीकृष्ण लीला स्थलियों का दर्शन करवाया था। "रूप गोसाञि आसि' ताँरे बहु प्रीति कैला। आपन-संगे लइया 'द्वादशवन' देखाइला।। चै.च.म. 25/200

धनवान होने पर ही व्यक्ति विष्णु वैष्णव की सेवा करेगा, ऐसा नहीं होता। जहां पर सेवावृत्ति है, वहां पर दरिद्रता रहने पर भी भगवान की इच्छा से विष्णु-वैष्णव की सेवा के लिये वस्तुओं का अभाव नहीं होता। सुबुद्धि राय का पावन चरित्र इस का दृष्टान्त स्वरूप है।

जिस समय सनातन गोस्वामी काशी से प्रयाग आ गये और वहां से राज मार्ग से मथुरा की तरफ जा रहे थे, उसी समय महाप्रभु द्वारा गंगा किनारे वाले मार्ग से वृन्दावन से वापिस आ जाने के कारण दोनों का मिलन नहीं हो सका। सनातन गोस्वामी जी भी मथुरा में आकर सुबुद्धि राय से मिले थे। जिस रास्ते से महाप्रभु जी वृन्दावन से वापस लौटे थे उसी रास्ते पर रूप गोस्वामी जी व अनुपम भी चले परन्तु उनकी सनातन

की तो श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने श्रीकृष्ण चरणों में मति रहे - कहते हुए आशीर्वाद दिया।

श्रीमन्महाप्रभु जी जिस समय प्रयाग धाम में श्री बल्लभाचार्य जी के घर में ठहरे थे तो उसी समय ये आकर महाप्रभु जी से मिले थे। श्रीमन्महाप्रभु जी ने जब इनसे हरिकथा सुनने के लिए आग्रह प्रकट किया तो इन्होंने स्वरचित एक श्लोक पढ़कर सुनाया - "श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे भारतमन्ये भजन्तु भवभीताः। अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परंब्रह्म ।।"

'इस संसार रूपी भवसागर से भयभीत तमाम व्यक्तियों में से कोई श्रुति का, कोई स्मृति का और कोई महाभारत का भजन करता है, किन्तु मैं तो नन्दमहाराज जी की वन्दना करता हूँ जिनके बरामदे में परब्रह्म कृष्ण खेलते रहते हैं।'

महाप्रभु जी श्लोक सुनकर प्रेमाविष्ट हो गये और उन्होंने और कुछ सुनने की इच्छा व्यक्त की तो रघुपति उपाध्याय जी ने दण्डवत् प्रणाम करते हुये कहा -

"कम्प्रति कथयितुमीशे सम्प्रति को वा प्रतीतिमायात।
गोपति-तनयाकुंजे गोपवधूटी-विटं ब्रह्म ।।"

"गोपति-तनयाकुंजे (गोपतिः सूर्यः तस्य तनया कालिन्दी तस्याः तटस्थ कुंजे) लीला परायणं गोपवधूटीविटं (गोपवट्यः तरूण्यः स्वलपवयस्काः गोपरामाः, क्षुद्रार्थे टीप्, तासां विटं लम्पटं) (परं) ब्रह्म (श्रीकृष्णः विराजते इति) सम्प्रति कं (जनं) प्रति

कथयितुम् ईशे (समर्थो भवामी), कः वा प्रतीतिं (विश्वासम्) आयातु (स्थापयेत्)।।"

(श्रील श्रीभक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी द्वारा कृत अन्वय)

श्रीमन्महाप्रभु जी द्वारा पुनः पुनः कृष्ण-लीला उद्दीपक श्लोक सुनने की इच्छा प्रकट करने पर जब रघुपति उपाध्याय जी ने एक-एक करके श्लोक पढ़ने प्रारम्भ किये तो महाप्रभु जी में उत्तरोत्तर अद्भुत प्रेम के विकार जागृत होने लगे। जिन्हें देखकर रघुपति उपाध्याय चमत्कृत हो उठे और उन्होंने निश्चय कर लिया कि ये श्रीकृष्ण ही हैं।

महाप्रभु जी ने उपाध्याय जी से पूछा कि भगवान के अनेक रूप हैं किन्तु उनमें से कौन सा श्रेष्ठ है? इस पर उपाध्याय जी ने कहा - श्याममेव परं रूपं। महाप्रभु जी ने फिर पूछा कि श्रीकृष्ण के धामों में से कौन सा धाम श्रेष्ठ है?

उपाध्याय जी ने कहा - पुरी मधुपुरीवरा'। इसी प्रकार कृष्ण की अवस्थाओं में कौन सी अवस्था श्रेष्ठ है के उत्तर में उपाध्याय जी ने कहा कि 'वयः कैशोरकं ध्येयं' एवं रसों में 'आद्य एवं परो रसः' अर्थात श्रृंगार रस को उन्होंने उत्तम बताया। पद्यावली में उद्धृत श्लोक इस प्रकार है - 'श्यामेव परं रूपं पुरीमधुपुरी वरा। वयः कैशोरकं ध्येयमाद्य एव परोरसः ।।' महाप्रभु जी द्वारा प्रेमावेश में रघुपति उपाध्याय जी को आलिंगन करने पर वे प्रेम में मत्त होकर नृत्य करने लगे। रघुपति उपाध्याय के सौभाग्य को देखकर बल्लभ भट्ट और

उनके घर के सभी सदस्य विस्मित हो उठे।

श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती

"तुंगविद्या व्रजे यासीत् सर्वशास्त्रविशारदा।
सा प्रबोधानन्दयतिर्गौरोद्गानसरस्वती।।"
–गौ. ग. 163

ब्रजलीला में जो सर्वशास्त्र विशारद 'तुङगविद्या' थीं वे ही गौरोद्गान यति प्रबोधानन्द सरस्वती जी हैं।

"श्रीवैष्णव एक, – व्यैंकटभट्ट नाम। प्रभुरे निमन्त्रण कैल करिया सम्मान।।" चै.च.म. 9/82 श्रीचैतन्य चरितामृत के इस पयार के अमृत प्रवाह भाष्य में श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने लिखा है कि वैंकट भट्ट इनके भाई त्रिमल्ल भट्ट और प्रबोधानन्द सरस्वती ये पहले 'श्री' सम्प्रदाय के आचार्य स्वरूप थे। वैंकट भट्ट के पुत्र का नाम ही गोपाल भट्ट गोस्वामी है। श्रीवैंकट भट्ट दक्षिण भारत के रहने वाले थे। ये विशिष्ट शास्त्रज्ञ ब्राह्मण थे।

"श्रीवैंकटभट्टेर निवास दक्षिणेते। विशिष्ट ब्राह्मण विज्ञ सकल शास्त्रेते।।" – भक्ति रत्नाकर 1/82

श्रीचैतन्य चरितामृत (मध्य 9/82) पयार के अनुभाष्य में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद जी ने लिखा है कि श्री वेंकट भट्ट श्रीरंगक्षेत्र निवासी एवं श्री सम्प्रदाय के एक

ब्राह्मण थे। तब 'श्रीरंग' तमिल देश के अन्तर्गत ही था। इसलिये वर्तमान में वहाँ के अधिवासियों के 'वैंकट' 'तिरुमलय' इत्यादि नाम नहीं होते। सम्भावना है कि ये वंश कुछ दिन पहले से ही श्रीरंग में वास कर रहा था।

वैंकट भट्ट 'बड़गलइ' शाखा के रामानुजीय वैष्णव थे। इनके दूसरे भ्राता थे – त्रिदण्डि रामनुजीयाचार्य स्वामी श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती जी। श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी जी इन्हीं वैंकट भट्ट के पुत्र थे। ये पहले लक्ष्मी नारायण जी के उपासक थे किन्तु श्रीमन्महाप्रभु जी की कृपा से एवं उनके संग के प्रभाव से वैंकट भट्ट श्रीराधा कृष्ण के उपासक बन गये। ये प्रसंग श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने सुन्दर रूप से वर्णन किया है। छः गोस्वामियों में से एक श्रील श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती जी के शिष्य थे। हरिभक्ति विलास में लिखा है –

"भक्ते र्विलासाश्चिनुते प्रबोधानन्दस्य शिष्यो भगवत्प्रियस्य।
गोपाल भट्टो रघुनाथ दासं सन्तोषयन् रूपसनातनौ च ।।
–श्रीहरिभक्तिविलास 1/2

'श्रीरघुनाथदास और श्रीरूपसनातन जी की प्रसन्नता के लिये श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती पाद का शिष्य मैं श्रीगोपाल भट्ट भक्ति विलासों का चयन कर रहा हूँ।

श्रीलप्रबोधानन्द सरस्वती जी के द्वारा लिखित ग्रन्थों में से 1. श्रीवृन्दावनशतकम् 2. श्रीनवद्वीपशतकम्

3. श्रीराधारससुधानिधि 4. श्री चैतन्य चन्द्रामृतम् आदि ग्रन्थ रसिक भक्तों द्वारा विशेष समादृत हैं। इनके अतिरिक्त श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में भी उनके द्वारा रचित ग्रन्थों का उल्लेख है - संगीतमाधव, आचार्यरास प्रबन्ध, श्रुतिस्तुति व्याख्या, कामबीज - काम - गायत्रीव्याख्यान एवं श्रीगीत गोविन्द का व्याख्यान है।

श्रीचैतन्य भागवत के मध्यखण्ड के तृतीय अध्याय के 37वें पयार के श्रीगौड़ीय भाष्य में श्रीलप्रभुपाद जी ने ,लिखा है कि 'प्रकाशानन्द नामक एक केवलाद्वैतवादी अध्यापक संन्यासी वेदों की व्याख्या करते समय मेरे अप्राकृत नित्य अंगों को खिण्डित करता है। अज्ञानतावश कोई - 2 ऐसा समझता है कि ये प्रकाशनन्द ही कावेरी प्रवासी वेंकट भट्ट के छोटे भाई प्रबोधानन्द हैं। भक्त माल नामक सहजिया ग्रन्थ में ये भ्रम दोष होने के कारण वर्तमान लेखकों में भी थोड़ा बहुत ये दोष प्रवेश कर गया है।

श्रीलभक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने उपरोक्त भ्रम के विषय में जो निर्देश किया है, वह सत्य है। प्रमाणस्वरूप कहा जा सकता है कि श्री आशुतोष देव द्वारा लिखित नवीन बंगला अभिधान में प्रबोधानन्द जी के सम्बन्ध में लिखा है कि 'वे एक वैष्णव दार्शनिक थे और उनका वास्तविक नाम प्रकाशनन्द सरस्वती था। प्रबोध नाम उन्हें श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने दिया था।'

पुनः श्रीहरिदास दास जी ने स्वरचित श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में 'प्रबोधानन्द सरस्वती' के चरित्र में इस प्रकार मन्तव्य दिया है - 'मतान्तर में प्रकाशानन्द का ही वैष्णवनाम प्रबोधानन्द हुआ......... एवं सुधानिधि के अन्तिम श्लोक में 'मायावादार्कतापसन्तप्त' द्वारा ये समझा जाता है कि ये पहले मायावादी सन्यासी थे।'

परन्तु आपको यह बता देना चाहता हूँ कि 'मायावादार्कतापसन्तप्त' कहने से ही वे पहले मायावादी थे ऐसी युक्ति लेना या ऐसा समझना ठीक नहीं है। श्रीमन्महाप्रभु और श्रीमन्महाप्रभु जी के अनुगत सभी श्रीगौड़ीय वैष्णवाचार्यो ने अत्यन्त भक्ति प्रतिकूल मायावाद विचारों का खण्डन किया है। जगाई - मधाई उद्धार की अपेक्षा मायावादी वासुदेव सार्वभौम और श्री प्रकाशानन्द के उद्धार से श्रीमन्महाप्रभु जी के पतितपावनत्व और औदार्य का अस्मोर्द्धत्व निरूपित हुआ है। इसीलिये वह लिखा होगा।

विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ और श्रीगौड़ीय मठों के प्रतिष्ठाता अतिमर्त्य चरित्र - श्रीगौरांग के निजजन श्रीवार्षभानवीदयित दास, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ 108 श्री श्रीमद भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने श्री प्रबोधानन्द सरस्वती पाद जी द्वारा रचित 'श्री श्रीचैतन्य चन्द्रामृतम्' ग्रन्थ में 'ग्रन्थकार का परिचय' नामक प्रबन्ध में जो लिखा है, वह सम्पूर्ण ही नीचे दिया जा रहा है।

"1433 शकाब्द के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी ने दक्षिण भारत के तीर्थ भ्रमण करने के बहाने वहाँ के भक्तों पर कृपा की। उत्कल प्रदेश के नीलाद्रि से आरम्भ करके पहले गोदावरी संगम में, बाद में वर्तमान मद्रास (चेन्नई) प्रदेश के अनेक तीर्थ स्थानों का भ्रमण किया। आषाढ़ शुक्ला एकादशी तिथि को महाप्रभु जी श्रीरंग क्षेत्र में पहुँचे। चतुर्मास व्रत को आया देख दशनामी सन्यासियों की विधि के अनुसार भगवान श्री चैतन्य चन्द्र ने चार मास श्रीरंग क्षेत्र में ही रहने का संकल्प लिया। वहाँ पर 'श्री' सम्प्रदायी वैष्णवों का वास है। दक्षिण देशीय साम्प्रदायिक वैष्णवों की सदाचार को पालन करने में बड़ी निष्ठा है। दक्षिण भारत के जिन गांवों में पारमार्थिक वैष्णव रहते हैं वहां पर स्मार्त्त-विप्र किसी भी तरह वास करना अच्छा नहीं समझते। उस समय 'श्रीरंग' केवल श्रीवैष्णव-सेवित तीर्थ था। इसीलिये ही श्रीमन्महाप्रभु ने विष्णु भक्ति आश्रित सदाचार सम्पन्न वैष्णवों के पास चार मास व्यतीत किये। उन्होंने वहाँ श्रीरंगनाथ जी के दर्शन किये और कृष्णकथा का प्रचार कर महाप्रभु जी ने जीवों को उपदेश दिया। उसी समय 'तिरुमलय', 'वैंकट' और 'गोपाल गुरु' नामक तीनों भाई भी महीसूर प्रदेश से आकर श्रीरंग में रहते थे। वास्तव में ये आन्ध्र प्रदेश के या उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। श्रीमन्महाप्रभु जी ने इस विप्र वंश के प्रति अत्यन्त प्रसन्न होकर उनके घर पर ही चार मास व्यतीत किये। इन तीनों में से बीच वाले भाई वैंकट भट्ट का बालक गोपाल भट्ट

गोस्वामी सुप्रसिद्ध षड्गोस्वामियों में से एक है। श्री-सम्प्रदायी वैष्णवों को श्रीलक्ष्मी नारायण की उपासना प्रिय है। श्रीमन्महाप्रभु जी की आन्तरिक दया के गुण से ये श्रीभट्ट परिवार श्रीकृष्ण रस प्राप्ति के लिए लालायित हो उठा और कृष्ण-भक्त बन गया। श्री तिरुमलय के विषय में हमें अधिक मालूम न होने पर भी ये समझा जा सकता है कि चैतन्य महाप्रभु जी उनके प्राण स्वरूप थे। श्री वैंकट भट्ट के साथ श्रीकृष्णचैतन्यदेव के कथनोपकथन का श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ की मध्यलीला के नवम परिच्छेद में उल्लेख है। श्री प्रबोधानन्द जी की श्रीचैतन्य देव के प्रति निष्ठा अतुलनीय थी। श्रीप्रबोधानन्द जी की सद्शिक्षा के प्रभाव से श्रीवैंकट के पुत्र श्रीगोपाल भट्ट ने श्रीगौड़ीय वैष्णवों का आचार्यत्व प्राप्त किया। श्रीचैतन्य दासों में श्री प्रबोधानन्द का स्थान अत्यन्त उच्च है। श्री कविकर्णपूर ने स्वकृत 'गौरगणोद्देश दीपिका' में श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती को श्रीकृष्ण लीला में 'तुंगविद्या' कहा है। श्रीहरिभक्ति विलास के प्रारम्भ में लिखा है कि श्रीभगवतप्रिय श्रील प्रबोधानन्द जी के शिष्य श्रीगोपाल भट्ट जी ने श्रीरूप, श्री सनातन एवं श्रीरघुनाथ दास जी की प्रसन्नता के लिए श्रीहरि भक्ति विलास ग्रन्थ की रचना की है। भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में लिखा है - "केह कहे प्रबोधानन्देर गुण अति।

सर्वत्र हइल यॉर ख्याति सरस्वती।।

पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णचैतन्य भगवान।

तॉंर प्रिय, ताँहा बिना स्वपने नाहि आन।।
परम-वैराग्य-स्नेहमूर्ति मनोरम।
महाकवि, गीत-वाद्य-नृत्ये अनुपम।।
याँहार वाक्य शुनि' सुख बाड़ये सबार।
प्रबोधानन्देर महामहिमा अपार।।"

अर्थात : प्रबोधानन्द जी अति गुणवान थे इसलिये वे सरस्वती के नाम से चारों ओर विख्यात थे। पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णचैतन्य भगवान के अतिरिक्त स्वपन में भी उनका कोई और प्रिय नहीं था। वे परम वैराग्य, मनोरम स्नेह की मूर्ति, महाकवि, गीतवाद्य एवं नृत्य में अनुपम थे। उनके वचन सुन सभी का आनन्दवर्द्धन होता था। प्रबोधानन्द जी की अपार महामहिमा थी।

श्रीमन्महाप्रभु के नीलाचल लौटने के बाद कुछ एक सालों में ही श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती श्रीकृष्ण चैतन्य देव के हृदयगत उपासना में प्रगाढ़ रूप से प्रवेश कर गये और अधिक समय व्यर्थ न गंवाकर श्रीगौरांग महाप्रभु जी के चरणों का आश्रय लेकर तथा अभीष्ट भजन का संकल्प लेकर वे श्रीरंग का परित्याग करके मथुरामण्डल के काम्यवन नामक स्थान पर रहने लगे। श्रीगोपाल भट्ट के मन में भी व्रजधाम में वास करने की लालसा धीरे-धीरे बढ़ उठी। अत: बाद में उन्होंने भी अपने चाचा जी के पदों का अनुसरण किया।

अधिकतर व्यक्तियों के सामने ये प्रश्न खड़ा हो सकता

है कि श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती जी श्रीगौरांग के इतने अधिक प्रिय थे फिर भी श्रील कविराज गोस्वामी जी ने श्री गौरांग भक्तों की प्रीति के लिये उनकी महिमा लिपिबद्ध क्यों नहीं की? तो इसके उत्तर में श्रीभक्ति रत्नाकर ग्रन्थ की लेखनी ही बहुत है। ग्रन्थकार श्री घनश्याम श्रीनरहरि चक्रवर्ति कहते हैं -

"श्रीगोपाल भट्टेर ए सब विवरण।
केह किछु वर्णे, केह न करे वर्णन।।
ना बुझिया मर्म इथे कुतर्क ये करे।
अपराध-बीज तार हृदये संचारे।।
परम-रसिक पूर्व पूर्व कविगण।
वर्णिते समर्थ हइया न करे वर्णन।।
राखिलेन मध्ये मध्ये वर्णन करिते।
वर्णिवे ये कविगण ताहार निमित्ते।।
श्रीगोपाल भट्ट हृष्ट हइया आज्ञा दिल।
ग्रन्थे निज-प्रसंग वर्णिते निषेधिला।
केने निषेधिला,-इहा के बुझिते पारे।।
निरन्तर अति दीन मानेन आपनारे।
कविराज ताँर आज्ञा नारे लघिंवारे।।"

कई ऐसा कहते हैं कि श्रीप्रबोधानन्द जी की लेखनी से स्वकीयवाद की पुष्टि देखी जाती है। इसलिये श्रीरूपानुग गौरभक्तगण पारकीय भजन के उत्कर्ष को देखकर श्रील सरस्वती गोस्वामी प्रभु की अधिक आलोचना नहीं करते हैं। जो भी हो श्रीनरहरि जी की तरह निरपेक्ष श्री चैतन्य चरणाश्रित

भक्त मात्र ही भाग्यवान हैं। उनकी तरह सभी कुतर्क छोड़कर श्रील प्रबोधानन्द जी के विमल गौर-आनुगत्य में श्रीवृन्दावनेश्वरी के पारकीय दास्यमाधुरी का सब आस्वादन करें। श्रीप्रबोधानन्द जी के भाव परम परिस्फुट हैं। उनकी रचनाओं में भाषा की गम्भीरता और माधुर्य की एक साथ स्थिति देखी जाती है। श्रीचैतन्य चरणाश्रित सब वैष्णव ही प्रबोधानन्द जी के 'श्रीवृन्दावनशतक' को नित्य पाठ कर अनुपम आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। उनके द्वारा रचित 'श्रीनवद्वीप शतक' ग्रन्थ भी 'श्रीवृन्दावन शतक' की तरह ही है। श्रीप्रबोध नन्द जी का 'श्रीराधासुधा निधि' काव्यग्रन्थ वास्तविकता में जगत में अतुलनीय है। हो सकता है ये ग्रन्थ साधारण काव्यप्रिय पाठकों को वैसे सुख की अनुभूति करवाने वाला न हो परन्तु श्रीहरिरस स्निग्ध, निष्कपट भक्तों का परम प्रिय है। रुचि के तारतम्य के अनुसार ही श्रेष्ठपने में तारतम्य होता है, इसलिये पाठकों की सुकृति के तारतम्य से भी आनन्द घटता व बढ़ता है। इसीलिए, पाठकों की सुकृति के अनुसार ही ये लोकातीत व्रजरसमूलक भाव रसास्वादन प्रदान करेंगे। 'विवेकशतक' नामक उनका एक ग्रन्थ है। अफ्रेत नामक एक अध्यापक के ग्रन्थ में उसका उल्लेख देखने को मिलता है। बरहमपुर के वासी परलोकगत रामदास सेन महाशय ने ये ग्रन्थ देखा है। श्री चैतन्य चन्द्रामृत ग्रन्थ बंगाल में बहुत प्रचारित हुआ है। श्री गौर विरोधी भी इसे पढ़ कर अपने-अपने चित्त की निर्मलता को प्राप्त करेंगे और ये कहना भी अतिशयोक्ति

नहीं होगी कि श्रीरूपानुग सज्जन इसे पढ़कर परमानन्द में अनिर्वचनीय सुख सागर में निमग्न हो जायेंगे। श्री गोलोक पति ने चार मास तक जिनके सेव्य बनकर उन्हें कृष्णप्रेम प्रदान किया है, अवश्य ही क्षुद्र जीव मण्डली उनके अक्षय अमूल्य द्रव्यों के भण्डार के थोड़े से अंश की प्राप्ति के लिये आशा करेंगे।

किसी-2 को यही स्थापन करने का प्रयास करते देखा जाता है कि काशी के मायावादी प्रकाशानन्द और वैष्णव अग्रगण्य प्रबोधानन्द जी एक ही हैं, किन्तु हम किसी भी तरह उनकी बातों पर विश्वास नहीं कर पाये। क्योंकि श्री चैतन्य भागवत के मध्यखण्ड के तृतीय अध्याय में काशी के प्रकाशानन्द नाम के मायावादी सन्यासी के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है -

"एइरूपे नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर ।
भक्ति सुखे भासे लइ' सर्व अनुचर ।।
एक दिन वराह-भावेर श्लोक शुनि ।
गर्जिया मुरारि-घरे चलिला आपनि ।।
गुप्त वाक्ये तुष्ट हइ' वराह-ईश्वर ।
वेद प्रति क्रोध करि बलये उत्तर ।।
हस्त, पाद, मुख, मोर नाहिक लोचन ।
वेदे मोरे एइमत करे विड़म्बन ।।
काशी ते पढ़ाय बेटा 'प्रकाशानन्द' ।
सेई बेटा करे मोर अंग खंड खंड ।।

वाखानये - वेद मोर विग्रह न माने ।
सर्वांगे हइल कुष्ठ तबु नाहिं जाने ।।
सर्वयज्ञमय मोर ये अंग पवित्र ।
अज भव आदि गाय याँहार चरित्र ।।
पुण्य पवित्रता पाय ये - अंग - परशे ।
ताहा 'मिथ्या' बले बेटा केमन साहसे ।।

अर्थात : इस प्रकार श्री विश्वम्भर प्रभु नवद्वीप में अपने सब अनुचरजनों के सहित भक्ति - सुख की सरिता में आनन्द से बहे जा रहे थे। एक दिन वराह अवतार का एक श्लोक सुनते ही प्रभु गरजते हुए मुरारि गुप्त के घर को चल दिए। वराह भगवान मुरारि गुप्त के वचनों से प्रसन्न हुए। फिर वेदों के प्रति क्रोध करते हुए बोले - 'मेरे हाथ, पाँव, मुख, आँख नहीं है, कह कर वेद मेरी विडम्बना करते हैं। काशी में प्रकाशानन्द वेद पढ़ाता है, पढ़ाता क्या है वह मेरे शरीर के टुकड़े - टुकड़े करता है। वह वेद की व्याख्या करते हुए मेरे शरीर को नहीं मानता है, इसी से उसके सर्वांग में कोढ़ हो गया है, फिर भी उसकी आंखें नहीं खुलतीं, मेरा जो पवित्र अंग सर्व यज्ञमय है, जिसके चरित्र को ब्रह्मा, शिव आदि गाते हैं, जिस मेरे अंग के स्पर्श से पुण्य और पवित्रता की प्राप्ति होती है अथवा अपवित्र भी पवित्र बन जाते हैं, उसे वह बेटा 'मिथ्या' कहने का साहस कैसे करता है।

1425 से 1430 शकाब्द के बीच में ये घटना घटी थी।

1433 शकाब्द में श्रीरंग पहुँच कर श्रीमन्महाप्रभु जी तीनों भाईयों में से श्रीप्रबोधानन्द पाद को देख पाये थे। उस समय वे 'श्री' सम्प्रदाय के श्री रामानुजीय वैष्णव थे इसलिये वे विशिष्टाद्वैतवादी नित्य श्रीनारायण विग्रह के सेवक थे और प्रकाशानन्द जी तो उस समय शंकराचार्य जी द्वारा चलाये गये मायावाद के सेवकों के अग्रगणीय थे। इन दोनों व्यक्तियों को एक करने का प्रयास मात्र बड़बोलापन ही है। श्रीचैतन्य भागवत के मध्यखण्ड के 20वें अध्याय में भी प्रकाशानन्द जी के सम्बन्ध में इस प्रकार का उल्लेख है।

"बलिते प्रभुर हइल ईश्वर आवेश ।
दन्त कड़मड़ि करि बलये विशेष ।।
सन्यासी प्रकाशानन्द बसयेकाशीते ।
मोरे खण्ड खण्ड बेटा करे भालमते ।।
पढ़ाय वेदान्त, मोर 'विग्रह' न माने ।
कुष्ठ कराइलुँ अंगे, तबु नाहि जाने ।।
अनन्त ब्रह्माण्ड मोर ये अंगेते वैसे ।
ताहा 'मिथ्या' बले वेटा केमन साहसे ?
सत्य कहों, मुरारी, आमार तुमि दास ।
ये न माने मोर अंग, सेइ याय नाश ।।
सत्य मोर लीला कर्म, सत्य मोर स्थान ।
इहा मिथ्या बलि मोरे करे खान खान ।।
ये यश: श्रवणे आजि अविद्या - विनाश ।

पापी अध्यापके बले, 'मिथ्या' से विलास ।
हेनपुण्य कीर्ति प्रति अनादर यार ।
से कभु ना जाने गुप्त मोर अवतार ।।

ऐसा कहते कहते प्रभु को ईश्वर का आवेश हो आया, और दांत पीसते हुए वे कुछ विशेष कहने लगे - 'काशी में प्रकाशानन्द संन्यासी रहता है। वह बेटा अच्छी तरह से मेरे टुकड़े टुकड़े करता है। वह वेदान्त पढ़ाता है और मेरे विग्रह को नहीं मानता। मैंने उसके शरीर में कोढ़ पैदा कर दिया है तो भी वह नहीं समझता है। मेरे जिस देह में अनन्त ब्रह्माण्डों का वास है, उसे वह बेटा किस साहस से मिथ्या कहता है? मुरारि! तुम मेरे दास हो! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि जो मेरी देह को सच्चिदानंद नहीं मानता, वह नष्ट हो जाता है। ब्रह्मा, शिव आदि जिस विग्रह की सेवा बड़े आनन्द से करते हैं, सब देवता अपना प्राण समझ करके जिस विग्रह की पूजा करते हैं, जिस अंग के स्पर्श से पुण्य और पवित्रता प्राप्त होती है, उसे किस साहस से वह बेटा मिथ्या कहता है? मैं तुम्हें यह सत्य कह रहा हूँ कि मैं सत्य हूँ, मेरे दास सत्य हैं, और मेरे दासों के दास सत्य हैं। मेरी लीला मेरे कर्म सत्य हैं, मेरा धाम सत्य है। जो इनको मिथ्या कहता है वह मेरे टुकड़े-टुकड़े करता है (मायावाद मत में भगवद् विग्रह, लीला-धाम एवं जगत को मिथ्या का भ्रममात्र मानते हैं)। मेरे जिस यश के श्रवण से मूल अविद्या का विनाश होता है, उस विलास को वह पापी अध्यापक मिथ्या कहता है। ऐसे पुण्य यश के प्रति जिसका अनादर भाव

है, हे गुप्त! वह मेरे अवतार को कभी समझ नहीं सकता।'

1. श्री प्रकाशानन्द जी एक-दण्डी शंकर सम्प्रदाय के सन्यासियों के उस समय के नेता थे जबकि प्रबोधानन्द सरस्वती महीशूर देश के अन्तर्गत रंग क्षेत्र के रहने वाले रामानुजीय त्रिदण्डि स्वामी थे। 2. प्रकाशानन्द काशीवासी मायावादी थे जबकि प्रबोधानन्द काम्यवन में रहने वाले वैष्णव थे। 3. एक आर्यवर्तवासी था जबकि दूसरा दक्षिण देशवासी वैष्णव था। 4. एक निर्विशेषवादी था और दूसरा विशिष्टाद्वैत सविशेषवादी और बाद में अचिन्त्यद्वैताद्वैत मत का आश्रय लेने वाला। 5. एक पहले तो विष्णु वैष्णव का विरोधी और उद्धार प्राप्ति के पश्चात् भक्त बना और जबकि दूसरे नित्यसिद्ध गौरपार्षद एवं वैष्णवाचार्य गोपाल भट्ट स्वामी के गुरुदेव थे।

श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी के परमाराध्य चाचा और गुरुदेव को नित्यसिद्ध भक्त चूड़ामणि न कहकर विष्णु वैष्णव विद्वेषी मायावादी और बद्ध जीव कह कर लांछन लगाने और निन्दा करने से ऐसा वैष्णव अपराध होता है जिसके फलस्वरूप भीषण नरकों की प्राप्ति होती है। श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ के मध्य लीला के 25वें परिच्छेद और इसी ग्रन्थ के आदि लीला के सप्तम परिच्छेद में मायावादी प्रकाशानन्द जी का उल्लेख है।

1425 शकाब्द से 1430 शकाब्द तक जो व्यक्ति मायावादी है वह 1433 शकाब्द में दक्षिण भारत में जाकर कैसे श्री रामानुजीय वैष्णव हो सकता है? और फिर 1435 शकाब्द

में फिर कैसे मायावादी हो गया; समझ में नहीं आता। इसलिये प्रकाशानन्द और प्रबोधानन्द दोनों को एक ही सिद्ध करने का प्रयास नितान्त अज्ञता का परिचायक है। परिणामस्वरूप परम्पराओं को इस प्रकार मूल से उखाड़ने की प्रवृत्ति-थोड़े दुःख का विषय नहीं है। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने दीनता और विनय वशतः श्रीगोपाल भट्ट द्वारा श्रीचैतन्य चरितामृत में अपनी व्यक्तिगत बातों का उल्लेख करने को निषेध करवाया था। श्रील कृष्ण दास कविराज गोस्वामी जी ने उनके आदेश का उल्लंघन नहीं किया। इसीलिये वर्तमान समय में ये विपत्ति देखने को मिल रही है। यदि प्रबोधानन्द सरस्वती जानते कि उन्हें बाद में इस प्रकार विष्णु वैष्णव अपराधी श्रेणी में शामिल करने के लिए ऐसी विषम भ्रममयी चेष्टाएं होंगी तो वे श्री भट्ट गोस्वामी द्वारा श्री कविराज गोस्वामी को अपने बारे में उल्लेख करने से न रोकते। पाठक ये समझ सकेंगे कि श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती जी के सम्बन्ध में भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा है -

"तिरुमलय, वैंकट, आर प्रबोधानन्द ।
तीन भ्रातार प्राणधन गौरचन्द्र ।।
लक्ष्मीनारायण-उपासक ए तिन पूर्वेते ।।
राधाकृष्ण-रसे मत्त प्रभुर कृपाते ।।
तिरुमलय, वैंकट, प्रबोधानन्द तिने ।
विचारये-प्रभु बिने रहिव केमने ?
मो-सबार संगे परिहास के करिवे ?

कावेरी स्नानेते संगे केवा लइया यावे ?
चारिमास परे प्रभु हइला विदाय ।
तिन भाई क्रन्दन करये उभराय ?
प्रभु तीन भ्राताय करि' आलिंगन ।
कहिला अनेक रूप प्रबोध-वचन ।।
केह कहे प्रबोधानन्देर गुण अति ।
सर्वत्र हइल ख्याति यति 'सरस्वती' ।।
पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णचैतन्य भगवान ।
ताँर प्रिय ताँ-बिना स्वपने नहि आन ।।

अध्यापक प्रवर अफ्रेत की तालिका में 'श्रीसंगीत-माधव' नामक एक ग्रन्थ श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती द्वारा रचित गिना जाता है। 'श्रीसज्जन तोषणी' पत्रिका के 18वें वर्ष की पाँचवीं संख्या से 22वीं संख्या तक यह ग्रन्थ पूर्ण रूप से प्रकाशित हुआ है।

"'श्री' सम्प्रदाय के गृहस्थ वैष्णव कभी भी घर छोड़कर एक दण्ड सन्यास नहीं लेते। वे सभी त्रिदण्ड सन्यास ग्रहण करते हैं और रामानुजीय कहलाते हैं। कोई-कोई श्रीप्रबोधानन्द जी के श्रीचैतन्य चन्द्रामृत ग्रन्थ को पढ़ने के पश्चात श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती को 'ब्राह्म' सन्यासी समझते हैं; किन्तु, विशेष प्रभावशाली प्रमाणों के अभाव में उसे स्वीकार करने से अनेक प्रकार की असुविधा होती है।"

श्री राघव पण्डित

"धनिष्ठा भक्ष्यसामग्रीं कृष्णायादाद्व्रजेऽमिताम्
सैव साम्प्रतं गौरांगप्रियो राघव पण्डितः"
"गुणमाला व्रजे यासीद्दमयन्ती तु तत्स्वसा।।"

गौ.ग. 166 - 67

जो व्रज लीला में धनिष्ठा थीं, जिसने श्रीकृष्ण जी को बहुत सी खाद्यसामग्री प्रदान की थी, वे ही अभी गौरांग लीला में गौरांग प्रिय श्री राघव पण्डित हुये हैं और ब्रजलीला में जो गुणमाला थी वह राघव जी की बहन दमयन्ती हुयी हैं।

इस्टर्न रेललाईन पर सियालदाह स्टेशन के उत्तर की तरफ सोदपुर स्टेशन है। इस स्टेशन के एक मील पश्चिम में गंगा के किनारे पाणिहाटी नामक जगह है जो कि श्री राघव पण्डित जी का आविर्भाव स्थान है। राघव भवन में श्रीमन्महाप्रभु जी का नित्य अवस्थान है। श्रीकृष्ण लीला में धनिष्ठा देवी ने श्रीमति यशोदा माता जी के निर्देशानुसार श्रीकृष्ण का प्रसाद राधारानी जी को दिया था, राधा जी ने वह प्रसाद प्रेम के साथ ग्रहण किया था।

'यशोमति आज्ञा पेये धनिष्ठा आनीत। श्रीकृष्ण प्रसाद राधा भुन्जे हये प्रीत।' -श्री भक्ति विनोद ठाकुर

स्वयं भगवान नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के अभिन्न स्वरूप श्रीगौरांग महाप्रभु जी ने भी उसी प्रकार राधा जी के भाव में

भावित होकर धनिष्ठा के अभिन्न स्वरूप राघव पण्डित जी द्वारा दिये गये द्रव्यों का भोजन करने की लीला की थी। राघव पण्डित जी के घर में श्रीमन्महाप्रभु जी के हमेशा रहने की बात श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत की अन्त्यलीला के द्वितीय परिच्छेद में इस प्रकार से वर्णन की है -

"शचीर - मन्दिरे, आर नित्यानन्द नर्तने।
श्रीवास कीर्तने, आर राघव भवने।।
एई चारि ठाञि प्रभुर सदा 'आविर्भाव'।
प्रेमाकृष्ट हय, - प्रभुर सहज स्वभाव।।

अर्थात : माता शची के मन्दिर में, श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु के नृत्य में, एवं श्रीवास के कीर्तन में तथा श्रीराघव के भवन में - इन चार स्थानों पर श्रीमहाप्रभु जी का नित्य आविर्भाव रहता है। कारण यह है कि श्री महाप्रभु जी प्रेम से आकृष्ट हो जाते हैं।

राघव पण्डित श्रीमन्महाप्रभु जी के कितने प्रिय थे वह वृन्दावन दास जी के वर्णन से जाना जा सकता है। श्रीमन्महाप्रभु जी श्रीवास पण्डित जी के घर कुमार हट्ट से पाणिहाटी में राघव जी के घर पर आये थे। प्राणनाथ गौरचन्द्र जी के दर्शन कर राघव पण्डित प्रेम से गद्गद हो गये और महाप्रेम में भर कर महाप्रभु जी के पादपद्मों में गिर पड़े।

"राघवेर भक्ति देखि' श्रीवैकुण्ठ नाथ।
राघवेरे करिलेन शुभ दृष्टिपात।।
प्रभु बले - राघवेर आलये आसिया।
पासरिलुँ सब दुःख राघव देखिया।।
गंगाय मज्जन कैले ये सन्तोष हय।
सेइ सुख पाइलाङ राघव-आलय।।"

चै. भा. अ. 5/81-83

अर्थात : श्रीवैकुण्ठनाथ ने राघव की भक्ति देखकर उनके ऊपर दृष्टिपात किया। श्रीप्रभु ने कहा - "राघव के घर आकर, उन्हें देखकर मैं सब दुःख भूल गया। गंगाजी में स्नान करने से जो सन्तोष होता है वही सुख मुझे राघव के घर में आकर मिला।"

श्री राघव पण्डित जी द्वारा प्रगाढ़ भक्ति से पकाये हुये द्रव्य भोजन करने के लिये श्रीमन्महाप्रभु स्वयं उनको बनाने के लिए आदेश देते थे और राघव पण्डित भी परम उत्साह के साथ बहुत प्रकार के द्रव्य बनाकर महाप्रभु जी को खिलाते थे। बलदेवाभिन्न स्वरूप नित्यानन्द प्रभु भी अपने जनों के साथ राघव पण्डित जी के घर आते और उनके द्वारा बनाये गये द्रव्यों का भोजन करते और उनकी रसोई की खूब प्रशंसा करते। श्रीमन्महाप्रभु जी की इच्छा से श्रीगदाधरदास, श्री पुरन्दर पण्डित, श्री परमेश्वरी दास, श्री रघुनाथ वैद्य इत्यादि परम वैष्णव भी पाणिहाटी में श्रीराघव जी के घर आये थे।

उस समय श्रीगौरसुन्दर जी ने श्रीराघव पण्डित को अलग से एकान्त में उपदेश दिया था कि वह उन्हें और नित्यानन्द प्रभु को अभिन्न समझे। श्रीमन्महाप्रभु जी ने मकरध्वज कर को श्री राघव पण्डित जी की सेवा करने का निर्देश करते हुए कहा था कि राघव पण्डित की सेवा ही मेरी सेवा है। मकरध्वज कर राघव पण्डित जी के कृपापात्र शिष्य थे। इनका जन्म कायस्थ कुल में हुआ था और वे भी पाणिहाटी में ही रहते थे। वे गुरुदेव जी की आज्ञा का पालन करते हुए उनके द्वारा दिये गये द्रव्यों की झाली लेकर प्रत्येक वर्ष पुरी जाते थे। श्री मकरध्वज कर हर समय उस झाली की रक्षा करते थे। यह लीला श्रीचैतन्य चरितामृत में अन्त्यलीला के दशम परिच्छेद में वर्णित हुई है। राघव जी की बहन दमयन्ती महाप्रभु जी की सेवा के लिये एक पात्र में 2 महीने तक के लिए खाद्य द्रव्य सजा कर देती थी। यही 'राघव की झाली' के नाम से प्रसिद्ध थी। अभिराम ठाकुर जी द्वारा लिखे 'पाटपर्यटन' एवं श्रील कविराज गोस्वामी जी द्वारा लिखित 'श्रीचैतन्य चरितामृत' में यह विषय सुन्दर रूप से वर्णित हुआ है -

"पाणिहाटी ग्रामे राघव-दमयन्ती धाम।
राघवेर झालि बलि आछये आख्यान" ।।

-'पाटपर्यटन'

"राघव पण्डित प्रभुर आद्य अनुचर।
ताँर शाखा मुख्य एक मकरध्वज कर।।

ताँहार भगिनी दमयन्ती प्रभुर प्रियदासी ।
प्रभुर भोग सामग्री ये करे बारमासि ।।
से सब सामग्री यत झालिते भरिया ।
राघव लइया यान गुपतकरिया ।।
बारमास ताहा प्रभु करेन अंगीकार ।
राघवेर झालि' बलि प्रसिद्धि याहार ।।

चै.च.आ. 10/24-27

"चलिलेन श्रीराघव पण्डित उदार।
गुपते याँर घरे हैल चैतन्य-विहार।।

चै.भा.अ. 8/32

श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत की अन्त्यलीला के दसवें परिच्छेद में राघव जी की झाली का विवरण विस्तृत रूप से वर्णन किया है। व्रज वासी के शुद्धसत्त्वमय विशुद्ध प्रेम में ऐश्वर्य देखने को नहीं मिलता। स्वयं भगवान श्रीगौरांग महाप्रभु का पेट खराब हो सकता है, इस भय से दमयन्ती शुक्ता नामक व्यन्जन बना कर महाप्रभु जी को परोसती थी। इस प्रकार स्नेह से दिये द्रव्य से महाप्रभु जी को उल्लास होता था।

"राघव पण्डित चले झालि साजाइया ।
दमयन्ती यत द्रव्य दियाछे करिया ।।
नाना अपूर्व भक्ष्य द्रव्य प्रभुर योग्य भोग ।
वत्सरेक प्रभु याहा करे उपयोग ।।" चै.च.अ. 10/13-14

"भाव ग्राही महाप्रभु स्नेहमात्र लय ।
शुक्तापाता-काशन्दिते महासुख हय ।।
मनुष्य बुद्धि दमयन्ती करे प्रभुर पाय ।
गुरु, भोजने उदरे कभु 'आम' हइया याय ।।
शुक्ता खाइले सेइ आम हइवेक नाश ।
सेइ स्नेह मने भावि' प्रभुर उल्लास ।।"

- चै.च.अ. 10/18-20

श्री राघव पण्डित भी श्रीमहाप्रभुजी के लिए उन सब द्रव्यों को एक पेटिका में सजाकर साथ ले चले, जो दमयन्ती ने उन्हें दिये थे। उस झाली में क्या-क्या पदार्थ श्रीराघव पंडित ले जाते थे, उनका वर्णन करते हैं - अनेक प्रकार के खाद्यपदार्थ श्री महाप्रभु जी के खाने योग्य उस झाली में होते थे, जिनको प्रभु वर्ष पर्यन्त उपभोग करते रहते थे। श्रीमन्महाप्रभु जी भावग्राही हैं, वे केवल प्रेम को ही ग्रहण करते हैं। सुकुता के पत्तों एवं कासुन्दी में ही वे महासुख अनुभव करते हैं, दमयन्ती (शुद्ध प्रेमभक्ति के कारण) श्री महाप्रभु जी में मनुष्य-बुद्धि रखती थी और सोचती थी कि भारी भोजन करने से प्रभु के उदर में यदि आंव पैदा होगी, तो सुकुताचूर्ण खाने से उदर की आंव नष्ट हो जाएगी। दमयन्ती के बस इसी शुद्ध प्रेम के कारण श्री महाप्रभु बहुत आनन्दित होते थे। श्री राघव पण्डित जी के शुद्ध प्रेम के वशीभूत होकर श्रीमन्महाप्रभु जी ने राघव की प्रेमनिष्ठा के बारे में पुरुषोत्तम धाम में अपने भक्तों

के सामने परमोल्लास के साथ वर्णन करके सुनाया था जो कि श्रीचैतन्य चरितामृत की मध्यलीला के 15वें अध्याय में वर्णित है। अपने घर में सैंकड़ों नारियल के वृक्ष होते हुए भी राघव पण्डित जी दूर-दूर से अधिक मूल्य में नारियल खरीद कर नारियल का जल और उसके भीतर का शस्य महाप्रभु जी को निवेदन करते थे। यही नहीं, महाप्रभु जी को निवेदन करके स्वयं महाप्रेमाविष्ट हो जाते थे। महाप्रभु भी उनके द्वारा दिए सब द्रव्य ग्रहण करते थे। वे किसी भी अशुद्ध द्रव्य का भोग नहीं लगाते थे। एक बार एक सेवक ने पहले जमीन पर हाथ लगाने के बाद फल को पकड़ा तो इन्होंने सोचा कि इस फल पर बाहर के लोगों की पैरों की धूलि का स्पर्श हो गया है, जिससे यह फल अपवित्र हो गया है। अत: राघव जी ने उस फल को अपवित्र समझ कर घर की चारदीवारी से बाहर फेंक दिया। राघव पण्डित जी महाप्रभु जी के भोग के लिए अच्छे-2 मीठे केले, आम व कटहल इत्यादि फल दूर-दूर के गांव से बहुत मूल्य चुका कर लाते थे। राघव पण्डित के फल फेंकने के सम्बन्ध में किसी के मन में सन्देह हो सकता है, ये सोचकर श्रीभक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर जी ने अपने अनुभाष्य में इस विषय के प्रति सावधान किया है - श्री राघव पण्डित कोई 'जड़ीय शुचिवायु रोग ग्रस्त' कर्मजड़ व्यक्ति या प्राकृत कनिष्ठ भक्त की तरह द्वैतबुद्धि विशिष्ट बनकर 'भौमे इज्यधी' अर्थात जड़ वस्तु पर चिद् आरोपण करने वाले मनोधर्मी नहीं थे। वे तो नित्य सिद्ध कृष्ण सेवक थे। जड़ीय

कामगन्ध विहीन अप्राकृत सेवाभाव में मग्न रहते हुये अनुक्षण अपने आराध्य की सेवा करते थे। -चै०च०म० 14/81-83

जब श्रीमन्महाप्रभु जी के आदेश के अनुसार शुद्ध भक्ति के प्रचार के लिये अपने पार्षदों के साथ श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु नीलाचल से गौड़देश में आये तो गौड़देश में भ्रमण करते समय पाणिहाटी में श्री राघव पण्डित के विशुद्ध प्रेम से आकृष्ट होकर उन्होंने इनके घर पर ही शुभपदार्पण किया था। तब श्रीनित्यानन्द जी के पार्षद श्रीमाधव, श्रीगोविन्द और श्रीवासुदेव घोष, ये तीनों ही श्रेष्ठ कीर्तनिया भाई भी वहां उपस्थित हो गये। उनके कीर्तन से भावाविष्ट होकर नित्यानन्द प्रभु नृत्य कीर्तन करने लगे और नृत्य के अन्त में भावाविष्ट होकर विष्णु भगवान के सिंहासन पर बैठ गये। नित्यानन्द जी को सिंहासन पर बैठे देख राघव पण्डित ने पार्षदों सहित श्री नित्यानन्द प्रभु का महाभिषेक किया। महाभिषेक के पश्चात दिव्यमाला और वस्त्रादि के द्वारा शोभित होकर नित्यानन्द प्रभु पुन: सिंहासन पर विराज गये और राघव पण्डित जी उनके बगल में छत्र धारण कर खड़े हो गये। उस समय एक अलौकिक घटना इस प्रकार घटी कि प्रेमाविष्ट होकर नित्यानन्द प्रभुजी ने राघव पण्डित जी को कदम्ब के फूलों की माला लाने का आदेश दिया। तो राघव पण्डित ने उन्हें बताया कि अभी तो कदम्ब वृक्ष के फूल फूटने का समय ही नहीं है। तब नित्यानन्द प्रभु जी ने राघव पण्डित को कहा कि अपने घर में जाकर खोजो, फूल मिल जायेंगे। राघव पण्डित घर में गये

पांच दोहार देने वालों में से राघव पण्डित भी एक थे।

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत के अनुभाष्य में श्रीराघव पण्डित जी की समाधि के विषय में उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि "राघव पण्डित जी की समाधि के ऊपर लताकुंजों से घिरी एक ऊँची वेदी बांधी गयी है। जिस स्थान पर समाधि है उसके उत्तर की तरफ टूटे-फूटे मकान में बड़ी लापरवाही के साथ सेवित श्रीमदनमोहन जी का विग्रह विराजमान है। पाणिहाटी के वर्तमान ज़िमींदार श्रीशिवचन्द्र राय चौधरी जी की देख-रेख में सेवा की व्यवस्था चल रही है।" -चै.च.आ 10/24

श्रील प्रभुपाद जी ने 1932 में ये अनुभाष्य लिखा था। तब जो अवस्था थी अब वह अवस्था नहीं है। अब तो नया मंदिर बन गया है तथा कई नये कमरे आदि भी बन गये हैं।

श्री भगवान आचार्य

'आचार्य भगवान् खन्ज कला गौरस्य कथ्यते।'

गौ.ग. 74

भगवान आचार्य को श्रीगौरांग महाप्रभु जी की कला (अंश का अंश) कहते हैं अर्थात ये महाप्रभु जी के अंश के

अंश हैं। इनकी गिनती श्रीचैतन्य शाखा में होती है। ये 24 परगना जिले के अन्तर्गत हालि शहर के रहने वाले थे। श्रीचैतन्य चरितामृत में श्रीचैतन्य शाखा का वर्णन करते हुए श्रील कृष्ण दास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीभगवान आचार्य के नाम का भी उल्लेख किया है - 'भगवान आचार्य, ब्रह्मानन्दाख्य भारती। श्रीशिखि माहिति, आर मुरारी माहिति।।' चै.च.आ. 10/136 श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में ऐसा उल्लेख है कि भगवान आचार्य का आविर्भाव स्थान तो श्रीधाम नवद्वीप है किन्तु थे ये हालिशहर निवासी। इनके पिता श्री शतानन्द खान थे जो कि बहुत ही धनी एवं विषयी थे; जबकि यह स्वयं परम वैष्णव, सुपण्डित और श्रीभगवान के साथ सख्य भाव रखने वाले थे। श्रीस्वरूप दामोदर जी के साथ भी इनका सखा जैसा व्यवहार था। इन्होंने एकान्त रूप से श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के श्री पादपद्मों का आश्रय लिया था। ये बीच-बीच में श्रीचैतन्य महाप्रभु जी को अकेले भोजन करवाने के लिए निमन्त्रण करके घर पर बुलाते थे और उन्हें बहुत प्रकार के व्यन्जन परोसते थे। श्रीचैतन्य चरितामृत की अन्त्य लीला के द्वितीय परिच्छेद में ये विषय इस प्रकार से वर्णित हुआ है'

"पुरुषोत्तमे प्रभु-पाशे भगवान्-आचार्य।
परम वैष्णव तेंहों सुपण्डित आर्य।।
सख्यभावाक्रान्त-चित्त् गोप-अवतार।
स्वरूप-गोसाञि-सह सख्य-व्यवहार।।

एकान्त भावे आश्रियाछेन चैतन्यचरण।
मध्ये मध्ये प्रभुर तेँहों करेन निमन्त्रण।।

घरे भात करि' करे विविध व्यञ्जन।
एकले गोसाञि लञा करान भोजन।।"

अर्थात : नीलाचल में श्रीमहाप्रभुजी के पास एक परम वैष्णव श्रीभगवानाचार्य रहते थे, जो बहुत शास्त्रज्ञ एवं अति सरल थे। वे श्रीकृष्ण के एक गोप का अवतार थे। उनके चित्त में श्रीभगवान् का सख्य भाव था। श्रीस्वरूपगोस्वामीजी के साथ भी उनका सखा-भाव था। वे श्रीमहाप्रभुजी में एकान्त-निष्ठा रखते थे। कभी कभी वे प्रभु को अपने घर निमन्त्रण भी करते थे। अपने घर में अनेक प्रकार के व्यञ्जन तैयार करते एवं अकेले श्रीमहाप्रभुजी को ले जाकर भोजन कराते।

श्रीभगवान आचार्य कभी भी इन्द्रियों का तर्पण करने वाली विषयों की बातें नहीं सुनते थे। आप हमेशा श्रीकृष्ण के नाम-रूप-गुण-लीलादि श्रवण करते रहते थे। नीलाचल में श्रीवासुदेव सार्वभौम का उद्धार करने के पश्चात् महाप्रभु जी जिन सब भक्तों के साथ मिले थे उनमें से श्रीभगवान आचार्य भी एक थे। "भगवान आचार्य आइला महाशय। श्रवणेओ यारे नाहि परशे विषय।।" – चैभा. अ 3/188

नीलाचल में श्रीअद्वैताचार्य जी के आगमन का समाचार

मिलने पर श्रीमन्महाप्रभु जी श्रीनित्यानन्द एवं गदाधर आदि जिन-2 भक्तों को साथ लेकर अद्वैताचार्य जी के सम्मान के लिये गये थे उन भक्तों में श्रीभगवान आचार्य भी एक थे।

'काशीश्वर पण्डित, आचार्य भगवान। श्री प्रद्युम्न मिश्र प्रेमभक्ति प्रधान' ।। चै.भा.अ. 8/57 इसके अतिरिक्त एक दिन समुद्र में जाते समय चटक पर्वत को गोवर्धन के रूप में देखकर श्रीमन्महाप्रभु जी महाभावावेश में जब उसकी ओर दौड़ पड़े थे तो उस समय महाप्रभु जी को पकड़ने के लिए जो जो भक्त उनके पीछे भागे थे उनमें श्री भगवान आचार्य जी भी एक थे। "पुरी भारती गोसाञि आइला सिन्धुतीरे। भगवान आचार्य खन्ज चलिला धीरे-धीरे।।' चै.च.अ. 14/90

जब गौड़ीय वैष्णवों को ये संवाद मिला कि श्रीमन्महाप्रभु जी दक्षिण यात्रा करने के पश्चात नीलाचल आ गये हैं तो सभी नीलाचल आकर महाप्रभु जी से मिले तो उस समय श्री भगवान आचार्य अपने सब काम छोड़कर महाप्रभु जी के चरणों में रहने के लिए आ पहुँचे थे।

"रामभद्राचार्य, आर भगवान आचार्य।
प्रभुपदे रहिला दुँहे छाड़ि सर्व कार्य ।।"
चै.च.म. 10/184

रामभद्राचार्य और भगवान आचार्य जी दोनों सब कार्य छोड़कर महाप्रभु जी के चरणों में रहे।

भगवान आचार्य लंगड़े थे एवं उन्होंने गृहस्थ जीवन अपनाया था। इनके पुत्र थे - श्रीरघुनाथ आचार्य । जब श्रीजाहवी देवी अपने गणों के साथ खड़दह से खेतुरीधाम में गयीं तो उन भक्तों में श्री भगवान आचार्य जी के पुत्र श्री रघुनाथ आचार्य भी थे। खंज भगवानात्मज रघुनाथ,आचार्य। आसिया मिलिला तेँहो सर्वगुणे आर्य।। - भक्ति रत्नाकर 10/382

सब गुणों में श्रेष्ठ रघुनाथ आचार्य, जो कि लंगड़े भगवान आचार्य के पुत्र थे वह भी साथ आ मिले। श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में श्रीभगवान् आचार्य का चरित्र पढ़ने से ऐसा जाना जाता है कि न्याय शास्त्र में विशेष पारदर्शिता होने के कारण उन्होंने न्यायाचार्य की उपाधि प्राप्त की थी।

इनका वैराग्य देखकर इनके पिता जी ने नवद्वीपवासी मधुसूदन घटक की कन्या के साथ इनका विवाह करवा दिया था। इतना होने पर भी ये संसार के तमाम बाधा विघ्नों को लाँघकर श्रीमहाप्रभु जी के पादपद्मों में नीलाचल में आकर उपस्थित हो गये थे। महाप्रभु जी द्वारा उनको संसार में वापस जाने का आदेश करने पर ये दुबारा घर वापस आ गये। इनके दो पुत्र थे - रघुनाथ और रमानाथ। किन्तु संसार से विरक्त श्री भगवान आचार्य बाद में पुत्रों और पत्नी को साले और शिष्यों की देख रेख में छोड़कर हर समय महाप्रभु जी के पादपद्मों में अवस्थान करने के लिय संसार का परित्याग करके

नीलाचल चले गये। शाखा निर्णय में लिखा है - 'आचार्य भगवन्तं तु तेजोमयकलेवरम्। यस्य स्मरण मात्रेण गौरप्रेम प्रजायते।'

श्रीभगवान आचार्य जी का अन्तःकरण अत्यन्त सरल था। सरलता के कारण ही वे श्रीमहाप्रभु जी के विशेष स्नेह-पात्र बन गये थे। श्रीचैतन्य चरितामृत में उनकी सरलता के सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख है। भगवान आचार्य का छोटा भाई श्रीगोपाल भट्टाचार्य वेदान्त पढ़ने के लिये काशी गया था। वेदान्त अध्ययन करने के पश्चात जब वह वापस आया और उसने अपने बड़े भाई श्रीभगवान आचार्य को अपने वेदान्त अध्ययन में पारंगत होने की बात बतायी तो भगवान् आचार्य प्रसन्न होकर उत्साह के साथ उसे महाप्रभु जी के पास ले गये। अन्तर्यामी महाप्रभु गोपाल भट्ट के मायावाद विचारों की बात जानकर प्रसन्न नहीं हुये किन्तु बाहर से उन्होंने अवश्य ही थोड़ा प्रेम दिखाया। श्रीभगवान आचार्य एक बार फिर अपने छोटे भाई को श्रीस्वरूप दामोदर जी के पास लाये और निवेदन किया कि मेरा छोटा भाई गोपाल अच्छी तरह वेदान्त पढ़ कर आया है इसलिये आप सभी उससे वेदान्त भाष्य सुनें। श्रीस्वरूप दामोदर जी ने सरल अन्तःकरण श्रीभगवान् आचार्य की इस प्रकार बात सुनकर प्यार से सनी क्रोधित वाणी में उनके भाई का तिरस्कार करते हुये इस प्रकार कहा -

"बुद्धि भ्रष्ट हैल तोमार गोपालेर संगे।
मायावाद शुनिवारे उपजिल रंगे।।
वैष्णव हइया येबा शारीरक-भाष्य शुने।
सेव्य-सेवक-भाव छाड़ि' आपनारे 'ईश्वर' माने ।।

महाभागवत येइ, कृष्ण प्राणधन याँर।
मायावाद श्रवणे चित्त अवश्य फिरे ताँर ।।"

– चै.च.अ. 2/94–96

अर्थात : श्रीस्वरूप गोस्वामी ने कहा– ''भगवानाचार्य! गोपाल के संग से तुम्हारी बुद्धि भी भ्रष्ट हो गयी लगती है, तभी तुम मायावाद को सुनना चाहते हो। वैष्णव होकर जो प्राकृत भाष्य सुनता है, वह सेव्य-सेवक के भाव को त्यागकर अपने को ईश्वर मानने लगता है। जो महाभागवत हैं, जिनके श्री कृष्ण ही प्राणधन हैं, मायावाद सुनने से उनके मन में भी अवश्य विपरीत भाव की उत्पत्ति होने लगती है।

इस प्रकार श्रीस्वरूप दामोदर जी द्वारा तिरस्कृत होने के पश्चात श्रीभगवान आचार्य ने कहा– कि उनका मन तो कृष्णनिष्ठ है, इसलिये शारीरिक भाष्य सुनकर वे भक्ति पथ से गिरेंगे नहीं। इस पर श्रीस्वरूप दामोदर जी ने और दृढ़ता के साथ समझाया कि हृदय विदारक मायावाद कथा श्रवण करना शुद्ध भक्त के लिये अप्रयोजनीय है।

"स्वरूप कहे, तथापि मायावाद-श्रवणे।
चिद् ब्रह्म माया मिथ्या-एइमात्र शुने ।
जीव-ज्ञान कल्पित, ईश्वरे सकल अज्ञान।
याहार श्रवणे भक्तेर फाटे मन प्राण।।"

चै.च.अ. 2/18–19

श्रीस्वरूप गोस्वामी जी ने कहा– "आचार्य! तुम्हारी बात सत्य है कि मायावाद कृष्ण निष्ठायुक्त चित्त को विचलित नहीं कर सकता। फिर भी मायावाद सुनने से लाभ ही क्या है? उसके सुनने में वृथा समय ही नष्ट करना है और उसके सुनने में एक बार भी तो श्रीकृष्ण नाम सुनने को नहीं मिलता केवल 'चित्त, ब्रह्म, माया, मिथ्या"-यही तो शब्द सुनने को मिलते हैं। "जीव ने अज्ञानवश ईश्वर की कल्पना कर ली है। जो भगवान् के साकार सगुण सच्चिदानन्द स्वरूप की कल्पना करते हैं– वे सब अज्ञानी हैं"– यही तो शांकर भाष्य का मत है– "इस बात के सुनने से तो कृष्ण-भक्तों के प्राण फटने लगते हैं। श्रीस्वरूप दामोदर जी की उपदेश वाणी के तात्पर्य को समझ कर श्री भगवान आचार्य ने लज्जित और भयभीत होकर छोटे भाई को गाँव भेज दिया। एक और घटना श्री चैतन्य चरितामृत में अन्त्यलीला, पंचम परिच्छेद में वर्णित है–

पूर्व बंग वासी एक विप्र कवि ने महाप्रभु जी के सम्बन्ध में एक नाटक की रचना की थी। विप्र श्री भगवान आचार्य को जानता था। इसलिये उस विप्र कवि ने अपना रचित नाटक

पहले श्री भगवान आचार्य को सुनाया तब साथ ही अन्य-2 वैष्णवों ने भी सुना। सभी ने नाटक की प्रशंसा की। वैष्णवों की इच्छा हुयी कि महाप्रभु जी को ये नाटक सुनाया जाये। 'रसाभासदोष' और 'सिद्धान्त विरुद्ध' बातों से महाप्रभु जी को सन्तोष नहीं होता था। इसलिये स्वरूप दामोदर जी के अनुमोदन के पश्चात् ही महाप्रभु जी सुनते थे। श्री भगवान आचार्य के आग्रह करने पर श्रीस्वरूप दामोदर विप्र कवि का नाटक सुनने के लिये मान गये। विप्र कवि द्वारा नाटक के मंगलाचरण के श्लोक और उनकी व्याख्या सुनाने पर सब वैष्णवों के प्रसन्न होने पर भी श्रीस्वरूप दामोदर सुखी नहीं हुये। उन्होंने श्लोक में दो स्थानों पर अपराध रूपी दोष दिखाया। विप्र कवि द्वारा श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की :-

"कवि कहे, - जगन्नाथ सुन्दर शरीर।
चैतन्यगोसाञि ताते शरीरी महाधीर।
सहजे जड़ जगतेर चेतन कराइते।
नीलाचले महाप्रभु हैला आविर्भूते।।"

चै.च.अ. 5/114-115

अर्थात् : विप्र कहने लगा - "श्रीजगन्नाथ का सुन्दर विग्रह तो शरीर है और श्रीचैतन्यदेव महाधीर उसके शरीरी हैं। यह समस्त जगत् स्वभावत: जड़ (प्राकृत) है। इस जड़ जगत के जीवों में चेतनता (कृष्णोन्मुखता) उत्पन्न करने के लिए श्रीकृष्णचैतन्य देव नीलाचल में आविर्भूत हुए हैं"। इस व्याख्या

को सुनकर सबका मन आनन्दित हुआ।

श्रीस्वरूप दामोदर जी द्वारा दोष दिखाना -

"आरे मूर्ख! आपनार कैलि सर्वनाश ।
दुइ त' ईश्वरे तोर नाहिक विश्वास ।।
पूर्णानन्द - चित्स्वरूप जगन्नाथ - राय ।
ताँरे कैलि - जड़ - नश्वर - प्राकृतकाय ।।
पूर्ण षडैश्वर्य चैतन्य - स्वयं भगवान ।
ताँरे कैलि क्षुद्र - जीव स्फुलिंग - समान ।।
दुइ ठाञि अपराधे पाइबि दुर्गति ।
अतत्त्वज्ञ तत्त्व वर्णे तार एइ गति ।।"

चै.च.अ. 5/117-20

अर्थात : श्रीस्वरूप गोस्वमी जी ने कहा - "अरे मूर्ख! तुमने तो अपना सर्वनाश कर दिया । श्रीजगन्नाथ जी एवं श्रीकृष्ण चैतन्यदेव इन दोनों ईश्वर स्वरूपों में तुम्हारा विश्वास या तत्त्व ज्ञान नही है। श्रीजगन्नाथ जी का विग्रह पूर्ण आनन्दमय है- अखण्ड आनन्द स्वरूप है एवं यह स्वरूपत: चिदानन्दमय है, तुमने उस चिदानन्दमय विग्रह को जड़ नाशवान् प्राकृत - देह कह कर वर्णन कर दिया । और श्री चैतन्य देव जो पूर्ण हैं, षडैश्वर्ययुक्त स्वयं श्रीभगवान् हैं, उन्हें तुमने एक क्षुद्र जीव जो चिंगारी के समान है, बता दिया । तुमने दोनों ईश्वरों के प्रति अपराध किया है, तुम्हारी दुर्गति होगी। तत्त्व के अज्ञाता जब तत्त्व वर्णन करते हैं तो उनकी यही गति होती

है, अर्थात दुर्गति होती है। "आर एक करियाछ परम प्रमाद। देह-देही-भेद ईश्वरे कैले अपराध।। ईश्वरेर नाहिक कभु देह-देही-भेद । स्वरूप, देह-चिदानन्द नाहिक विभेद।।" चै.च.अ. 5/121-22

अर्थात : आपने इसमें एक और महाप्रमाद किया है। कारण, आप ईश्वर में देह-देही-भेद रूपी अपराध कर बैठे हो, जबकि ईश्वर में देह-देही का भेद नहीं है।

ईश्वर में देह-देही का भेद समझना ही भ्रम है और इसी भ्रम के कारण ईश्वर को भी बद्ध जीव समझा जाता है, जबकि उनका स्वरूप व उनकी देह सभी चिदानन्दमय हैं। इसमें कोई विभेद नहीं है। श्रीमद्भागवत को शुद्ध भक्त वैष्णवों से श्रवण करना चाहिये।

"याह भागवत् पड़ वैष्णवेर स्थाने ।
एकान्त आश्रय कर चैतन्य चरणे ।।
चैतन्येर भक्तगणेर नित्यकर संग ।
तवे त' जानिवा सिद्धान्त समुद्र-तरंग ।।"

– चै.च.अ. 5/131-32

विप्र कवि के विस्मित, लज्जित और भयभीत हो जाने पर श्रीस्वरूप दामोदर ने उसके दुःख को दूर करने के लिये कहा कि शुद्धा सरस्वती द्वारा निन्दासूचक वाक्यों की भी कृष्ण महिमा प्रकाशक व्याख्या हो सकती है। उनके द्वारा इस विषय को विस्तृत रूप से समझाने पर विप्र कवि ने भक्तों के

चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया।

एक बार श्री भगवान आचार्य जी ने महाप्रभु जी को घर में उत्तम रूप से भोजन करवाने की इच्छा से छोटे हरिदास को सुगन्धित बारीक चावल मांग लाने के लिये शिखी माहिती की बहन माधवी देवी के पास भेजा था। भोजन के समय महाप्रभु जी को जब इस बात का पता लगा तो उन्होंने छोटे हरिदास का त्याग कर दिया। वैरागी के लिये स्त्री के साथ वार्तालाप विष खाने से भी ज्यादा खराब है- यह शिक्षा देने के लिये ही महाप्रभु जी ने ऐसी कठोरता का प्रदर्शन किया था। प्रभु कहे- वैरागी करे प्रकृति सम्भाषण। देखिते ना पारों आमि ताहार वदन।। चै.च.अ. 2/117

श्री धनन्जय पण्डित

'नित्यानन्द - प्रियभृत्य पंडित धनन्जय।
अत्यन्त विरक्त सदा कृष्ण प्रेममय ।। चै.च.आ. 11/31

श्रीमन्नित्यानन्द जी के प्रिय सेवक धनन्जय पंडित अत्यन्त विरक्त स्वभाव के थे एवं सदा कृष्ण प्रेम में मस्त रहते थे । श्रीनित्यानन्द प्रभु जी के प्रिय पार्षद श्री धनन्जय

पंडित श्रीकृष्ण लीला में बलदेव जी के प्रिय व द्वादश गोपालों में से एक - वसुदाम सखा हैं। वसुदाम सखा यश्च पण्डित धनन्जयः। गौ०ग० 127

इनके आविर्भाव स्थान और माता-पिता के परिचय के सम्बन्ध में मतभेद देखा जाता है। ये 1306 शकाब्दी में चैत्र शुक्ला-पंचमी को चट्टग्राम ज़िले के जाड़ग्राम में आविर्भूत हुये थे। इनके पिता का नाम श्री श्रीपति वन्द्योपाध्याय और माता का नाम श्रीमति कालिन्दी देवी था। इनकी पत्नी का नाम श्रीमति हरिप्रिया था। किन्तु 'गौरांग माधुरी' में इस सम्बन्ध में थोड़ा अलग रूप से वर्णन देखा जाता है। 'गौरांग माधुरी' में इस प्रकार लिखा है कि ये वीरभूम ज़िले के अन्तर्गत बोलपुर के निकटवर्ती सियानमुंलुक ग्राम में आविर्भूत हुये थे। इनके पिता का नाम श्रीआदि देव वाचस्पति और माता जी का नाम श्रीमति दयामयी देवी था। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने श्री चैतन्य चरितामृत के अनुभाष्य में लिखा है कि कोई कोई ऐसा कहता है कि श्री धनन्जय पण्डित की वास्तविक जन्मभूमि चट्टग्राम ज़िले के अन्तर्गत जाड़ग्राम में है।

वर्धमान जिले में मंगलकोट थाना व कैचर डाकघर के अन्तर्गत शीतलग्राम में ही श्री धनन्जय पण्डित का प्रधान श्रीपाट था। काटोया रेलवे स्टेशन से 9 मील दूरी पर कैचर स्टेशन है। वहां से एक मील उत्तर-पूर्व कोण में शीतलग्राम

है। ऐसा भी कहा जाता है कि साँचड़ा-पांचडा ग्राम में एवं जालन्दी ग्राम में भी इनका श्रीपाट था जो कि वर्धमान ज़िले के मेमारी रेलवे स्टेशन से 4 मील दूरी पर अवस्थित है । सातदेउले ताजापुर' ग्राम। इसी सातदेउले ताजापुर ग्राम से 2 मील दूर साँचड़ा-पाँचड़ा ग्राम है । वर्धमान जिले से प्रायः 10 मील पूर्व में लोकनगर डाकघर के अन्तर्गत जालन्दी ग्राम है। श्री धनन्जय पण्डित का कोई वंश नहीं है। शीतल ग्राम में जो सब सेवक हैं वे सब इनके शिष्यों के वंशधर हैं। जालन्दी ग्राम में श्री संजय पण्डित का भी श्रीपाट विद्यमान है। कोई कहता है कि ये श्री संजय पण्डित श्री धनन्जय पण्डित के भाई थे और कोई-2 कहता है कि शिष्य थे।

'श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान' में एवं 'श्रीगौरांग माधुरी' में श्री धनन्जय पंडित के गृहस्थ आश्रम की बात कही गयी है और उनकी पत्नी का नाम श्रीमति हरिप्रिया बताया गया है । और भी उल्लेख मिलता है कि ये बाल्यकाल से ही तुलसी जी को तीनों समय साष्टांग प्रणाम करते थे। छोटी उमर में विवाह होने पर भी ये कुछ दिनों के पश्चात ही तीर्थ भ्रमण के लिये निकल पड़े थे। इनके धनी पिता ने इनको रास्ते में खाने-पीने के लिये जो धन दिया था वह सारा ही इन्होंने श्रीमन्महाप्रभु जी के पादपद्मों में समर्पण कर दिया और भिक्षा का बर्तन हाथों में ले लिया था। 'वैष्णव - वन्दना' गीति में भी इस विषय का उल्लेख है, जो कि इस प्रकार से

है - 'विलासी वैरागी वन्दों पण्डित धनन्जय । सर्वस्व प्रभु दिया भाण्ड हाते लय।।'

श्री धनन्जय पण्डित जी जिन विग्रहों की सेवा करते थे वे ' श्रीगोपीनाथ', 'श्री श्रीनिताई गौरांग' एवं 'श्रीदामोदर' इनके शीतल ग्राम के प्रधान श्रीपाट में विराजित हैं। श्रीमन्दिर से कुछ ही दूरी पर एक बाग है जिसमें प्रतिवर्ष माघ मास के मध्य में यह श्री विग्रह शुभ विजय करते (अर्थात जाते) हैं। इसी स्थान पर इनका तिरोभाव उत्सव भी सम्पन्न होता है। नवद्वीप में श्रीमन्महाप्रभु जी की संकीर्त्तन विलास लीला के समय ये भी कुछ दिन वहां रहे थे और लीला के संगी बने थे। वहां से शीतल ग्राम में वापस आते समय वे श्रीवृन्दावन धाम के दर्शनों के लिये गये थे। वृन्दावन जाने से पहले साँचड़ा-पाँचड़ा ग्राम में अपने सेवक शिष्य को सेवा में नियोजित किया था। साँचड़ा-पाँचड़ा गाँव में धनन्जय पण्डित के श्रीपाट का कोई चिह्न अभी देखने को नहीं मिलता। शीतल ग्राम में श्रीमन्दिर के प्रवेश मार्ग के बायीं ओर एक तुलसी वेदी है। वहीं श्री धनन्जय पण्डित की समाधि वेदी है। पाषण्डदलनवाना - श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जी के पार्षदों में भी पाषण्ड को दलन करने की शक्ति का प्रकाश देखने को मिलता है। श्री धनन्जय पण्डित ने शीतल ग्राम के बहुत से दस्युओं और पाषण्डियों का उद्धार किया था -

"धनन्जय पण्डित महान्त विलक्षण।
याँहार हृदये नित्यानन्द अनुक्षण।।
चै.भा.अ. 5/773

महान्त धनन्जय पण्डित जी विलक्षण हैं, जिनके हृदय में नित्यानन्द जी हमेशा विराजमान रहते हैं।

कार्तिक शुक्ला अष्टमी तिथि को श्री धनन्जय पण्डित गोस्वामी जी का तिरोभाव हुआ था।

श्रील सुन्दरानन्द ठाकुर

श्रील सुन्दरानन्द ठाकुर श्रीकृष्ण लीला में द्वादश गोपालों में से एक हैं जो श्री सुदाम सखा थे। 'पुरा सुदाम-नामासीद् अद्य ठक्कुरः।' -गौ०ग० 127

"प्रेमरस समुद्र सुन्दरानन्द नाम।
नित्यानन्द स्वरूपेर पार्षद प्रधान।।"

इनका श्रीपाट यशोहर ज़िले के अन्तर्गत महेशपुर ग्राम में है जो कि माजदिया रेलवे स्टेशन से 14 मील पूर्व की ओर अवस्थित है। पास में ही वेत्रवती नदी प्रवाहित होती है। इस स्थान पर प्राचीन चिह्न-स्वरूप एकमात्र सुन्दरानन्द ठाकुर जी का जन्मभिटा दिखता है। श्री सुन्दरानन्द ठाकुर नित्यानन्द

शाखा में गिने जाते हैं।

"सुन्दरानन्द नित्यानन्देर शाखा, भृत्यमर्म।
याँर सगे नित्यानन्द करे व्रजनर्म।।
चै०च०आ० 11/23

इनके द्वारा सेवित विग्रह 'श्रीश्रीराधावल्लभ' और 'श्रीश्रीराधारमण' हैं। गोस्वामी गणों के द्वारा 'श्रीश्रीराधावल्लभ' और 'श्रीश्रीराधारमण' जी के मूल विग्रह सैदाबाद में ले जाने के बाद महेशपुर में दारुमय (लकड़ी के) विग्रह प्रतिष्ठित किये गये थे। श्रील सुन्दरानन्द ठाकुर आकुमार ब्रह्मचारी थे, इसलिये इनका वंश नहीं है। यही कारण है कि देव मन्दिर के स्थायी सेवक-शिष्य-वंश वर्त्तमान में वहाँ पर हैं। वीरभूम ज़िले में मंगलडिहि ग्राम में जो हैं, वे सुन्दरानन्द ठाकुर जी के रिश्तेदारों के वंशज हैं। 'वैष्णव-वन्दना' में सुन्दरानन्द ठाकुर जी की महिमा इस प्रकार वर्णित है।

"सुन्दरानन्द ठाकुर वन्दिव बड़ आशे।
फुटाल कदम्बफूल जम्बीरे गाछे।।"

नित्यानन्द पार्षद श्रील सुन्दरानन्द ठाकुर अलौकिक शक्ति सम्पन्न थे। इन्होंने जम्बीर के वृक्ष पर कदम्ब के फूल अंकुरित कर श्रीराधारमण जी की सेवा की थी। एक बार सुन्दरानन्द ठाकुर जी गाढ़ प्रेम के आवेश में नदी के जल में कूदकर एक मगरमच्छ को खींच लाये थे। नित्यानन्द प्रभु जी

जिस प्रकार पतितपावन हैं, उनके पार्षद भी उसी प्रकार पतितपावनत्व की शक्ति रखते हैं। कार्तिक पूर्णिमा तिथि को सुन्दरानन्द ठाकुर जी ने तिरोधान लीला की।

श्रीकालिदास और श्रीझडू ठाकुर

श्री गौरगणोद्देशदीपिका ग्रन्थ में श्रीकालिदास का पूर्व परिचय देते हुए ''पुलिन्दकन्या मल्ली''। इस रूप से उल्लिखित किया है। ''पुलिन्द तनया मल्ली कालिदासोऽधुनाभवत्'' - गौ: ग: 190 । श्रीमन्महाप्रभु के भक्त श्री कालिदास कायस्थकुल में आविर्भूत हुए थे । श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी जी की आविर्भाव स्थली (कृष्णपुर ग्राम, हुगली ज़िला में सप्तग्राम के अन्तर्गत) से तीन मील दक्षिण में एवं बैण्डल जन्कशन से एक मील पश्चिम में 'भेदो' या 'भदोया' ग्राम में श्रीकालिदास-भुईमाली कुल में आविर्भूत हुए । श्रीझड़ू ठाकुर का श्री जन्म पाट भी ''भेदोग्राम'' में है । श्रीपाट का डाकघर देवानन्दपुरग्राम है । श्रीकालिदास के सेवित विग्रह पहले शंखनगर में विराजित थे । अभी वे विग्रह त्रिवेणी में सेवित हो रहे हैं । झड़ू ठाकुर के सेवित विग्रह श्रीमदन गोपाल भदुया ग्राम में ही पूजित हो रहे हैं ।श्रील कृष्णदास

कविराज गोस्वामी जी ने श्रीकालिदास और श्रीझड़ू ठाकुर की महिमा स्वरचित "श्रीचैतन्य चरितामृत" के अन्त्यलीला के सोलहवें परिच्छेद में वर्णन की है । उसमें उन्होंने श्रीकालिदास का पूर्व परिचय भी लिखा है । श्रीकालिदास श्रील रघुनाथदास गोस्वामी जी के चाचा थे। रघुनाथदासेर तिँहो हय ज्ञाती खूड़ा ।वैष्णवेर उच्छिष्ट खाईते तेँहो हइला बूड़ा ।। * चै.च.अ. 16 / 8

महाभागवत श्रीकालिदास हमेशा कृष्ण नाम करते थे । व्यवहार में भी "हरे कृष्ण" नाम उच्चारण करना उनका सभी कार्यों में संकेत था । वैष्णव का उच्छिष्ट (जूठा) ग्रहण करके श्रीकालिदास ने स्वयं भगवान महाप्रभु जी की जिस प्रकार कृपा लाभ की थी, उसको अद्भुत ही कहना होगा ।

वैष्णव में विश्वास और वैष्णव उच्छिष्ट ग्रहणकारी व्यक्ति होने के नाते भगवान उन पर इतने प्रसन्न हुए कि इनको भगवान ने न देने वाली वस्तु को भी दे दिया :-

"ताते वैष्णवेर झूठा, खाओ छाड़ी, घृणा लाज ।
याहा हैते पाइवा वान्छित सब काज ।।
कृष्णेर उच्छिष्ट हय 'महाप्रसाद' नाम ।
'भक्तशेष' हइले 'महामहाप्रसादाख्यान' ।।
भक्तपदधूली आर भक्तपदजल ।
भक्त भुक्त शेष, - एइ तिन साधनेर वल ।।

एई तिन सेवा - हैते कृष्णप्रेमा हय ।
पुनः पुनः सर्वशास्त्रे पुकारिया कय ।।
ताते बार बार कहि, - सुन भक्त गण ।
विश्वास करिया कर ए - तिन सेवन ।।
तिन हैते कृष्णनाम - प्रेमेर उल्लास ।
कृष्णेर प्रसाद, ताते साक्षी कालिदास ।।" चै.च.अ. 16 / 58 - 63

गौड़ देश में रहते समय श्रीकालिदास उच्च और निम्न वर्ण के समस्त वैष्णवों का उच्छिष्ट ग्रहण करते थे । वे उत्तम वस्तु लेकर भक्तों के घर जाकर उसे उनकी सेवा के लिए प्रदान करते थे । भक्तों के आहार कर लेने के पश्चात उनका उच्छिष्ट प्रसाद प्रार्थना करके लेते थे । जो अपना उच्छिष्ट देने की इच्छा नहीं करते , उनका उच्छिष्ट वे छिपकर ग्रहण करते थे । भक्त लोग आहार करने के पश्चात जहाँ पत्ता इत्यादि फेंकते थे, छिपकर वहाँ जाकर उक्त उच्छिष्ट प्रसाद चाट कर खाते थे । जिस किसी कुल में आविर्भूत होने से भी वैष्णव सर्व पूज्य हैं । वैष्णव गुणातीत, जाति और वर्ण के अन्तर्गत नहीं हैं । वैष्णव में जाति - बुद्धि करने से नरक - गति होती है ।

श्रीझड़ू ठाकुर भुँईकुल में आविर्भूत होते हुए भी परम वैष्णव थे । एक दिन श्रीकालिदास उनके घर में गये और उनको तथा उनकी सहधर्मिणी को प्रणाम व वन्दना करके उन्हें सुस्वादिष्ट

आम भेंट किये। श्रीझड़ू ठाकुर ने श्रीकालिदास को सर्वोत्तम अतिथि जानकर उनका बहुत सम्मान किया एवं अत्यन्त दैन्यभाव से कहने लगे। मैं नीच जाति का हूँ, किस प्रकार से आपकी सेवा कर सकता हूँ ? आप आज्ञा कीजिए ब्राह्मण-घर में आपकी रसोई की व्यवस्था कर दूँ ? आप के वहाँ प्रसाद ग्रहण करने से मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। श्रीकालिदास श्रीझड़ू ठाकुर के वैष्णवोचित दैन्य भरे वाक्य सुनकर कहने लगे, 'मैं अत्यन्त पतित और अधम हूँ। बहुत सौभाग्य से आपका दर्शन करके कृतार्थ हुआ हूँ। आप कृपा पूर्वक अपनी पादपद्म-धूलि मेरे मस्तक पर अर्पण कर दें। श्रीझड़ू ठाकुर ये सुनकर और भी संकुचित और लज्जित होकर श्रीकालिदासजी को वैष्णव महिमा सूचक कुछ श्लोक पाठ करके सुनाने लगे। 'न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी ....', विप्राद्द्विषड-गुणयुताद ......', अहोवत श्वपचोऽतो ....' इत्यादि। शास्त्रों के इन श्लोकों को सुनकर श्रीकालिदास जी दीनता पूर्वक कहने लगे कि शास्त्रों के यह वचन सत्य हैं पर यह उन पर लागू नहीं होते क्योंकि वह वैष्णव नहीं हैं। इसके बाद श्रीकालिदास ने श्रीझड़ू ठाकुर को प्रणाम करके विदाई ली और श्रीझड़ू ठाकुर उनका कुछ दूर तक अनुगमन करके वापस आ गए। श्रीकालिदास ने संयोग पाकर श्रीझड़ू ठाकुर के चरणचिन्ह जहाँ-2 पड़े थे, वहाँ की धूलि को अपने सब अंगों में लगाया। श्रीझड़ू ठाकुर का उच्छिष्ट (जूठा) ग्रहण करने की लालसा से श्रीकालिदास

एक स्थान पर छिपकर खड़े हो गए। श्रीझड़ू ठाकुर ने घर आकर भक्त कालिदास के आमों को काटकर केले के पत्ते के ऊपर रख कर मन-मन में कृष्ण को अर्पण किया। श्रीझड़ू ठाकुर की पत्नी ने कृष्ण में अर्पित आम के फलों को केले के पत्ते से उठाकर पति को दिया। श्रीझड़ू ठाकुर जी ने परम सन्तोष के साथ उन आमों को चूस कर उनकी गुठलियों को पत्ते पर रख दिया। सती साध्वी वैष्णव स्त्री ने पति के जूठे को ग्रहण किया, बाद में उन जूठे आमों की गुठलियों व छिलकों को पत्ते पर रखकर बाहर फेंक दिया। छिपे हुए श्रीकालिदास जी उन फेंके हुए आम की गुठलियों और छिलकों को चूराने लगे। वैष्णव के जूठे को ग्रहण करके श्रीकालिदास प्रेम में बिभोर हो गए। इस प्रकार गौड़देश के सभी वैष्णवों को वे प्रणाम करते एवं उनका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण किया करते ।

हर साल गौड़ देश के भक्त रथ-यात्रा के उपलक्ष में 'पुरी' जाते थे। भक्त श्रीकालिदास भी दूसरे साल गौड़ देश के भक्तों के साथ नीलाचल गए। सर्व-अन्तर्यामी श्रीमहाप्रभु जी ने श्रीकालिदास जी की वैष्णव-प्रीति की कथा जानकर उन पर भरपूर कृपा की। प्रतिदिन महाप्रभु जी जब जगन्नाथ दर्शन करने जाते थे तो गोविन्द महाप्रभु जी का कमन्डलु वहन करते थे। सिंहद्वार के उत्तरी दरवाज़े के अन्तराल में 22 सीढ़ियों के नीचे जल निकलने

का एक स्थान है । श्रीजगन्नाथ दर्शन को जाने से पहले श्रीमन् महाप्रभु वहाँ रोज़ चरण धोते थे । गोविन्द को महाप्रभु जी का कठोर निर्देश था कि कोई भी उनके पदजल को स्पर्श न करने पाए । इसलिए महाप्रभु जी के पदजल को स्पर्श करने का किसी का भी साहस नहीं होता था। केवल मात्र अन्तरंग भक्त गण कौशल से पद जल को ग्रहण कर लेते थे । एक दिन महाप्रभु जी जब वहाँ चरण धो रहे थे तो उसी समय श्रीकालिदास जी ने आकर उक्त चरण धोया हुआ जल ग्रहण करने के लिए हाथ बढ़ाया । महाप्रभु जी के सामने ही एक अंजलि, दो अंजलि तथा तीन अंजलि जल पीने के बाद महाप्रभु जी ने पादोदक जल ग्रहण करने के लिए निषेध किया।

"सर्वज्ञ शिरोमणि चैतन्य ईश्वर ।
वैष्णवे ताँहार विश्वास, जानेन अन्तर ।।
सेई गुण लईया प्रभु ताँरे तुष्ट हइला ।
अन्येर दुर्लभ प्रसाद ताँहारे करिला ।।"

चै.च.अ. 16/48 - 49

श्रीमहाप्रभु जी ने श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन के बाद, काशी मिश्र भवन (अपने गृह) में आकर दोपहर को भोजन किया । श्रीकालिदास श्री महाप्रभु जी का उच्छिष्ट प्रसाद पाने के लिए द्वार के बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे । श्री महाप्रभु जी ने श्रीकालिदास का अभिप्राय

जान लिया व गोविन्द को इशारा किया । गोविन्द ने श्रीकालिदास को श्री महाप्रभु जी के अवशेष पात्र को प्रदान कर दिया ।

"वैष्णवेर शेष भक्षणे एतेक महिमा ।
कालिदासे पोआइल प्रभुर कृपा सीमा ।।
ताते वैष्णवेर जूठा खाओ छाड़ि घृणा लाज ।
जाहा हैते पाइवा बाँच्छित सब काज ।।"

- चै.च.अ. 16/57 - 58

पठान वैष्णव श्री बिजली खान

श्री बिजली खान जाति से पठान मुसलमान होने पर भी श्रीमन्महाप्रभु जी से कृपा प्राप्त करके प्रसिद्ध वैष्णव हो गये थे। ये श्रीमन्महाप्रभु जी के समकालीन (15वीं या 16वीं शताब्दी के अन्तर्गत) हुये। इनके पिता राजा के समान धनी थे। इन्होंने श्रीमन्महाप्रभु जी के दर्शन एवम् कृपा प्राप्त की थी । इन्होंने महाप्रभु जी की कृपा किस प्रकार प्राप्त की थी, इसका वर्णन श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत में मध्यलीला के 18वें परिच्छेद में किया है। वर्णन इस प्रकार से है कि जिस समय श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीरथयात्रा का दर्शन करने के पश्चात श्री क्षेत्र से झाड़ीखण्ड

के निर्जन रास्ते से श्रीवृन्दावन की ओर यात्रा की थी, उस समय श्रीरायरामानन्द और श्रीस्वरूप दामोदर जी ने श्रीमन् महाप्रभु जी के साथ श्री बलभद्र भट्टाचार्य और एक ब्राह्मण सेवक को भी भेजा था। वृन्दावन जाने के रास्ते में महाप्रभु जी का प्रेमावेश नीलाचल से सौ गुना अधिक हो गया तथा मथुरा धाम पहुंचने पर उससे हज़ार गुणा एवं ब्रजमण्डल में महाप्रभु जी जब बारह वनों में भ्रमण कर रहे थे तब तो वह प्रेम अपनी पराकाष्ठा में अर्थात लाख गुणा बढ़ गया था।

ब्रजमण्डल में बारह वनों का भ्रमण करते-2 महाप्रभु जी जब अक्रूर घाट पर पहुंचे तो वहां आकर उन्होंने यमुना जी में छलांग लगा दी और काफी लम्बे समय तक पानी में ही डूबे रहे। काफी लम्बे समय तक पानी में डूबे रहने के कारण राजपूत वैष्णव कृष्णदास, जो कि वृन्दावन में महाप्रभु जी को देख कर आकृष्ट हो साथ ही आ गये थे, चीख उठे। उनकी चीख सुनकर बलभद्र भट्टाचार्य जी शीघ्र ही वहां आये और उन्होंने महाप्रभु जी को जल से उठाया। महाप्रभु जी के इस प्रकार के प्रेम के विकारों को देख कर बलभद्र भट्टाचार्य जी डर गये। इसलिये उन्होंने श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद जी के शिष्य - सनोड़िया - ब्राह्मण के साथ इस सम्बन्ध में परामर्श किया। परामर्श करने के पश्चात मकर पन्चदशी पूर्णिमा को स्नान योग की बात कहकर वे महाप्रभु जी को वृन्दावन से गंगा के किनारे-2 सौरों क्षेत्र से होते हुये

प्रयाग जाने का निश्चय किया। राजपूत कृष्ण दास और मथुरा के ब्राह्मण गंगा जी के उस रास्ते के विषय में जानते थे, सो ये भी महाप्रभु जी के साथ हो लिए। रास्ते की थकावट के कारण महाप्रभु जी विश्राम के लिये एक वृक्ष के नीचे बैठे थे कि उस वृक्ष के पास ही बहुत सी गऊओं को विचरण करते हुये देखकर महाप्रभु जी को व्रजलीला की स्मृति हो आयी। अकस्मात् किसी गोप द्वारा वंशीध्वनि करने पर महाप्रभु जी महाप्रेनावेश में मूर्च्छित हो गये। प्रेम के विकार होने के कारण उनके मुख से झाग निकलने लगी और श्वास बंद हो गया। उसी समय पठान बिजली खान दस घुड़सवारों की सेना ले वहां आ पहुंचा। महाप्रभु जी की ऐसी अवस्था देखकर बिजली खान ने सोचा कि शायद इस सन्यासी के पास बहुत सा सोना व धनादि रहा होगा और वह सारा इन चारों ने इसको धतूरा खिलाकर व इसे मार कर लूट लिया है। पठान बिजली खान जब चारों को बांधकर मारने को हुआ तो दोनों गौड़ीय डर से कांपने लगे किन्तु राजपूत कृष्ण दास और मथुरा के ब्राह्मण नहीं डरे बल्कि उन्होंने अपनी प्रस्तुत बुद्धि से काम लिया। माथुर ब्राह्मण ने बिजली खान को समझाते हुए कहा कि मैं मथुरा का ही ब्राह्मण हूं और जो ये सन्यासी मूर्च्छित हुये पड़े हैं वे मेरे गुरु हैं। हमारे बादशाह के पास एक सौ लोग हैं और व्याधि ग्रस्त ये सन्यासी कभी मूर्च्छित होता है तो कभी ठीक

---

1. कृष्णदास राजपूत 2. माधवेन्द्र पुरीपाद जी का शिष्य सनोड़िया विप्र 3. बलभद्र भट्टाचार्य और बलभद्र भट्टाचार्य का साथी ब्राह्मण।

हो जाता है। यदि आपको हम पर विश्वास नहीं है तो आप हम लोगों को बांधकर कुछ समय प्रतीक्षा कर लीजिये। जब संन्यासी की मूर्च्छा दूर होगी तब इनसे हमारे बारे में पूछ लेना। इनसे पूछने पर ही वास्तविक सत्य बात तुम्हें मालूम पड़ेगी। पठान ने कहा, ठीक है, आप लोगों की बात तो समझ में आ गयी परन्तु ये दोनों बंगाली भय से कांप क्यों रहे हैं, निश्चय ही यही दोषी होंगे। राजपूत कृष्णदास समय की मुसीबत को समझ गये और पठान को दमदार आवाज में डराते हुए कहने लगे - देखो, मेरा घर इसी गांव में है, पास में ही मेरे दो सौ सैनिक हैं, 100 तोपें हैं। अभी एक आवाज लगाने से सभी आ जायेंगे और तुम्हारा सब कुछ लूट लेंगे। ये बंगाली लुटेरे नहीं हैं, बल्कि तुम लुटेरे हो। तीर्थवासियों को लूटना ही तुम्हारा काम है। इस प्रकार निर्भीक वाक्य सुनकर पठान मन-मन में भयभीत और चिन्तित हो उठा। इसी बीच महाप्रभु जी की मूर्च्छा दूर हुयी और वे महाप्रेमावेश में उच्चस्वर में 'हरि', 'हरि' बोलकर हुंकार करते हुए नृत्य करने लगे। महाप्रभु जी की हुंकार सुनकर और उनका अद्भुत नृत्य देखकर भयवश पठानों ने चारों को छोड़ दिया। महाप्रभु जी अपने गणों का बन्धन देख नहीं पाये। बलभद्र भट्टाचार्य महाप्रभु को धीरे-धीरे सामान्य अवस्था में लाये और उन्होने नृत्य करते हुए महाप्रभु जी को शान्त रूप से बिठाया। बैठते ही महाप्रभु जी ने सामने उन पठान मुसलमानों को देखा। पठान मुसलमानों को सामने देख उनको बाह्यज्ञान हुआ। पठान

महाप्रभु जी की अपूर्व श्रीमूर्त्ति और प्रेमोन्मत्त भाव को देखकर उनकी ओर आकृष्ट हो गये तथा आकृष्ट हो कर अपने सन्देह की बात कहने लगे कि हमें सन्देह हुआ था कि इन चारों ने आपको धतूरा खिलाकर पागल कर दिया है और आपका सब सामान लूट लिया है। तब महाप्रभु जी ने पठानों को समझाया कि मैं तो सन्यासी हूँ। मेरे पास तो कोई धन वगैरह नहीं है और ये चारों मेरे साथी हैं। मिर्गी की बीमारी से कभी-2 मैं मूर्च्छित हो जाता हूँ। ये चारों दया करके मेरी रक्षा और मेरा पालन करते हैं। पठान के सेवकों में से कालेवस्त्र पहने एक ने पीर के रूप में अपना परिचय दिया और महाप्रभु जी के दर्शनों से प्रसन्न होकर कुछ शास्त्र विचार किया। उसने अपने शास्त्रों का प्रमाण देकर निर्विशेष ब्रह्मवाद की स्थापना की। महाप्रभु जी ने भी उनके ही शास्त्रों का प्रमाण देकर निर्विशेष-परक व्याख्या का खण्डन करके पहले भगवान के सविशेषत्व की बात कही तथा बाद में कर्म ज्ञान व योग विचारादि सब विचारों का खण्डन कर भगवद्प्रेम ही जीव का सर्वोत्तम प्रयोजन है, इसकी स्थापना की। पठान तो महाप्रभु जी को देखने मात्र से ही आनन्दित हो गये थे और फिर उनसे साध्य-साधन विषय में यथार्थ सिद्धान्त सुनकर और भी आकर्षित हुये। शास्त्रविचारक पठान की जिह्वा पर स्वतःस्फुर्त कृष्ण नाम का उदय हुआ। महाप्रभु जी ने पीर (पठान) के मुख से कृष्ण नाम सुनकर प्रसन्नता से कहा - इसके कोटि-2 जन्मों के पाप ध्वंस हो गये हैं और अब यह

पवित्र हो गया है। महाप्रभु जी द्वारा सभी को कृष्ण नाम करने के लिए कहने पर सभी कृष्ण नाम करने लगे। शास्त्र- विचारक पठान को कृष्णनाम का उपदेश देने के पश्चात् महाप्रभुजी ने उसका नाम रामदास रखा। राजकुमार बिजली खान अपने सेवक पठान का ऐसा सौभाग्य देख स्वयं भी कृष्ण-कृष्ण कहता हुआ महाप्रभुजी के चरणों में गिर पड़ा तो महाप्रभुजी ने उसपर भी कृपा की।

ताँ-सबारे कृपा करि' प्रभु त' चलिला।
सेइ त' पाठान सब वैरागी हइला।।
'पाठान - वैष्णव बलि' हइल तार ख्याति।
सर्वत्र गाहिया बुले महाप्रभुर कीर्ति।।
सेइ बिजलि खान् हैल महा भागवत।
सर्वतीर्थे हैल ताँर परम महत्व।।

चै.च.म. 18 / 210 - 12

उन सब पठानों पर इस प्रकार कृपा करके श्रीमहाप्रभु जी वहाँ से चल दिये और वे सब पठान तभी से वैरागी हो गए। वे सब 'पठान - वैष्णव' नाम से विख्यात हुए। वे सर्वत्र श्रीमन्महाप्रभु की कीर्ति का गान करते रहते थे। पठान बिजली खान तो परम भागवत हो गये और सर्वतीर्थों में उसकी महिमा फैल गई।

कविकर्णपूर (श्री पुरीदास)

कवि कर्णपूर श्रीचैतन्य शाखा में गिने जाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु जी के प्रिय पार्षद श्री शिवानन्द सेन इनके पिता हैं। कवि कर्णपूर जी ने स्वरचित गौरगणोद्देशदीपिका में अपने पिता जी का परिचय इस प्रकार दिया है -

'पुरा वृन्दावने वीरादूती सर्वाष्च गोपिकाः ।
निनाय कृष्णनिकटं सेदानीं जनको मम।
व्रजे विन्दुमती यासीदद्य सा जननी मम। - 176

पहले अर्थात श्रीकृष्ण लीला में जो वृन्दावन की वीरादूती थीं, जो सब गोपियों को श्रीकृष्ण के पास ले गयी थीं, वही इस समय, अर्थात गौरलीला में मेरे पिता शिवानन्द सेन हैं। और जो व्रज में बिन्दुमती थीं, इस समय वही मेरी जननी हैं, परन्तु वहाँ पर कवि कर्णपूर जी ने अपना परिचय प्रदान नहीं किया। उनके द्वारा दिये गये अपने माता-पिता के परिचय से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वह भी स्वरूप से व्रजलीला में कृष्णलीला के पार्षद ही होंगे। वे सन् 1527 ई0 में कान्चन ग्राम (कांचनपाड़ा) में आविर्भूत हुये थे। इनका माता-पिता जी द्वारा दिया गया नाम श्रीपरमानन्द दास (श्री परमानन्द सेन) या पुरीदास था। शिवानन्द सेन के तीन पुत्रों में से कवि कर्णपूर सब से छोटे थे। शिवानन्द जी के बड़े पुत्र का नाम श्रीचैतन्य दास और बीच के पुत्र का नाम

श्रीरामदास था। "चैतन्य दास, रामदास आर कर्णपूर। तीन पुत्र शिवानन्देर प्रभु भक्त सूर।" चै.च.आ. 10/62

श्री शिवानन्द सेन जी के सम्बन्ध से उनकी पत्नी और तीनों पुत्रों ने श्रीमन्महाप्रभु जी की अपार कृपा प्राप्त की थी। महाप्रभु जी का साक्षात् आदेश था कि जितने दिन शिवानन्द सेन, उनकी पत्नी व परिवार के अन्यान्य लोग पुरी में रहेंगे, उतने दिन मेरा अवशेष पात्र अर्थात थाली में बचा प्रसाद उन्हें मिलेगा।

शिवानन्द सेन और उनके पारिवारिक लोग महाप्रभु जी के कितने प्रिय थे, ये महाप्रभु जी के इस निर्देश से ही जाना जा सकता है। "शिवानन्देर प्रकृति पुत्र यावत एथाय। आमार अवशेष पात्र तारा येन पाय।।" चै०च०अ० 12/53

श्रीमन्महाप्रभु जी के निर्देशानुसार ही शिवानन्द जी के छोटे पुत्र का नामकरण हुआ था महाप्रभु जी ने ही उसका नाम परमानन्द दास रखा था। महाप्रभु जी उपहास में बालक को पुरी दास कह कर बुलाते थे। श्री जगन्नाथ पुरी में श्रीमन्महाप्रभु जी के आशीर्वाद से शिवानन्द सेन के अन्तिम या कनिष्ठ तृतीय पुत्र के होने पर श्रीमन् महाप्रभु जी द्वारा उसका नाम पुरीदास रखा गया था, ऐसा भी कहा जाता है।

"छोट पुत्रे देखि प्रभु नाम पुछिला।
'परमानन्ददास' नाम सेन जानाइला ।।

पूर्वे यबे शिवानन्द प्रभु स्थाने आइला।
तबे महाप्रभु तारे कहिते लागिला।।
एबार तोमार येइ हइबे कुमार।
'पुरीदास' बलि नाम धरिह तांहार।।
तबे मायेर गर्भे हय सेइ त' कुमार।
शिवानन्द घरे गेल जन्म हैल ताँर ।।
प्रभु आज्ञाय धरिल नाम 'परमानन्ददास'।
पुरीदास बलि प्रभु करेन उपहास।।"

चै०च०अ० 12/45-49

अर्थात : सबसे छोटे लड़के को देखकर श्री महाप्रभु जी ने उसका नाम पूछा, श्री सेन ने बताया कि इसका नाम 'परमानन्ददास' है।

पहले जब श्री शिवानन्द जी प्रभु दर्शन करने नीलाचल में आये थे, तब श्रीमहाप्रभु जी ने इनसे कहा था कि 'शिवानन्द ! अब के जो तुम्हारे घर पुत्र पैदा होगा, उसका नाम तुम 'पुरीदास' रखना। उस समय यही बालक माँ के गर्भ में था, जब श्री शिवानन्द सेन अपने देश को लौट कर गए, तब इसका जन्म हुआ था। श्री शिवानन्द जी ने प्रभु की आज्ञानुसार इसका नाम 'परमानन्ददास' (परमानन्ददास पुरी) रख दिया था। अब इस लड़के का नाम सुनकर श्रीमहाप्रभु जी ने इसे 'पुरीदास' नाम से पुकार कर उपहास किया।

शिवानन्द सेन जब पुरी दास को महाप्रभु जी के पास

लाये तो अत्यन्त स्नेह से भर कर महाप्रभु जी ने अपने पैर का अंगूठा उस छोटे से बालक के मुख में दे दिया। पुरीदास की आयु जब मात्र 7 वर्ष की थी तो उसी समय उसका अद्भुत कवित्व देखकर श्रीमहाप्रभु जी ने उसका नाम 'कविकर्णपूर' रखा था।

श्रीचैतन्य चरितामृत में कविराज गोस्वामी जी ने अन्त्य लीला के 16वें परिच्छेद में ये प्रसंग इस प्रकार से वर्णन किया है -

जिस वर्ष श्रीशिवानन्द सेन अपनी पत्नी को साथ में लेकर पुरी आये थे, उस वर्ष छोटे पुत्र पुरीदास को भी साथ में लाये थे। शिवानन्द सेन पुत्र के साथ महाप्रभु जी के पास आये और उन्होंने अपने उस छोटे से पुत्र से महाप्रभु जी की चरण वन्दना करवायी। तब महाप्रभु जी ने स्नेहाविष्ट होकर उसे 'कृष्ण' कहो, 'कृष्ण' कहो - बार बार कहा परन्तु बार बार कहने पर भी बालक ने कृष्ण नाम का उच्चारण नहीं किया। पिता के बहुत तरह से प्रयास करने पर भी वे बालक के मुख से कृष्ण नाम उच्चारण नहीं करवा सके। इस पर महाप्रभु जी ने आश्चर्यचकित होकर कहा - 'मैंने सारे जगत के लोगों से कृष्ण नाम करवाया है, यहाँ तक कि पेड़-पौधों तक को भी मैंने कृष्ण नाम करवाया है किन्तु इस छोटे बालक को मैं कृष्ण नाम नहीं करा पा रहा हूं। आखिर बात क्या है ? स्वरूप दामोदर जी ने इस का कारण बताते हुए कहा कि मैं तो

ये समझता हूं कि आपने इसको कृष्ण नाम मन्त्र दिया है। मन्त्र उच्चारण करना मना है, इसलिये यह मन-2 में जप कर रहा है। पुरीदास को इतनी छोटी उम्र में इस बात का ज्ञान है कि मन्त्र उच्चारण करना निषेध है, जान कर महाप्रभु जी प्रसन्न हुये। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने अपने अनुभाष्य में लिखा है कि श्रीगुरुदेव जी से प्राप्त मन्त्र का दूसरे के सामने उच्चारण करने से उसका वीर्य नष्ट हो जाता है अर्थात शक्ति नष्ट हो जाती है। श्रीगदाधर पण्डित जी के आख्यान से हमें पहले ही यह मालूम हो चुका है। इसी कारण से श्रीपुरीदास ने श्रीमन् महाप्रभु जी द्वारा दिये गये कृष्ण नाम का उच्चारण नहीं किया।—महाप्रभु जी ने पुरी दास का मौन भंग करने के लिए उसे 'पुरीदास पढ़ो' कहकर पाठ करने के लिये कहा। इस पर पुरीदास ने अपने मौन को भंग कर एक श्लोक कहा -

"श्रवसोः कुवलयमक्ष्णो रन्जनमुरसो महेन्द्रमणिदाम।
वृन्दावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति।।"

जो कर्णों के नीलकमल, चक्षुओं के अंजन, वक्षस्थल के महेन्द्रमणिदाम और वृन्दावन की रमणियों के अखिल भूषण हैं उन श्री हरि की जय हो।

वहाँ पर उपस्थित सभी ये सोचकर चमत्कृत हो उठे कि मात्र सात वर्ष का शिशु, इतनी छोटी उम्र में इसने कुछ अध्ययनादि किये बिना ही किस तरह इस श्लोक का उच्चारण

किया। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की कृपा को तो ब्रह्मादि देवगण भी नहीं समझ सकते तब साधारण जीव की तो बात ही क्या है। जबकि कवि कर्णपूर ने महाप्रभु जी से कृष्ण नाम-मन्त्र के अनुशीलन करने का आदेश प्राप्त किया, तथापि उन्होंने सामाजिक प्रथा के अनुसार अद्वैत शाखा में श्रीनाथ पण्डित जी से मन्त्र ग्रहण किया था। कवि कर्णपूर जी ने स्वरचित 'श्रीआनन्द वृन्दावन चम्पू' ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्रीनाथ पण्डित की वन्दना की है।. श्रीमन्महाप्रभु जी श्रीशिवानन्द जी की सारी गोष्ठी को अपना ही समझते थे। कवि कर्णपूर जी ने महाप्रभु जी को 'कुलाधिदेवत' कह कर प्रणाम किया है। कवि कर्णपूर जी के गुरुदेव श्रीनाथ विप्र जी द्वारा स्थापित कृष्णदेव विग्रह अभी भी कुमारहट्ट (किसी-2 के अनुसार कांचनपाड़ा) में विराजित है।

कवि कर्णपूर ने जिन-2 ग्रन्थों की रचना की उनमें से उल्लेखनीय हैं - श्रीचैतन्य चरितामृत महाकाव्य, आनन्द वृन्दावन चम्पू, अलंकार कौस्तुभ, श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक, श्रीगौरगणोद्देश दीपिका, वृहद्गणोद्देश-दीपिका, आर्यशतक, दशमस्कन्ध श्रीमद्भागवत की टीका, श्रीचैतन्य सहस्त्र नाम और केशवाष्टक। 1498 शकाब्द तक इन्होंने ग्रन्थादि की रचना की। "प्रभु प्रिय कवि कर्णपूर ग्रन्थ कैला।
सनातने ये प्रसाद ताहा जानाइला।।"
- भ० र० 1/657

"गुणचूड़ा सखी हन कवि कर्णपूर।
कांचनपाड़ाय वास चैतन्य शाखा शूर।।
वृद्ध-पदांगुष्ठ याँरे मुखे दिला।
पुरी दास नाम बलिशक्ति संचारिला।। - वैष्णवाचार दर्पण

श्रीवृन्दावनदास ठाकुर

"वेदव्यासो य एवासीद्दासो वृन्दावनोऽधुना।
सखा यः कुसुमापीडः कार्यतस्तं समाविशत् ।।"

श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास जी ने 'श्रीमद्भागवत' में श्रीकृष्णलीला का वर्णन किया है। श्री व्यासाभिन्न विग्रह श्रील वृन्दावनदास ठाकुर जी द्वारा रचित 'श्रीचैतन्य भागवत' में श्री चैतन्य लीला वर्णित हुई है। श्री वृन्दावन दास ठाकुर जी के ग्रन्थ का नाम पहले श्री चैतन्य मंगल था। श्री लोचनदास ठाकुर जी ने अपने द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम भी 'श्रीचैतन्य मंगल' रखा था। इसलिए श्री वृन्दावन दास ठाकुर जी द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम परिवर्तित करके 'श्रीचैतन्य भागवत' रखा गया। श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी 1429 शकाब्द वैशाखी कृष्णा द्वादशी के दिन मामगाछी (किसी-2 के अनुसार कुमारहट्ट) में आविर्भूत हुए। इनके पिता का नाम श्रीवैकुण्ठ नाथ विप्र एवं माता का

नाम श्रीमती नारायणी देवी था। श्रीमती नारायणी देवी श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्रिय भक्त श्रीवास पंडित के बड़े भाई नलिन पंडित की कन्या थी। इनके सम्बन्ध में श्रीकर्णपूर ने श्रीगौरगणोद्देश दीपिका ग्रन्थ में लिखा है कि :- "अम्बिकायाः स्वसा यासीन्नाम्नी श्रील किलिम्बिका। कृष्णोच्छिष्ट प्रभुन्जाना सेयं नारायणी मता ।।" ब्रजलीला में कृष्ण की स्तन-दात्री अम्बिका की बहिन किलिम्बिका, जो हमेशा श्रीकृष्ण का प्रसाद ही ग्रहण करती थी, ही चैतन्य लीला में नारायणी देवी रूप से चैतन्य महाप्रभु की कृपा-पात्री बनीं। श्रीमन्महाप्रभु ने 'महाभाव प्रकाश' लीला के समय श्रीवास आंगन में जब नारायणी को कृष्ण नाम उच्चारण करने के लिए कहा (उस समय नारायणी 4 वर्ष की बच्ची थी) तो वह कृष्ण-कृष्ण उच्चारण करती हुई कृष्ण प्रेम में पागल होकर, नेत्रों से अश्रुधारा बहाती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी। श्रीवास पंडित जी की पत्नी मालिनी देवी ब्रजलीला की स्तनदात्री 'अम्बिका' थीं।

श्रीवृन्दावन दास जी का जन्म मामगाच्छी (किसी किसी के मत में कुमार हट्ट) ग्राम में होने पर भी वे मन्त्रेश्वर थाना के अन्तर्गत देनूड़ नामक ग्राम में रहते थे। इसीलिए इनका श्रीपाट (भजन स्थान) देनूड़ ग्राम में है। श्रीवृन्दावनदास ठाकुर बाल्यावस्था में अपनी माता के साथ मामगाच्छी गाँव में रहते थे। पितृवियोग होने से श्रीवृन्दावन दास ठाकुर जी की माता श्रीमती नारायणी देवी

श्रीवास पंडित जी के घर आ गयी। वहाँ पर उन्होंने महाप्रभु जी की विशेष कृपा लाभ की। इनके पूर्वज तो ''श्रीहट्ट'' स्थान के रहने वाले थे। वृन्दावन दास ठाकुर जी ने परम पतित पावन नित्यानन्द प्रभु की कृपा प्राप्त की थी इसलिए इन्हें श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु का मन्त्र शिष्य भी कहते हैं। "श्रीनित्यानन्द-कृपा पात्र वृन्दावन दास। चैतन्य लीलाय तेंहों हयेन आदिव्यास ।।"

श्रीवास जी की पत्नी मालिनी देवी के पिता जी का घर मामगाच्छी ग्राम में था। इस ग्राम में अभी भी ठाकुर वृन्दावनदास जी द्वारा सेवित श्रीगौरनित्यानन्द जी की श्रीमूर्ति की पूजा हो रही है। इन्होंने सन् 1457 शकाब्द में ''श्रीचैतन्य भागवत'' नामक एक अतुलनीय ग्रन्थ की रचना की। ''श्रीचैतन्य चरितामृत'' में श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने भी श्रीवृन्दावन दास ठाकुर के बारे में इस प्रकार लिखा है - "वृन्दावन दास-नारायणीर नन्दन।

'चैतन्य मंगल' येँहो करिल रचन ।।

भागवते कृष्णलीला वर्णिला वेदव्यास।

चैतन्य लीलाते व्यास-वृन्दावन दास ।।"

चै. च. आ. 11/54-55

"कृष्णलीला भागवते कहे वेदव्यास।

चैतन्य लीलार व्यास वृन्दावन दास ।।

वृन्दावन दास कैल चैतन्य मंगल।

यांहार श्रवणे नाशे सर्व अमंगल ।।
चैतन्य निताइर जाते जानिये महिमा ।
याते जानि कृष्ण भक्ति सिद्धान्तेर सीमा ।।
भागवते यत भक्ति सिद्धान्तेर सार ।
लिखियाछेन इहा जानि करिया उद्धार ।।
चैतन्य मंगल शुने यदि पाषंडी यवन ।
सेह महावैष्णव हय तत्क्षण ।।
मनुष्ये रचिते नारे एच्छे ग्रन्थ धन्य ।
वृन्दावन दास - मुखे वक्ता श्रीचैतन्य ।।
वृन्दावन दास पदे कोटि नमस्कार ।
एच्छे ग्रन्थ करि तेंहो तारिला संसार ।।
नारायणी - चैतन्येर उच्छिष्ट भोजन ।
ताँर गर्भे जन्मिला दास वृन्दावन ।।
ताँर कि अद्भुत चैतन्य चरित वर्णन ।
याहार श्रवणे शुद्ध कैल त्रिभुवन ।।"

चै.च.आ. 34 - 42

श्री नित्यानन्द प्रभु जी की लीला वर्णन करने में ही खो जाने के कारण श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी ने किसी - 2 लीला का सूत्र रूप में ही वर्णन किया है । विशेषतः श्रीमन् महाप्रभु जी की अन्तिम लीला असम्पूर्ण रह गयी । श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी

द्वारा जो सूत्र रूप में वर्णित है और श्रीमन महाप्रभु जी की असम्पूर्ण अंतिम लीला को ही श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत में विस्तार रूप से वर्णन किया है ।

श्रीचैतन्य लीलार व्यास - दास वृन्दावन ।
मधुर करिया लीला करिला रचन ।।
ग्रन्थ विस्तार भय छाड़िला ये ये स्थाने ।
सेइ सेइ स्थाने किछु करिब ब्याख्याने ।।

चै.च.आ. 13 / 48 - 49

श्रील वृन्दावनदास ठाकुर जी ने श्रीमन् महाप्रभु जी की आदि लीला, अध्ययन लीला, पौगण्ड लीला, श्रीमन् महाप्रभु जी की काज़ी दलन लीला, नीलाद्री गमन लीला, पुरी में जल क्रीडा इत्यादि लीलाओं का विस्तृत रूप से वर्णन किया है ।

पतितपावन श्रीवृन्दावन दास ठाकुर जी कृष्ण - विमुख दीन जीवों पर विशेष कृपा करने के लिए शासन वाक्यों का प्रयोग करते हुये कहते हैं - "एत परिहारेओ ये पापी निन्दा करे । तबे लाथि माँरों तार शिरेर ऊपरे ।।" अर्थात् श्रीवृन्दावन दास ठाकुर प्रभु कहते हैं कि पतितपावन श्रीनित्यानन्द प्रभु की इतनी महिमा सुनने पर भी जो पापी उनकी निन्दा करता है, मैं उसके सिर पर लात मारूँगा ।

कोई दुर्भाग्यशाली अभिमानी व्यक्ति इनके इस कृपा सूचक वाक्य का गलत अर्थ न समझ बैठे तथा श्रील वृन्दावन दास ठाकुर के चरणों में अपराध न कर बैठे, इसीलिए श्रीचैतन्य मठ, श्रीगौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता नित्यलीला प्रविष्ट ॐ श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी जी ने इस विषय में जो विचार दिये हैं वे हमारे लिए विशेष रूप से ग्रहणीय हैं । 'श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु की अपार महिमा सुनकर जो व्यक्ति ईर्ष्या से उनकी निन्दा करते हैं, ऐसे अपराधी व्यक्तियों के कल्याण के लिए पतितपावन वृन्दावन दास ठाकुर उनको सुधारने के लिए, उनके नित्य कल्याण के लिए उनके सिर पर लात भी मार सकते हैं । अर्थात् दयामय ठाकुर महाशय पाषण्डियों को भी हर प्रकार से (प्यार से, नहीं तो सज़ा द्वारा) भगवान की अति उज्जवल परम आनन्दमयी शुद्ध भक्ति का अधिकारी बनाने के लिए तैयार हैं । साक्षात व्यासावतार वैष्णव - आचार्य, वृन्दावन दास ठाकुर के अप्राकृत चरणों की ध ूलि का एक कण भी (लात मारने से) यदि किसी सौभाग्यवान निन्दक के सिर पर पड़ जाये तो उसका मंगल अर्थात 'अनर्थ - निवृति' निश्चित है । विष्णु - वैष्णवों की इस प्रकार की अहैतुकी कृपा अपना हित - अहित न जानने वालों की चिन्ता से बाहर है ।

इस प्रकार वृन्दावन दास ठाकुर एवं उनके अनुगत भक्तों द्वारा

शुद्ध गौर - कृष्ण की भक्ति का आचार - प्रचार, माया में फंसे जीवों के नित्य मंगल के लिए तथा स्वयं भगवत् प्रेम का आस्वादन करने के लिए है । इनका प्रयत्न एवं व्यवहार बाहर से देखने पर कड़वा प्रतीत होता है, सज़ा के समान लगता है, लेकिन गम्भीरता से देखने पर उनकी असीम कृपा की अनुभूति होगी ।

इस प्रकार 82 वर्ष लीला करने के पश्चात् सन् 1511 शकाब्द में वैशाखी कृष्णा दशमी तिथि को पतित पावन श्रीवृन्दावन दास ठाकुर जी ने अप्रकट लीला की ।

श्री लोचनदास ठाकुर

श्रील लोचनदास ठाकुर सन् 1527 ई0 में वर्द्धमान जिले के कटोचा महकुमा में गुस्करा रेलवे स्टेशन से पाँच कोस उत्तर की तरफ 'को' नामक गांव में वैद्यवंश में आविर्भूत हुये थे। किसी - किसी के मतानुसार पौषमास की शुक्लप्रतिपदा तिथि को इनका आविर्भाव हुआ था। इनके पिता का नाम

7. श्री लोचनदास ठाकुर जी के सम्बन्ध में एक अलौकिक घटना सुनी जाती है जो इस प्रकार है - बचपन में विवाह हो जाने के कारण श्रीलोचनदास जी की स्त्री अपने माता - पिता जी के पास रहती थी।

श्रीकमलाकर दास और माता जी का नाम था श्रीमती सदानन्दी। श्री लोचनदास ठाकुर के श्रीपाट के पास ही अजय नदी बहती है। माता-पिता की एकमात्र सन्तान होने के कारण ये उनके अत्यन्त स्नेह के पात्र थे। ये नानी जी के घर में रहकर अध्ययन किया करते थे। उस समय की सामाजिक प्रथा के अनुसार छोटी आयु में ही श्री लोचनदास ठाकुर का विवाह हो गया था। आमेदपुर के काकुट ग्राम में इनका ससुराल था। गृहस्थ आश्रम में होने पर भी आप विषयों से विरक्त थे। हमेशा गौरभक्तों के साथ कृष्ण कथा कहने-सुनने में ही समय बिताना आप अच्छा समझते थे। शैशव काल से ही आपके चरित्र में गौर महाप्रभु जी के प्रति अद्भुत अनुरक्ति

कन्या बड़ी हो जाने के कारण एवं श्रीलोचनदास जी के वैराग्य की बात सुनकर कन्या के भविष्य के विषय में सोच कन्या के माता-पिता बेचैन हो उठे। कन्या के माता पिता ने लोचनदास जी के गुरु जी के पास आकर सब निवेदन किया। श्रील नरहरि सरकार ठाकुर जी के आदेशानुसार श्री लोचनदास ससुराल जाने को मजबूर हो गये। लम्बे समय से ससुराल न जाने के कारण घर न पहचान पाने पर इन्होंने गाँव की एक वयस्क महिला को 'माँ' सम्बोधन कर घर के बारे में पूछा। बाद में ससुराल पहुँच कर मालूम हुआ कि जिसको उन्होंने 'माँ' सम्बोधन किया था, वही उनकी स्त्री है। तभी से श्री लोचनदास ठाकुर जी ने अपनी स्त्री को 'स्त्री' रूप से न देख कर 'जननी' रूप से मानते हुए वैराग्य के साथ जीवन के अन्तिम दिनों को श्री गुरु और गौरांग जी के भजन परायण रहकर गुज़ारा।

(प्रेम) देखी जाती थी।'

श्रीखण्ड के प्रसिद्ध गौरपार्षद श्रील नरहरि सरकार ठाकुर जी ने श्री लोचनदास जी के प्रति स्नेहाविष्ट होकर उन्हें दीक्षा प्रदान कर उन्हें अपने शिष्य के रूप में ग्रहण किया था। श्रीलोचनदास ठाकुर जी भी श्रीखण्ड में गुरुदेव जी के पादपद्मों में अवस्थान करते हुए परमोत्साह के साथ गुरुदेव जी की सेवा करने लगे। गुरुदेव जी ने उन्हें कीर्त्तन के विषय में शिक्षा दी और श्री श्रीगौरांग महाप्रभु जी का पावन जीवन चरित्र लिखने के लिए आदेश दिया। श्रील गुरुदेव जी की आज्ञा को शिरोधार्य करके इन्होंने 'श्रीचैतन्य मंगल' नामक ग्रन्थ लिखा। श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरित्र को श्रवण करने से सर्वोत्तम मंगल की प्राप्ति होती है, इसीलिये ग्रन्थ का नामकरण हुआ 'श्रीचैतन्य मंगल'। श्री वृन्दावनदास ठाकुर जी द्वारा रचित ग्रन्थ का नाम भी पहले 'श्रीचैतन्य मंगल' ही था जो कि बाद में परिवर्तित होकर 'श्रीचैतन्य भागवत' हुआ। श्री लोचन दास जी की वन्दना में इस का संकेत मिलता है। "वृन्दावनदास वन्दिवे एकचित्ते। जगत मोहित याँर भागवतगीते।। (चैतन्यमंगल सूत्र खण्ड)

कोई-कोई ऐसा भी सोचते हैं कि श्री लोचनदास ठाकुर और श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने वृन्दावन दास रचित ग्रन्थ का नामकरण 'श्रीचैतन्य भागवत' किया था। श्रीचैतन्य मंगल ग्रन्थ के प्रारम्भ में सूत्र खण्ड में श्री नरहरि

सरकार ठाकुर से कृपा प्रार्थना इस प्रकार की गयी है –

"ठाकुर श्री नरहरि, दास प्राण अधिकारी
याँर पदप्रति आसे आश
अधमेह साध करे, गौरागुण गाहिवारे
से भरसा ए लोचन दास।।"

"ताहाँ बिनु नाहि मोर तिन लोक बन्धु ।
नरहरि दाँस वन्दों गौर-गुण-सिन्धु ।।"

"आमार ठाकुर प्रभु नरहरि दास।
प्रणति-विनति करों पुर' मोर आश।।"

पूर्व बंगाल के पाँचाली छन्द के अनुकरण में श्रील लोचन दास ठाकुर जी ने 'श्रीचैतन्यमंगल' लिखा है। नवीन बंगला शब्दकोश में श्री लोचनदास ठाकुर जी का बंगला तथ्य, भाषा के साहित्य की रचना एवं मात्रावृत्त छन्द के प्रवर्त्तक के रूप में उल्लेख किया गया है। उनकी भाषा में लालित्य है। 'श्रीचैतन्य मंगल' ग्रन्थ सन् 1537 ई0 में लिखा गया था। ऐसा कहा जाता है कि श्री लोचनदास ठाकुर जी ने अपने घर में फूल के वृक्ष के नीचे एक पत्थर के ऊपर बैठकर 'चैतन्यमंगल' नामक ग्रन्थ लिखा था। श्री मुरारी गुप्त जी द्वारा रचित 'श्रीचैतन्य चरित' की सहायता से श्रीलोचनदास ठाकुर जी ने 'चैतन्यमंगल' ग्रन्थ की रचना की थी। श्रीलोचनदास ठाकुर जी द्वारा रचित अन्य-2 ग्रन्थों में से उल्लेखनीय हैं – 'प्रार्थना', 'दुर्लभसार', 'पदावली'

(धामाली), 'जगन्नाथ-बल्लभ नाटक' तथा 'रासपन्चाध्यायी का पद्यानुवाद'। ऐसा भी सुना जाता है कि गुस्करा स्टेशन के पास काँदड़ा ग्राम में श्री प्राणकृष्ण चक्रवर्ती के घर श्री लोचन दास ठाकुर जी का स्वहस्तलिखित 'चैतन्यमंगल' ग्रन्थ पड़ा है।

श्रील लोचन दास ठाकुर जी ने 'चैतन्य मंगल' में अपने गुरुदेव श्री नरहरि सरकार ठाकुर का श्रीगौरांग महाप्रभु जी के प्रियतम के रूप में वर्णन किया है। इनके मन में ऐसा विचार आया कि इस ग्रन्थ में श्रीनित्यानन्द जी की महिमा पूरी तरह से वर्णन नहीं हो पायी। इस आशंका से कि उनका श्रीनित्यानन्द जी के चरणों में अपराध हो गया है, अपराध के निवारण के लिये उन्होंने परवर्तीकाल में श्रीनित्यानन्द महिमा सूचक कुछएक गीतियाँ भी लिखीं। वह गीतियां भक्तों द्वारा विशेष रूप से समादृत हुई हैं।

(1)

"निताइ गुणमणि आमार निताई गुणमणि।
आनिया प्रेमेर वन्या भासाल अवनी।।
प्रेमेर वन्या लइया निताइ आइला गौड़ देशे।
डुबिल भकतगण दीन-हीन भासे।।
दीनहीन पतित पामर नाहि बाछे।
ब्रह्मार दुर्लभ प्रेम सबाकारे याचे।।
आबद्ध करुणा-सिन्धु निताइ काटिया मोहान।

घरे-घरे बुले प्रेम अमियार वान।।
लोचन बले मोर निताइ येबा ना भजिल।
जानिया शुनिया सेइ आत्मघाती हैल।।"

निताई गुणमणि मेरे हैं, निताई गुणमणि मेरे हैं। इन्होंने कृष्ण-प्रेम की बाढ़ लाकर सारी पृथ्वी को उसमें डुबो दिया।

कृष्ण प्रेम की बाढ़ लेकर नित्यानन्द प्रभु गौड़ देश में आये, जिस आनन्द में सारे भक्त डूब गये तथा दीन-हीन जो थे वे भी उस प्रेम की बाढ़ में बह चले।

जो 'कृष्ण-प्रेम' ब्रह्मा जी के लिए भी दुर्लभ है वह 'प्रेम' सभी को बांट दिया। इन्होंने दीन हीन या पतित को भी उससे वंचित नहीं रखा।

करुणा सागर नित्यानन्द प्रभु ने उस प्रेम के बाँध को तोड़ दिया जिससे वह कृष्ण प्रेमामृत घर-घर में घुस गया।

लोचन दास जी कहते हैं कि इस प्रकार के दयालु कृपालु जो मेरे नित्यानन्द प्रभु हैं उनका जिसने भजन नहीं किया तो समझना होगा कि जानबूझ कर वह आत्म हत्यारा बना।

(2)

"अक्रोध परमानन्द नित्यानन्दराय।
अभिमान शून्य निताई नगरे बेड़ाय।।
अधम पतित जीवेर द्वारे-द्वारे गिया।

हरिनाम महामन्त्र देन बिलाइया।।
यारे देखे तारे कहे दन्ते तृण करि'।
आमारे किनिया लह भज गौरहरि।।
एत बलि नित्यानन्द भूमे गड़ि याय।
सोनार पर्वत येन धूलाते लोटाय।।
हेन अवतारे यार रति ना जन्मिल।
लोचन बले सेइ पापी एल आर गेल।।"

क्रोध रहित एवं परमानन्द पूर्ण नित्यानन्द प्रभु अभिमान शून्य होकर नगर में भ्रमण कर रहे हैं।

वे पतित जीवों के द्वार-द्वार पर जाकर हरिनाम महामंत्र बाँटते फिर रहे हैं।

वे जिसको भी देखते हैं उससे दाँतों में तिनका लेकर अर्थात् अत्यन्त दीनता से कहते हैं कि आप गौरहरि का भजन करो और मुझे खरीद लो।

इतना कहकर नित्यानन्द प्रभु प्रेमानन्द में विभोर होकर ज़मीन पर लोट-पोट होने लगते हैं। तब ऐसा लगता है कि मानो सोने का पर्वत जमीन पर लोट-पोट हो रहा हो।

इस प्रकार के अवतार में जिसकी प्रीति उदित नहीं हुई, लोचन दास ठाकुर जी कहते हैं कि उसकी जिंदगी बेकार है। वह पापी तो समझो आया और गया।

(3)

श्रीगौर नित्यानन्द जी की महिमा सूचक गीति :

परम करुण, पँहु दुइजन, निताई गौरचन्द्र।
सब अवतार, सार-शिरोमणि, केवल आनन्द-कन्द।।
भज-भज भाइ, चैतन्य निताइ, सुदृढ़ विश्वास करि।
विषय छाड़िया से रसे मजिया, मुखे बल हरि-हरि।।
देख ओरे भाइ, त्रिभुवने नाइ, एमन दयाल दाता।
पशु पाखी झुरे, पाषाण विदरे, शुनि' यार गुणगाथा।।
संसारे मजिया, रहिलि पड़िया, से पदे नहिल आश।
आपन करम, भुञ्जाये शमन, कहये लोचनदास।।

श्रीनित्यानन्द प्रभु व श्री गौरचन्द्र जी दोनों ही परम करुणामय हैं। वे सभी अवतारों के मूल शिरोमणि व केवल आनन्दकन्द हैं।

हे भाई! तुम अवश्य ही सुदृढ़ विश्वास के साथ श्रीचैतन्य महाप्रभु व श्रीनित्यानन्द प्रभु का भजन करो। विषय भोगों को छोड़कर उस अप्राकृत रस में निमग्न होकर मुख से 'हरि-हरि' उच्चारण करो।

देखो भाई! इस सारे त्रिभुवन में इस प्रकार का दयालु व इस प्रकार का दाता नहीं है। इनका गुणगान सुनकर तो पशु-पक्षी भी प्रेम विहल हो उठते हैं तथा पत्थर भी पिघल जाते हैं।

तुम तो संसार में प्रमत्त हुये पड़े हो। तुम्हें तो ज़रा सी भी उन पादपद्मों की अभिलाषा नहीं है। लोचन दास जी कहते हैं कि तुम्हारे सभी कर्मों को काल तुमसे भुगवायेगा।

श्री लोचनदास ठाकुर जी ने श्रील नरहरि सरकार ठाकुर जी के तिरोभाव उत्सव में भक्तों को माला एवं चन्दन प्रदान किया था।

श्री नरहरि चक्रवर्ती रचित 'भक्ति रत्नाकर'[8] ग्रन्थ में भी श्री लोचनदास ठाकुर जी के नाम का उल्लेख हुआ है। 'श्री यदुनन्दन, श्री लोचन दुइजन। लइलेन पुष्प माल्य सुगन्धि चन्दन।।'

एक श्रेणी के अपसम्प्रदाय इनके बारे में इस प्रकार भी कहते हैं कि श्री लोचनदास ठाकुर जी के 'श्री चैतन्यमंगल' में 'गौर-नागरी वाद' की बातें भी हैं किन्तु ये ठीक नहीं है। 'श्री चैतन्य भागवत' रचयिता श्री वृन्दावन दास ठाकुर जी ने गौर-नागरी वाद की निन्दा की है। 'गौरांग नागर हेन स्तव नाहि वले।' - चैतन्य भागवत

श्री गौरसुन्दर - 'राधाभावद्युतिसुवलित कृष्ण' हैं। इसलिये

8. 'भक्तिरत्नाकर' ग्रन्थ के रचयिता श्रीनरहरि चक्रवर्ती हैं। इनका आविर्भाव स्थान मुर्शिदाबाद ज़िले के रिंगाग्राम में है। ये घनश्याम दास के नाम से प्रसिद्ध थे। खण्ड के निवासी श्री नरहरि सरकार ठाकुर अलग व्यक्ति हैं।

उन्होंने श्रीकृष्ण सेवा के लिये आश्रय जातीय श्रीमति राधिकादि गोपियों का जो हृदय का भाव है उसका परित्याग कर कभी भी स्वयं श्रीकृष्ण की तरह विषयजातीय चेष्टायें करके अर्थात अपने आपको भोक्ता का अभिमान कर परस्त्री के दर्शनादि द्वारा 'लम्पटनागर' की वृत्ति का परिचय नहीं दिया। - श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी

सन् 1589 ई0 को श्रील लोचनदास ठाकुर जी का तिरोधान हुआ। ठाकुर के श्रीपाट में ईंटों से बनी समाधि है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी

श्री चैतन्य चरितामृत के रचयिता श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी के आविर्भाव काल, उनके पिता माता का नाम एवं वे किस कुल में आये हैं - इन सभी के सम्बन्ध में ठीक से निर्णय नहीं किया जा सका है । श्री श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत की भूमिका में इस प्रकार लिखा है - 'श्रीचैतन्य चरितामृत के रचयिता पिता-माता के द्वारा दिये गये किस नाम से परिचित थे, वह हम नहीं जानते हैं और इन विषयों में जिन

सब नवोद्भावित नामों [9] एवं अनुष्ठानों का उल्लेख पाया जाता है वे वास्तविक हैं कि नहीं, इस विषय में भी कोई दृढ़ता नहीं है। पारमार्थिक जीवन में वे 'कृष्णदास' के नाम से जाने जाते थे। इस ग्रन्थ की आदि लीला में जो उन्होंने अपना परिचय दिया है उसके द्वारा हम जान सकते हैं कि उन्होंने झामटपुर ग्राम में जन्म ग्रहण किया था। झामटपुर गाँव नैहाटी नामक गाँव के पास ही है। उनके पूर्वाश्रम के स्मृतिचिह्न स्वरूप एक मात्र श्रीगौर-नित्यानन्द जी की विग्रह सेवा अभी भी विराजमान है। उनके पूर्वाश्रम के रिश्तेदारों का कोई भी वंशज अभी वर्तमान में वहाँ पर श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी का किसी प्रकार का भी परिचय नहीं देता है। स्वप्न में श्रीनित्यानन्द प्रभु जी की आज्ञा प्राप्त कर उन्होंने झामटपुर का परित्याग कर दिया था। आपने अपने जीवन के अन्तिम दिन तक श्रीवृन्दावन धाम में वास किया था। श्रीवृन्दावन में राधा-दामोदर मन्दिर में अभी भी श्रीकृष्णदास जी की समाधि देखने को मिलती है। नैहाटी - निकटे 'झामटपुर' नामे ग्राम। ताँहा स्वप्ने देखा दिला नित्यानन्द-राम ॥

- चै.च.आ. 5/181

---

9. नवोद्भावित नाम :- जैसे कि श्री आशुतोष की नवीन बंगला शब्दकोष में एवं श्रीहरिदास जी द्वारा संकलित श्रीगौड़ीय वैष्णव शब्दकोष में कृष्णदास जी के पिता जी का नाम 'भगीरथ' और माताजी का नाम सुनन्दा बताया है।

श्रील प्रभुपाद जी ने कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी के समय के निर्णय के सम्बन्ध में कुछ घटनाओं का प्रमाण रूप से उल्लेख करते हुए इस प्रकार लिखा है कि कृष्णदास जी के वर्ण के सम्बन्ध में विभिन्न मतों के लोगों ने अपने अपने विचारों से इन्हें ऊँचे तीन वर्णो (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) में से किसी एक में प्रकट बताया है, क्योंकि उस समय के साहित्य और अलंकार इत्यादि कलापुष्ट लोगों के अनुसार काव्य शास्त्र में निपुण व्यक्ति अपनी पारदर्शिता के फलस्वरूप ही कविराज के नाम से ख्याति प्राप्त करते थे।

चिकित्साशास्त्र कुशल सम्प्रदाय में अनेक स्थानों पर कविराज नाम का उल्लेख होने के कारण, कोई-2 कृष्ण दास जी को वैद्य कहते हैं।

दर्शन शास्त्र में अगाध पाण्डित्य और श्रुति, स्मृति व न्याय आदि तीनों प्रस्थानों में उनका असामान्य अधिकार और प्रतिभा को देखते हुये इन्हें ब्राह्मण कुल में उत्पन्न मान लेना, आपत्तिजनक नहीं होगा।

श्रील प्रभुपाद जी के उपरोक्त विचारों से ऐसा प्रतीत होता है कि कविराज गोस्वामी ब्राह्मण, कायस्थ अथवा वैद्य तीनों में से किसी एक कुल में आविर्भूत हुये होंगे। वैसे तो वैष्णव किसी भी कुल में उत्पन्न हो सकते हैं, फिर भी वे सर्वोत्तम हैं - ये सभी शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित है।

"ये ते कुल वैष्णवेर जन्म केने नय।
तथापिओ सर्वोत्तम सर्वशास्त्रे कय
ये पापिष्ठ वैष्णवेर जाति बुद्धि करे।
जन्म जन्म अधम-योनिते डुबि मरे।।"

चै.भा.म. 10/100,102

अर्थात : वैष्णव का जन्म जिस किसी कुल मे भी क्यों न हो वह सर्वोत्तम है - ऐसा शास्त्र कहते हैं। इसलिए जो पापी वैष्णवों की जाति देखता है वह बार-बार नीच योनियों में जन्मता मरता रहता है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी के आश्रम के विषय में भी सब एक मत नहीं हैं। कोई कहता है कि वे ब्रह्मचारी आश्रम से ही चले गये। कारण, अगर वे गृहस्थ आश्रम में रहे होते तो सांसारिक बन्धन को तोड़ कर जाने का प्रसंग कविराज गोस्वामी जी की लेखनी में कहीं तो मिलता। इस प्रसंग में श्री प्रभुपाद जी ने लिखा है - 'श्री वृन्दावन जाने से पहले वे घर की बातों के प्रति उदासीन एवं हरिकथा में रत रहते थे। वे तृतीय या चतुर्थ आश्रमोचित् हरि भजन परायण जीवन थे। आश्रमातीत निष्किंचन परमहंस अवस्था में ही उन्होंने श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ की रचना की थी। श्रीकृष्ण दास कविराज अपने पारमार्थिक आत्मीय समाज में कविराज

गोस्वामी[10] जी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

श्रीचैतन्य चरितामृत में श्रीलकृष्ण दास कविराज गोस्वामी जी के वचनों से पता लगता है कि उनका एक और भाई भी था। भाई का नाम वहाँ नहीं दिया गया। गौड़ीय वैष्णव शब्दकोष में उल्लेख है कि उनके भाई का नाम श्रीश्यामदास कविराज था। कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत की आदि लीला के 5वें परिच्छेद में नित्यानन्द प्रभु जी की महिमा वर्णन करते हुये अपने जीवन की एक घटना का उल्लेख किया है। श्रीनित्यानन्द पार्षद श्री मीनकेतन रामदास जी का श्रीपाट भी झामटपुर में ही था। एक बार मीनकेतन रामदास जी आमन्त्रित होने के कारण सारी रात संकीर्तन में योगदान देने के लिये कविराज गोस्वामी जी के घर पर आये थे। नित्यानन्द जी का नाम लेते समय महाभागवत मीनकेतन रामदास जी की महाप्रेम में उन्मत्त अवस्था को देख कर एवं उस प्रमोन्मत्त अवस्था में उनको किसी के वंशी व किसी के थप्पड़ इत्यादि मारते देखकर संकीर्तन में योगदान करने आये सभी वैष्णव चमत्कृत हो उठे। सभी ने मीनकेतन रामदास जी के चरणों की वन्दना की। किन्तु कविराज गोस्वामी जी के घर पर श्रीविग्रह की पूजा के लिये नियोजित पुजारी, श्री

10. श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में कविराज गोस्वामी जी के पूर्वलीला के परिचय में 'रत्न रेखा' (मतभेद में कस्तूरी मन्जरी) के रूप में उल्लेख है।

गुणार्णव मिश्र ने मीनकेतन रामदास जी के प्रति सब जैसा समादरसूचक व्यवहार नहीं किया। इससे गुणार्णव मिश्र का नित्यानन्द प्रभु जी के प्रति श्रद्धा का अभाव देखा गया। इसलिये मीनकेतन रामदास जी ने क्रोधित होकर उसका तिरस्कार करते हुये कहा 'एइ त' द्वितीय सूत रोमहर्षण। बलदेव देखि ये ना कैल प्रत्युद्गम।। गुणार्णव मिश्र को मीनकेतन रामदास जी का शासन करना बहुत अच्छा लगा और वे सन्तुष्ट हुये। उत्सव के पश्चात पुजारी विप्र के चले जाने पर इसी विषय को लेकर कविराज गोस्वामी के भाई का मीनकेतन रामदास जी से वाद-विवाद हो गया। कविराज गोस्वामी जी के भाई की जैसी सुदृढ़ श्रद्धा महाप्रभु जी में थी, वैसी नित्यानन्द प्रभु जी के प्रति नहीं थी। इसलिये मीनकेतन रामदास जी मर्माहत हुए और क्रोधवश वंशी तोड़ कर वहां से चले गये जिससे कविराज गोस्वामी जी के भाई का सर्वनाश (भक्तिहीनता) और अध:पतन हो गया। कविराज गोस्वामी जी ने नित्यानन्द जी के पार्षद रामदास जी का पक्ष लेकर अपने भाई की बहुत तिरस्कारपूर्ण भर्त्सना की थी।

"दुइ भाई एकद तनु - समान-प्रकाश ।
नित्यानन्द ना मान, तोमार हवे सर्वनाश ।।
एकेते विश्वास, अन्ये ना कर सम्मान ।
"अर्द्धकुक्कुटी-न्याय" तोमार प्रमाण ।।
किंवा दोंहा ना मानिञा हउ त' पाषण्ड ।

एके मानि आरे ना मानि, – एइमत भण्ड ॥"

चै. च. आ. 5/175-77

अर्थात: दोनों भाई अभिन्न स्वरूप हैं, दोनों में ही तुल्य शक्तिका विकास है। श्रीनित्यानन्द प्रभु को तू नहीं मानता है, तेरा सर्वनाश हो जायेगा (क्योंकि श्रीनित्यानन्द के चरणों में तुम्हारा यह घोर अपराध हुआ है)

कविराज ने फिर कहा – तुम एक में तो विश्वास करते हो एवं दूसरे को नहीं मानते हो, इससे तुम्हारा अर्द्ध-कुक्कुटी-न्याय प्रमाणित होता है। यदि तुम दोनों को नहीं मानो – तब तुम पाखण्डी कहे जांओगे जबकि एक को मानना और एक को न मानना – तो भण्डों का मत है।

भक्त के अधीन भगवान अपने भक्त के द्वारा दिखाये गये थोड़े से अनुराग को भी बहुत अधिक समझते हैं तथा भक्त का पक्ष लेने वाले व्यक्ति को जो वह चाहता है उसे दे देते हैं।

श्रील कविराज गोस्वामी जी ने लिखा है कि उन्होंने नित्यानन्द पार्षद मीनकेतन रामदास जी का पक्ष लेकर अपने भाई को जो डाँटा था; उसी सामान्य गुण के आधार पर ही श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिये एवं वृन्दावन जाने के लिये आदेश दिया।

"आरे आरे कृष्णदास, ना करिह त भय ।

वृन्दावने याह, ताहा सर्व लभ्य हय ॥
एत बलि प्रेरिला मोरे हातसान दिया ।
अन्तर्धान कैला प्रभु निज-गण लञा ॥"

चै. च. आ. 5/195-96

अर्थात: कृष्णदास! तू कुछ भय मत कर, तू श्रीवृन्दावन चला जा, वहां तेरी सर्व अभिलाषाएं पूर्ण होंगी। इतना कहकर प्रभु ने मुझे हाथ का इशारा देकर श्रीवृन्दावन जाने की प्रेरणा की एवं अपने पार्षदों को लेकर वे अन्तर्धान हो गये।

दूसरी तरफ देखा जाये तो भक्त का अपमान करने वाला बाहर के गुणों से गुणी होने पर भी भगवान की कृपा से वन्चित रह जाता है। जिमींदार रामचन्द्र खान इसका उदाहरण है। हरिदास ठाकुर के चरणों में अपराध करने के कारण नित्यानन्द प्रभु जी उस पर क्रोधित और अप्रसन्न हो गये थे, जिससे उसका सर्वनाश तो हुआ ही, यहां तक कि उसका स्थान तक उजड़ गया। इसलिये अत्यन्त मूढ़ विवेकहीन व्यक्ति ही भगवत् प्रिय साधु के प्रति अन्यायपूर्ण आचरण करने का दु:साहस करते हैं। कविराज गोस्वामी जी ने वैष्णवोचित अत्यन्त दीनतापूर्ण वचनों के द्वारा श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जी की महिमा की मुक्तकण्ठ से जगत में घोषणा की है।

"जगाइ माधाइ हैते मुञि से पापिष्ठ।
पुरीषेर कीट हैते मुञि से लघिष्ठ।
मोर नाम शुने येइ, तार पुण्य क्षय।

मोर नाम लये येइ, तार पाप हय।
एमन निर्घृण मोरे केवा कृपा करे।
एक नित्यानन्द बिनु जगत-भितरे।
प्रेमे मत नित्यानन्द कृपा - अवतार।
उत्तम, अधम, किछु ना करे विचार।
ये आगे पड़ये तारे करये निस्तार।
अतएव निस्तारिला मो - हेन दुराचार।।"

चै0च0आ0 205-209

अर्थात: जगाई-मधाई से भी मैं अधिक पापी हूं। विष्ठा के कीड़े से भी अतिनीच हूँ। जो मेरा नाम सुन लेता है उसके पुण्य नाश हो जाते हैं। जो मेरे नाम का उच्चारण करता है, उसे पाप लगता है। ऐसे मुझ कुकर्मी पर केवल श्री नित्यानन्द प्रभु जी को छोड़ कर जगत में और कौन कृपा करेगा। श्री नित्यानन्द प्रभु जी कृपा के अवतार हैं इसलिये वे उत्तम - अधम अर्थात पात्र - अपात्र का विचार नहीं करते अपितु जो भी सामने आता है उसे कृष्ण प्रेम देकर भव सिन्धु से पार कर देते हैं अर्थात उन्होंने मुझ जैसे दुराचारी का भी उद्धार किया।

विष्णु व वैष्णवों की कृपा के बिना उनकी महिमा नहीं गायी जा सकती। इस बात को बताने के लिये ही कविराज गोस्वामी जी ने प्रति परिच्छेद के आरम्भ में गौरनित्यानन्द, अद्वैताचार्य व गौरभक्तों का जयगान किया है और प्रति

परिच्छेद के अन्त में श्रीरूप रघुनाथ जी के पादपद्मों की सेवा प्राप्ति की आकांक्षा की है। कविराज गोस्वामी जी ने वैष्णवों की अमर्यादा एवं उनके प्रति किसी प्रकार का अपराध न हो, इसकी ओर विशेष सतर्कता प्रयोग करने का आदर्श दिखाया है। "सहजे विचित्र मधुर चैतन्य-विहार। वृन्दावनदास-मुखे अमृतेर धार।। अतएव ताहा वर्णिले हय पुनरुक्ति। दम्भ करि वर्णि यदि, नाहि तैछे शक्ति।। चैतन्यमंगले जाहा करिला वर्णन। सूत्ररूपे सेइ लीला करिये सूचन। तांर सूत्रे आछे, तेंह ना कैल वर्णन। यथा कथञ्चित् करि' से लीला-कथन।। अतएव तांर पाये करि नमस्कार। तांर पाय अपराध न हउक आमार।।" चै.च.म. 4/5-9 अर्थात: श्रीचैतन्यदेव की लीलाएं स्वाभाविक ही मधुर हैं एवं विचित्र हैं। फिर भी उनका श्रीवृन्दावनदासजी के मुख से वर्णन होना मानो अमृत तुल्य रसदायक हुआ है। अत: उनको फिर वर्णन करना पुनरुक्ति कही जायेगी। यदि मैं अहंकारपूर्वक उनका वर्णन करूं (कि मैं उनसे अच्छा वर्णन करूंगा) तो ऐसी मेरी शक्ति नहीं है। श्री वृन्दावनदास ने श्रीचैतन्यभागवत में जिन-जिन लीलाओं का वर्णन किया है, मैं यहां उन्हें अति संक्षेप से सूत्ररूप में वर्णन करूंगा। और जो लीलाएं उन्होंने वर्णन नहीं की हैं या सूत्ररूप से कही हैं, उनको मैं यत्किञ्चित विस्तार से वर्णन करूंगा। अत: मैं उनके चरणों में नमस्कार करता हूं जिससे उनके प्रति मेरा अपराध न हो।

"कृष्ण लीला भागवते कहे वेदव्यास।

चैतन्यलीलार व्यास - वृन्दावनदास ।।"
"वृन्दावन पदे कोटि - कोटि नमस्कार ।
ऐछे ग्रन्थ करि तेंह तारिला संसार।।"

चै. च. आ. 8/35 - 40

जैसे श्रीवेदव्यास ने श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्णलीला का वर्णन किया है, उसी तरह श्रीवृन्दावनदास ने श्रीचैतन्यमंगल में श्रीचैतन्यलीला का वर्णन किया है - अतः उन्हें श्रीचैतन्यलीला का व्यासदेव कहा जाता है। श्रीवृन्दावनदास के चरण - कमलों में हम कोटि कोटि नमस्कार करते हैं, जिन्होंने ऐसे ग्रन्थ की रचना कर संसार के जीवों का उद्धार किया है।

श्रील वृन्दावनदास ठाकुर जी ने श्रीमन् महाप्रभु जी की जिन लीलाओं का विस्तृत रूप से वर्णन किया है, उन्हें श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत में सूत्र रूप से लिखा हैं एवं जिन लीलाओं को श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी ने संक्षेप में सूत्रों में लिखा है वे श्री चैतन्य चरितामृत में विस्तृत रूप से वर्णन की गयी हैं।

"चैतन्यलीलार व्यास दास वृन्दावन । मधुर करिया लीला करिला रचन।। ग्रन्थ - विस्तार - भये छाड़िला ये - ये स्थान। सेइ सेइ स्थाने किछु करिव व्याख्यान।।" चै. च. आ. 13/48 - 49 अर्थात : श्रीवृन्दावनदास श्रीचैतन्यलीला के व्यासदेव हैं, जिन्होंने अति मधुर रूप से लीलाओं का वर्णन किया है। ग्रन्थ के विस्तार - भय से उन्होंने जो - जो लीलाएं

छोड़ दी हैं, उन लीलाओं को कुछ विस्तार से वर्णन करूंगा।

श्री चैतन्य गौड़ीय मठ से बंगला भाषा में प्रकाशित 'श्री चैतन्य चरितामृत' ग्रन्थ का सम्पादकीय निवेदन करते समय श्री चैतन्यवाणी पत्रिका के सम्पादक संघपति नित्यलीला प्रविष्ट ॐ पूज्यपाद श्रीमद्भक्ति प्रमोदपुरी गोस्वामी महाराज जी ने इस प्रकार लिखा है कि श्रीलवृन्दावन दास ठाकुर जी ने अपने ग्रन्थ 'श्री चैतन्य भागवत' के आरम्भ में श्री चैतन्य महाप्रभु जी की तमाम लीलाएं सूत्र रूप में तथा बाद में विस्तृत रूप से वर्णन कीं। विस्तार करते - करते यह ग्रन्थ कहीं बहुत बड़ा ही न हो जाये, इस भय से उन्होंने किसी - किसी लीला को सिर्फ सूत्र रूप में ही रहने दिया, उसका विस्तृत वर्णन नहीं किया। परन्तु श्रीनित्यानन्द जी की लीलाओं का वर्णन करते समय आवेश हो जाने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु जी की लीला असम्पूर्ण रह गयी थी, इसीलिये महाप्रभु जी की उस अन्तिम लीला का श्रवण करने के लिये अत्यधिक व्याकुल वृन्दावनवासी गौरगत प्राण भक्तों ने श्रील कविराज गोस्वामी जी से उन तमाम लीलाओं का वर्णन करने के लिये विशेष रूप से अनुरोध किया। शुद्ध भक्तों के अनुरोध करने पर श्रीलकविराज गोस्वामी जी ने भक्तों की इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए स्वयं भगवान श्रीमदनगोपाल जी से आज्ञा ली। प्रभु के चरणों में कविराज गोस्वामी जी द्वारा आज्ञा मांगते ही सब वैष्णवों ने देखा कि सभी के सामने भगवान श्रीमदन

गोपाल जी के गले से माला गिर पड़ी। भगवान के गले से माला गिरते ही सभी वैष्णव एक साथ हरि- ध्वनि कर उठे तथा मंदिर के श्रीगोसांई दास पुजारी जी ने वह माला लाकर श्रील कविराज गोस्वामी पाद जी के गले में पहना दी। भगवान की उस आज्ञा माला को पहन कर कविराज गोस्वामी जी ने परमानन्द से ग्रन्थ लिखना आरम्भ कर दिया। इसीलिये उन्होंने दीनता के साथ लिखा है। "एइ ग्रन्थ लेखाय मोरे मदनमोहन। आमार लिखिन येन शुकेर पठन।। सेई लिखि मदनगोपाल ये लेखाय। काष्ठेर पुतली येन कुहके नाचाय।।" चै. च. आ 8/78-79 अर्थात: यह ग्रन्थ मुझे मदनगोपाल जी ने लिखवाया है। मेरा लिखना तो तोते के पढ़ने की तरह है। श्री मदनमोहन जी ने जो लिखाया, वही मैंने लिखा, जैसे कठपुतली कुहक की नचाई नाचती है।

श्रील कविराज गोस्वामी जी ने श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी जी की निजी डायरी जो कि रघुनाथ दास गोस्वामी जी ने पूरी रटी हुई थी, का अवलम्बन करके ही श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ लिखा । श्रीस्वरूप गोस्वामी जी ने महाप्रभु जी की अन्तिम लीला पद्यों में सूत्र रूप से लिख कर श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी जी को कण्ठस्थ करवा दी थी। श्रीस्वरूप दामोदर जी द्वारा एकत्रित उन अनमोल रत्नों का श्रील कविराज गोस्वामी जी ने जगत में प्रचार किया। यही कारण है कि स्वरूप गोस्वामी का कड़चा अर्थात व्यक्तिगत डायरी अलग पुस्तक रूप से लिखी नहीं गयी। यह श्रीचैतन्य चरितामृत ही

स्वरूप जी की डायरी का निष्कर्ष है। - श्रीठाकुर भक्ति विनोद

"स्वरूप गोसाञि कड़चाय ये लीला लिखिल।
रघुनाथदास मुखे ये सब शुनिल।।
सेइ सब लीला कहि, संक्षेप करिया।
चैतन्यकृपा ते लिखि क्षुद्र जीव हइया।।"

चै. च. अ. 3/267-68

अर्थात: श्रीस्वरूप गोस्वामी जी ने अपने कड़चा में जो लिखा और श्रीरघुनाथ दास जी के मुखारविन्द से जो सब सुना मैं क्षुद्र जीव श्रीचैतन्य जी की कृपा से उन सब लीलाओं को संक्षेप में कह रहा हूं। श्रीमन्महाप्रभु जी की अप्राकृत नाम-रूप-गुण-लीला महिमा कविराज गोस्वामी जी के हृदय में प्रकटित होकर श्रीचैतन्य चरितामृत के रूप में प्रकाशित हुयी है। इसका प्रमाण श्री चैतन्य चरितामृत ग्रन्थ के विभिन्न स्थानों पर ग्रन्थ के रचयिता की लेखनी से जाना जाता है। जैसे - "आमि वृद्ध जरातुर, लिखित कांपये कर, मने किछु स्मरण न हय। ना देखिये नयने, ना शुनिये श्रवणे, तबु लिखि, ए बड़ विस्मय।।" चै०च०म० 2/89-90 अर्थात: मैं वृद्ध हूं और जरावस्था से पीड़ित हूं। लिखते हुए मेरे हाथ कांपते हैं, कोई बात याद नहीं रहती, नेत्रों से बहुत कम दीखता है, कानों से पूरा सुन भी नहीं सकता हूं, परन्तु फिर भी मैं श्रीचैतन्य-चरित लिख रहा हूं - यह बड़ा आश्चर्य है।

एक समय श्री चैतन्य चरितामृत की सर्वोत्तमता का

वर्णन करते समय श्रीलभक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने अपनी उपदेशावली में इस प्रकार कहा था – यदि कभी पृथ्वी की ऐसी अवस्था हो जाय कि सब कुछ ध्वंस हो जाय, किन्तु उस समय श्रीमद्भागवत और श्रीचैतन्य चरितामृत दो ग्रन्थ रह जायें तो मात्र इन दो ग्रन्थों के विद्यमान रहने से मनुष्य अपनी इच्छानुरून सभी वस्तुओं की प्राप्ति कर सकता है। और यदि कभी ऐसा भी हो जाय कि श्रीमद्भागवत भी लुप्त हो जाये तब एकमात्र श्रीचैतन्य चरितामृत रहने से भी मनुष्य का कोई नुकसान नहीं होगा। श्रीमद्भागवत् में जो अभिव्यक्त नहीं किया गया है, वह श्री चैतन्य–चरितामृत में अभिव्यक्त हुआ है। राधाकृष्ण मिलित तनु श्री चैतन्य महाप्रभु परमतत्त्व हैं। उनकी ही अभिन्न शब्द मूर्ति श्री चैतन्य चरितामृत हैं। श्री चैतन्य चरितामृत में राधा जी का गूढ़ तत्त्व और उनकी महिमा प्रकटित हुयी है। इसलिये श्री चैतन्य चरितामृत की सर्वोत्तमता के विषय में और क्या सन्देह हो सकता है? श्रीचैतन्य चरितामृत की इस सर्वोत्तमता से इस ग्रन्थ के रचयिता कविराज गोस्वामी जी का सर्वोत्तम वैशिष्टय भी सिद्ध हो रहा है। श्रील कविराज गोस्वामी जी द्वारा रचित, श्रीचैतन्य चरितामृत, श्रीगोविन्दलीलामृत और कृष्णकर्णामृत की टीका – ये तीन अमूल्य ग्रन्थ हैं। श्रीगोविन्दलीलामृत में श्रीकृष्ण की अष्टकालीन लीला विस्तृत रूप से वर्णन हुयी है। श्रील नरोत्तम ठाकुर जी ने अपनी गीति में इस प्रकार

लिखा है – "कृष्णदास कविराज रसिक भकत माझ यिहों कैल चैतन्य चरित। गौर गोविन्द लीला शुनिते गलये शीला, ताहाते न हइल मोर चित।।" अर्थात रसिक भक्त श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु जी के चरित्र का वर्णन किया है जिसे श्रवण कर पत्थर भी पिघल जाते हैं किन्तु मेरी उसी में आसक्ति नहीं हुयी है।

गोविन्दलीलामृत ग्रन्थ लिख कर श्रीकृष्णदास गोस्वामी 'कविराज' की उपाधि से विभूषित हुये थे। वैष्णव जगत में श्रील कृष्णदास कविराज जी रूपानुगवर रूप से पूजे जाते हैं।

प्रसिद्ध टीकाकार श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद जी ने कविराज़ गोस्वामी जी के सम्बन्ध में जो लिखा है उससे जाना जाता है कि कविराज गोस्वामी राधारानी जी के निजजन थे तथा स्वाभाविक रूप से ही उनके हृदय में भगवत् तत्त्व प्रकाशित था। इसलिये उनके वाक्य मात्र परम प्रामाणिक हैं। कविराज गोस्वामी जी ने कामगायत्री के अक्षरों की संख्या 25 बोलने के स्थान पर 24½ क्यों बोली, समझ न आ पाने के कारण विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद बहुत ही विह्वल हो उठे थे। यहां तक कि इस विह्वलता से उन्होंने राधाकुण्ड के तट पर देह त्याग का संकल्प ले लिया। देहत्याग का संकल्प करने पर मध्यरात्रि को तन्द्रावस्था में उन्होनें स्वप्न में देखा – स्वयं वृषभानुनन्दिनी जी उनके पास आकर कह रही हैं – 'हे विश्वनाथ! हे हरिबल्लभ!! तुम उठो, कृष्णदास कविराज ने

जो लिखा है वह सत्य ही है। वह मेरी नर्म सहचरी है। मेरे अनुग्रह से ही वह मेरे अन्दर की सब बातें जानते हैं। उनके वाक्यों में सन्देह नहीं करना। 'वर्णागमभास्वत' ग्रन्थ में लिखित है कि 'य' कार के पश्चात 'वि' अक्षर रहे, तो वह 'य' कार आधा अक्षर कहलाता है। अतः वह 'य' कार ही आधा अक्षर है। यह विषय भी श्री चैतन्य चरितामृत में सम्पादक के निवेदन में लिखित है।

श्री श्रीनिवासाचार्य जी के साथ श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी, श्रीराघव और श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी के साक्षात्कार की बात भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में लिखी है - "श्रीराघव-कृष्णदास कविराज आदि। श्रीनिवासे कैल सवे कृपार अवधि।।" - भक्तिरत्नाकर 4/392

कविराज गोस्वामी जी के श्रीपाट श्रीझामटपुर में श्रीनित्यानन्द प्रभु का अति छोटा पादपीठ मन्दिर है। स्थानीय लोगों का कहना है कि इसी स्थान पर कविराज गोस्वामी जी ने नित्यानन्द प्रभु जी की कृपा प्राप्त की थी तथा इसी स्थान पर उन्होंने नित्यानन्द जी से दीक्षा भी प्राप्त की थी, किन्तु प्रेमविलास ग्रन्थ में लिखा है कि श्रीकृष्ण दास कविराज गोस्वामी जी श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी जी द्वारा दीक्षित थे। कवि राज गोस्वामी जी के श्रीपाट में श्रीगौरनित्यानन्द जी के विग्रह विराजित हैं। कविराज गोस्वामी जी द्वारा पहनी हुई पादुका कहकर एक लकड़ी की पादुका वहां दिखायी जाती है।

श्रीलकृष्ण दास कविराज गोस्वामी जी की भजनकुटीर और समाधि राधाकुण्ड में आज भी विराजित है।

श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी के अप्रकट होने के पश्चात् आश्विन शुक्ला द्वादशी तिथि को श्रील कविराज गोस्वामी जी ने नित्यलीला में प्रवेश किया।

श्रीमीनकेतन रामदास

ये श्री नित्यानन्द शाखा में गिने जाते हैं तथा ये श्रीसंकर्षण के व्यूह हैं।

अमू प्राविशतां कार्यात् सहजौ निशठोल्मुकौ।
मीनकेतन-रामादिर्व्यूहः संकर्षणोऽपरः।।

गौरगणोद्देश - 68

श्रीकृष्ण लीला के निशठ और उल्मुक नामक दोनों भाइयों ने इस नित्यानन्द व्यूह में प्रवेश किया था। श्री चैतन्य महाप्रभु जी की लीला में ये दोनों ही मीनकेतन एवं रामदास के नाम से विख्यात हैं। श्रीगौरगणोद्देश दीपिका नामक ग्रन्थ में

मीनकेतन और रामदास दोनों को अलग-2 व्यक्ति के रूप में निर्देश किया गया है। किन्तु श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी एवं भक्तिरत्नाकर के रचयिता श्री नरहरिसरकार ठाकुर जी के वर्णन में स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि मीनकेतन रामदास एक ही व्यक्ति का नाम है। ऐसा भी हो सकता है कि जो बलदेव जी की लीला में निशठ-और उल्मुक थे। श्रीनित्यानन्द जी की लीला में वे मीनकेतन रामदास नामक एक ही व्यक्ति में प्रविष्ट हो गये हों।

श्रीमीनकेतन रामदास जी के माता-पिता, आविर्भाव सन् और स्थान इत्यादि सांसारिक परिचय अविदित ही है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि श्रीचैतन्य चरितामृत के वर्णन करने वाले श्रील कविराज गोस्वामी जी के श्रीपाट झामटपुर के पास ही मीनकेतन रामदास जी का श्रीपाट (जन्मस्थान) था।

खेतुरी उत्सव में श्रीनित्यानन्द शक्ति श्रीजाह्नवा देवी जी के साथ जो नित्यानन्द जी के जो-2 पार्षद गये थे। उनमें से मीनकेतन रामदास भी एक थे। श्री भक्तिरत्नाकर ग्रन्थ को पढ़ने से मालूम होता है कि रामदासादि वैष्णवों के दर्शन से त्रिभुवन पवित्र हो जाता है -

"संगेते चलिला महाभागवतगण ।
याँ सवार दर्शने पवित्र त्रिभुवन ।।

* * *

श्रीमीनकेतन रामदास[11] मनोहर ।
मुरारी चैतन्य, ज्ञानदास, महीधर ।।
श्रीशंकर, श्रीकमलाकर पिप्लाई ।
नृसिंह, चैतन्य, जीव, पण्डित कानाई ।।"

भक्तिरत्नाकर 10/372, 374-75

'श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी स्वरचित श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ के आदि लीला के पांचवें परिच्छेद में श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जी की महिमा वर्णन करने में ही मस्त हो गये और उसी मस्ती में उन्होंने नित्यानन्द जी के पार्षद मीनकेतन रामदास जी की महिमा भी वर्णन की है। अवधूत नित्यानन्द प्रभु जी की तरह नित्यानन्द जी के पार्षद मीनकेतन रामदास जी भी अवधूत की तरह ही विचरण करते रहते थे। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने 'अवधूत' शब्द के तात्पर्य के सम्बन्ध में लिखा है :- भा0 3/1/99 श्लोक की टीका में श्रीधर स्वामीपाद ने 'अवधूत' शब्द का अर्थ 'असंस्कृत देह' लिखा है। अवधूत नित्यानन्द जी के शिष्य भी महाभागवत परमहंस एवं वर्णाश्रमातीत नित्यसिद्ध थे।

---

11. मीनकेतन रामदास - मीनकेतन रामदास और रामदास श्री अभिराम दोनों नित्यानन्द पार्षद होने पर भी एक ही व्यक्ति नहीं हैं। रामदास तो द्वादश गोपालों में से एक 'श्रीदामसखा' हैं। श्रीअभिराम ठाकुर का श्रीपाट खानाकूल - कृष्णनगर में है। इन्होंने ऐसी लकड़ी को अकेले उठा कर वहन किया था जिसे 32 आदमी मिल कर उठा सकें - गौरगणोद्देश दीपिका-126

इसलिये उनके शरीर पर वर्णाश्रम का कोई चिह्न नहीं था। यही कारण था कि वे असंस्कृत शरीर में व्रज भाव में मस्त रहते थे।'

श्री मीनकेतन रामदास आमन्त्रित होने के कारण झामटपुर में श्रील कविराज गोस्वामी जी के घर में एक दिन सारी रात चलने वाले संकीर्तन में योगदान देने के लिये आये थे। उनके महाप्रेममय शरीर और अलौकिक भावों को देखकर सभी ने उनके चरणों की वन्दना की। प्रेम में विभोर होकर वे कभी किसी को वंशी तो किसी को थप्पड़ मारते थे। यहां तक कि कभी-कभी तो वे प्रेम में विभोर होकर किसी के कन्धों पर चढ़ बैठते थे। नदी की धारा के समान उनके दोनों नयनों से निरन्तर अश्रु प्रवाहित होते देखकर सबका मन और आंखें भर आयीं। अद्‌भुत अलौकिक अष्टसात्त्विक विकार उनके श्रीअंगों पर प्रकटित हो रहे थे। उनके द्वारा प्रेमोन्मत्त अवस्था में 'नित्यानन्द' जी का नाम लेकर हुंकार करने के कारण सबके हृदय दिव्य आनन्द से आनन्दित हो उठे। गुणार्णव मिश्र नामक एक विप्र श्रील कविराज गोस्वामी जी के घर पर श्रीमूर्ति की सेवा करता था। गुणार्णव मिश्र कनिष्ठाधिकारी वैष्णव होने के कारण अर्च्चा विग्रह की श्रद्धा के साथ सेवा करता था किन्तु भगवद् भक्तों को सम्मान प्रदान करने में उसका इतना आग्रह नहीं था। मीनकेतन रामदास जी ने लोकशिक्षा के लिए क्रोध दिखाते हुये कहा - 'एइ त द्वितीय

रोमहर्षण सूत। बलदेव देखि ये न कैल प्रत्युद्‌गम।'

नैमिषारण्य में ऋषियों की इच्छा से ही रोमहर्षण सूत भागवत पाठ करने के लिए व्यास आसन पर बैठे थे। उस समय जब बलदेव जी वहां पहुचे तो सभी ऋषि उन्हें देख उनके सम्मान हेतु आसन छोड़ खड़े हो गये किन्तु रोमहर्षण के ऐसा न करने पर बलदेव जी ने उन्हें सजा दी थी। दाम्भिक व्यक्ति का भागवत पाठ करने का व श्रीमूर्ति की पूजा करने का अधिकार नहीं है। भागवत साक्षात् श्री कृष्णाभिन्न स्वरूप है। पुजारी ब्राह्मण ने मीनकेतन रामदास जी के शासन को स्वीकार किया। वे उनकी मीठी डांट से असंतुष्ट नहीं हुये। उनके करने योग्य जो सेवा थी उन्होंने सभी की। किन्तु उत्सव समाप्त होने के पश्चात पुजारी जी के चले जाने पर कविराज गोस्वामी जी के भाई का मीनकेतन रामदास जी के साथ कुछ वाद-विवाद हो गया। कविराज गोस्वामी जी के भाई की श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के प्रति सुदृढ़ श्रद्धा थी किन्तु नित्यानन्द प्रभु जी के प्रति उनकी श्रद्धा नहीं थी। ये पता लगने पर कि इनकी नित्यानन्द जी के प्रति श्रद्धा नहीं है, मीनकेतन रामदास जी अत्यन्त दु:खी हुये और क्रोधित होकर उन्होंने अपनी वंशी तोड़ दी तथा तुरन्त ही वहां से चले गये। मीनकेतन जी के प्रति इस व्यवहार से कविराज गोस्वामी जी के भाई का सर्वनाश हो गया। कविराज गोस्वामी जी ने इस घृणित कार्य के लिये अपने भाई को मीनकेतन रामदास जी

का पक्ष लेकर बहुत डांटा। कृष्ण दास जी के इस थोड़े से गुण से संतुष्ट होकर नित्यानन्द प्रभु जी ने कविराज गोस्वामी जी को स्वप्न में अपने स्वरूप के दर्शन दिये और उन्हें वृन्दावन धाम का वास प्रदान किया।

उपरोक्त घटना से ज्ञात होता है कि मीनकेतन रामदास जी नित्यानन्द प्रभु जी के कितने प्रिय थे। नित्यानन्द प्रभु की तरह नित्यानन्द पार्षद भी पतितपावन हैं तथा तमाम प्रकार के अभीष्ट प्रदान करने में समर्थ हैं।

श्रीनिवास आचार्य

नदिया ज़िले के अन्तर्गत अग्रद्वीप के उत्तर की तरफ चाखन्दि ग्राम में 1441 शकाब्द में रोहिणी नक्षत्र युक्त वैशाखी पूर्णिमा के दिन श्रीनिवासाचार्य जी आविर्भूत हुये थे। इनके पिता श्रीगंगाधर भट्टाचार्य राढ़ीय ब्राह्मण थे। भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णित है कि काटोया में श्रीमन्महाप्रभु जी को सन्यास ग्रहण करते हुये दर्शन कर श्रीगंगाधर भट्टाचार्य जी 'हा चैतन्य' नाम बार-बार उच्चारण करते हुये निरन्तर अश्रु बहाते रहे थे।

श्रीगंगाधर पंडित जी की इस प्रकार प्रेम में उन्मत्त अवस्था को देखकर उस समय वहाँ पर उपस्थित भक्तों ने महाप्रभु जी का प्रिय भक्त जान इनका नाम 'चैतन्य दास' रख दिया। श्रीचैतन्य दास जी के हृदय में कोई कामना नहीं थी। अकस्मात उनके हृदय में पुत्र की कामना प्रबल हो उठी जिससे वे स्वयं भी आश्चर्यचकित हुये और ये बात अपनी पत्नी श्रीमती लक्ष्मी प्रिया को बतायी। लक्ष्मी प्रिया ने उन्हें नीलाचल जाकर श्रीमन्महाप्रभु जी के समक्ष निवेदन करने का परामर्श दिया। श्रीचैतन्यदास जी ने पत्नी के साथ नीलाचल की यात्रा की। रास्ते में याजिग्राम में लक्ष्मी प्रिया जी के पिता श्री बलराम विप्र जी के घर में कुछ दिन रहे।

नीलाचल में श्रीमन्महाप्रभु जी के श्री चरणों में उपस्थित होकर श्रीचैतन्यदास जी कुछ निवेदन करते इससे पहले ही श्रीमन् महाप्रभु जी उनके हृदय के अभिप्राय को समझ कर बोले कि ''जगन्नाथ जी तुम्हारी इच्छा अवश्य ही पूरी करेंगे।'' वहाँ उपस्थित भक्त जब यह जानने को उत्सुक हुये कि क्या इच्छा पूरी करेंगे तो महाप्रभु जी ने गोविन्द को बुलवा कर सब को बताया कि श्रीचैतन्यदास के हृदय में पुत्र की कामना हुयी है। इसके यहाँ 'श्रीनिवास' नामक पुत्र रत्न जन्म लेगा, जो कि मेरा अभिन्न स्वरूप होकर सब का आनन्द वर्धन करेगा। श्रीरूप आदि के द्वारा

में भक्ति – शास्त्र प्रकाशित करवाऊँगा एवं श्रीनिवास द्वारा ग्रन्थरत्नों का वितरण करवाऊँगा ।'' श्रीनिवास श्रीमन्महाप्रभु जी के द्वितीय प्रकाश स्वरूप थे। "हेनइ समये प्रभु गोविन्दे डाकिया । कहये गभीर नादे भावाविष्ट हइया ।'पुत्रेर कामना करि' आइल ब्राह्मण । श्रीनिवास नाम ताँर हइबे नन्दन ।। श्रीरूपादि द्वारे भक्ति शास्त्र प्रकाशिव । श्रीनिवास द्वारे ग्रन्थ रत्न वितरिव ।। मोर शुद्ध प्रेमेर स्वरूप श्रीनिवास । तारे देखि' सर्वचित्ते बाड़िल उल्लास ।।"

–भक्तिरत्नाकर 2 तरंग

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की अनुमति लेकर श्रीचैतन्यदास जी घर लौट आये । शुभ मुहूर्त में पुत्र का जन्म हुआ । श्रीचैतन्यदास जी ने साथ – साथ ही उसे श्रीगौरमहाप्रभु जी के चरणों में समर्पण कर दिया । क्रमश: श्रीचैतन्यदास जी ने श्रीनिवास के अन्नप्राशन, नामकरण, चूड़ाकरण, उपनयन संस्कार आदि सुसम्पन्न किये । श्रीगौरपार्षद श्री गोविन्द घोष एवं विशेष रूप से खण्डवासी श्रीनरहरि सरकार ठाकुर और श्रीरघुनन्दन ठाकुर जी की कृपा और स्नेह प्रचुर रूप से श्रीनिवास जी के ऊपर वर्षित हुआ ।

श्रीनिवास जी को अपने पिता जी के मुख से श्रीमन्महाप्रभु जी का पावन चरितामृत और श्रीकृष्ण जी की वृन्दावन लीला निरन्तर श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । श्रवण करते – करते

पिता – पुत्र दोनों प्रेम से विह्‌वल हो उठते थे । श्रीनिवास की जननी श्रीनिवास को बहुत प्रकार से नाम संकीर्तन करवाती थी ।

श्रीनिवास मातृ – पितृ – भक्ति परायण थे । श्रीनिवास जी ने श्रीधनन्जय वाचस्पति जी से व्याकरण, काव्य, अलंकार आदि शास्त्रों का अध्ययन कर थोड़े दिनों में ही शास्त्रों में विशेष पारदर्शिता प्राप्त कर ली थी । तत्पश्चात् कुछ दिनों के बाद ही इनका पितृ – वियोग हो गया । भक्त पिता के विरह से श्रीनिवास अत्यन्त कातर हो उठे । भक्तों ने अनेक प्रकार से उन्हें और उनकी जननी को सान्त्वना प्रदान की ।

श्रीनिवास जी माता जी को साथ लेकर चाखन्दि से याजिग्राम में नाना के घर आ गये । श्रीनिवास जी के दर्शन कर गाँव के लोग बहुत ही आनन्दित हुये । कुछ दिन याजिग्राम में रहने के पश्चात श्रीनिवास जी श्रीखण्ड में श्रील नरहरि सरकार ठाकुर जी के श्रीपादपद्मों में आ गये । श्रीमन्महाप्रभु जी शीघ्र ही अपना लीला संवरण कर सकते हैं, श्रील नरहरि सरकार ठाकुर जी से ऐसा संकेत मिलने पर श्रीनिवास जी श्रीमन्महाप्रभु जी के दर्शनों के लिये अत्यन्त व्याकुल हो उठे । पुन: याजिग्राम में आकर माता जी की आज्ञा लेकर वे तीव्रता से शुक्ला पन्चमी के दिन गौड़ीय भक्तों के साथ नीलाचल की ओर चल पड़े; किन्तु रास्ते में ही श्रीमन्महाप्रभु जी के अप्रकट होने का संवाद सुन कर मूर्च्छित हो कर गिर

पड़े । मूर्च्छा टूटने के पश्चात जब इन्होंने प्राण त्याग करने का संकल्प किया तो महाप्रभु जी ने स्वप्न में दर्शन देकर नीलाचल में जाने का आदेश दिया । नीलाचल में पहुँचने पर इन्हें स्वप्न में श्रीजगन्नाथ, श्री बलदेव, श्री सुभद्रा और पार्षदों सहित श्रीमन् महाप्रभु जी के दर्शन मिले । श्रीगौरशक्ति श्रीगदाधर पंडित गोस्वामी श्रीनिवास जी से मिलकर परमानन्द सागर में निमज्जित हो गये । इसके अतिरिक्त श्रीनिवास नीलाचल में श्री रामानन्द राय, श्रीपरमानन्द पुरी, श्रीशिखि माहिति, श्रीसार्वभौम पण्डित, श्रीवक्रेश्वर पण्डित, श्रीगोविन्द, श्रीशंकर, श्रीगोपीनाथ आचार्य इत्यादि प्रसिद्ध – प्रसिद्ध वैष्णवों से मिले और उनकी कृपा प्राप्त की । नीलाचल में कुछ दिन रहकर यह श्रील गदाधर पण्डित गोस्वामी जी से श्रीमद्भागवत श्रवण कर मोहित हो गये । इसके पश्चात श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी की आज्ञा लेकर नीलाचल से गौड़ में वापसी के रास्ते में ये श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु और श्री अद्वैताचार्य प्रभु जी के अप्रकट होने का संवाद सुन कर विरह से विह्वल हो उठे और इन्होंने पुनः प्राणों को त्यागने का संकल्प लिया किन्तु श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैताचार्य प्रभु जी ने स्वप्न में आकर इन्हें सान्त्वना प्रदान की और प्राण त्याग के संकल्प से निवृत किया । नवद्वीप में पहुँच कर श्रीनिवास, श्रीमन्महाप्रभु जी के विरह में व्याकुल हो उठे । श्रीनिवास की इस प्रकार की अवस्था

देखकर श्रीवंशीवदनानन्द ठाकुर जी ने जगन्माता श्री विष्णुप्रिया जी से प्रार्थना की । श्री विष्णुप्रिया देवी जी ने श्रीनिवास जी को दर्शन दिये और कृपा की । श्रीविष्णुप्रिया जी की तीव्र वैराग्य के साथ गौरभजन में निष्ठा को देखकर श्रीनिवास विस्मित हो गये । श्रीनिवास जी ने वहाँ पर स्वप्न में श्रीशचीमाता जी के दर्शन और कृपा भी प्राप्त की । तत्पश्चात् वैष्णव कृपा प्राप्त करने के इच्छुक श्रीनिवास नवद्वीप, शान्तिपुर, खड़दह खानाकूल, कृष्णनगर, श्रीखण्ड इत्यादि – सारे गौड़ मण्डल में भ्रमण करते रहे । श्रीगौर पार्षदों और श्रीनित्यानन्द जी के पार्षदों के सान्निध्य में आने का सुअवसर मिलने के कारण श्रीनिवास अपने आपको धन्य – धन्य समझने लगे । श्रीमुरारी, श्रीवास पण्डित, श्रीदामोदर, श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी, श्रीगदाधर दास, श्री परमेश्वरीदास, श्रीजाह्नवादेवी, श्रीवसुधादेवी, श्रीवीरभद्र प्रभु, श्रीअभिराम ठाकुर, श्रीनरहरि सरकार ठाकुर और श्रीरघुनन्दन ठाकुर सभी ने श्रीनिवास जी की कृष्ण प्रेम विह्वल अवस्था को देखकर उन्हें वृन्दावन जाने के लिये उपदेश दिया । वृन्दावन जाने की अनुमति लेने के लिये श्रीनिवास माता जी के पास जाकर बार – बार प्रार्थना करने लगे । पुत्र के व्याकुल अन्तःकरण को देखकर जननी ने जाने की अनुमति दे दी ।

अग्रद्वीप, काटोया, मौरेश्वर, एकचाकाधाम होते हुये व काशी,

अयोध्या, प्रयाग तीर्थ दर्शन करने के पश्चात बहुत दिनों बाद जब श्रीनिवास ब्रज में आकर पहुँचे तो सुना कि श्रीरूपगोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीकाशीश्वर पण्डित गोस्वामी और श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी अप्रकट हो गये हैं और रघुनाथ दास गोस्वामी, श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी और श्रीश्रीजीव गोस्वामी जी अब भी प्रकट हैं। श्रीनिवास गोस्वामीत्रय के दर्शन और कृपा प्राप्त कर परम धन्य हो गये। श्रीनिवास, श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी से दीक्षा लेकर श्रीजीव गोस्वामी जी के आश्रय में शास्त्रों का अध्ययन करने लगे। श्रीजीव गोस्वामी जी ने स्नेह से भर कर श्रीनिवास को अपने आराध्य श्रीराधा दामोदर जी के पादपद्मों में समर्पण कर दिया। श्रीनिवास जी ने श्रीराधाकुण्ड में श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी और श्रील कविराज गोस्वामी जी से मिलकर उनकी कृपा भी प्राप्त की। श्रीनिवास जी से 'उज्जवलनीलमणि' के श्लोकों की व्याख्या सुन कर श्रील जीव गोस्वामी जी को परम सन्तोष मिला तब उन्होंने श्रीनिवास को 'आचार्य' नरोत्तम को 'ठाकुर' और दु:खी कृष्णदास जी को 'श्यामानन्द' की पदवी प्रदान की थी। जीव गोस्वामी जी के निर्देशानुसार श्रीनिवास आचार्य प्रभु ने नित्यसिद्ध गौरपार्षद श्रील राघव गोस्वामी जी के साथ माथुरमण्डल की परिक्रमा एवम् दर्शन किये थे।

श्री श्री जीव गोस्वामी व प्रमुख वैष्णवों के आदेश से श्रील निवासाचार्य

प्रभु, श्रील नरोत्तम ठाकुर और श्रील श्यामानन्द प्रभु ने अग्रहायण शुक्ला पन्चमी तिथि को मथुरा के एक धनाढ्य व्यक्ति के द्वारा दिये गये बक्से में गोस्वामियों के ग्रन्थरत्न लेकर बैलगाड़ी की सहायता से गौड़ देश की ओर शुभ यात्रा आरम्भ की। विपत्तियों से भरे लम्बे रास्ते को पार कर जब वे हिन्दु राज्य 'वनविष्णुपुर' में आकर पहुँचे तब थोड़े निश्चिन्त हुये। इधर वन के रास्ते से आते समय चारों तरफ ये बात फैल गयी कि एक महाजन बहुमूल्य धन-रत्न लेकर पुरी जा रहे हैं। ये संवाद जब वनविष्णुपुर के दस्यु राजा वीर हम्बीर ने सुना तो उसने अपने ज्योतिषी को कहा कि वह गणना करके बताये कि ये संवाद ठीक है कि नहीं ? ज्योतिषी ने गणना करके बताया कि एक महाजन धन-रत्न से पूर्ण गाड़ी लेकर आ रहा है। वीर हम्बीर ने डाकुओं को बिना किसी को मारे उस धनरत्न को अपहरण करने का आदेश दिया। राजा द्वारा आदेश मिलने पर कार्य में सिद्धि की प्राप्ति के लिये डाकुओं ने चण्डी पूजा की। गुप्तचरों को भेजने से उन्हें मालूम हुआ कि जो लोग धन रत्न लाये हैं वे भोजन के पश्चात अत्यन्त थकावट के कारण निद्रा के आगोश में हैं। डाकुओं ने उसे चण्डी की कृपा और सुनहरा अवसर समझ कर ग्रन्थों के सन्दूक को बहुमूल्य रत्नों से भरा सन्दूक समझ कर अपहरण कर लिया और राजा के पास पहुँचा दिया। विशाल सन्दूक को देख कर व ये सोच कर राजा

बहुत आनन्दित हुआ कि बहुत सा धन मिल जायेगा । किन्तु सन्दूक खोलने पर उसमें केवल ग्रन्थ ही ग्रन्थ देख कर राजा आश्चर्यचकित हो गया । ग्रन्थरत्नों के दर्शन से उसका चित्त निर्मल हो गया । राजा ने ज्योतिषी को कहा कि तुम्हारी गणना तो ठीक नहीं हुयी । इस पर उसने कहा कि मैंने तो जितनी बार देखा, अमूल्य रत्न ही देखे । आश्चर्य की बात है कि यह कैसे झूठ हो गया, कुछ समझ नहीं आता । ग्रन्थ रत्नों के दर्शन से निर्वेद - प्राप्त और अनुतप्त राजा 'ग्रन्थाचार्य' के दर्शनों के लिए व्याकुल हो उठा एवं स्वप्न में उनके दर्शन पाकर आश्वस्त हो गया । इधर श्रीनिवास आचार्य प्रभु, श्रीनरोत्तम ठाकुर और श्रीश्यामानन्द प्रभु जब प्रातःकाल उठे तो ग्रन्थों को वहाँ न देख कर अत्यन्त व्याकुल हो उठे और बहुत खोजने पर भी जब ग्रन्थ नहीं मिले तो उन्होंने प्राण त्यागने का संकल्प लिया । स्थानीय आदिवासीगण तीनों वैष्णव - आचार्यों का दुःख देख कर व अनुमान लगा कर राजा की निन्दा करने लगे कि ये कार्य दस्युराजा वीर हम्बीर का ही हो सकता है । श्रीनिवासाचार्य प्रभु को एक व्यक्ति के माध्यम से मालूम हुआ कि विष्णुपुर के राजा ने ही ये काम किया है । उसी के यहाँ ग्रन्थ रत्नों के मिलने की सम्भावना है । इस सम्भावना की बात सुन कर व ग्रन्थरत्न पाने की आशा से तीनों ने प्राण त्याग का संकल्प त्याग दिया । ग्रन्थ रत्नों की खोज के लिये श्रीनिवासाचार्य

प्रभु ने वनविष्णुपुर में ही ठहरने का कार्यक्रम बनाया । उन्होंने श्रील नरोत्तम ठाकुर जी को खेतुरी में और श्रील श्यामानन्द प्रभु जी को उत्कल देश में भेज दिया । वनविष्णुपुर में रहते समय कृष्ण बल्लभ नामक एक ब्राह्मण के पुत्र से श्रीनिवासाचार्य प्रभु को ये मालूम हुआ कि राजा वीर हम्बीर की श्रीमद्भागवत सुनने में विशेष रुचि है । वह प्रतिदिन श्रीमद्भागवत का श्रवण करता है । एक दिन श्रीनिवास आचार्य प्रभु उस ब्राह्मण को लेकर वहाँ पहुँचे जहाँ राजा प्रतिदिन भागवत पाठ श्रवण करता था । राजा उस ब्राह्मण से श्रीनिवासाचार्य प्रभु जी के परम भागवत होने का परिचय पाकर एवं उनके महापुरुषोचित व्यक्तित्व और रूप लावण्य को देख कर अत्यन्त विस्मित हुआ और उनके प्रति आकृष्ट हो गया । राजा ने उनसे श्रीमद्भागवत श्रवण करने की इच्छा प्रकट की तो श्रीनिवास आचार्य प्रभु ने अपने ग्रन्थ रत्नों के उद्धार रूपी उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्वीकार कर लिया और प्रतिदिन श्रीमद् भागवत का पाठ और व्याख्या करने लगे । श्रीनिवास आचार्य प्रभु जी के सुमधुर कण्ठ से श्रीमद् भागवत की अपूर्व व्याख्या सुनकर राजा मोहित हो गया । श्री निवास आचार्य प्रभु जी ने श्रीमद् भागवत पाठ और कीर्तन व श्रील नरोत्तम ठाकुर और श्रील श्यामानन्द प्रभु जी ने मुख्य रूप से कीर्तन के द्वारा ही प्रचार किया था । उनके कीर्तनों के विशेष सुर थे जिनको सुनने मात्र से ही

चित्त आकृष्ट और प्राण-मन मतवाले हो उठते थे। श्रील निवास आचार्य प्रभु, श्रील नरोत्तम ठाकुर और श्रील श्यामानन्द प्रभु जी के गानों के सुरों के नाम थे : क्रमशः मनोहर साही, गराणहाटि और रेणेटि। वीर हम्बीर राजा ने श्रीनिवासाचार्य प्रभु जी के रहने के लिये एक निर्जन आवास स्थान निर्दिष्ट कर दिया। एक दिन इस निर्जन आवास में राजा वीर हम्बीर को अकेले देख श्रीनिवास आचार्य प्रभु ने गोस्वामियों द्वारा रचित ग्रन्थों के प्रकाश और उनके अपहरण का सारा वृतान्त यथावत सुना डाला, जिसे सुनकर राजा वीर हम्बीर अपने किये पर पश्चाताप करने लगा और उसने ग्रन्थों का सन्दूक लाकर श्रीनिवास आचार्य प्रभु को दे दिया। ग्रन्थों के मिलने पर श्रीनिवास आचार्य प्रभु अति आनन्दित हुए - जैसे उनके प्राण वापस लौट आये हों। उन्होंने साथ-साथ श्रीवृन्दावन में एवं श्रील नरोत्तम ठाकुर और श्रीलश्यामाननद प्रभु जी जहाँ थे, वहीं व्यक्तियों को भेज कर यह शुभ संदेश पहुँचाया।

क्रमशः वीर हम्बीर राजा और उसके पारिवारिकजनों ने श्रीनिवास आचार्य प्रभु से दीक्षा ग्रहण कर कायमन वाक्य से अर्थात सर्वतोभाव से गुरु सेवा में जीवन का उत्सर्ग कर दिया। राजा वीर हम्बीर का दीक्षा का नाम हुआ श्रीचैतन्य दास।

कुछ दिनों के बाद श्रीनिवास आचार्य प्रभु वनविष्णुपुर से याजिग्राम

में अपने नाना के स्थान पर आ गये एवं वहाँ से काटोया, नवद्वीप इत्यादि स्थानों में भ्रमण के लिये निकल पड़े। श्रीनिवास आचार्य प्रभु खण्डवासी भक्त श्रील नरहरि सरकार ठाकुर जी के विशेष अनुगत एवं जननीदेवी के प्रति भक्ति परायण और अनुरक्त थे। जननी की पुत्र के विवाह के लिये व्याकुल होने की बात मालूम होने पर श्रील नरहरि सरकार ठाकुर ने श्रीनिवास आचार्य प्रभु को विवाह के लिये आदेश भेजा। इससे पहले भी श्रीनिवास आचार्य प्रभु को स्वप्न में विवाह के लिये श्रीअद्वैताचार्य जी का आदेश मिला था। श्रीनिवास आचार्य प्रभु मन-मन में लज्जित होने पर भी श्रीअद्वैताचार्य प्रभु, जननी देवी और सरकार ठाकुर के आदेश का उल्लंघन करने में असमर्थ थे। इसलिये उन्होंने विवाह करना स्वीकार किर लिया। याजिग्राम के निवासी श्रीगोपाल चक्रवर्ती महोदय की भक्तिमती कन्या 'श्री ईश्वरी' के साथ विवाह कार्य सुसम्पन्न हुआ। श्रीमन्महाप्रभु जी के भक्तों के अतिमर्त्य चरित्र वैशिष्टय को साधारण बुद्धि से समझना बहुत कठिन है। भक्त और भगवान के एकान्त शरणागत व्यक्ति ही उनकी कृपा से उनकी महिमा को समझने में समर्थ हो सकता है। इसके पश्चात श्रीनिवास आचार्य प्रभु जी ने गोस्वामियों के रचित ग्रन्थों के तात्पर्य शिष्यों को समझाने के लिये कुछ दिन अध्यापन का कार्य किया। श्रीनिवास आचार्य प्रभु के एक प्रधान शिष्य थे - खण्डवासी

भक्त श्रीचिरन्जीव सेन के पुत्र श्रीराम चन्द्र कविराज। श्रील जीव गोस्वामी प्रभु जी ने श्रीराम चन्द्र के कवित्व से सन्तुष्ट होकर उन्हें कविराज की उपाधि प्रदान की थी। श्रील नरोत्तम ठाकुर जी के साथ श्रीराम चन्द्र कविराज का विशेष घनिष्ठ सम्बन्ध था। श्रील नरोत्तम ठाकुर जी ने गाया है : "दया कर श्रीआचार्य प्रभु श्रीनिवास। राम चन्द्र सँग माँगे नरोत्तम दास ।।"

श्रील शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी, श्रील दास गदाधर और श्रील नरहरि सरकार ठाकुर द्वारा प्रकट लीला संवरण करने पर एवं द्विज हरिदास आचार्य जी के अप्रकट होने पर पुनः विरह से व्याकुल श्रीनिवास आचार्य प्रभु वृन्दावन में गये थे। वहाँ पर श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी, श्रील भूगर्भ गोस्वामी, श्रील लोकनाथ गोस्वामी और श्री जीव गोस्वामी जी के साथ उनका साक्षात्कार हुआ था। गोस्वामियों के स्नेहपूर्ण वचनों से श्रीनिवास आचार्य प्रभु का विरह सन्तप्त हृदय शीतल हो गया। श्री राम चन्द्र कविराज और श्रीश्यामानन्द प्रभु भी व्रज में श्रीनिवास आचार्य प्रभु से मिले थे।

वृन्दावन से वापस आने के पश्चात श्रीनिवास आचार्य प्रभु ने श्रील दास गदाधर, श्रीखण्ड में श्रील नरहरि सरकार ठाकुर के एवं कान्चनगड़िया में द्विज हरिदास आचार्य जी के विरह महोत्सव में योगदान किया था।

श्रील निवास आचार्य जी द्वारा कान्चनगड़िया से बुधरिग्राम में शुभपदार्पण करने पर श्री राम चन्द्र कविराज और श्रीगोविन्द कविराज ने उनके भव्य स्वागत की व्यवस्था की थी।

श्रील लोकनाथ गोस्वामी जी के निर्देशानुसार श्रील नरोत्तम ठाकुर वृन्दावन से खेतुरी में वापस आ गये। उसी समय फाल्गुणी पूर्णिमा तिथि को खेतुरी में स्थित श्रीमन्दिर में संकीर्तन के सहयोग से श्रीगौरांग, श्रीवल्लभी कान्त, श्री व्रजमोहन, श्रीकृष्ण, श्रीराधाकान्त और श्री राधा रमण जी की सेवा प्रकट हुयी। श्रीनिवास आचार्य प्रभु ने श्रीविग्रहों का महाभिषेक और पूजा सम्पन्न की थी। इस महान अनुष्ठान में श्रीजाह्नवा देवी भी उपस्थित थीं। श्रीजाह्नवा देवी जब श्री ब्रजमण्डल के दर्शनों के उपरान्त गौड़ देश वापस आयीं थी तो उसी समय काटोया में श्रीनिवास आचार्य प्रभु जी ने श्रीजाह्नवा देवी जी के दर्शन किये थे एवं उन्हें लेकर याजिग्राम गये थे।

श्रील निवास आचार्य प्रभु जी ने श्रीनरोत्तम ठाकुर और शिष्य श्रीराम चन्द्र कविराज को साथ लेकर नवधा-भक्ति के पीठ स्वरूप श्रीनवद्वीप धाम की परिक्रमा की थी। श्रील रघुनन्दन ठाकुर जी का तिरोभाव होने पर श्रीनिवास आचार्य पुनः विरह सागर में डूब गये एवं श्रीखण्ड में जाकर उन्होंने विरह महोत्सव में

योगदान भी दिया था। विरहोत्सव के पश्चात वे विरह-व्याकुल हृदय से याजिग्राम में आ गए। बाद में वहाँ से वन विष्णुपुर पहुँचे। राजा वीर हम्बीर, उनका परिजनवर्ग और विष्णुपुर वासी भक्तवृन्द श्रीनिवास आचार्य जी के दर्शन पा कर परमानन्दित हुये।

यहाँ पर फिर श्रीनिवास आचार्य प्रभु जी ने स्वप्न में श्री गौरांग महाप्रभु जी द्वारा श्री राघव चक्रवर्ती की कन्या श्री गौरांग प्रिया देवी से विवाह करने का आदेश प्राप्त किया। दस तरफ राघव चक्रवर्ती और उनकी सहधर्मिणी श्रीयुत माधवी देवी भी अपनी कन्या को सत्पात्र को देने के लिये व्याकुल हो उठे। उन्हें भी स्वप्न में आदेश मिला कि वे अपनी कन्या को श्री निवास आचार्य को समर्पित कर दें। पुनः आदेश प्राप्त होने पर श्रील निवास आचार्य प्रभु जी ने दूसरी बार विवाह किया। शुद्ध भक्त में भक्त और भगवान की इच्छा पूर्ति को छोड़ और कोई उद्देश्य न होने के कारण उनकी इच्छा पूरी करने के लिये वे सब कुछ करने के लिये तैयार रहते हैं। उनके इन कार्यों में सांसारिक 'काम' की गन्ध भी नहीं होती। श्रीमन्महाप्रभु जी के शक्त्याविष्ट अवतार श्रीनिवासाचार्य प्रभु के अलौकिक चरित्र के वैशिष्टय को उनकी कृपा के बिना वर्णन करने में कोई समर्थ नहीं हो सकता।

श्रील नरोत्तम ठाकुर

श्रील नरोत्तम ठाकुर जी कृष्णलीला में चम्पक मन्जरी हैं। ये उनका सिद्ध परिचय है। श्रीकृष्ण लीला की नित्यपार्षदा श्री रूप मन्जरी की अनुगता चम्पक मन्जरी जी हैं। जगत् के जीवों का नित्य कल्याण करने के लिये नरोत्तम ठाकुर के रूप में आविर्भूत हुई थीं। श्रील नरोत्तम ठाकुर जी राजसाही जिले के अन्तर्गत गोपालपुर परगना (गड़ेरहाट या गराणहाट परगना) में रामपुर वोयलियर से छः कोस दूर खेतुरी धाम में आविर्भूत हुए थे। आप पन्चदश शकाब्दी के मध्य में माघी पूर्णिमा[12] तिथि को आविर्भूत हुये थे। "माघी पुर्णिमाय जन्मिलेन नरोत्तम। दिने दिने वृद्धि हइलेन चन्द्रसम।।" (भक्तिरत्नाकर 1/281) इनके पिता राजा श्रीकृष्णानन्द दत्त जी गोपालपुर परगना के अधिपति थे। आपकी माता जी का नाम श्रीनारायणी देवी था। श्रीकृष्णानन्द दत्त के बड़े भाई का नाम था श्री पुरुषोत्तम दत्त। किसी-किसी का कहना है कि पुरुषोत्तम दत्त इनके छोटे भाई थे। श्री पुरुषोत्तम दत्त के पुत्र

---

12. माघी पूर्णिमा - माघायुक्त पौर्णमासी माघ मास की पूर्णिमा के दिन माघा नक्षत्र का योग होने से उसे माघी पूर्णिमा कहते हैं। माघी पूर्णिमा के दिन पहले कलियुग प्रवृत्त हुआ। 'अथ भाद्रपदे कृष्णे त्रयोदश्यास्तु द्वापरम्। माघे च पौर्णमास्यं घोरं कलियुगस्मृतम्।' इस तिथि को किया गया पण्यकर्म का अनुष्ठान अनन्त फलदायक होता है।

का नाम था श्री सन्तोष दत्त। कृष्णपार्षद वैष्णव किसी भी कुल में आ सकते हैं – यही ज्ञान करवाने के लिये श्रीकृष्ण की इच्छानुसार नरोत्तम ठाकुर जी की आविर्भाव लीला कायस्थ कुल में हुई।

'जातिकुल सब निरर्थक जानाइते।
जन्माइलेन हरिदास म्लेच्छकुलेते।।'

वैष्णव को प्राकृत जगत के अन्तर्गत किसी एक जाति का समझने से नरक की प्राप्ति होती है। अर्च्ये विष्णो ...... वैष्णवे जाति बुद्धि ...... नारकी सः।।' (पद्मपुराण) बचपन से ही श्रील नरोत्तम ठाकुर जी के चरित्र में भावी महापुरुषोचित लक्षण प्रकाशित हो गये थे। वे सदा श्रीगौर-नित्यानन्द जी की गुण-महिमा के चिन्तन में ही मग्न रहते थे। राज-ऐश्वर्य की तरफ उनकी बिन्दुमात्र भी आसक्ति नहीं थी। श्रीमन्महाप्रभु जी ने पार्षदों के साथ उन्हें दर्शन दिये थे।

"श्रीकृष्ण चैतन्य नित्यानन्दाद्वैतगणे।
करये विज्ञप्ति अश्रु झरे दुनयने।।"
स्वप्नछले प्रभु गणसह देखा दिया।
प्रिय नरोत्तमे स्थिर करिल प्रबोधिया।।"

(भक्ति रत्नाकर 1/285-86)

ये बात उन दिनों की है कि जब नरोत्तम ठाकुर जी उपाय सोच रहे थे कि संसार किस प्रकार छोड़ा जाए। उसी

समय एक दिन इनके पिता जी व चाचा जी राभी किसी राजकार्य के लिये किसी अन्य स्थान पर गये। इसे अच्छा समय जानकर इन्होंने किसी प्रकार से माता जी को समझाया और अपने चौकीदार को धोखा देकर कार्तिक पूर्णिमा तिथि को संसार का त्यागकर निकल पड़े।

प्रेम विलास ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णन है कि एक बार कानाई नाटशाला गाँव में आनन्द से संकीर्त्तन और नृत्य करते-2 श्रीमन्महाप्रभु अकस्मात् 'नरोत्तम' नाम लेकर पुकारने लगे। महाप्रभु जी का भावावेश देखकर नित्यानन्द प्रभु जी ने इसका कारण पूछा तो महाप्रभु जी ने कहा – 'देखो श्रीपाद, तुम अपनी महिमा स्वयं ही नहीं जानते हो'।। नीलाचल जाते समय आपने कई दिन आँसू बहाये थे। जानते हो आपने जो अश्रु बहाये थे वे मैंने इकट्ठे करके रखे हैं। वही 'प्रेम' नरोत्तम को देने के लिये मैं इसे पद्मानदी के किनारे रखूँगा।' उसके पश्चात् नरोत्तम को प्रेम देने के लिए महाप्रभु जी कुतुबपुर आये। वहाँ आकर उन्होंने पद्मानदी में स्नान किया और उसके तट पर नृत्यकीर्त्तन करने लगे। महाप्रभु जी ने पद्मानदी को सम्बोधन करते हुये कहा – 'लो ये प्रेम ले लो, इसे छिपा कर रखना तथा नरोत्तम के आने पर उसको देना।' तब पद्मानदी ने कहा 'मैं कैसे समझूँगी कि नरोत्तम आया है?' इसके उत्तर में महाप्रभु जी ने कहा जिसके स्पर्श से तुममें ऊँची-ऊँची उछाल वाली लहरें उठने लगेंगी तो समझ लेना कि नरोत्तम आया है। "याँहार परशे तुमि अधिक उछलिवा।

सोई नरोत्तम प्रेम ताँरे तुमि दिवा।।"

जिस स्थान पर महाप्रभु जी ने नरोत्तम के लिये प्रेम रखा था वही स्थान बाद में 'प्रेमतली' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जब नरोत्तम ठाकुर जी की आयु मात्र 12 वर्ष की थी, तब नित्यानन्द प्रभु जी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर पद्मानदी के पास रखे प्रेम को लेने के लिये आदेश दिया था। स्वप्न में आदेश प्राप्तकर नरोत्तम ठाकुर एक दिन अकेले ही पद्मानदी पर गये। उनके स्नान करने से उनके चरण स्पर्श से ही पद्मावती उछल उठीं। तभी चैतन्य महाप्रभु जी की बात को स्मरण कर उनका रखा हुआ प्रेम पद्मानदी ने नरोत्तम को समर्पण कर दिया। प्रेम प्राप्त करते ही नरोत्तम का भाव, वर्ण सब परिवर्तित हो गया। नरोत्तम के प्रेम-विकारों को देख उनके माता पिता ने उसे सामान्य स्थिति में लाने के भरसक प्रयास किये किन्तु सभी प्रयास व्यर्थ साबित हुए। श्रीचैतन्य-नित्यानन्द जी के प्रेम की मदिरा पान कर, उन्मत्त होकर व गृहबन्धन को काट कर नरोत्तम वृन्दावन की ओर दौड़ पड़े।

राजपुत्र होते हुए भी भगवद्विरह में कातर नरोत्तम सब प्रकार के देहसुखों की परवाह न करते हुये भगवद्प्रेम में रोते रोते दिन रात नंगे पाँव चलते जा रहे थे। कई दिन तक न तो उन्होंने कुछ खाया और न ही सोये। परिणाम ये हुआ कि अन्त में वे एक वृक्ष के नीचे बेहोश हो कर गिर पड़े। तभी

एक गोरे रंग का ब्राह्मण बर्तन में दूध लेकर वहाँ आया और उसने बड़ी ही मधुर व स्नेह भरी भाषा में कहा - 'ओहे नरोत्तम ! ये दूध पी लो, इससे तुम्हारे पांव में पड़े छाले ठीक हो जायेंगे और फिर तुम सुखपूर्वक रास्ता तय करना।' इतनी बात कहकर ब्राह्मण अन्तर्ध्यान हो गया और नरोत्तम जी को थकावट के कारण नींद आ गयी तथा उसी वृक्ष के नीचे ज़मीन पर नरोत्तम जी सो गये। उसी समय नरोत्तम ठाकुर को श्रीरूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी जी के दर्शन मिले थे। श्रीरूप गोस्वामी जी ने परम स्नेह के साथ नरोत्तम की छाती पर हाथ रखकर चैतन्य महाप्रभु जी द्वारा लाया हुआ दूध पिलाया जिससे नरोत्तम जी का सारा कष्ट जाता रहा। प्रेमविलास ग्रन्थ में ऐसा भी वर्णन आता है कि किस-किस प्रकार से वृन्दावन में नरोत्तम जी ने लोकनाथ गोस्वामी जी की कृपा प्राप्त की थी। नरोत्तम ठाकुर जी का आविर्भाव माघी पूर्णिमा को हुआ था जबकि उनका संसार का त्याग कार्तिक पूर्णिमा को हुआ था। इनकी लोकनाथ दास गोस्वामी जी से दीक्षा भी श्रावण पूर्णिमा को हुयी थी। किसी-2 के मतानुसार नरोत्तम ठाकुर अपने पिता की मृत्यु के पश्चात अपने बड़े भाई श्रीपुरुषोत्तम दत्त के पुत्र संतोष दत्त को राज्यभार सौंप कर वृन्दावन गये थे। "श्रीनरोत्तमेर क्रिया कहिते कि पारि। सर्वतीर्थदर्शी आकुमार ब्रह्मचारी।।" "आकुमार ब्रह्मचारी सर्वतीर्थदर्शी। परमभागवतोत्तमः श्रील नरोत्तमदासः।।" - भक्तिरत्नाकर 1/278-279

श्रील लोकनाथ गोस्वामी जी साक्षाद् महाप्रभु जी के शिष्य एवं पार्षदों में गिने जाते हैं। गौड़ीय वैष्णवों में से सबसे पहले यही चैतन्य महाप्रभु जी के आदेश से श्रील भूगर्भ गोस्वामी जी को साथ लेकर वृन्दावन आये थे। श्री लोकनाथ गोस्वामी जी ने श्रीव्रजमण्डल में रहते हुये तीव्र वैराग्य के साथ भजन किया था। वे विविक्तानन्दी वैष्णव थे। उन्होंने ऐसा संकल्प लिया हुआ था कि वे किसी को भी शिष्य नहीं बनायेंगे। जबकि दूसरी ओर नरोत्तम ठाकुर जी का संकल्प था कि यदि वे बनेंगे तो लोकनाथ गोस्वामी जी के ही शिष्य बनेंगे। राजा के पुत्र होने पर भी लोकनाथ गोस्वामी जी की कृपा प्राप्त करने के लिये वे वृन्दावन में प्रतिदिन आधी रात के समय जाकर उनके प्रातः जंगल-पानी जाने के स्थान को साफ करते थे और साथ ही हाथ धोने के लिए साफ मिट्टी और जल भी रख देते थे। प्रेमविलास ग्रन्थ में ये प्रसंग इस प्रकार से वर्णित है :-

"ये स्थाने गोसाञि जीउ यान बहिर्देश। सेइ स्थान याइ करेन संस्कार-विशेष।। मृत्तिकार शौचेर लागि माटि छानि आने। नित्य नित्य एइमत करेन सेवने।। झाटागाछि पुति राखे माटिर भितरे। बाहिर करि' सेवा करे आनन्द अन्तरे।। आपनाके धन्य माने, शरीर सफल। प्रभुर चरण प्राप्त्ये एई मोर बल।। कहिते-2 काँदे झाटा बुके दिया। पाँच सात धारा वहे हृदय भासिया।।"

अर्थात श्री लोकनाथ गोस्वामी जी जिस स्थान पर शौच आदि के लिए जाते थे नरोत्तम ठाकुर जी जाकर उस स्थान को साफ कर देते थे और हाथ साफ करने के लिए छानी हुयी मिट्टी लाकर वहां रख देते थे। वे सफाई करने के पश्चात झाड़ू को वृक्ष की ओट में मिट्टी के नीचे छिपा कर रख देते थे। प्रतिदिन इसी प्रकार सेवा करते हुये आनन्द का अनुभव करते थे। अपने आप को धन्य मानते और समझते कि मेरा जन्म सफल हो गया है। वे मानते थे कि प्रभु की प्राप्ति के लिये ये सेवा ही मेरा बल है। इतना कहकर वे झाड़ू को छाती से लगाकर क्रन्दन करते रहते और उनके नेत्रों से अश्रुओं की धारायें बहती रहती थी।

प्रतिदिन शौच के स्थान को निर्मल और दुर्गन्धरहित देखकर श्री लोकनाथ गोस्वामी जी आश्चर्यान्वित हुये और सोचने लगे कि कौन व्यक्ति ये काम कर रहा है। ये देखने के लिये कि कौन मेरे शौच के स्थान की सफाई इत्यादि करता है एक दिन वे शौच के स्थान के पास ही गुप्त स्थान में छिपकर बैठ गये और हरिनाम करने लगे। उन्होंने देखा एक व्यक्ति आधी रात को आया और उसने सफाई का कार्य करना शुरू कर दिया। अन्धेरे में दूर से ही उन्होंने उसका परिचय पूछा। जब उन्हें मालूम हुआ कि राजपुत्र नरोत्तम का ही ये काम है तो लोकनाथ गोस्वामी जी अत्यन्त संकुचित हो गये और उसे भविष्य में ऐसा घृणित कार्य करने के लिए मना

किया। किन्तु नरोत्तम ठाकुर जी की ऐसी दीनता और व्याकुलता को देखकर लोकनाथ गोस्वामी जी का चित्त उनके प्रति स्नेह से भर आया और अपने संकल्प को छोड़कर उन्होंने उसे दीक्षा प्रदान कर दी। इस प्रकार नरोत्तम ठाकुर जी ने स्वयं आचरण करके जगत्वासियों को ये शिक्षा दी कि गुरु सेवा किस प्रकार की जाती है –

"हेनइ समये नरोत्तम तथा गिया।
गुरुसेवा यथोचित कैला हर्ष हैया।।
सेवाय प्रसन्न हैया दीक्षा मन्त्र दिल।
नरोत्तमे कृपार अवधि प्रकाशिल।।"

भक्तिरत्नाकर 1/345-346

अर्थात् उसी समय नरोत्तम जी ने वहां जाकर आनन्द के साथ यथोचित् श्रीगुरु जी की सेवा की, उनकी सेवा से प्रसन्न होकर गुरुजी ने उन्हें दीक्षा प्रदान की तथा इसके द्वारा उन्होंने नरोत्तम जी पर असीम कृपा प्रकाशित की।

"किवा नव्य यौवन से परम सुन्दर।
कार्तिक पुर्णिमा दिने छाड़िलेन घर।।
भ्रमिया अनेक तीर्थ वृन्दावने गेला।
लोकनाथ गोस्वामीर स्थाने शिष्य हैला।।
श्रावण मासेर पौर्णमासी शुभक्षणे।
करिलेन शिष्य लोकनाथ नरोत्तमे।।"

भक्तिरत्नाकर 1/292-294

अर्थात : वे कितने नवयौवन सम्पन्न एवं परमसुन्दर थे उसका वर्णन करना मुश्किल है। वे कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन घर त्याग कर अनेक तीर्थों का भ्रमण करते हुये वृन्दावन पहुंचे और वहां वे श्री लोकनाथ गोस्वामी जी के शिष्य बने। श्रावण मास की पौर्णमासी के शुभक्षणों में श्रीलोकनाथ गोस्वामी जी ने श्रील नरोत्तम दास जी को शिष्य बनाया था।

श्रील नरोत्तम ठाकुर ही श्री लोकनाथ गोस्वामी जी के एकमात्र शिष्य थे। विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ और श्रीगौड़ीय मठों के प्रतिष्ठाता नित्यलीला प्रविष्ट ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने भी नरोत्तम ठाकुर की तरह आचरण करके गुरुपादपद्मों की कृपा प्राप्त करने के लिये असीम धैर्यशीलता की शिक्षा दी थी।

श्रीलोकनाथ गोस्वामी जी की तरह गौरकिशोर दास बाबा जी ने भी किसी को भी मन्त्र न देने का संकल्प लिया था। उन्होंने प्रभुपाद जी को तीन बार अस्वीकार कर दिया था किन्तु प्रभुपाद जी ने इतने पर भी धैर्य नहीं खोया, परिणाम स्वरूप प्रभुपाद जी की दीनता और आतुरता को देख श्रील गौर किशोर दास बाबा जी महाराज ने अपना संकल्प छोड़ दिया और स्नेह से भरे चित्त से उन्हें मन्त्रदीक्षा प्रदान की थी। श्रील गौरकिशोर दास बाबा जी महाराज जी के एकमात्र शिष्य थे – श्रीलप्रभुपाद। श्रीरूपसनातनादि के अप्रकट होने के पश्चात

श्रीजीवगोस्वामी जी उत्कल-गौड़-माथुरमण्डल के गौड़ीय सम्प्रदायों के सर्वश्रेष्ठ आचार्य के पद पर अधिष्ठित हुये थे एवं वे वृन्दावन में विश्ववैष्णव राजसभा के श्रेष्ठ पात्र राज थे। वृन्दावन में श्रील जीव गोस्वामी जी के आश्रय में ही श्रीनिवास, नरोत्तम और दुःखी कृष्णदास ने अध्ययन और शिक्षा प्राप्त की थी। श्रील जीव गोस्वामी जी ने श्रीनिवास, नरोत्तम और दुःखी कृष्णदास को क्रमशः 'आचार्य', 'ठाकुर' और 'श्यामानन्द' नाम प्रदान कर तमाम गोस्वामी ग्रन्थों के साथ गौड़देश में नाम प्रेम का प्रचार करने के लिये भेजा था। बंगाल में राजा वीरहाम्बीर द्वारा ग्रन्थों को चोरी करने एवं बाद में श्रीनिवासाचार्य जी द्वारा उनको ढूंढ निकालने का समाचार भी श्रीजीव गोस्वामी जी ने सुना था। वन-विष्णुपुर में ग्रन्थों के अपहरण और उन्हें ढूंढने का प्रसंग इसी ग्रन्थ में श्रीनिवासाचार्य जी के चरित्र में वर्णन किया गया है। श्रील जीव गोस्वामी जी ने श्री निवास जी के शिष्य श्रीरामचन्द्र सेन को और उनसे छोटे गोविन्द को भी कविराज की उपाधि प्रदान की थी। श्रील लोकनाथ गोस्वामी जी ने नरोत्तम ठाकुर जी में राजोचित, सामाजिक व रीतिनीति के अनुकूल व्यवहारादि में रुचि देख कर उन्हें उनके पारिवारिक स्थल खेतुरी में जाने का आदेश दिया था। लोकनाथ गोस्वामी जी का ये आदेश केवल श्रीकृष्ण में एकनिष्ठ विरक्त वैष्णवों के भजन के आदर्श को दिखाने के लिये था तथा साथ ही उत्तर बंगाल के कृष्णबहिर्मुख व्यक्तियों का अत्यन्त कल्याण

करने के उद्देश्य से दिया गया था। श्रील निवासाचार्य प्रभु ने भी लोकनाथ गोस्वामी जी के अभिप्राय को जानकर ग्रन्थों के चोरी हो जाने के बाद नरोत्तम ठाकुर जी को खेतुरी में एवं उत्तरबंग में प्रचार करने के लिए कहा था। "खेतरी ग्रामेते शीघ्र करिया गमन। प्रभु लोकनाथ आज्ञा करह पालन।।" भक्ति रत्नाकर 7/119

अप्राकृत भूमिका में रहते हुये श्रीहरि की अन्तरंग सर्वोत्तम सेवा में लगे विविक्तानन्दी वैष्णव सांसारिक अथवा नाशवान कल्याण करने वाले उन कार्यों को अधिक महत्व नहीं देते जो मायाबद्ध जीवों के प्राकृत देहाभिमान से भरे रहते हैं।

श्रीकृष्ण सेवा की प्राप्ति ही एकमात्र जीवन का उद्देश्य है - इसके विपरीत भावना होने पर ही जागतिक कल्याणकर कार्य अधिक महत्वपूर्ण लगते हैं। बेटी को डांटकर बहू को शिक्षा देने की तरह लोकनाथ गोस्वामी जी ने अपने निजजन के माध्यम से जगद्वासियों को शिक्षा प्रदान की है। श्रील नरोत्तम ठाकुर जी ने गुरुदेव के विरह में व्याकुल होने पर भी श्रीलगुरुदेव जी के आदेश को शिरोधार्य किया तथा खेतुरी में आकर शुद्ध प्रेमभक्ति की वाणी का प्रचार करते हुये उत्तर बंगाल के नर-नारियों का उद्धार किया। श्रील नरोत्तम ठाकुर जी ने स्वरचित 'प्रार्थना' गीति में हृदय की दीनता और आक्षेप को प्रकाशित करते हुये लिखा है।

अनेक दु:खेर परे, ल'येछिले ब्रजपुरे,
कृपा-डोर गलाय बान्धिया।
दैव-माया बलात्कारे, खसाइया सेइ डोरे,
भवकूपे दिलेक डारिया।।
पुन: यदि कृपा करि; एजनारे केशे धरि',
टानिया तुलह व्रजवामे।
तबे से देखिये भाल, नतुवा पराण गेल,
कहे दीन दास नरोत्तमे।।

अनेक दु:खों के बाद मेरे गले में कृपारूपी डोरी बांधकर आपने मुझे ब्रजमण्डल में खींच लिया था परन्तु दैवी माया ने जबरदस्ती उस डोर को खिसका कर मुझे फिर संसार कूप में गिरा दिया। नरोत्तम ठाकुर जी कहते हैं हे प्रभो! पुन: यदि आप मुझ पर कृपा करें और इस दास को बालों से घसीट कर ब्रजधाम में ले जायें तब तो ठीक है, नहीं तो मेरे प्राण पखेरु उड़ जायेंगे।

श्रील नरोत्तम ठाकुर जी ने श्रील लोकनाथ गोस्वामी जी के आदेश से खेतुरी में श्रीगौरांग, श्रीबल्लभीकांत, श्रीकृष्ण, श्रीव्रजमोहन, श्रीराधारमण और श्रीराधाकांत – इन छ: विग्रहों की प्रतिष्ठा की थी। खेतुरी में श्रीविग्रहों की प्रतिष्ठा के उपलक्ष में नरोत्तम ठाकुर जी ने जो महोत्सव किया था वह आज तक वैष्णव समाज में प्रसिद्ध है।

"नरोत्तम ये समये गौड़देश आइला।
प्रभुलोकनाथ से-समय आज्ञा कैला।।
श्रीगौरांग कृष्णेर श्रीविग्रह-सेवन।
श्रीवैष्णव सेवा श्रीप्रभुर संकीर्त्तन।।
यैछे आज्ञा कैला, तैछे हइला तत्पर।
कैला छय सेवा श्रीविग्रह मनोहर।।
अति से तात्पर्य सदा निमग्न सेवाय।
शुनिते से सब नाम पराण जुड़ाय।।
गौरांग, वल्लभीकांत, श्रीकृष्ण, ब्रजमोहन।
राधारमण, हे राधे राधाकान्त नमोस्तुते।।
भक्तिरत्नाकर 1/422-26

अर्थात् नरोत्तम जी जब गौड़देश में आये तो उस समय लोकनाथ जी ने उन्हें श्रीगौरांग महाप्रभु व श्रीकृष्ण के विग्रहों की सेवा, श्री वैष्णव सेवा और श्री प्रभु का नाम संकीर्त्तन करने का आदेश दिया। जैसे गुरु जी ने नरोत्तम ठाकुर जी को आज्ञा दी, वैसे ही नरोत्तम जी ने सेवा में तत्पर होकर मन को हरण कर लेने वाली श्रीविग्रह सेवा करनी प्रारम्भ कर दी। वे गौरांग, वल्लभीकांत, श्रीकृष्ण, ब्रजमोहन, राधारमण तथा राधाकान्त – छ: विग्रहों की सेवा करते थे। नरोत्तम ठाकुर जी हर समय उन सबकी सेवा में निमग्न रहते थे जिनके केवलमात्र नामों को ही सुन लेने से प्राणों को ठंडक पहुंचती है।

महोत्सव करने से पहले श्रील नरोत्तम ठाकुर जी ने श्रीगौड़मण्डल और श्री क्षेत्रमण्डल की परिक्रमा करते हुए विभिन्न स्थानों के दर्शन और गौर पार्षदों की कृपा प्राप्त की थी। उन्होंने सप्तग्राम में श्रीउद्धारणदत्त ठाकुर जी के श्रीपाट, खड़दह में श्री परमेश्वरी दास ठाकुर और श्रीनित्यानन्द शक्ति श्रीवसुधा व श्री जाह्नवादेवी, खानाकुल कृष्णनगर में श्री अभिराम ठाकुर, श्रीनृसिंहपुर में श्रीश्यामानन्द प्रभु, श्रीखण्ड में श्रीनरहरि सरकार ठाकुर और श्रीरघुनन्दन ठाकुर जी के श्रीपाट एकचक्रधाम में श्रीनित्यानन्द प्रभु जी के आविर्भाव स्थल एवं नीलाचल में श्रीगोपीनाथ आचार्य जी का स्थान, हरिदास ठाकुर जी की समाधि, गदाधर पण्डित जी का स्थान, जगन्नाथ मन्दिर, गुण्डिचा मन्दिर, जगन्नाथ बल्लभ उद्यान, नरेन्द्र सरोवर इत्यादि का दर्शन किया था। खेतुरी में श्रीविग्रह प्रतिष्ठा के महोत्सव में उस समय के लगभग सभी वैष्णव उपस्थित थे। नृसिंहपुर से श्रीश्यामानन्द प्रभु, खड़दह से श्रीजाह्नवा देवी के साथ श्रीपरमेश्वरी दास, कृष्णदास सरखेल, माधव आचार्य, रघुपति वैद्य, मीनकेतन रामदास, मुरारी चैतन्यदास, ज्ञानदास, महीधर, श्रीशंकर, कमलाकर पिप्पलाई, गौरांगदास, नकड़ि, कृष्णदास, दामोदर, बलरामदास, श्रीमुकुन्द और श्रीवृन्दावनदास ठाकुर, श्रीखंड से श्रीरघुनन्दन ठाकुर भक्तों के साथ, नवद्वीप से श्रीपति, श्रीनिधी इत्यादि भक्त, शान्तिपुर से श्रीअद्वैताचार्य जी के पुत्र श्रीअच्युतानन्द, श्रीकृष्ण मिश्र, श्रीगोपाल मिश्र इत्यादि; अम्बिका कालना से श्रीहृदय चैतन्य प्रभु और अन्य - 2

भक्तों ने खेतुरी उत्सव में योगदान दिया था। श्रील निवासाचार्य प्रभु जी की उपस्थिति एवं पौरोहित्य में वहां श्रीविग्रह प्रतिष्ठा महोत्सव सुसम्पन्न हुआ था। श्रीमन्महाप्रभु जी भी अपने गणों के साथ खेतुरी में नरोत्तम ठाकुर जी के संकीर्त्तन महोत्सव में प्रकट हुये थे।

"कहिते कि संकीर्त्तन सुखेर घटाय।
गणसह अवतीर्ण हइला गौरराय।।
मेघेते उदय विद्युतेर पुन्ज यैछे।
संकीर्त्तन मेघे प्रभु प्रकटये तैछे।।"

भक्तिरत्नाकर 10/571-572

"किबानन्दे विह्वल अद्वैत नित्यानन्द।
किवा भक्तमण्डली मध्येते गौरचन्द्र।।
प्रकाशिला प्रभु किवा अद्भुत करुणा।
किवा ए विलास! इहा बुझे कोन जना।।
श्रीनिवास नरोत्तमे किवा अनुग्रह।
दुँहु अभिलाष पूर्ण कैला गण सह।।"

श्रीभक्तिरत्नाकर - 10/605-607

अर्थात उस संकीर्तन रूप घटाओं का क्या कहना, हमारे यहाँ तो अपने पार्षदों के साथ स्वयं गौरचन्द्र जी ही प्रकट हो गये। घने बादलों के बीच जिस प्रकार बिजली सी चमकती है, ठीक उसी प्रकार संकीर्तन रूपी घने मेघों के बीच महाप्रभु श्रीगौर सुन्दर जी प्रकट हो रहे थे।

किस आनन्द में विह्वल हैं – श्री अद्वैताचार्य जी व नित्यानन्द जी तथा किस आनन्द में हैं भक्त मण्डली के साथ श्री गौरचन्द्र जी, इसे समझना मुश्किल ही नहीं असम्भव भी है। बस यही समझो कि महाप्रभु जी ने अपनी अद्भुत करुणा को प्रकाशित किया हुआ है। महाप्रभु श्रीगौरहरि जी ने श्रीनिवास आचार्य और नरोत्तम ठाकुर जी पर कृपा करने के लिए व दोनों की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए ही अपने पार्षदों के साथ प्रकट होने की ये लीला की थी।

खेतुरी में महोत्सव के पश्चात श्रील नरोत्तम ठाकुर जी का यश चारों ओर फैल गया। श्रीरामकृष्ण आचार्य, श्रीगंगानारायाण चक्रवर्ती इत्यादि विशिष्ट ब्राह्मणगण श्रीलनरोत्तम ठाकुर जी के शिष्य हो गये थे। श्रीनरहरि चक्रवर्ती ठाकुर (घनश्याम) जी द्वारा विरचित 'नरोत्तम विलास' में नरोत्तम ठाकुर जी का चरित्र विस्तृत रूप से वर्णित हुआ है। उसे पढ़ने से नरोत्तम ठाकुर जी की अलौकिक महिमा का पता लगता है। गोपालपुर ग्राम में श्रीविप्रदास ब्राह्मण के धान के खलिहान में एक भयंकर सर्प था। उसके भय से कोई भी वहां नहीं जाता था। परन्तु श्रील नरोत्तम ठाकुर जी के वहां जाने से वह सर्प वहां से गायब हो गया। उसी खलिहान से गौर, विष्णुप्रिया जी का विग्रह प्रकट होकर नरोत्तम ठाकुर जी की गोद में आ गया। "गोला हैते प्रियासह श्रीगौरसुन्दर। क्रोड़े आइला हैल सर्व नयनगोचर।।" – भक्तिरत्नाकर 10/202 सभी ये

देखकर आश्चर्यचकित हो गये। इस समय ये विग्रह गम्भीला में है। कोई एक स्मार्त्त ब्राह्मण अध्यापक नरोत्तम ठाकुर को शूद्र समझता था जिसके कारण उसे कोढ़ हो गया था। बाद में स्वप्न में भगवती देवी द्वारा आदेश करने पर उसने नरोत्तम ठाकुर जी के चरणों में गिर कर क्षमा मांगी तब जाकर उसका कोढ़ दूर हुआ।

ब्राह्मण श्री शिवानन्द आचार्य के दो पुत्र हरिराम आचार्य और रामकृष्ण आचार्य अपने पिताजी के आदेश से देवी को बलि देने के उद्देश्य से बकरी लेकर जा रहे थे। रास्ते में श्रील नरोत्तम ठाकुर और श्रीरामचन्द्र कविराज के अपूर्व दिव्य रूप दर्शन कर वे आकर्षित हो गये। उन्हें बलि के लिये बकरी ले जाते देख श्रील नरोत्तम ठाकुर जी ने उन्हें राजसिक और तामसिक पूजा एवं हिंसा के अशुभ परिणामों के बारे में समझाया तथा यह भी समझाया कि वे ये सब छोड़कर निष्काम भाव से भगवान का भजन करें। निष्काम भाव से भगवान के भजन के उपदेश का फल यह हुआ कि उन्होंने बकरी को छोड़ दिया और पद्मानदी में स्नान कर श्रीनरोत्तम ठाकुर जी के पास आये और उनसे दीक्षा ले ली। दीक्षा लेकर उन्होंने कृष्ण एवं उनके भक्तों की सेवा का दृढ़व्रत ले लिया। नरोत्तम जी के इस कार्य से उनके पिता क्रुद्ध हो गये और वैष्णव सिद्धान्त का खण्डन करने के लिये मिथिला से मुरारी नाम के एक स्मार्त्त पण्डित को ले आये। किन्तु हरिराम और रामकृष्ण

नामक नरोत्तम ठाकुर के दो शिष्यों ने ही गुरुकृपा के बल से उस स्मार्त पण्डित के सारे विचारों का शास्त्र की युक्तियों के साथ खण्डन कर दिया। तब शिवानन्द ने दुःखी होकर रात के समय देवी के सामने अपना दुःख निवेदन किया। देवी ने उसे स्वप्न में डांटते हुए वैष्णवों के विरुद्ध आचरण करने को मना किया।

क्रमशः श्रीगंगानारायण चक्रवर्ती, श्री जगन्नाथ आचार्य इत्यादि प्रसिद्ध ब्राह्मण नरोत्तम ठाकुर जी के शिष्य होने लगे जिससे स्मार्त्त ब्राह्मणों ने ईर्ष्या परवश राजा नरसिंह के पास शिकायत लगायी कि नरोत्तम शूद्र होते हुये भी ब्राह्मणों को शिष्य बना रहा है, वह जादू द्वारा सब को मोहित कर रहा है, उसको ऐसा कार्य करने से रोकना ही उचित है। राजा के साथ परामर्श करने के उपरान्त ये फैसला हुआ कि महादिग्विजयी पण्डित श्रीरूपनारायण के द्वारा नरोत्तम ठाकुर को हराना होगा। राजा स्वयं दिग्विजयी पण्डित को साथ लेकर खेतुरी धाम की ओर चल पड़े। किन्तु उनके इस प्रकार दुष्ट अभिप्राय की बात सुनकर श्रीरामचन्द्र कविराज और गंगानारायण चक्रवर्ती अत्यन्त दुःखी हुये। जब उन्हें ये सुनने को मिला कि राजा दिग्विजयी पण्डित एवं पण्डितों के साथ एक दिन कुमारपुर के बाजार में विश्राम करने के बाद फिर खेतुरी में आयेंगे तो ये सुनते ही दोनों कुमारपुर के बाजार में पहुंचे और वहां पर कुम्हार और पान-सुपारी की दुकानें लगा कर बैठ गये।

स्मार्त्त पण्डित जब कुम्हार और पान सुपारी की दुकान पर आये तो रामचन्द्र और गंगानारायण उनके साथ संस्कृत में बात करने लगे। दुकानदारों का ऐसा पाण्डित्य देखकर वे आश्चर्यचकित हो गये। फिर छात्रों द्वारा तर्क शुरु करने पर नरोत्तम ठाकुर के दोनों शिष्यों ने उनके तर्कों का खण्डन कर दिया। ये घटना जब राजा ने सुनी तो राजा भी पण्डितों के साथ वहां आकर शास्त्रार्थ करने लगे। रामचन्द्र कविराज और गंगानारायण चक्रवर्ती ने बातों ही बातों में उनके सारे विचारों का खण्डन कर शुद्ध भक्ति सिद्धान्तों की स्थापना कर दी। राजा और पण्डित सामान्य दुकानदारों का ऐसा अद्‌भुत पाण्डित्य देखकर स्तम्भित हो गए। राजा को जब ये मालूम हुआ कि ये दोनों नरोत्तम ठाकुर के शिष्य हैं तो राजा ने पण्डितों को कहा कि जिनके शिष्यों के सामने ही आप लोग परास्त हो गये हो तो उनके गुरु के पास जाने से क्या होगा। बाद में राजा नरसिंह और रूपनारायण ने देवी के द्वारा स्वप्न में आदेश पाने पर नरोत्तम ठाकुर जी से अपने किये अपराध के लिये क्षमा मांगी एवं राधाकृष्ण के भक्त बन गये। श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में ऐसा लिखा है कि राजधानी खेतुरी से एक कोस दूर 'भजनटूली' पर ठाकुर महाशय का आश्रम था। श्रीलनरोत्तम ठाकुर जी ने कीर्त्तन के द्वारा ही प्रचार किया था। ठाकुर महाशय ने 'गरानहाटी' नामक कीर्त्तन के अपूर्व सुरों का प्रवर्त्तन किया था। उनके द्वारा रचित 'प्रार्थना' और 'प्रेमभक्ति

चन्द्रिका' भक्तों के प्राणस्वरूप हैं। भक्तों की अलग-2 अवस्था में हृदय के अलग-2 भावों के अनुरूप कीर्त्तन उसमें विद्यमान हैं जो कि भक्तों के मर्मस्पर्शी हैं। नरोत्तम ठाकुर जी की 'प्रार्थना' और 'प्रेम भक्ति चन्द्रिका' भक्तों को इतनी प्रिय है कि उसके न जाने कितने संस्करण छप चुके हैं। सुदूर मणिपुर राज्य में आज भी नरोत्तम ठाकुर जी का अद्भुत प्रभाव देखने को मिलता है। वहां पर वैष्णव धर्म का प्रचार इन महापुरुष की अलौकिक शक्ति के प्रभाव से ही हुआ है, ये सब स्वीकार करते हैं। नरोत्तम ठाकुर जी के पदावली कीर्त्तन आज भी मणिपुर के घर-घर में गाये जा रहे हैं।

श्रीनिवासाचार्य जी के शिष्य श्रीराम चन्द्र कविराज नरोत्तम ठाकुर जी के चिरसंगी और अन्तरंग सुहृद थे। पहले श्रीरामचन्द्र कविराज के एवं बाद में श्रीनिवासाचार्य जी के अप्रकट का संवाद सुनकर नरोत्तम ठाकुर जी ने विरह सागर में निमज्जित होकर जिस भाव से गान किया था उसको सुनने से पाषाण हृदय भी पिघल जाते हैं।

"ये आनिल प्रेमधन करुणा प्रचुर।

हेन प्रभु कोथा गेला आचार्य ठाकुर।।

काँहा मोर स्वरूप-रूप, काँहा सनातन?

काँहा दास रघुनाथ पतितपावन?

काँहा मोर भट्टयुग, काँहा कविराज?

एककाले कोथा गेला गोरा नटराज?

पाषाणे कुटिब माथा अनले पशिव।

गौरांग गुणेर निधि कोथा गेले पाव?

से सब संगीर संगे ये कैल विलास।

से संग ना पाञा कान्दे नरोत्तमदास।।"

अर्थात अतिशय करुणा करके जो प्रेमधन को लाये थे, वे आचार्य ठाकुर कहाँ चले गये? कहाँ मेरे वे स्वरूप दामोदर हैं, कहाँ वे रूप गोस्वामी जी हैं, कहाँ सनातन गोस्वामी जी हैं तथा कहाँ वे पतित-पावन रघुनाथ दास गोस्वामी जी हैं। कहाँ मेरे गोपाल भट्ट गोस्वामी जी हैं, कहाँ मेरे रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी हैं तथा कहाँ मेरे वे कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी हैं। ये सभी के सभी गौरजन एक साथ कहाँ चले गये?

मैं पत्थर पर अपना सिर पटक दूँ या आग में कूद जाऊँ--- मैं कहाँ जाऊँ--- वे गौरांग गुणनिधि मुझे कहाँ जाने से मिलेंगे। उन महाप्रभु जी के संगियों के संग जिन्होंने लीला विलास की, उन सब को न पाकर श्रीनरोत्तम दास ठाकुर जी क्रन्दन करते हैं।

श्रील नरोत्तम ठाकुर जी गौरांग महाप्रभु जी के निजजन एवं रूपानुगवर थे, ऐसा उनका रूपगोस्वामी जी के पादपद्मों में अनन्य निष्ठासूचक कीर्तन से जाना जाता है।

श्री रूपमंजरी - पद, सेइ मोर सम्पद,
सेइ मोर भजन पूजन।
सेइ मोर प्राणधन, सेइ मोर आभरण,
सेइ मोर जीवनेर जीवन।।
सेइ मोर रसनिधि, सेइमोर वांच्छा सिद्धि,
सेइ मोर वेदेर धरम।
सेइ व्रत, सेइ तप, सेइ मोर मन्त्र जप,
सेइ मोर धरम - करम।।
अनुकूल हबे विधि, से पदे हइबे सिद्धि,
निरखिव ए दुइनयने।
से रूपमाधुरीराशि, प्राण - कुवलय - शशी,
प्रफुल्लित हबे निशिदिने।।
तुया - अदर्शन - अहि, गरले जारल देही,
चिरदिन तापित जीवन।
हा हा प्रभु! कर दया, देह मोरे पदछाया,
नरोत्तम लइल शरण।।

अर्थात श्री रूप मंजरी के श्रीचरण ही मेरी सम्पत्ति हैं, वे ही मेरा भजन - पूजन हैं। वे ही मेरे प्राणधन हैं, वे ही मेरे आभरण हैं। वे ही मेरे जीवन के जीवन हैं, वे ही मेरी रस - निधि हैं, वे ही मेरी वांच्छा - सिद्धि हैं, वे ही मेरे वेद - धर्म स्वरूप हैं। वे ही मेरा व्रत हैं। वे ही मेरी तपस्या हैं, वे ही मेरे मन्त्र जप हैं, वे ही मेरे धर्म - कर्म हैं, जब कभी विधि

अनुकूल होगा, तब ही मेरी उन चरणों में सिद्धि होगी और तब मैं इन दोनों नेत्रों से दर्शन करूंगा अर्थात् नयन भर कर दर्शन करूंगा। उस अपार रूप माधुरी को देख कर मेरे प्राण रूप कुमुद रात - दिन प्रफुल्लित होंगे। आपके अदर्शन रूप सर्प के विष से यह शरीर जला जा रहा है जिससे मेरा ये जीवन चिरकाल से तापित है। श्रीनरोत्तम दास ठाकुर जी कहते हैं - हा! हा! प्रभो!! मुझ पर दया कीजिये, मुझे अपनी पदछाया प्रदान कीजिये। मैंने आपकी शरण ग्रहण की है।

श्रील नरोत्तम ठाकुर जी ने कार्तिकी कृष्णा पन्चमी को तिरोधान लीला की थी।

श्रीनरोत्तम - प्रभोरष्टकम्

श्रीकृष्णनामामृतवर्षिवक्त्र - चन्द्रप्रभा - धवस्त - तमोभराय।
गौरांग - देवानुचराय तस्मै नमो नमः श्रील - नरोत्तमाय।।
संकीर्तनानन्दज मन्दहास्य दन्तद्युति - द्योतित - दिङ्मुखाय।
स्वेदाश्रुधारा - स्नपिताय तस्मै नमो नमः श्रील - नरोत्तमाय।।
मृदंग नाद - श्रुतिमात्र चञ्चलत् पदाम्बुजामन्द - मनोहराय।
सद्यः समुद्यत् - पुलकाय तस्मै नमो नमः श्रील - नरोत्तमाय।।
गन्धर्व - गर्व - क्षपण - स्वलास्य - विस्मापिताशेष - कृति - व्रजाय।
स्वसृष्ट - गान - प्रथिताय तस्मै नमो नमः श्रील - नरोत्तमाय।।
आनन्द - मूर्छावनिपात - भात - धूली - भरालंकृत विग्रहाय।
यद्दर्शनं भाग्यभरेण तस्मै नमो नमः श्रील - नरोत्तमाय।।
स्थले स्थले यस्य कृपा - प्रपाभिः कृष्णान्यतृष्णा जन - संहतीनाम्

निर्मूलिता एवं भवन्ति तस्मै नमो नमः श्रील-नरोत्तमाय॥
यद्भक्ति-निष्ठोपल-रेखिकेवस्पर्शः पुनः स्पर्शगणीव यस्य।
प्रामाण्यमेवं श्रुतिवद् यदीयं। तस्मै नमः श्रील-नरोत्तमाय॥
मूर्तैव भक्तिः किमयं किमेष वैराग्यसारस्तनुमान् नृलोके।
सम्भाव्यते यः कृतिभिः सदैव तस्मै नमः श्रील-नरोत्तमाय॥

अर्थात : श्रीकृष्णनाम अमृत का वर्षण करने वाले जिनके श्रीमुखचन्द्र की छटा से जीव का अज्ञान रूपी अन्धकार जड़ से ही विनष्ट हो जाता है, उन्हीं श्री गौरांगदेव जी के अनुचर श्री श्री नरोत्तम ठाकुर महाशय जी को बारम्बार प्रणाम है। श्रीकृष्ण संकीर्तन के आनन्द के कारण मंद-2 मुस्काते समय जिनके दांतों की कान्ति की छटा से दिग्वधुओं के मुख भी खिल उठते हैं एवं उस समय प्रेमविकार स्वरूप पसीने और अश्रुओं की धारा से अभिषिक्त या भीगे हुये रहते हैं उन श्रीश्रील नरोत्तमदास ठाकुर महाशय को बारम्बार प्रणाम है। मधुर मृदंगध्वनि सुनते ही जिनके चंचल चरण-कमल सज्जनगणों के मन को हरण करते हैं एवं उसी समय जिनके श्रीअंग पुलकायमान हो उठते हैं, उन्हीं श्री श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशय को बारम्बार प्रणाम है। जो गन्धर्वों के अभिमान को चूर करने वाले अपने नृत्य से अत्यन्त दक्ष व्यक्तियों के मन में विस्मय पैदा करने वाले हैं और स्वरचित गीतावली के प्रभाव से जिन का यश चारों तरफ फैल गया है उन्हीं श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशय को बारम्बार प्रणाम है। प्रेमानन्द की

अधिकता से जो मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ते हैं, उड़ती हुई धूलि से जिनके श्रीअंग सुशोभित होते हैं और परम सौभाग्य होने से ही जिनके दर्शन होते हैं उन श्रील नरोत्तम दास ठाकुर महाशय को बारम्बार प्रणाम है। जगह-जगह पर जिनके कृपा रूपी जल के प्याऊ लगे हुये हैं जिनके कारण लोगों की विषयों की प्यास समूल नष्ट हो रही है - उन्हीं श्रील नरोत्तम दास ठाकुर महाशय को बारम्बार प्रणाम है। जिनकी भक्ति में निष्ठा पत्थर पर खींची रेखा के समान दृढ़ है, जिनके श्रीअंगों का स्पर्श करने से वैसे ही सारी वान्छायें पूर्ण हो जाती हैं जैसे पारसमणि को स्पर्श करने से, जिनके मुख से निकले हुये वाक्य वेद-वाक्यों की तरह ही प्रमाणित हैं, उन्हीं श्रील नरोत्तम दास ठाकुर महाशय को बारम्बार प्रणाम है। जिनके दर्शन कर पराविद्या में विशारद मनीषि लोग हमेशा मन-2 में ऐसा सोचते हैं, कि क्या ये मूर्तिमती भक्ति नरलोक में रह रही है; या ये वैराग्य के सार के विग्रह स्वरूप हैं, उन्हीं श्रील नरोत्तम दास ठाकुर महाशय जी को बारम्बार प्रणाम है।

श्री श्यामानन्द प्रभु

श्रीश्यामानन्द प्रभु श्रीकृष्णलीला के द्वादश गोपालों में से एक सुबल सखा के अनुगत के अनुगत पार्षद थे। श्रीगौरीदास पण्डित श्रीकृष्णलीला में सुबल सखा थे। गौरीदास पण्डित के शिष्य थे हृदयानन्द (हृदयचैतन्य), और हृदयानन्द जी के शिष्य थे श्यामानन्द जी।

"यं लोका भुवि कीर्त्तयन्ति हृदयानन्दस्य शिष्यं प्रियं
सख्ये श्रीसुबलस्य यं भगवतः प्रेष्ठानुशिष्यं तथा
स श्रीमान रसिकेन्द्रमस्तकमणिष्चित्ते ममाहर्निशं
श्रीराधाप्रिय-नर्ममर्मसु रुचिं सम्पादयन् भासताम्।।"

– श्रीश्यामानन्दशतक।

इस संसार में जिन्हें श्रीमद्हृदयानन्द जी के प्रिय शिष्य के रूप में जाना जाता है। जो श्रीकृष्णलीला में सुबलसखा के अनुगत होने के कारण स्वयं भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के प्रियतम जनों के अनुशिष्य हैं, वही रसिकराज मुकुटमणि सुशोभित श्यामानन्द प्रभु श्रीराधामाधव जी की प्रिय अन्तरंगलीला विलास सेवा में, मेरा अनुराग पैदा कर दिन रात मेरे हृदय में विराजित रहें।

श्रीश्यामानन्द प्रभु 1456 शकाब्द में मधुपूर्णिमा तिथि को (चैत्र पूर्णिमा तिथि को) मेदिनीपुर ज़िले के अन्तर्गत

खड़गपुर रेलवे स्टेशन के नज़दीक ही धारेन्दाबहादुर पुर ग्राम में पिता श्रीकृष्ण मण्डल और माता श्री दुरिका को अवलम्बन कर आविर्भूत हुये थे। श्यामानन्द प्रभु जी के पिता श्री कृष्णमण्डल जी सुवर्ण रेखा नदी के किनारे दण्डेश्वर ग्राम में रहते थे। श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान (शब्दकोश) में ऐसा लिखा है कि श्रीकृष्ण मण्डल दण्डेश्वर गांव के पास अम्बुया में रहते थे। श्यामानन्द जी के पिता जी पहले गौड़देश (बंगाल) में वास करते थे तथा बाद में वहां से उड़ीसा के दण्डेश्वर ग्राम में और फिर वहां से धारेन्दाबहादुरपुर के अम्बुया में आकर रहने लगे थे। धारेन्दा, बहादुरपुर रायणी या रोहिणी, गोपीवल्लभपुर तथा नृसिंहपुर ये पांच श्रीपाट श्रीश्यामानन्द प्रभु जी के शिष्यों के प्रिय स्थान हैं। श्रीश्यामानन्द प्रभु सद्गोप कुल में आविर्भूत हुये थे। वैष्णव स्वरूपतः निर्गुण हैं, वे किसी भी कुल में आविर्भूत हो सकते हैं। निम्न कुल में उनकी आविर्भाव लीला को देख कर वैष्णव में जात-पात करने से नरक की प्राप्ति होती है। 'अर्च्ये विष्णौ शिलाधीः गुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धिर्विष्णोर्वा वैष्णवाना कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बुबुद्धिः। श्रीविष्णोर्नाम्नि मन्त्रे सकलकलुषहे शब्दसामान्य बुद्धिर्विष्णो सर्वेष्वरेशे तदितर समधीर्यस्य वा नारकी सः।।' (पद्मपुराण)

"नीच जाति नहे कृष्णभजने अयोग्य ।
सत्कुल विप्र नहे भजनेर योग्य ।।
येइ भजे सेइ बड़ अभक्त हीन छार ।

कृष्णभजने नाहि जाति-कुलादि विचार ।।"

चै.च.अ. 4/66-67

अर्थात नीच जाति श्रीकृष्ण का भजन करने के अयोग्य नहीं है। उसे भी कृष्ण भजन करने का अधिकार है। ऐसा भी नहीं है कि सत्कुल में उत्पन्न ब्राह्मण ही श्रीकृष्ण भजन के योग्य या श्रीकृष्ण भजन का अधिकारी है। जो भजन करता है वही श्रेष्ठ है और जो भजन नहीं करता वह अभक्त तुच्छ है। श्रीकृष्ण भजन में जाति कुल आदि का कोई भी विचार नहीं है। दीन-हीन व्यक्ति पर भगवान अधिक दया करते हैं और कुलीन पण्डित एवं धनी लोगों पर भगवान दया नहीं करते हैं क्योंकि उनमें अधिक अभिमान होता है।

न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पुज्यो यथाह्यहम्।।

- हरिभक्तिविलास-धृत-प्रमाणवचन

भक्तिहीन चतुर्वेदी ब्राह्मण मुझे प्रिय नहीं है, किन्तु चण्डाल कुल में जन्म ग्रहण करने पर भी मेरा भक्त मुझे बहुत प्रिय है, वही दान का सत्पात्र है तथा उसकी कृपा ही ग्रहण करने योग्य है। वह निश्चय ही मेरे समान पूज्य है।

श्यामानन्द प्रभु से पहले एक पुत्र और एक कन्या के गुज़र जाने से पिता-माता ने ये संकल्प लिया था कि इस बार जो पुत्र होगा उसे विष्णु पादपद्मों में अर्पण कर देंगे। बहुत

दुःख पाने के पश्चात माता-पिता ने श्यामानन्द जी को पुत्र रूप से प्राप्त कर दुःखों के साथ पालन किया था, इसलिये पहले उन्होंने इसका नाम दुःखी रखा था।

"दण्डेश्वर ग्रामे वास सर्वांशे प्रबल। माता श्री दुरिका, पिता श्रीकृष्णमण्डल।। सद्गोपकुलेते श्रेष्ठ अति सुचरित। कृष्ण ते सर्वस्व ताँर भक्ते अति प्रीत।। श्रीकृष्ण मण्डल-दुरिकार गुण-गण। ग्रन्थेर बाहुल्य-भये नाहय वर्णन।। धारेन्दा-बाहादुरपुरेते पूर्वस्थिति। शिष्टलोक कहे श्यामानन्द जन्म तिथि।। कोनमते मण्डलेर नाहि प्रतिबन्ध। पुत्रकन्या गत हैले हैल श्यामानन्द।। माता-पिता दुःख सह पालन करिल। एइ हेतु दुःखी नाम प्रथमे हइल।। - भ. र 1/351-55, 359

श्यामानन्द प्रभु के माता-पिताजी ने यथा समय पुत्र के अन्नप्राशन्न, चूड़ाकरणादि सम्पन्न किये। धीरे-धीरे पुत्र बड़ा हुआ और व्याकरण शास्त्र का अध्ययन कर उसमें पारंगत हो गया। पुत्र की प्रतिभा और उसका धर्म में अनुराग देख माता-पिता उल्लसित हुये। अब दुःखी (श्यामानन्द) वैष्णवों के मुख से श्रीगौरनित्यानन्द जी की महिमा सुनने के पश्चात हर समय उनके अनुकीर्तन में लगे रहते। श्रीगौरनित्यानन्द जी की महिमा का कीर्त्तन और राधाकृष्ण जी की लीला का गान करते समय उनके दोनों नेत्रों से नदी की धारा के समान अश्रु प्रवाहित होते रहते थे। सर्वतोभावेन कृष्ण भजन में लगे रहने के लिये इनके माता-पिता ने इन्हें कृष्ण मन्त्र की दीक्षा लेने

का उपदेश दिया। माता-पिता के अभिप्राय को समझकर दु:खी ने कहा कि वे अम्बिका कालना में जाकर श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्द जी के प्रिय गौरीदास जी के शिष्य हृदय चैतन्य जी से दीक्षा लेंगे। इससे गंगा जी के दर्शनों और गंगा स्नान का सौभाग्य भी हो जायेगा और मुझे मेरे गुरुजी हृदय चैतन्य जी से दीक्षा भी मिल जायेगी। पुत्र की ऐसी इच्छा सुनकर माता-पिता जी ने खुशी-खुशी पुत्र को अनुमति दे दी। 'दु:खी' अम्बिकानगर में श्री हृदय चैतन्य प्रभु के पादपद्मों में उपस्थित हुये। परिचय जानने के पश्चात हृदय चैतन्य प्रभु ने स्नेह से भर कर उन्हें कृष्णमन्त्र प्रदान कर शिष्य बना लिया और नाम रखा कृष्णदास। तब से दु:खी - 'दु:खी कृष्णदास' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। हृदय चैतन्य प्रभु ने दु:खी कृष्णदास को वृन्दावन में जाकर भजन करने का उपदेश दिया। यद्यपि ऐसा आदेश सुन कर दु:खी कृष्णदास गुरुदेव के विरह में व्याकुल हो उठे किन्तु फिर भी गुरुजी का आदेश पालन करने के लिये नवद्वीप, गौड़मण्डल का दर्शन एवं वहां पर उपस्थित वैष्णवों से कृपा प्रार्थना करते हुये नाना तीर्थ भ्रमण करने के पश्चात वृन्दावन पहुंचे और वहां राधा-श्यामसुन्दर जी की आराधना में निमग्न हो गये। उस समय के वैष्णव जगत के श्रेष्ठ पात्रराज, षड़गोस्वामियों में से एक-श्रीजीव गोस्वामी जी के आनुगत्य में दु:खी कृष्णदास शास्त्रों का अध्ययन करने लगे। जब हृदय चैतन्य प्रभु ने दु:खी कृष्णदास की भजन निष्ठा की बात सुनी तो उन्होंने श्रीजीव गोस्वामी

जी को पत्र लिखा कि वे दु:खी कृष्णदास को अपना शिष्य समझकर उसका पालन करें। श्री निवास, नरोत्तम और दु:खी कृष्णदास तीनों ने वृन्दावन में श्रीजीव गोस्वामी जी से शास्त्र अध्ययन किया था। श्रीजीव गोस्वामी जीने श्रीनिवास, नरोत्तम और दु:खी कृष्णदास को क्रमश: आचार्य, ठाकुर और श्यामानन्द नाम प्रदान किये थे। श्रीजीव गोस्वामी जी द्वारा श्यामानन्द नाम दिये जाने का कारण ऐसा निर्दिष्ट हुआ है कि दु:खी कृष्णदास जी ने राधाश्याम सुन्दर जी को महानन्द प्रदान किया था।

"श्यामसुन्दरेर महानन्द जन्माइल।
'श्यामानन्द' नाम पुन: वृन्दावने हैल।।
श्रीजीव गोस्वामी चारु चेष्टा निरखिया।
पढाइल भक्तिग्रन्थ निकटे राखिया।।"

—भक्तिरत्नाकर 1/401-402

श्रील जीव गोस्वामी जी ने गोस्वामियों द्वारा रचित सभी ग्रन्थ देकर 1504 शकाब्द में श्रीनिवासाचार्य, नरोत्तम ठाकुर और श्रीश्यामानन्द प्रभु को गौड़देश और उड़ीसा में नाम प्रेम का प्रचार करने के लिये भेजा था। राजा वीरहाम्बीर के स्थान वनविष्णुपुर में ग्रन्थों के चोरी हो जाने व बाद में उनके मिलने का प्रसंग श्री निवासाचार्य जी के चरित्र में वर्णित हुआ है।

श्रील नरोत्तम ठाकुर जी ने उत्तर बंगाल में एवं श्रील श्यामानन्द प्रभु जी ने उड़ीसा में गौड़ीय वैष्णव धर्म का प्रचार

किया था। पहले मेदिनीपुर ज़िला उड़ीसा के साम्राज्य के अन्तर्गत ही था। इसलिये मेदिनीपुर शहर में श्यामानन्द प्रभु जी की पावन स्मृति के संरक्षण के लिये वहां पर संस्थापित मठ की नाम 'श्री श्यामानन्द गौड़ीय मठ' रखा गया है। यद्यपि श्रीश्यामानन्द प्रभु जी ने हृदय चैतन्य प्रभु से दीक्षा ली थी तथापि अपने गुरुदेव जी के निर्देशानुसार ही श्रीजीव गोस्वामी जी का संग करने और उनकी सेवा करने से मधुर रस की कृष्ण सेवा में उनकी रुचि हो गयी थी। हृदय चैतन्य प्रभु जी ने द्वादश गोपालों में से एक अर्थात सुबल सखा का अभिन्न स्वरूप होने के कारण सख्य रस से गौर नित्यानन्द जी का भजन किया था। जो लोग ऐसा समझते हैं कि श्यामानन्द प्रभुने उन्नत अधिकार मधुर रस में सम्यक रूप से श्रीकृष्ण को प्रसन्न कर अपने दीक्षागुरु के पादपद्मों में अपराध किया है, उनका ऐसा सोचना उचित नहीं है। मधुर रस में भी सख्य रस निहित है। शिष्य की समुन्नति से गुरुदेव जी की महिमा ही बढ़ती है। श्यामानन्द प्रभु राधारानी जी के कितने प्रिय थे ये श्रीजीव गोस्वामी जी के आदेश से गौड़मण्डल जाने से पहले वृन्दावन की एक अलौकिक घटना से निश्चित रूप से प्रमाणित हो जाता है। घटना इस प्रकार है कि एक दिन श्यामानन्द प्रभु प्रेमाविष्ट होकर वृन्दावन के रासमण्डल की झाड़ू से सफाई कर रहे थे कि उसी समय राधारानी जी की अलौकिक कृपा से उन्हें वहां राधारानी जी के श्रीचरणों का एक नुपुर मिला।

श्यामानन्द प्रभु जी ने अत्यन्त उल्लास के साथ उस नुपुर को अपने मस्तक से स्पर्श किया जिससे उनके ललाट पर नूपुर जैसा ही तिलक प्रकट हो गया। यही से श्यामानन्द प्रभु जी के परिवार (सम्प्रदाय) में नूपुर तिलक का प्रवर्तन हुआ। श्रीनरोत्तम ठाकुर और श्री श्यामानन्द प्रभु ने मुख्य रूप से कीर्तन के द्वारा ही प्रचार किया था। श्री निवासाचार्य प्रभु, श्री नरोत्तम ठाकुर और श्री श्यामानन्द जी द्वारा प्रवर्तित कीर्तनों के सुर क्रमशः 'मनोहर साही', 'गराणहाटी', और 'रेणेटी' थे। प्राणों को हर लेने वाले सुरों में कीर्तन करने से ही श्रोता मोहित हो जाते थे। अभी इन सब सुरों का प्रचलन देखने को नहीं मिलता। श्यामानन्द प्रभु के प्रचार के फल से उड़ीसा के कई मुसलमान भी उनके शिष्य हो गये थे। श्यामानन्द प्रभु के असंख्य शिष्यों में से श्री रसिक मुरारी प्रधान थे। श्री रसिकानन्द रोहिणी ग्राम के अधिपति श्री अच्युत के पुत्र थे। उनका एक और नाम था 'मुरारी'। दोनों नामों को मिलाकर उन्हें रसिक-मुरारी भी कहा जाता है। श्रीरसिकानन्द देव गोस्वामी अलौकिक शक्ति से सम्पन्न आचार्य थे। अभी भी उड़ीसा के गांव-2 में उनकी महिमा सुनने को मिलती है। श्यामानन्द प्रभु के असंख्य शिष्यों में से कुछ और मुख्य शिष्यों के नामों का भक्तिरत्नाकर ग्रंथ में उल्लेख हुआ है –

"श्यामानन्द शिष्य करिलेन स्थाने-स्थाने। केवा ना पवित्र हय ता' सवार नामे।। राधानन्द, श्रीपुरुषोत्तम, मनोहर।

चिन्तामणि, वलभद्र, श्रीजगदीश्वर।। उद्धव, अक्रूर, मधुवन, श्रीगोविन्द । जगन्नाथ, गदाधर, श्रीआनन्दानन्द ।। श्री राधामोहन आदि शिष्यगण संगे। सदा भासे संकीर्त्तन-सुखेर तरंगे।। श्रीश्यामानन्देर महा अद्भुत विलास। वर्णे कविगण या'ते सभार उल्लास।।" – भक्ति रत्नाकर 15/62-66

इसके अतिरिक्त श्रीश्यामानन्द प्रभु ने श्री दामोदर नामक एक योगी पर कृपा कर उसे भक्ति रस में परिवर्तित कर दिया था। उसके सम्बन्ध में श्री नरहरि चक्रवर्ति ने श्री भक्तिरत्नाकर ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा है।

"दामोदर नामे एक योगाभ्यासी छिला। ता'रे कृपा करि' भक्ति रसे डुबाइला।। श्रीश्यामानन्देर शिष्य हैया दामोदर। 'निताई' 'चैतन्य' बलि' कादे निरन्तर।। से प्रेम-आवेश देखि' केवा धैर्य धरे? 'सर्वश्रेष्ठ श्रीभक्ति' वलिया नृत्य करे।। श्यामानन्ददेव दामोदरे उद्धारिया। सर्वत्र भ्रमये भक्तिरत्न विलाईया।।"

श्री रसिक मुरारि और श्री दामोदर आदि भक्तों को साथ लेकर श्यामानन्द प्रभु ने धारेन्दा ग्राम में जो महोत्सव किया था, श्यामानन्द जी के परिवार के भक्त उसकी महिमा आज तक भी गाते हैं। श्रीश्यामानन्द प्रभु ने अपने प्रधान शिष्य श्रीरसिकानन्ददेव गोस्वामी को गोपीवल्लभपुर में अपने सेवित श्रीगोविन्द जी की सेवा समर्पित की थी। वृन्दावन में श्यामानन्द प्रभु जी के द्वारा सेवित विग्रह 'राधाश्यामसुन्दर' उनकी ही

परम्परा के भक्तों के द्वारा अब राधाश्याम सुन्दर मन्दिर में सेवित हो रहे हैं। उपरोक्त मन्दिर वृन्दावन में गौड़ीय वैष्णवों का दर्शनीय है। श्रीश्यामानन्द प्रभु जी ने अपने अन्तिम जीवन काल में उड़ीसा के नृसिंहपुर गांव में रहकर वैष्णव धर्म का प्रचार किया था। 1552 शकाब्द में आषाढ़ी कृष्णा-प्रतिपदा तिथि को श्रील श्यामानन्द प्रभु जी ने इस नृसिंहपुर गांव में ही अपनी अप्रकट लीला की थी।

श्रीराम चन्द्र कविराज

स्वर्धुन्यास्तीरभूमौ सरजनिनगरे गौड़भूपाधिपात्राद्
ब्रह्मण्याद्विष्णुभक्तादपि सुपरिचितात् श्रीचिरन्जीवसेनात्।
यः श्रीरामेन्दुनामा समजनि परमः श्रीसुनन्दाभिधायां
सोऽयं श्रीमान्नराख्ये स हि कविनृपतिः सम्यगासीदभिन्नः।।
– श्रीसंगीत माधवनाटक

गंगातीर पर स्थित सरजनि नगर में गौड़राज्य के श्रेष्ठ मंत्री द्विजभक्त, विष्णुभक्त और अच्छे जाने माने श्रीचिरन्जीव नामक पिता से श्री सुनन्दा नाम की माता के गर्भ से श्रीराम चन्द्र नामक जिस महाजन ने जन्म लिया था, वे परम रूपवान

थे। नरोत्तम नामक कविनृपति और ये दानों एक ही आत्मा थे।

"खण्डवासी चिरन्जीव सेन एक हय।
ताँहार पत्नीर नाम सुनन्दा कहय॥
दुइ पुत्र हइल ताँर परम गुणवान।
ज्येष्ठ रामचन्द्र, कनिष्ठ गोविन्द अभिधान॥
श्रीनिवासेर शिष्य रामचन्द्र कविराज।
करुणा मंजरी राम चन्द्रेर सिद्धनाम॥

श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में उद्धृत वचन

खण्डवासी भक्त श्री चिरन्जीव सेन एवं उनकी पत्नी सुनन्दा देवी को अवलम्बन कर श्रीराम चन्द्र कविराज वर्धमान ज़िले के अन्तर्गत श्रीखण्डग्राम में वैद्यवंश में आविर्भूत हुये थे। श्री गोविन्द कविराज, श्रीरामचन्द्र के छोटे भाई थे। इनके सिद्ध स्वरूप के बारे में ज्ञात होता है कि – कृष्णलीला में जो करुणामंजरी हैं वही श्रीरामचन्द्र जी के रूप में प्रकट हुई हैं। पिता के अप्रकट होने के पश्चात ये कुछ दिन नाना[13] के घर पर रहे थे तथा बाद में ये मुर्शिदाबाद ज़िले में अपने छोटे भाई गोविन्द कविराज जी के भजन स्थान तिलिया बुधुरी नामक ग्राम में जाकर रहे, जिस कारण वह स्थान रामचन्द्र जी के

---

13. श्रीरामचन्द्र कविराज जी के नानाजी का नाम श्रीदामोदर कविराज था। ये श्रीनरहरि सरकार ठाकुर जी के शिष्य थे।

श्रीपाट के नाम से प्रसिद्ध हो गया। श्रील भक्ति सिद्धान्त गोस्वामी ठाकुर जी ने केवल मात्र कुमार नगर में ही इनके श्रीपाट होने का उल्लेख किया है। उन्होंने तिलिया बुधुरी के बारे में उल्लेख नहीं किया। रामचन्द्र कविराज जी के विवाह के विषय में कुछ न लिख कर श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने उन्हें जन्म से ही संसार वैरागी लिखा है।

श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में ऐसा लिखा है कि विवाह करने पर भी रामचन्द्र कविराज जी ने कभी गृहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं किया। श्रीरामचन्द्र को विवाह के वेश में देखकर श्रीनिवासाचार्य प्रभु ने उन्हें विवाह की असारता की बात बताई जो कि रामचन्द्र के हृदय को स्पर्श कर गयी। इसी कारण उन्होंने कभी संसार में प्रवेश नहीं किया। प्रसंग एक ग्रन्थ से लिया गया है जिसकी प्रमाणिकता सर्वसम्मति से स्वीकृत नहीं है। ग्रन्थ में इस प्रकार विवरण है –

"एइ देख विवाहेर एतेक उत्साह।
अर्थ व्यय करि किने मायार कलह॥
गले फाँस दिल माया ताहा न बुझिया।
मंगल आचरे देख कौतुक करिया॥
अमंगले शुभज्ञान सदाइ करिया।
उत्सव करे लोक कृतार्थ मानिया॥"

श्री निवासाचार्य प्रभु ने स्नेह से श्री रामचन्द्र जी को दीक्षा मन्त्र प्रदान कर उन्हें अपने सेवक रूप में स्वीकार किया था। श्रीरामचन्द्र की गुरु भक्ति अतुलनीय थी। श्रील गुरुदेव की आज्ञा वे बिना विचार किये ही पालन करते थे। विष्णुपुर के राजा वीरहम्बीर श्रीनिवासाचार्य जी के शिष्य बन गये थे, किन्तु रामचन्द्र कविराज शिक्षा गुरु रूप से उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। श्रीरामचन्द्र कविराज जिस समय वृन्दावन में थे उस समय उनको श्रीजीव गोस्वामी आदि वैष्णवों का संग और उनकी कृपा प्रार्थना करने का सौभाग्य मिला था। उनके अपूर्व कवित्त्व को सुनकर वैष्णवों को परितृप्ति होती थी। श्रीलजीव गोस्वामी जी ने श्रीरामचन्द्र को कविराज की उपाधि प्रदान की थी। ये आठ कविराजों में से एक हैं। श्रील नरोत्तम ठाकुर जी के प्रचार और भजन के ये प्रियतम साथी थे।

"श्रीपरमानन्द भट्टाचार्य प्रेमराशि।
श्रीजीव गोस्वामी आदि वृन्दावन वासी।।
सबे ताँर' कृत काव्य शुनि ताँर मुखे।
कविराज ख्याति सबे दिल महासुखे।।
रामचन्द्र कविराज सर्वगुणमय।
याँर' अभिन्नात्मा नरोत्तम महाशय।।"

–भक्तिरत्नाकर 1/267-69

"कंसारिसेन, राम सेन, रामचन्द्रकविराज।
गोविन्द, श्रीरंग, मुकुन्द-तिन कविराज।।"

– चै0च0आ 11/51

इनके द्वारा रचित ग्रन्थावली में से 'स्मरण चमत्कार', 'स्मरणदर्पण', 'सिद्धान्त चन्द्रिका', 'श्रीनिवासाचार्य जी का जीवन चरित्र' विशेष उल्लेखनीय हैं।

ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जो इनकी अनिन्द्यसुन्दर दिव्यकान्ति के दर्शन कर आकर्षित नहीं होता था। श्रीनरहरि चक्रवर्ती जी द्वारा रचित श्री भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ की नवम तरंग में 178 नं0 पयार में इस विषय का अतिसुन्दर रूप से वर्णन हुआ है। इस वर्णन में ऐसा भी वर्णित है कि जब श्रीजीव गोस्वामी पाद जी रामचन्द्र जी को श्रीराधादामोदर जी के दर्शनों के लिये लाये तो उनके दर्शनों से और श्रील रूप गोस्वामी जी की समाधि का दर्शन करने से श्रीरामचन्द्र जी में जो प्रेम के विकार प्रकट हुये थे वे अद्भुत थे। उन्होंने वृन्दावन में श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी, श्री लोकनाथ गोस्वामी और श्री भूगर्भ गोस्वामी जी की कृपा प्राप्त की थी। आरिटग्राम में श्री राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड में स्नान करने के पश्चात जब रामचन्द्र कविराज जी ने श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी को दण्डवत प्रणाम किया था तो रघुनाथ दास गोस्वामी जी ने स्नेह से उन्हें आलिंगन कर लिया और प्रेमाविष्ट हो गये थे।

यौ शश्वद्भगवतपरायणपरौ संसार-परायणौ
सम्यक् सात्वततन्त्रवादपरमौ निःशेषसिद्धान्तगो
शश्वद्भक्तिरस प्रदानरसिकौ पाषण्ड हृन्मंडला-
वन्योन्यप्रियताभरेण युगलीभूताविमौ तौ नुमः।।
– श्री संगीतमाधव नाटक

जो हमेशा भगवद्भक्ति परायणजनों को प्रिय रूप से स्वीकार करते हैं, जो संसारोत्तरणकारी और सम्यक रूप से सनातनशास्त्रवाद में निपुण हैं, जो हर प्रकार से शास्त्रों में पारंगत हैं तथा जो सदा भक्ति रस प्रदान करने में परम उदार हैं और पाषण्डियों के हृदय को भी जय करने वाले हैं, जो परस्पर प्रेम अधिक होने के कारण युगल रूप से प्रतिभात होते हैं उन्हीं श्रीरामचन्द्र और श्री नरोत्तम प्रभु को हम नमस्कार करते हैं।

श्रील नरोत्तम ठाकुर जी ने स्वरचित 'प्रार्थना' गीति में रामचन्द्र कविराज जी के संग की कामना की है।

दया कर श्रीआचार्य प्रभु श्रीनिवास।
रामचन्द्र संग मांगे नरोत्तम दास।।

माघी कृष्णा-तृतीया तिथि को श्रील रामचन्द्र कविराज जी का तिरोभाव हुआ। श्रीनिवासाचार्य प्रभु जी के अन्तर्ध्यान के पश्चात श्रीरामचन्द्र कविराज जी वृन्दावन में अप्रकट हुये।

श्रील रसिकानन्द देव गोस्वामी

श्रील रसिकानन्द देव गोस्वामी 1512 शकाब्द में मेदिनीपुर जिले के अन्तर्गत सुवर्ण रेखा नामक नदी के किनारे पर स्थित रोहिणी या रयणी[14] ग्राम में आविर्भूत हुये थे। इनके पिता का नाम राजा अच्युतानन्द और माता का नाम श्रीभवानी देवी था।

"सुवर्णरेखा नदीर तीरे हय सेई ग्राम।
तथि आछे राजा अच्युतानन्द नाम।।"
– प्रेम विलास-24

महापापों का नाश करने वाली सुवर्णरेखा नदी आजकल मेदिनीपुर और उड़ीसा में प्रवाहित होती है। पहले मेदिनीपुर जिला उड़ीसा के अन्तर्गत था। राजा अच्युतानन्द उड़ीसा के करणकुल में जन्मे थे। इस कुल को बंगाल में कायस्थ कुल

---

14. रयणी व रोहिणी ग्राम मेदिनीपुर जिले की मल्लभूमि पर सुवर्ण-रेखा नदी और दोलंग नदी के संगम स्थल पर अवस्थित है। परगना मौभाण्डा। श्यामानन्द प्रभु जी के पिता पहले गौड़देश में वास करते थे तथा बाद में वे उड़ीसा के दण्डेश्वर ग्राम में, धारेन्दाबहादुरपुर-अम्बुया में रहे थे। दण्डेश्वर ग्राम सुवर्ण-रेखा नदी के किनारे पर ही है। खड़गपुर स्टेशन के निकट धारेन्दाबहादुरपुर ग्राम ही श्रीश्यामानन्द प्रभु का आविर्भाव स्थल है। धारेन्दाबहादुरपुर, रयणी, गोपीवल्लभपुर और नृसिंहपुर श्यामानन्द प्रभु के शिष्यों के प्रिय स्थान हैं।

कहा जाता है। वैष्णव निर्गुण होते हैं। किसी जाति या कुल के अन्दर नहीं हैं। करणकुल को धन्य-2 करने के लिये ही राजा अच्युतानन्द और रसिकानन्द जी का इस कुल में आविर्भाव हुआ। रसिकानन्द देव गोस्वामी राजपुत्र थे। ऐसा अनुमान होता है कि रसिकानन्द जी कृष्णलीला में मधुर रस आश्रिता सेविका थी। सख्यरस आश्रित श्रील हृदय चैतन्य के शिष्य होने पर भी श्रीलजीव गोस्वामी जी के संग से श्रील श्यामानन्द प्रभु मधुररसाश्रित हो गये थे। उन्होंने ही श्रीरसिकानन्द देव जी को राधाकृष्ण जी की उपासना का मन्त्र प्रदान किया था। श्री रसिकानन्द देव जी का दूसरा नाम श्रीरसिक मुरारी था। कहीं कहीं लिखा है कि रसिक और मुरारि श्यामानन्द प्रभु जी के दो प्रधान शिष्य हैं, और कहीं लिखा है कि एक ही प्रधान शिष्य दो नामों से जाने जाते हैं। दो नाम मिलकर ही रसिक-मुरारी हुआ है। माता जाह्नवा जी के शिष्य श्रीनित्यानन्द दास जी द्वारा रचित 'प्रेम विलास' में श्री रसिक और मुरारी नामक दो अलग-2 व्यक्ति बताये गये हैं। जैसे -

"श्रेष्ठ शाखा रसिकानन्द आर श्रीमुरारि। याँर यशोगुण गाय उत्कल देश भरि'।। श्यामानन्देर प्रिय शिष्य दुइ महाशय। सुवर्णरेखा नदी तीरे रयनी आलय।। - प्रेम विलास-20

और श्री नरहरि चक्रवर्ती ठाकुर (श्री घनश्याम दास) जी द्वारा रचित 'भक्ति रत्नाकर' ग्रन्थ में एक ही व्यक्ति के दो नाम इस प्रकार लिखे गये हैं -

"रयनीग्रामे प्रसिद्ध अच्युत तनय। श्री रसिकानन्द, श्री मुरारी नामद्वय 'रसिक-मुरारी' नाम प्रसिद्ध लोकेते। सर्वशास्त्रे विचक्षण अल्प काल हैते। - 15/27-28

'भक्तिरत्नाकर' ग्रन्थ में ऐसा वृतान्त है कि वन में भ्रमण करते समय दशरथनन्दन भगवान श्री रामचन्द्र जी ने रयनी के पास ही वारायित (वाराजित) ग्राम में 'रामेश्वर' शिव की स्थापना की थी और जानकी, लक्ष्मण के साथ कुछ दिन वहां रहे भी थे। इस प्रकार के पवित्र देश के अधिपति थे - राजा श्रीअच्युत। वे प्रजावत्सल, शुद्ध आचरण करने वाले धार्मिक राजा थे। उनकी सहधर्मिणी भी पतिव्रताके रूप में प्रसिद्ध थीं। रसिक-मुरारी जी ने बहुत ही कुशलता के साथ माता पिता जी की सेवा कर उन्हें संतोष प्रदान किया था। श्रीभक्तिरत्नाकर ग्रन्थ में इनकी पत्नी के बारे में लिखा है कि इनकी भक्तिमति पत्नी का नाम इच्छामयी देवी था। ये इच्छामयी देवी कुछ दिन घन्टाशीला ग्राम में रही थीं। घन्टाशीला ग्राम भी ऐतिहासिक स्थान है। पाण्डव भी वनवास के समय यहां रहे थे। घन्टाशीला में रसिक मुरारी जी को किस प्रकार अलौकिक रूप से गुरुदर्शन एवं गुरुजी की कृपा प्राप्त हुई थी वह सुन्दर वर्णन इस प्रकार से है कि एक दिन रसिक मुरारी जी सद्गुरु की प्राप्ति के लिये व्याकुल हो उठे और गाँव के निर्जन स्थान में बैठकर ध्यान में मग्न हो गये। ध्यानमग्न अवस्था में उन्हें आकाशवाणी सुनाई दी कि 'हे मुरारी, तुम

चिन्ता मत करो, तुम्हारे गुरुदेव श्री श्यामानन्द जी हैं। तुम शीघ्र ही उनके दर्शन पाओगे। उनके श्रीचरणों में आश्रित होकर तुम कृतार्थ हो जाओगे।' ये आकाशवाणी सुनने के पश्चात मुरारी जी परम उत्साह और आनन्द के साथ 'श्यामानन्द' नाम का मन्त्र जप करने लगे। श्यामानन्द प्रभु के दर्शनों के लिये व्याकुल मुरारी सारी रात क्रन्दन करते रहे। रात्रि के अन्तिम पहर में श्यामानन्द प्रभु ने स्वप्न में उन्हें दर्शन देते हुये कहा - ज्यादा उतावले मत बनो। प्रातःकाल ही तुम्हें मेरे दर्शन होंगे। प्रातःकाल के समय रसिकमुरारी प्रभु कातरता से देख रहे थे, उसी समय उन्होंने देखा सूर्य के समान तेजोमय दीर्घकलेवर श्यामानन्द प्रभु मुस्कराते हुये किशोरदास आदि भक्तों से घिरे हुये हैं। वे 'हा श्रीकृष्ण चैतन्य, हा नित्यानन्द' नाम उच्चारण करते हुये प्रेमविहल अवस्था में नृत्य करते हुये उनकी ओर आ रहे हैं। बहुत दिनों से जिन गुरुजी के दर्शनों के लिए रसिकानन्द जी तड़प रहे थे, आज उन गुरुजी के साक्षात् दर्शन कर वे परमानन्द में विभोर हो गये तथा बड़े विनीत भाव से चिर-अभिलषित चरणों में गिर पड़े। श्यामानन्द प्रभु जी ने अत्यधिक स्नेहवशतः रसिकानन्द जी को गोद में उठाकर उसे अपने नेत्रों के जल से भिगो डाला एवं उन्हें 'राधाकृष्ण' मन्त्र प्रदान करने के पश्चात श्रीनित्यानन्द और श्रीचैतन्य चरणों में समर्पण कर दिया। निष्कपट व आतुर भाव होने से ही सद्गुरु की प्राप्ति होती है। इसका ये एक ज्वलन्त दृष्टान्त है।

हर प्रकार से तमाम इन्द्रियों से ऐकान्तिकता के साथ गुरु सेवा कर श्रीरसिकानन्द देव गोस्वामी थोड़े ही दिनों में श्रीश्यामानन्द प्रभु जी के प्रधान शिष्य एवं महाशक्तिशाली आचार्य के रूप में परिणत हो गये। वास्तव में सद्शिष्य ही सद्गुरु होता है। तथाकथित शिष्यनामधारी बहुत हो सकते हैं किन्तु वास्तविक गुरुनिष्ठ अनन्य सेवा परायण शिष्य में ही गुरु की सारी शक्ति अर्पित होती है। गुरु कृपा से समृद्ध होने के पश्चात रसिकानन्द देव गोस्वामी ने बहुत से दस्यु, पाषण्डी व यवन तथा पतित जीवों को भगवद्भक्ति रूपी प्रेम रत्न प्रदान कर उनका उद्धार किया था। एक बार एक दुष्ट यवन ने रसिकमुरारी जी का दमन करने के लिये दो मत्त हाथियों को भेजा किन्तु रसिकमुरारी प्रभु ने उन दोनों को शिष्य बना कर उन्हें भी विष्णु-वैष्णवों की सेवा में लगा दिया। उनकी ऐसी अलौकिक शक्ति का प्रभाव देखकर सभी परम विस्मित और चमत्कृत हो गये थे। श्यामानन्द प्रभु जी ने अपने आराध्य गोपीवल्लभपुर के श्रीगोविन्द जी की सेवा अपने प्रधान शिष्य रसिकानन्द देव गोस्वामी जी को प्रदान की थी।

"श्रीगोपीवल्लभपुरे प्रेमवृष्टि कैला। 'श्री गोविन्द सेवा' श्री रसिके समर्पिला।। रसिकानन्देर महाप्रभाव-प्रचार। कृपा करि' कैल दस्यु पाषण्डि उद्धार।। भक्तिरत्न दिला कृपा करिया यवने। ग्रामे ग्रामे भ्रमिलेन लैया शिष्यगणे ।। दुष्टेरप्रेरित हस्ति, ता रे शिष्य कैल। ता'रे कृष्ण वैष्णव-सेवाय नियोजिल ।। से

दुष्टयवन-राजा प्रणत हइल। न गणिला घर-कत जीव उद्धारिल।। श्री रसिकानन्द सदा मत्त संकीर्त्तने। केवा न विह्वल हय ता'र गुणगाने।।" -भक्तिरत्नाकर 15/81-86

"तिंहो कैल वहु यवन दस्युरे उद्धार" - प्रेमविलास-19

रसिकानन्द देव गोस्वामी जी की महापुरुषों जैसी आलौकिक शक्ति के प्रभाव से आकर्षित होकर मयूरभंज के राजा श्री वैद्यनाथ भंज, पटाशपुर के राजा श्री जगपति, मायन के राजा चन्द्रभानु, पांचेट के राजा श्री हरिनारायण, धारेन्दा के राजा श्रीभीम, श्रीकर, उड़ीसा के उस समय के शासनकर्ता इब्राहीम खां के भाई के पुत्र अहमद बेग इत्यादि उनके शिष्य बन गये थे।

श्रील रसिकानन्द देव गोस्वामी जी ने श्री श्यामानन्दशतक, श्रीमद्भक्तभागवताष्टक और कुंजकेलि आदि लगभग 12 ग्रन्थों की रचना की थी।

जिस समय श्रील जीव गोस्वामी जी द्वारा भेजे जाने पर श्री श्यामानन्द प्रभु गोस्वामियों द्वार रचित ग्रन्थ लेकर श्री निवासाचार्य और नरोत्तम ठाकुर जी के साथ वृन्दावन से राजा वीरहम्बीर के स्थान वनविष्णुपुर में आये थे और वहां से फिर श्री निवासाचार्य जी के आदेश करने पर उड़ीसा में आ गये थे, उस समय श्यामानन्द प्रभु जी नृसिंहपुर में ठहरे थे।

"वनविष्णुपुर हैते बहु जन सने। श्यामानन्द उत्कले

गेलेन अल्पदिने।। सर्वत्रइ विदित हइल आगमन। चतुर्धिके धायलोक करिते दर्शन।। श्रीरसिकानन्द आदि महाहर्ष हैला। श्यामानन्द नृसिंहपुरेते स्थिती कैल।।" -भक्तिरत्नाकर 9/256-258

श्रीरसिक मुरारी और श्रीदामोदर आदि भक्तों को साथ लेकर श्यामानन्द प्रभु ने धारेन्दा ग्राम में जो महोत्सव किया था उसकी महिमा उनके परिवार के लोग आज भी गाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि अन्तर्ध्यान लीला से पहले श्री रसिकानन्द देव गोस्वामी सात सेवक लेकर संकीर्त्तन करते करते वांशदह[15] से रेमुणा में श्रीगोपीनाथ जी के प्रांगण में आये थे। सबके देखते-देखते रसिकानन्द जी गोपीनाथ जी के मन्दिर के अन्दर गये और देखते ही देखते वे भगवान गोपीनाथ जी के श्रीअंगों में प्रविष्ट हो गये। उनके सात साथियों ने भी वहीं शरीर त्याग दिया था। आज भी रेमुणा में क्षीरचोरा गोपीनाथ के आंगन के एक ओर रसिक मुरारी जी की पुष्प समाधि है तथा साथ ही वहीं पर उनके सात सेवक भक्तों की समाधि भी देखने को मिलती है। श्री रसिकानन्द देव गोस्वामी जी के

---

15. वांशदह - जलेश्वर के पास ही बांशदा या वांशधा है। श्रीमन्महाप्रभु जी और श्रीनित्यानन्द प्रभु जी का पदांकपूत स्थान है।

"एइ मते जलेश्वरे से रात्रि रहिया। ऊषःकाले चलिला सकलभक्त लइया।। वांशदह-पथे एक शाक्त न्यासि-बेस। आसिया प्रभुरे पथे करिल आदेश।।" चैतन्यभागवत अ 2/263-64

तिरोभाव के उपलक्ष में रेमुणा में प्रत्येक वर्ष बारह दिन का विशेष महोत्सव मनाया जाता है जो कि शिव चतुर्दशी के बाद ही प्रारम्भ हो जाता है। प्रसिद्ध 'अस्तिक्य दर्शन' के रचयिता पण्डित श्री विश्वम्भरानन्द जी श्री रसिकानन्द देव गोस्वामी जी के वंश में ही आविर्भूत हुए थे।

श्री गंगामाता

श्री गंगामाता गोस्वामिनी जी श्रीगौर शक्ति श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी की शिष्य परम्परा में हैं। वे श्रीहरिदास पण्डित गोस्वामी जी की दीक्षिता एवं चरणाश्रिता शिष्या हैं। श्रीकृष्ण दास कविराज गोस्वामी जी द्वारा विरचित श्री चैतन्य-चरितामृत में श्रीहरिदास पण्डित जी की महिमा इस प्रकार से वर्णित है :-

"सेवार अध्यक्ष श्रीपण्डित हरिदास। ताँर यश:गुण सर्वजगते प्रकाश।। सुशील, सहिष्णु, शान्त, वदान्य गम्भीर। मधुर-वचन, मधुर-चेष्टा, महाधीर।। सबार सम्मानकर्त्ता, करेन सबार हित। कौटिल्य-मात्सर्य-हिंसा शुन्य ताँर चित्त।। कृष्णेर ये साधारण सद्‌गुण प्रकाश। से सब गुणेर ताँर शरीरे निवास।।

* * *

पण्डित गोसाञिर शिष्य-अनन्त आचार्य ।
कृष्णप्रेममयतनु, उदार, सर्व-आर्य ।।
ताँहार अनन्त गुण के करु प्रकाश ।
ताँर प्रिय शिष्य इँह पण्डित हरिदास ।।
चै०च०आ 8/54-57,59,60

अर्थात: श्री हरिदास पण्डित जी श्री गोविन्द जी की सेवा के अध्यक्ष थे, जिनकी कीर्ति एवं गुणावली जगत प्रसिद्ध थी। वे सुशील, सहनशील, शान्तचित्त, उदार एवं गम्भीर थे। वे मधुर भाषी थे एवं उनके सब कार्य सुन्दर होते थे, वे अति धीर थे। वे सब का सम्मान एवं हित करने वाले थे। कुटिलता; ईर्ष्या-मत्सर तथा हिंसा तो उनका चित्त जानता ही नहीं था। श्रीकृष्ण के पचास साधारण सद्‌गुण हैं, वे समस्त उनमें विद्यमान थे।

श्री अनन्त आचार्य श्री गदाधर पण्डित गोस्वामी जी के शिष्य थे। वे श्री कृष्ण प्रेम की मूर्ति थे एवं उदार तथा परम सरल चित्त वाले थे। उनके अनन्त गुणों का वर्णन कौन कर सकता है? श्रीहरिदास पण्डित उन्हीं के प्रिय शिष्य थे।

श्रीलभक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर जी ने अनुभाष्य में लिखा है कि अष्टसखियों में से एक 'सुदेवी सखी' ही गौर

अवतार में श्री अनन्त आचार्य हैं।

"अनन्ताचार्य गोस्वामी या सुदेवी पुरा व्रजे।"

– गौरगणोद्देशदीपिका 165 श्लोक

श्रीपुरुषोत्तम धाम के प्रसिद्ध गंगामाता मठ की जो गुरु परम्परा है उसमें श्री अनन्ताचार्य जी को 'विनोदमंजरी' कहा गया है और श्री अनन्ताचार्य जी के शिष्य श्रीहरिदास पण्डित गोस्वामी जिनका एक नाम 'श्री रघुगोपाल भी है', उन्हें श्री रासमंजरी नाम से कहा गया है। श्री लक्ष्मीप्रिया (गंगा माता जी की मामी) व गंगा माता (पुंटीया की राजकन्या) दोनों ही श्री हरिदास पण्डितजी की शिष्या थीं।

श्रीगंगा माता गोस्वामिनी जी के पावन चरित्र के विषय में 'श्री गौड़ीय वैष्णव अभिधान' में संक्षिप्त रूप से मिलता है, जबकि श्रीमद् सुन्दरानन्द विद्याविनोद जी द्वारा रचित 'श्रीक्षेत्र' में कुछ विस्तृत पाया जाता है। श्री गंगा माता गोस्वामिनी का पिता जी के द्वारा दिया पहला नाम 'श्रीशची देवी' था। श्री शची देवी बंग देश (वर्तमान में बंगला देश) के राजशाही जिले के पुंटिया के राजा श्री नरेशनारायण की कन्या थी।

शची देवी बचपन से ही संसार से विरक्त और परमभक्तिपरायणा थी। शचीदेवी के माता-पिता जब शचीदेवी का विवाह करवाने का प्रयास करने लगे तो शची देवी ने कहा

कि वह किसी मरणशील व्यक्ति को पतिरूप से स्वीकार नहीं करेगी। शचीदेवी का ऐसा संकल्प जानकर माता पिता चिन्तित हो उठे। थोड़े समय के बाद इनकी माताजी स्वधाम प्राप्त हो गयीं। जननी के स्वधामप्राप्त हो जाने पर शचीदेवी गृहत्याग कर तीर्थ भ्रमण के लिए निकल पड़ीं। नाना तीर्थों का भ्रमण कर वे पहले श्रीक्षेत्र और बाद में श्रीवृन्दावन धाम में आ कर पहुंचीं।

वृन्दावन धाम में श्रीहरिदास पण्डित जी के दर्शन कर श्री शची देवी कृतार्थ हो गयी और उनसे दीक्षा लेने के लिये व्याकुल हो उठीं। एक ओर इनकी व्याकुलता को देखकर व दूसरी ओर उसे राजकन्या समझकर गोस्वामी ठाकुर मन्त्र देने के विषय में दुविधा में पड़ गये। किन्तु बाद में उन्होंने शचीदेवी का वैराग्य और उसकी भजन में तीव्र उत्कण्ठा देख कर चैत्री शुक्ला एकादशी बुधवार को श्री गोविन्द जी के मन्दिर में उसे अष्टादश अक्षर मंत्र प्रदान किया। श्रीगुरुदेव जी की कृपा प्राप्त करने के लिये शची देवी माधुकरी मांगकर उससे जीवन निर्वाह करती हुयी तीव्र वैराग्य के साथ भजन करने लगीं। श्रीशची देवी ने एक साल वृन्दावन में और उसके पश्चात् श्रीगुरुदेव जी के निर्देश से अपनी बड़ी गुरुबहन भजन परायणा स्निग्धा परमावैष्णवी श्रीलक्ष्मी प्रिया देवी, जो कि प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम करती थी, के साथ राधाकुण्ड में

रहकर भजन का आदर्श दिखाया था। वे प्रतिदिन गिरिराज गोवर्धन परिक्रमा करती थीं।

कुछ साल राधाकुण्ड में भजन करने के पश्चात शचीदेवी जब भजन प्रौढ़ा हो गयी तो श्री हरिदास गोस्वामी जी ने उन्हें श्री पुरुषोत्तम धाम में श्री वासुदेव सार्वभौम जी का स्थान उद्धार करने के लिये भेजा। श्रीगुरुदेव जी का मनोरथ पूरा करने के लिये गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर शचीदेवी पुरुषोत्तम धाम में चली आयी एवं क्षेत्र सन्यास का व्रत लेकर वहां रहने लगीं। उस समय वासुदेव सार्वभौम जी का स्थान प्रायः लुप्त सा हो गया था तथा वहा केवल एक पुराने से टूटे-फूटे मन्दिर में वासुदेव सार्वभौम जी के सेवित श्रीराधादामोदर शालग्राम पूजित हो रहे थे।

श्रीशची देवी जब घर में थीं तब से ही वे एकाग्रता के साथ शास्त्र अनुशीलन करती थीं। जब वे राधाकुण्ड में रहीं तो वहां भी वह वैष्णवों के साथ भागवत की चर्चा करती रहती थीं जिससे वे श्रीमद्भागवत के पाठ में भी पारंगत हो गयीं। सार्वभौम भट्टाचार्य जी के स्थान का उद्धार करने के उद्देश्य से वह प्रचार करने में लग गयी। उनके मुखारविन्द से निःसृत भक्ति से ओत-प्रोत अपूर्व भागवत की व्याख्या सुन कर एवं उनके वैष्णवोचित गुणों से आकृष्ट होकर बहुत से भक्त उनके पास आने लगे। धीरे-2 उनका यश चारों तरफ फैल गया। यहां तक कि उस समय के पुरी के राजा मुकुन्ददेव भी

उनका भागवत पाठ श्रवण करने आये। वे भी शचीदेवी से भागवत पाठ सुनकर मुग्ध हुए बिना न रह सके।

एक दिन रात्रि के समय निद्रा-अवस्था में राजा मुकुन्द देव को स्वप्न में श्री जगन्नाथ जी द्वारा आदेश हुआ कि वह श्वेतगंगा[16] के पास वाली जमीन शची देवी को दे दें। अगले दिन प्रातः ही राजा परम-उल्लास के साथ शचीदेवी के पास

---

16. श्वेतगंगा - उत्कल खण्ड के वर्णन अनुसार ऐसा मालूम होता है कि त्रेतायुग में 'श्वेत' नाम का राजा श्रीजगन्नाथ जी का भक्त था। इन्द्रद्युम्न महाराज की तरह उसने भी श्रीजगन्नाथ देव के भोग की व्यवस्था की थी। एक दिन राजा प्रातःकाल श्रीजगन्नाथ देव जी की पूजा के समय आये और देवताओं के द्वारा दिए गए सहस्त्र-2 दिव्य उपहारों को देखकर श्रीमन्दिर के द्वार पर नीचे मस्तक कर सोचने लगे कि उनके समान क्षुद्र व्यक्ति के क्षुद्र द्रव्यों को क्या श्रीजगन्नाथ देव ग्रहण करेंगे? राजा के हृदय में इस प्रकार कातरता एवं दीनता का भाव आने के साथ-2 उन्होंने देखा कि उनके द्वारा दिए गए द्रव्यों को स्वयं लक्ष्मी देवी श्रीजगन्नाथ जी को दे रही हैं और श्रीजगन्नाथ देव (चल विग्रह और विजय विग्रहगण) परमानन्द के साथ उन्हें ग्रहण कर रहे हैं। उसे देख राजा ने अपने आप को कृत-कृतार्थ समझा। श्वेत राजा ने काफी समय तक निष्ठा के साथ श्रीजगन्नाथ देव जी की सेवा की थी। श्रीजगन्नाथ जी के वर से राजा अक्षयवट और सागर के बीच के मुक्ति क्षेत्र में मत्स्य-माधव के सामने 'श्वेत माधव' के नाम से प्रसिद्ध हुए। श्वेत माधव के नाम के अनुसार ही इस दीर्घिका (पुष्करणी) का नाम 'श्वेत गंगा' हुआ। श्वेत गंगा में भक्त श्वेत माधव एवं भगवान मत्स्य माधव के सरोवर के किनारे नवग्रहों के विग्रह भी विराजित हैं।

गये और उन्हें जगन्नाथ देव जी द्वारा स्वप्न में दिये गये आदेश की बात बतायी।

नितान्त विषयविरक्त होने पर भी गुरुजी के आदेश को स्मरण कर लुप्त तीर्थ के उद्धार के लिये उन्होने वह ज़मीन ग्रहण कर ली। वह भिक्षा करके ठाकुर जी की सेवा करने लगी। जहां पर भगवान के प्रति वास्तव में प्रीति है और जहां भगवदसेवा को अपना स्वार्थ समझा जाता है वहां पर किसी प्रकार का कष्ट भी कष्ट नहीं लगता बल्कि सेवा का सुयोग मिलने से भक्त को आनन्द ही होता है।

इसी बीच एक अलौकिक घटना घटी। कृष्णा-त्रयोदशी तिथि को महावारुणी स्नान का समय आ गया। पुण्यार्थी सभी लोग गंगा स्नान के लिये चल पड़े। शचीदेवी को भी सबने जाने के लिये कहा किन्तु क्षेत्रसन्यास लिये होने के कारण एवं गुरुदेव जी के मनोऽभीष्ट की सेवा में लगे होने के कारण उन्होंने जाने में असमर्थता जताई। उनके जाने की चाह न होने पर भी श्रीजगन्नाथ देव जीने उनके स्नान की व्यवस्था कर दी। श्रीजगन्नाथ देव जी ने महावारुणी के स्नान के समय शचीदेवी को स्वप्न में श्वेतगंगा में स्नान करने का आदेश दिया। स्वप्न में आदेश मिलने पर शची देवी ने, कोई देख न ले, इसलिये मध्यरात्रि के समय श्वेतगंगा में डुबकी लगायी। शची देवी ने जैसे ही श्वेतगंगा में डुबकी लगायी उसी समय गंगादेवी प्रकट हो गयीं और उन्हें अपने स्रोत में बहाकर

मन्दिर के अन्दर ले गयीं। शची देवी ने वहां गंगा और गंगा में स्नान करने वाले सभी भक्तों को साक्षात रूप से देखा। उन्होंने देखा कि चारों तरफ स्नान करते समय कोलाहल हो रहा है और वह उनके बीच में खड़े होकर स्नान कर रही है। कोलाहल सुनकर मन्दिर के द्वार रक्षक जाग उठे, मन्दिर के अन्दर शोर सुनकर उन्होंने जगन्नाथ मन्दिर के सेवकों को खबर दी। सेवकों ने महाराज जी को मन्दिर के अन्दर का सारा हाल बताया तो महाराज ने मन्दिर खोलने का आदेश दिया। किन्तु मन्दिर के द्वार खोलने से देखा गया कि मन्दिर में लोग और कोलाहल कुछ भी नहीं है। एकमात्र शचीदेवी खड़ी हैं। पहले तो कुछ न समझ पाने के कारण जगन्नाथ जी के सेवक किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये। होश संभालने पर उन्होंने सोचा कि शायद शचीदेवी श्रीजगन्नाथ जी के धन व रत्नादि चोरी करने के लिये ही मन्दिर में छिपी हुयी थी, अब चोरी करते रंगे हाथों पकड़ी गयी। महाभागवत के ऊपर सन्देह कर उसकी निन्दा करने के कारण उनको कई प्रकार के रोगों और शोकों ने घेर लिया। श्रीजगन्नाथ जी की सेवा में विघ्न पड़ गया। पुनः श्रीजगन्नाथ देव जी ने स्वप्न में सारी घटना सुनाते हुये कहा - उन्होंने ही शची देवी की शुद्धभक्ति से प्रसन्न होकर अपने पादपद्मों से गंगा प्रकट करवाकर उसे स्नान करवाया था। साथ ही यह भी कहा कि अगर तुम शची देवी से क्षमा मांगो और उनसे मन्त्र ले लो तो तुम्हारे अपराध दूर हो

सकेंगे अन्यथा नहीं। तब राजा मुकुन्द देव जगन्नाथ जी के सेवकों को साथ लेकर शची देवी के पास पहुंचे। वहां पहुंचकर सबसे पहले उन्होंने शचीदेवी को दण्डवत् प्रणाम किया और प्रणाम करते हुए उनसे क्षमा मांगी। उसी समय से शचीदेवी 'गंगामाता' जी के नाम से प्रसिद्ध हो गयीं और जनसाधारण में वासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य जी का स्थान 'गंगामाता मठ' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

राजा मुकुन्द देव एवं श्रीजगन्नाथ जी के सेवकों द्वारा मंत्रदीक्षा के लिये प्रार्थना करने पर भी श्रीजगन्नाथ जी की आज्ञा पालन करने के लिये गंगामाता जी ने केवल श्रीमुकुन्ददेव जी को ही दीक्षा प्रदान की। राजा ने गुरु दक्षिणा के रूप में उन्हें काफी ज़मीन देने की इच्छा व्यक्त की किन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। किन्तु राजा के द्वारा बार-बार सेवा के लिये प्रार्थना करने पर उन्होंने दो भाण्ड महाप्रसाद, एक भाण्ड सब्जी, जगन्नाथ जी का एक प्रसादी वस्त्र और दो पण कपर्दिका (160 पैसे) प्रतिदिन दोपहर के बाद मठ में भेजने की अनुमति दी। अभी तक ये प्रसाद नियमित रूप से गंगामाता मठ में भेजा जा रहा है। धनन्जयपुर का महीरथ शर्मा नामक एक स्मार्त्त ब्राह्मण भी गंगामाता गोस्वामिनी जी की कृपा प्राप्त कर धन्य हो गया था। राजस्थान के जयपुर निवासी ब्राह्मण श्रीचन्द्र शर्मा जी के घर में 'श्री रसिक राय' नामक श्रीविग्रह विराजित थे। सेवा-अपराध करने के कारण

वह निर्वंश हो गया था। श्रीजगन्नाथ देव जी ने उसे स्वप्न में कहा कि यदि तुम विग्रह की सेवा पुरुषोत्तम धाम में श्री गंगामाता जी को दे दो तो तुम्हारे सारे अपराध और भय दूर हो जायेंगे। ब्राह्मण, श्रीजगन्नाथ देव जी की आज्ञा के अनुसार राधारानी के साथ श्रीरसिक राय विग्रह को लेकर श्रीक्षेत्र में गंगामाता जी के पास पहुंचे। उन्होंने गंगा माता गोस्वामिनी जी को श्रीविग्रह की सेवा के लिये प्रार्थना की। पहले तो गंगा माताजी ने उसे ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया, कारण, उनके लिए श्रीविग्रहों की राजसेवा चलानी सम्भव नहीं थी परन्तु बाद में ब्राह्मण द्वारा तुलसी के बगीचे में ही विग्रह छोड़कर चले जाने पर श्रीरसिक राय जी ने स्वयं ही अपनी सेवा के लिये गंगामाता जी को स्वप्न में आदेश दे दिया। स्वप्न में आदेश मिलने पर गंगामाताजी ने उल्लास के साथ श्रीविग्रहों का प्रकट उत्सव मनाया।

श्रीगंगामाता मठ में पांच युगल मूर्तियां विराजित हैं। श्रीश्रीराधारसिक राय, श्रीश्रीराधाश्यामसुन्दर जी, श्रीश्रीराधामदनमोहन श्रीश्री राधाविनोद और श्री श्रीराधारमण जी। इनके अतिरिक्त सार्वभौम भट्टाचार्य जी द्वारा सेवित श्रीदामोदर शालिग्राम, नृत्य में रत्त श्रीगौरमूर्ति और लड्डू गोपाल विग्रह भी वहां सिंहासन पर सेवित हो रहे हैं।

गंगामाता मठ के इतिहास से जाना जाता है कि श्रीगंगामाता जी सन् 1601 ई० के ज्येष्ठ मास की शुक्लातिथि

को आविर्भूत हुयीं थी तथा सन् 1721 ई0 में नित्यलीला में प्रवेश कर गयी।

पुरी में हावेलीमठ, गोपालमठ और कटक ज़िले में टांगी नामक स्थान पर श्रीगोपाल मठ - गंगा माता मठ की ही शाखाएं हैं। हरिभक्त चाहे किसी भी जाति, किसी भी वर्ण और किसी भी कुल में आविर्भूत हो जायें तब भी वे सर्वोत्तम और सब के पूजनीय ही होते हैं। इसका एक उदाहरण गंगामाता गोस्वामिनी हैं। द्वापर युग में ब्राह्मणों की पत्नियों ने पति की आज्ञा का उल्लंघन करके भी कृष्ण सेवा की थी। कलियुग में नामाचार्य हरिदास ठाकुर जी की कृपा से वेश्या परम वैष्णवी बन गयी थी। इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि उनका दर्शन करने के लिए बड़े-बड़े वैष्णव भी आया करते थे।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर

"विश्वस्य नाथरूपोऽसौ भक्तिवर्त्म प्रदर्शनात्।
भक्तचक्ते वर्त्तितत्वात् चक्रवर्त्त्याख्याभवत्।।"

आप जगत को भक्ति का मार्ग दिखाने वाले होने के कारण विश्वनाथ और भक्तों में श्रेष्ठ होने के कारण चक्रवर्ती की उपाधि से विभूषित हुये थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती जी लगभग 1560 शकाब्द (किसी किसी के मत में 1576 शकाब्द) में नदिया ज़िले के देवग्राम में राढ़ीय ब्राह्मण कुल में आविर्भूत हुये थे। इनके पिता जी के सम्बन्ध में गौड़ीय वैष्णव अभिधान में ऐसा लिखा है कि श्रीनारायण चक्रवर्ती जी इनके पिता जी थे किन्तु माताजी का परिचय नहीं मिलता है। श्रीरामचन्द्र चक्रवर्ती और श्रीरघुनाथ चक्रवर्ती नाम के दो इनके बड़े भाई थे। श्रील चक्रवर्ती ठाकुर जी के गुरुदेव श्रीराधारमण चक्रवर्ती और परम गुरुदेव श्रीकृष्ण चरण चक्रवर्ती थे। श्रीकृष्ण-चक्रवर्ती श्रीगंगानारायण चक्रवर्ती जी के दत्तक (गोद लिये) पुत्र थे। श्रीमद् भागवत की रास-पंचाध्यायी की अपनी सारार्थदर्शिनीटीका में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती जी ने अपनी गुरु परम्परा के विषय में निम्न प्रकार लिखा है -

"श्रीरामकृष्ण गंगाचरणान् नत्वा गुरुनुरुप्रेम्न:।
श्रील नरोत्तमनाथ श्री गौरांग प्रभु नौमि।।"

इस श्लोक से जाना जाता है कि श्रीराधारमण जी का छोटा नाम श्रीराम, श्रीकृष्ण चरण का छोटा नाम श्रीकृष्ण था। उनके गुरु श्रीगंगाचरण जी हैं। 'नाथ' शब्द से श्रीनरोत्तम जी के गुरु श्रीलोकनाथ गोस्वामी जी को समझाया गया है। यही उनकी गुरु परम्परा है।

बाल्यकाल में देवग्राम में व्याकरण की पढ़ाई पूरी करने के पश्चात आपने अपने गुरुगृह मुर्शिदाबाद के सैयदाबाद नामक ग्राम में भक्ति शास्त्रों का अध्ययन किया था। श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में वर्णित चक्रवर्ती ठाकुर के चरित्र के अनुसार ऐसा ज्ञात होता है कि उन्होंने विवाह किया था किन्तु सामाजिक नियमानुसार विवाह करने पर भी उनकी संसार में बिन्दुमात्र भी आसक्ति नहीं थी। कहा जाता है कि उन्होंने अपनी पत्नी को श्रीमद्भागवत्रसामृत का पान करवा कर उसे सब प्रकार से भगवद्भजन करने के लिए कहकर घर का त्याग कर दिया था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर जी ने गोस्वामियों के आदर्श का अनुसरण करते हुये श्री व्रजधाम में रहकर भजन किया था।

अपने श्रीगुरुजी के आनुगत्य में व अपने गुरुदेव जी की असीम कृपा के बल से उन्होंने व्रजधाम के विभिन्न स्थानों पर रहकर बहुत से ग्रन्थों की रचना की। वे सभी ग्रन्थ गौड़ीय वैष्णवों की परम सम्पदा रूप से गिने जाते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद जी द्वारा संस्कृत भाषा में रचित तमाम ग्रन्थ व

श्रीमद्भागवत् और गीता की टीकायें अत्यन्त सरल, स्पष्ट और भक्ति रस से पूर्ण हैं। श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ से प्रकाशित श्रीमद्भगवद्गीता ग्रन्थ की 'टीका के विवरण' के प्रारम्भिक परिचय में इस प्रकार लिखा है कि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद ठाकुर मध्यकाल में गौड़ीय वैष्णव धर्म के संरक्षक और आचार्य थे। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती पाद जी के तीन ग्रन्थों के विषय में अभी भी साधारण वैष्णवों में ऐसी कहावत है - 'किरण - बिन्दु - कणा। एई तिन निये वैष्णव पणा[17]।।' श्रीमन्महाप्रभु जी के समय के व्रजवासियों के अप्रकट हो जाने के बाद शुद्धभक्ति का स्रोत श्रीनिवासाचार्य, ठाकुर नरोत्तम और श्रीश्यामानन्द प्रभु - जिन तीनों का आश्रय लेकर प्रवाहित हो रहा था उनमें से नरोत्तम ठाकुर जी की शिष्य परम्परा के चौथे आचार्य हैं - श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती। श्रील चक्रवर्ती ठाकुर जी की तरह संस्कृत भाषा में ग्रन्थों को सुविस्तृत भाव से लिखने वाले गौड़ीय वैष्णव आचार्यों की संख्या ज्यादा नहीं है। उन्होंने इस विपुल संस्कृत साहित्य को

---

17. श्रील रूप गोस्वामी जी द्वारा रचित - 1. उज्जवलनीलमणि ग्रन्थ के तात्पर्य पर प्रकाश डालने वाले उज्जवलनीलामणि किरण 2. भक्तिरसामृत सिन्धु के भक्ति लक्षणादि के तात्पर्य पर प्रकाश डालने वाला भक्तिरसामृत सिन्धु बिन्दु 3. लघु भागवतामृत के सार संकलन के रूप में श्री भागवतामृत कणा - इन तीनों ग्रन्थों के अध्ययन से वैष्णव लोग भक्ति के सर्वोत्तम रस का आस्वादन करते हुए कृतकृतार्थ हो जाते हैं अर्थात् यह तीनों ग्रन्थ वैष्णवता की चरम अभिव्यक्ति के प्रकाश हैं।

लिखने के अतिरिक्त गौड़ीय समाज में दो और हितकर कार्य करने का व्रत लिया था। एक श्री रूपकविराज, जिनका गौड़ीय वैष्णव समाज से बहिष्कार कर दिया गया था। उसने अतिवाड़ी नामक एक सम्प्रदाय चलायी और वे ऐसा प्रचार करने लगे कि त्यागी व्यक्ति ही आचार्य बनने का अधिकारी है, गृहस्थी नहीं। इसके इलावा उन्होंने विधि मार्ग का भी पूरी तरह से अनादर किया और इस प्रकार कहते हुये विश्रृंखलापूर्ण रागमार्ग का प्रचार किया था कि श्रवण, कीर्तन की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर जी ने श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध में अपनी सारार्थदर्शिणी टीका में रूप कविराज के उपरोक्त सिद्धान्तों का खण्डन करके जीवों का अत्यन्त मंगल किया। रूप कविराज का ऐसा मत था कि आचार्य के वंश में जन्म ग्रहण करने पर भी गृहस्थी के लिये कभी भी 'गोस्वामी' शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता। श्रील चक्रवर्ती ठाकुर जी ने इसका भी विरोध किया और शास्त्रों की युक्तियों से सिद्ध किया कि आचार्यवंश की योग्य गृहस्थ सन्तान भी आचार्य या गोस्वामी बन सकती है। किन्तु धन और शिष्यों के लोभ में फंस कर आचार्यकुल में उत्पन्न अपनी सन्तान के नाम के पीछे गोस्वामी जोड़ना सात्वत्शास्त्रों के विरुद्ध और नितान्त अवैध है।

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती पाद जी हरिबल्लभदास के नाम

से प्रसिद्ध थे। किसी-2 मत के अनुसार जब इन्होंने वेष लिया था तब इन्हें हरिबल्लभ नाम प्राप्त हुआ था। अगाध पाण्डित्य, दार्शनिक विचारों की प्रगाढ़ दक्षता और भक्तिरसशास्त्रों में पारंगति व कवित्त्व विषय में इनकी श्रेष्ठता असाधारण थी।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद जब बहुत वृद्ध हो गये और चलने में असमर्थ अवस्था में जब वे वृन्दावन धाम में रह रहे थे, उस समय जयपुर के गलता ग्राम के श्रीरामानुज सम्प्रदाय के आचार्यों ने जयपुर के महाराजा को गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय का परित्याग करवा कर रामानुज सम्प्रदाय में लेने के लिये उनके सामने ये सिद्ध करने का प्रयास किया था कि गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय सात्त्वत चार सम्प्रदायों से बाहर है। इसके साथ-2 उन्होंने जयपुर के महाराज को पुनः रामानुज सम्प्रदाय में दीक्षा लेने का परामर्श भी दिया था। इस प्रस्ताव से जयपुर के महाराज असमंजस में पड़ गये तब उन्होने वृन्दावन में रह रहे उस समय के प्रधान गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर जी के पास ये संवाद भेजा और जयपुर में आने के लिये उनसे प्रार्थना भी की। उस समय अतिवृद्ध होने एवं चल न पाने के कारण उन्होंने अपने छात्र श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु को जयपुर में जाकर गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय का संरक्षण करने का निर्देश दिया। श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु, विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद जी से श्रीमदभागवत शास्त्र का अध्ययन करते थे। श्रील चक्रवर्ती

ठाकुर जी के शिष्य श्रीकृष्ण देव जी के साथ बलदेव विद्याभूषण प्रभु जी गुरु आज्ञा का पालन करने के लिये जयपुर में गलता ग्राम की गद्दी में हो रही विचार सभा में उपस्थित हुये। चारों वैष्णव सम्प्रदायों का अपना-2 भाष्य है किन्तु गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय का अपना वेदान्त भाष्य नहीं है। इसलिये रामानुजीय आचार्यों ने गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय की साम्प्रदायिक मर्यादा को स्वीकार नहीं करना चाहा तो बलदेव विद्याभूषण प्रभु ने गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के वेदान्त का भाष्य लिखने के लिए सात दिन (किसी के मत में तीन महीने) का समय मांगा। रामानुजीय आचार्यों ने प्रार्थना के अनुसार समय दे दिया। बलदेव विद्याभूषण प्रभु जी ने श्रीगोविन्द जी के मन्दिर में श्रीलगुरुदेव और श्रील गोविन्द देव जी से कृपा प्रार्थना करते हुये वेदान्त भाष्य लिखना आरम्भ कर दिया। बलदेव विद्याभूषण प्रभु जी के गले में श्रीगोविन्द जी की आशीर्वादी माला अर्पित की गयी। गुरु वैष्णव और भगवान की कृपा से असम्भव भी सम्भव हो जाता है और इस तरह श्रीलबलदेव विद्याभूषण प्रभु ने वेदान्त के पांच सौ सूत्रों के गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के इस शुद्धभक्तिरसपूर्ण भाष्य को निर्धारित समय पर ही लिख कर पूरा कर दिया। गलता गद्दी की सभा में श्रीलबलदेव विद्याभूषण प्रभु जी के श्रीमुख से प्रेमपरक भाष्य सुन कर सभी चमत्कृत हो उठे। श्रील गोविन्द जी के आदेश से वेदान्तसूत्रों का भाष्य रचित होने के कारण ये भाष्य 'गोविन्द भाष्य' के नाम से प्रसिद्ध

हुआ। वेदान्त के गोविन्द भाष्य लिखे जाने के पश्चात ही श्री बलदेव जी 'विद्याभूषण' की उपाधि से भूषित हुये।

विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद जी के सम्बन्ध में एक अलौकिक घटना सुनी जाती है कि वे जिस स्थान पर भागवत लिखते थे उस स्थान पर ग्रन्थ पर जल गिरने पर भी ग्रन्थ गीला नहीं होता था। पन्ने अटूट रहते थे। इनके द्वारा स्थापित विग्रह श्रीगोकुलानन्द जी वृन्दावन में स्थित श्रीगोकुलानन्द मन्दिर में विराजित हैं। अनुमान है कि विश्वनाथ चक्रवर्ती जी 1630 शकाब्द माघी गौर पन्चमी तिथि को (किसी-2 के मतानुसार कृष्णा पन्चमी) को श्रीराधाकुण्ड में अप्रकट हुए थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद जी ने जो ग्रन्थ लिखे हैं उन सभी की तालिका नीचे दी गई है -

1. ब्रजरीतिचिन्तामणि 2.श्रीचमत्कारचन्द्रिका 3.प्रेमसम्पुटम (खण्डकाव्यम्) 4. गीतावली 5. सुबोधिनी (अलंकार कोस्तुभ टीका) 6. आनन्द चन्द्रिका (उज्जवलनीलमणि टीका) 7.श्रीगोपालतापनी टीका 8.स्तवामृत-लहरीधृत

क) श्रीगुरुतत्त्वाष्टकम् ख) मन्त्रदातृगुरोरष्टकम्
ग) परमगुरोरष्टकम् घ) परात्परगुरोरष्टकम्
ङ) परमपरात्परगुरोरष्टकम् च) श्रीलोकनाथाष्टकम्
छ) श्रीशचीनन्दाष्टकम् ज) श्रीस्वरूप चरितामृतम्
झ) श्रीस्वप्नविलासामृतम् ञ) श्रीगोपालदेवाष्टकम्
ट) श्रीमदनमोहनाष्टकम् ठ) श्रीगोविन्दाष्टकम्

ड) श्रीगोपीनाथाष्टकम् ढ) श्रीगोकुलानन्दाष्टकम्
ण) स्वयंभगवदाष्टकम् त) श्रीराधाकुण्डाष्टकम्
थ) जगन्मोहनाष्टकम् द) अनुराग वल्ली
ध) श्रीवृन्दादेव्याष्टकम् न) श्रीराधिका ध्यानामृतं
प) श्रीरूप चिन्तामणि फ) श्रीनन्दीश्वराष्टकम्
ब) श्रीवृन्दावनाष्टकम् भ) श्री गोवर्धनाष्टकम्
म) श्री संकल्पकल्पद्रुमः य) श्रीनिकुन्जविरुदावली
र) सुरतकथामृतम् (आर्य शतकम्) (विरुत्काव्य)
ल) श्रीश्यामकुण्डाष्टकम्

9.श्रीकृष्ण भावनामृत महाकाव्यम 10.श्री भागवतामृत कणा 11.श्री उज्जलनीलमणेः किरणलेशः 12.श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु बिन्दुः 13. रागवर्त्मचन्द्रिका 14. ऐश्वर्यकादम्बिनी (आजकल दुष्प्राप्य) 15. माधुर्यकादम्बिनी 16. भक्तिरसामृत सिन्धु टीका 17. श्रीउज्जवलनीलमणि टीका 18. श्रीदानकेलिकौमुदी टीका 19. श्रीललितमाधव नाटक टीका 20 श्रीचैतन्यचरितामृत टीका (असम्पूर्ण) 21.ब्रह्मसंहिता - टीका 22. श्रीमद्भगवद्गीता की 'सारार्थवर्षिणी' टीका 23. श्रीमद्भागवत् की 'सारार्थदर्शिनी' टीका

श्रील बलदेव विद्याभूषण

श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु जी के आविर्भाव के समय और स्थान के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं जाना जाता। ऐतिहासिक लोग महापुरुषों के स्थान, समय के निर्धारण के सम्बन्ध में ध्यान दें तो इन सब विषयों का अभाव दूर हो सकता है। श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु जी के पावन चरित्र के सम्बन्ध में जो थोड़ा बहुत विवरण मिलता है उससे ऐसा अनुमान होता है कि वे 18वीं शताब्दी में आविर्भूत हुये थे। उपरोक्त विवृत्ति से ये भी जाना जाता है कि चाहे इनके आविर्भाव स्थान के विषय में जाना नहीं जाता फिर भी ये उड़ीसा में बालेश्वर जिले के रेमुणा के पास के ही किसी गांव में आविर्भूत हुये थे। श्रील रूप गोस्वामी जी द्वारा रचित स्तवमाला की श्री बलदेव भूषण जी द्वारा की गई 'स्तवमाला - विभूषण' नामक टीका की रचना में जो सन् दिया गया है उससे स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि बलदेव विद्याभूषण प्रभु सन् 1757 में प्लासी युद्ध के बाद प्रकट हुए थे। इनकी विद्याविलास लीला के सम्बन्ध में ऐसा जाना जाता है कि इन्होंने चिल्का हृद के किनारे, पण्डितों के निवास स्थान किसी वर्द्धिष्णु नामक ग्राम में व्याकरण, अलंकार और न्यायशास्त्र का अध्ययन करके उसमें पारंगति प्राप्त की थी। कुछ दिन वेद अध्ययन करने के पश्चात आप वेदान्त के विभिन्न आचार्यो

द्वारा किये गये भाष्यों का अध्ययन करने के लिये महीशूर भी गये थे। उस समय ये मध्वाचार्य जी के शुद्धाद्वैत मत को युक्ति संगत समझ कर उस सम्प्रदाय के शिष्य बन गये एवं तत्त्ववादियों के मठ में रहने लगे। संन्यास लेने के बाद ये पुरुषोत्तम क्षेत्र में आये और पण्डितमण्डली के साथ शास्त्र युद्ध किया और उन्हें परास्त कर दिया जिससे इनके अगाध पाण्डित्य की प्रतिभा चारों ओर फैल गयी।

बाद में इन्होंने कान्यकुब्ज देश के श्रीराधादामोदर जी से श्रीजीव गोस्वामी जी द्वारा रचित षटसन्दर्भों का अतिसूक्ष्मता से अध्ययन किया जिससे ये गौड़ीय वैष्णव धर्म की सर्वोत्तमता को समझ सके और ये उनके शिष्य बन गये।

श्रीनित्यानन्द प्रभु जी की शिष्य परम्परा में श्रीगौरीदास पण्डित, इनके बाद श्रीहृदय चैतन्य प्रभु, इसके बाद श्रीश्यामानन्द प्रभु, इसके बाद श्रीरसिकानन्ददेव गोस्वामी, इसके बाद श्रीनयनानन्द जी से दीक्षित शिष्य थे – श्री राधादामोदर जी। श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभु जी ने पीताम्बर दास जी से भक्तिशास्त्र एवं श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती पाद जी से श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया था। ऐसा सुना जाता है कि श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभु जी ने विरक्त का वेश भी धारण किया था। उस समय ये गौड़ीय वैष्णव समाज में 'एकान्ती गोविन्दास' के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती जी के आदेश से ये श्रीवृन्दावन

धाम से जयपुर आये थे। जयपुर आकर इन्होंने श्रील रूप गोस्वामी जी द्वारा सेवित श्रीगोविन्द जी का आशीर्वाद लेकर वेदान्त के 'गोविन्दभाष्य' की रचना कर श्रीसम्प्रदाय की गलता गद्दी पर गौड़ीय वैष्णव धर्म की मर्यादा का संरक्षण किया था। तब से ये 'विद्याभूषण' की उपाधि से विभूषित हुये। ये प्रसंग इसी ग्रन्थ के श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर जी के पावन संक्षिप्त चरितामृत में वर्णित हुआ है। कहा जाता है कि इन्होंने गलता गद्दी पर 'विजयगोपाल' नामक विग्रह की प्रतिष्ठा की थी। इनके शिष्यों में से श्रीउद्धवदास और श्री नन्दन मिश्र का नाम प्रसिद्ध है।

श्री बलदेव विद्याभूषण प्रभु जी द्वारा रचित ग्रन्थों की तालिका नीचे दी जा रही है 1. ब्रह्मसूत्रभाष्य – गोविन्दभाष्य 2. सिद्धान्त रत्न 3.वेदान्त स्यमन्तक 4. प्रमेयरत्नावली 5. सिद्धान्त दर्पण 6.साहित्य कौमुदी 7.काव्य कौस्तुभ

8.व्याकरण कौमुदी (दुष्प्राप्य) 9.पदकौस्तुभ 10.वैष्णवानन्दिनी 11.गोपाल तापनी भाष्य 12.ईशादि–दशोपनिषद–भाष्य 13. श्रीगीता भूषण भाष्य 14. श्री विष्णु सहस्त्र नाम भाष्य (नामार्थसुधा) 15. श्रीसंक्षेप भागवतामृत टिप्पणी 'सारंग रंगदा' 16. तत्त्वसन्दर्भ–टीका 17. श्रीलरूप गोस्वामी जी की स्वतमाला का 'स्तवमाला–विभूषण' भाष्य 18. नाटकचन्द्रिका टीका (दुष्प्राप्य) 19.छन्दः कौस्तुभ्य भाष्य 20.श्रीश्यामानन्दशतक टीका 21.चन्द्रालोक टीका (दुष्प्राप्य) 22. साहित्य कौमुदी

टीका-कृष्णानन्दिनी 23. श्री गोबिन्द भाष्य टीका सूक्ष्मा 24. सिद्धान्तरत्न टीका - सूक्ष्मा। ऐसा कहा जाता है कि इनके अतिरिक्त श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु जी ने 'ऐश्वर्यकादम्बिनी' नामक एक ग्रन्थ लिखा है जो कि विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद जी द्वारा लिखे 'ऐश्वर्यकादम्बिनी' ग्रन्थ से अलग है।

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती पाद जी द्वारा लिखित 'ऐश्वर्यकादम्बिनी' में द्वैताद्वैत का प्रसंग है किन्तु बलदेव जी कृत 'ऐश्वर्यकादम्बिनी' में वह प्रसंग नहीं है। श्रीब्रह्म माधव-सारस्वत-गौड़ीय वैष्णवसम्प्रदाय की शुद्ध भागवत परम्परा या सद्गुरु परम्परा में श्रील बदलेव विद्याभूषण प्रभु जी नित्य स्मरणीय हैं। जैसे कि

विश्वनाथ भक्तसाथ - बलदेव-जगन्नाथ
ताँर प्रिय श्री भक्ति विनोद।

श्रील जगन्नाथदास बाबा जी महाराज

गौराविर्भावभूमेस्त्वं निर्देष्टासज्जन प्रियः
वैष्णव सार्वभौम श्रीजगन्नाथाय ते नमः।।

वैष्णव समाज में सिद्ध महाजन के रूप में पूजे जाने वाले वैष्णव प्रिय, वैष्णव सार्वभौम श्रीजगन्नाथ दास बाबा जी को मैं प्रणाम करता हूं जिन्होंने अपने दिव्य दर्शनों से श्रीगौरांग जी की आविर्भाव स्थली का निर्देश किया है।

सारी पृथ्वी में ही सारस्वत प्रत्येक वैष्णव प्रतिदिन गुरु परम्परा में (भागवत-परम्परा) में श्रीजगन्नाथ दास बाबा जी महाराज जी को स्मरण करता है तथा उनकी कृपा प्रार्थना करता है।

"विश्वनाथ भक्तसाथ - बलदेव जगन्नाथ,
ताँर प्रिय श्रीभक्ति विनोद।
महाभागवत वर, श्रीगौर किशोरवर,
हरि भजनेते याँर मोद।।।
श्रीवार्षभानवी वरा - सदा-सेव्यसेवापरा
ताँहार दयित दास नाम।"

संस्कृत भाषा में जो गुरु परम्परा का कीर्तन किया जाता है उसमें इस प्रकार लिखा है :-

वैष्णव सार्वभौमः श्रीजगन्नाथ प्रभुस्तथा।

श्रीमायापुर धाम्नस्तु निर्देष्टा सज्जन प्रियः।।

श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में चार बार अन्धकारयुग आने की बात सुनी जाती है। 1) श्रीमन्महाप्रभु जी के आविर्भाव से पहले 2) श्रीषड़गोस्वामियों के अप्रकट होने के बाद 3) श्री श्रीनिवासाचार्य, श्रीनरोत्तम ठाकुर, श्रीश्यामानन्द प्रभु और श्रीरसिकानन्द मुरारी प्रभु जी के अप्रकट के पश्चात 4) श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर और श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु जी के अप्रकट होने के पश्चात। अन्धकार युग की बात से ऐसा नहीं समझना चाहिये कि श्रीब्रह्म माध्व गौड़ीय धारा या श्रीरुपानुग धारा बीच में रुक गयी थी। आचार्य परम्परा में कभी विविक्तानन्दी तो कभी गोष्ठानन्दी आचार्यों के आविर्भाव के कारण केवल प्रचार में अप्रबलता और प्रबलता देखी जाती है। श्रीगुरुपरम्परा या भागवत परम्परा में श्रीबलदेव विद्याभूषण (जिनका दूसरा नाम 'गोविन्ददास' था) जी के बाद उद्धरदास या उद्धव दास, उनसे आगे फिर उद्धव दास तथा उनसे आगे उनके अनुगत श्रीमधुसूदन बाबा जी (जो सूर्यकुण्ड में सिद्ध बाबाजी' के नाम से प्रसिद्ध थे)। श्री मधुसूदन दास बाबा जी महाराज जी से परमहंसवेश लेने वाले शिष्य हैं - श्रील जगन्नाथदास बाबा

जी महाराज । श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद जी ने इस प्रकार लिखा है कि "भाष्यकार (श्रील बदलेव विद्याभूषण जी) के अनुगत श्रीउद्धर दास या श्रीउद्धव दास जी, उनके शिष्य श्री उद्धव दास तथा उनसे आगे उनके शिष्य श्रीमधुसूदन और श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराज जी ने परमहंस पथ के पथिक रूप से शुद्ध भक्ति धर्म का प्रचार किया था। यही गौड़ीय वैष्णवों के लिए परम श्रद्धा का विषय है। श्रील प्रभुपाद जी के इन वाक्यों के द्वारा इस प्रकार ज्ञात होता है कि श्रीउद्धर दास, श्रीउद्धव दास, श्रीमधुसूदन दास व श्रीजगन्नाथ दास बाबा जी महाराज जी ने केवल विविक्तानन्दी परमहंस का आदर्श नहीं दिखाया बल्कि उन्होंने आचार्य की लीला भी प्रकाशित की थी।

वर्द्धमान ज़िले के प्रान्तवर्ती पुरुणियावासी श्रील रास बिहारी गोस्वामी जी श्रील जगन्नाथ दास बावा जी के दीक्षित शिष्य थे और स्वाधीन त्रिपरा के अधिपति स्वधाम गत ईशानचन्द्र माणिक्यबहादुर जी श्रीरासबिहारी गोस्वामी जी के शिष्य थे। त्रिपुरा महाराज जी के राजमहल में श्रीरासबिहारी गोस्वामी जी के उपास्य श्रीरासबिहाजी जी आज भी सेवित हो रहे हैं।

बाबा जी महाराज आज से 214 साल पहले बंगलादेश के मैमनसिंह ज़िले के टांगाइल महकुमार (वर्तमान में टांगाइल ज़िले) के किसी ग्राम में किसी उच्च वंश में आविर्भूत हुये थे। किसी-किसी के मतानुसार वे पावना जिले के अन्तर्गत तड़ास

ग्राम में वारेन्द्र कायस्थ कुल को पावन करते हुए आविर्भूत हुये थे। उनके माता-पिता का परिचय अपरिज्ञात है। जिस समय श्रील बाबा जी महाराज परमहंस का वेश धारण कर तीव्र भजन का आदर्श दिखा रहे थे, उस समय वे तत्कालीन वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ वैष्णव के रूप में पूजे जाते थे। काफी लम्बे समय (लगभग 150 वर्ष) तक उन्होंने प्रकट लीला की। उन्होंने श्रीराधाकुण्ड में श्रीरूपानुग भजन पद्धति का अनुसरण कर श्रीश्रीराधागोविन्द जी की अष्टकालीय प्रेम सेवा की थी। इस प्रकार की एक घटना सुनी जाती है कि वे जब वृन्दावन में भजनानन्दी महात्माओं के साथ भजन कर रहे थे उसी समय काटोया से एक प्रसिद्ध पैसे लेकर पाठ करने वाला भागवत-पाठक वृन्दावन में जाकर श्रीमद्भागवत की व्याख्या करके अपनी जीविका निर्वाह करने के लिये पैसे और प्रतिष्ठा अर्जन करने के लिये चेष्टा कर रहा था। उसके द्वारा उत्तम रूप से भागवत पाठ करने पर भी जब उसने भजनानन्दी वैष्णवों को अपना पाठ सुनने को उत्सुक न देखा तो उसने इसका कारण पूछा। तब श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज जी और अन्यान्य वैष्णवों ने उसे समझाया कि (भगवान की प्रसन्नता के लिये न करके) किसी और उद्देश्य से किये गये पाठ को भागवत पाठ नहीं कहते। उससे न तो अपना और न ही दूसरे किसी का कल्याण होता है। महाभागवत बाबा जी महाराज जी की कृपा से उस पैसे लेकर भागवत पाठ करने वाले वैष्णव का सारा जीवन ही बदल गया था। जगन्नाथ

दास बाबा जी महाराज और वैष्णवों की कृपा से उसका जाति-वर्ण व पाण्डित्य का जो अभिमान था वह सारा दूर हो गया। वह गाय, कुत्ते, गधे व चाण्डाल तक को साष्टांग दण्डवत प्रणाम करता व उनकी कृपा प्रार्थना करता और इस तरह वह परम वैष्णव बन गया।

यद्यपि बाबाजी महाराज तीव्र भजनानन्दी वैष्णव थे तब भी उन्होंने अनाधिकारी अनर्थयुक्त शिष्यों, जो विष्णु व वैष्णवों की सेवा से बचने के लिए हरिनाम भजने में लगे थे, की इस कपट भावना को आश्रय नहीं दिया। उन्होंने उन अनाधिकारी वेशधारियों के प्रति कृपा परवश होकर उनको अपनी कुटिया के पास ही श्री विष्णु-वैष्णव सेवा के लिये लगायी गयी शाक-सब्जी के बगीचे की सेवा में लगा दिया था। जब तक इन्द्रियां और इन्द्रियार्थ, देह सम्बन्धी व्यक्तियों में लगे रहते हैं तब तक उन्हीं में आसक्ति होना मजबूरी है। मैं भगवान का हूँ इस भाव में प्रतिष्ठित होकर इन्द्रियां व उनके विषय-भक्त और भगवान की सेवा में नियोजित रहने से उनके प्रति ही प्रीति और ममता बढ़ेगी।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी का श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी के साथ प्रथम साक्षात्कार वृन्दावन में सन् 1880 में हुआ था। सन् 1891 में वर्द्धमान ज़िले के आमलाजोड़ा नामक स्थान पर बाबा जी महाराज जी के साथ भक्ति विनोद ठाकुर जी का दूसरी बार मिलन हुआ था। आमलाजोड़ा में भक्ति

विनोद ठाकुर जी ने हरिवासर तिथि (एकादशी) का दिन व रात बाबाजी के साथ गौर कृष्ण कथा में बितायी थी। यहां पर श्रीजगन्नाथ दास बाबा जी ने भक्ति विनोद ठाकुर जी को श्रीगौरांग महाप्रभु जी के नाम और उनके धाम का प्रचार करने के लिये उत्साह दिया था। आमलाजोड़ा में श्रीजगन्नाथ दास बाबा जी महाराज के साथ सारी रात जागरण करके हरिसंकीर्तन करते हुये एकादशी व्रत के पालन के प्रसंग के सम्बन्ध में ठाकुर भक्ति विनोद जी ने सज्जनतोषणी पत्रिका में इस प्रकार लिखा है कि एकादशी की सारी रात जागरण के साथ बिताने के बाद अगले दिन लगभग 8 बजे गांव के सभी भक्त महासमारोह के साथ कीर्तन करते हुये बाहर निकले। परमपूज्यपाद सिद्ध श्रीजगन्नाथ दास बाबा जी महाशय को आगे करके सभी संकीर्तन करते हुए प्रपन्नाश्रम में पहुंचे। वहां पर कीर्तन के समय बाबाजी महाराज जी के जो भाव उदित हुये उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। 100 साल से ज्यादा उम्र में प्रेमानन्द के साथ सिंह की तरह नृत्य करना और बीच-2 में 'निताई कि नाम एनेछे रे। नाम एनेछे नामेर हाटे श्रद्धामुल्ये नाम दितेछे रे।। इत्यादि ...... बोलते हुए उनके द्वारा निरन्तर क्रन्दन एवं भूमि पर लोटपोट होते समय जो अद्भुत दृश्य देखने को मिला था वह और कहीं देखने को नहीं मिलता। बाबाजी महाशय के भावों को देखकर सभी ने अश्रुपुलक से परिपूर्ण और भाव से गद्गद् होकर नृत्य किया

था। श्रीलभक्ति विनोद जी के 'आत्मचरित' को पढ़ने से मालूम होता है कि सन् 1893 में श्रीगोद्रुम के संकीर्त्तन उत्सव में एवं श्रीमायापुर दर्शन उत्सव में श्रीलजगन्नाथ दास बाबा जी ने बहुत से वैष्णवों के साथ योगदान दिया था। सन् 1892 के माघमास में बाबा जी महाराज ने कुलिया-नवद्वीप से अपने पार्षदों के साथ भक्ति विनोद ठाकुर जी की भजनस्थली गोद्रुम में स्थित सुरभि कुन्ज में शुभागमन किया था। 27 माघ बुधवार को वहां पर अपूर्व हरिसंकीर्तन महोत्सव हुआ था। श्री बिहारी दास बाबा जी नामक एक बलवान व्रजवासी श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी के सेवक थे। वे जगन्नाथ दास बाबा जी को टोकरी में उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। अतिवृद्ध होने पर भी उनकी दृष्टि शक्ति बड़ी तेज थी। केवल नीचे लटकती हुयी भौहें उनकी आंखों को ढक लेती थीं, भौहें ऊपर उठाने पर ही वे देख पाते थे। ऐसा सुना जाता है कि बिहारीदास बाबा जी जब बाबा जी महाराज को टोकरी में बिठाकर महाप्रभु जी की आविर्भाव स्थली में लाये थे तब महाराज जी ने 'जय शचीनन्दन गौरहरि' बोलते हुये उदण्ड नृत्यकीर्तन किया था। वृद्ध बाबा जी को इस प्रकार उद्दण्ड नृत्यकीर्तन करते हुये देख कर सभी विस्मित हो गये थे। बाबा जी महाराज ने अपने दिव्य दर्शन से पहले श्रीमन्महाप्रभु जी के जन्मस्थान तथा बाद में खोल-भांगा-डांगा में श्रीवास-अंगन का स्थान निर्देशित किया था। सन् 1892 में

श्रीमन्महाप्रभु जी के आविर्भाव के दिन 20 फाल्गुण वृहस्पतिवार को बाबा जी महाराज कुलिया नवद्वीप से संकीर्तन शोभायात्रा के साथ श्रीमायापुर योगपीठ में आये थे और इस समय ही उन्होंने महाप्रभु जी के आविर्भावस्थान अर्थात श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर के निश्चित स्थान के बारे में बताया था।

श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी ने अपनी सज्जनतोषणी पत्रिका में इस प्रकार लिखा है कि 20 फाल्गुण, वृहस्पतिवार को 11 बजे पश्चिम पार नवद्वीप के भक्त तीन नावों में भर कर गंगा पार हुये। भक्तश्रेष्ठ महेन्द्र बाबू उन्हें पार करवाकर लाये थे। परम भागवत जगन्नाथ दास बाबा जी को पालकी में बिठा कर लाया गया। तब मायापुर में इतने यात्री थे कि गणना नहीं की जा सकती थी। मायापुर के पास पहुँच कर सबने देखा कि भक्त प्रवर श्रीद्वारिका बाबा, श्री मन्महाप्रभु जी के जन्म स्थान पर एक संकीर्तन मंडली के साथ बहुत सी पताकाओं को लहराते हुये महानन्द के साथ बाबा जी महाशय आदि की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सारे भक्त जन्म स्थान- टीले पर चढ़कर नृत्य कीर्तन करने लगे। उस संकीर्तन के द्वारा सारे नवद्वीप की जो अद्‌भुत शोभा हुयी थी, ऐसा लगता है कि ऐसी शोभा आने वाले चार सौ वर्षों में भी नहीं होगी। सब वैष्णवों ने बैठ कर ये निश्चय किया कि महाप्रभु के जन्म स्थान और श्री वासांगन की भूमि पर सेवा की जाए। श्रीजगन्नाथ दास बाबा जी महाश्य ने ये अभिप्राय प्रकट किया कि जन्म स्थान पर श्रीजगन्नाथ

मिश्र और शचीदेवी- दोनों एक घर में स्थापित हों एवं दूसरे घर में श्रीविष्णुप्रिया और लक्ष्मी देवी और बीच में महाप्रभु जी की किशोर अवस्था की मूर्ति स्थापित हो तथा श्रीवास- आंगन में पंचतत्व की स्थापना हो। (सज्जनतोषणी नामक पत्रिका के खंड 4 के 235 पृष्ठ पर वर्णित आविर्भावोत्सव नामक लेख से उद्‌धृत)।

श्रीमन्महाप्रभु जी की आविर्भाव स्थली पर एक कदम्ब का वृक्ष विराजित था। कभी कभी श्रीबाबा जी महाराज वहाँ आकर नृत्य करते थे। श्रीगौर किशोर दास बाबा जी महाराज इस कदम्ब के वृक्ष के नीचे भजनानन्द में एवं हरिकीर्तनानन्द में निमग्न रहते थे। श्रीजगन्नाथ दास बाबा जी महाराज कई बार कुलिया नवद्वीप में भजन कुटीर नामक स्थान पर रहते थे। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने इस भजन कुटीर का प्रांगण निर्माण करवाया था। उस भजन कुटीर के प्रागंण में अभी बाबा जी महाराज जी की समाधि है। बाबा जी महाराज श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जी से मिलने कलकत्ता के रामबाग में स्थित भक्ति भवन में जाते थे तथा श्रील सरस्वती ठाकुर जी के प्रति प्रचुर स्नेह का प्रदर्शन करते थे। जब बाबा जी महाराज जी ने श्रील सरस्वती ठाकुर जी की ज्योतिष शास्त्र में पारंगत होने की बात सुनी तो उन्होंने इन्हें वैष्णव सिद्धांत के अनुसार पंचांग प्रकाशित करने का निर्देश किया। इसलिए श्रीचैतन्य मठ से श्रील प्रभुपाद जी के द्वारा नवद्वीप पत्रिका प्रकाशित हुयी। अपने

जीवन काल की अन्तिम अवस्था में श्रीजगन्नाथ दास बाबा जी महाराज पीठ में आयी कुब के कारण बड़े झुक से गये थे परन्तु जब वे संकीर्तन में उन्मत्त होकर नृत्य करते थे तब वे महाप्रभु जी जैसे आजानुलम्बित भुजा, वट वृक्ष की भांति भरा भरा शरीर तथा चार हाथ लम्बे पुरुष दिखायी देते थे। वे एक छलांग में पांच छः हाथ ऊँचे उठ जाते थे। कीर्तन आनन्द में उनके अद्भुत भाव प्रकट होते थे।

श्रीजगन्नाथ दास जी 25 फरवरी सोमवार 1895 ई० में शुक्ला प्रतिपदा तिथि को दिन में 10 बजे अप्रकट हुये। इस विषय में ठाकुर भक्ति विनोद जी ने सज्जनतोषणी में लिखा है कि भक्तों के वृद्ध सेनापति, श्रीजगन्नाथ महाशय श्रीनवद्वीप मंडल के अन्तर्गत कोलद्वीप में स्थित भजन कुटीर में श्रीधाम को प्राप्त हो गये। सिद्ध बाबा जी गौर भूमि में अन्धकार कर चिज्जगत में प्रवेश कर गये। अब हम अपने जड़ नयनों से उनके आनन्द जनक नृत्य और नहीं देख पायेंगे। वे चिज्जगत में रहते हुये हम पर कृपा करें। (सज्जनतोषणी पत्रिका वर्ष 2, पृष्ठ 2)

श्री श्रील जगन्नाथष्टकम्

रूपानुगानां प्रवरं सुदान्तं श्रीगौर चन्द्रप्रिय भक्तराजम्।
श्रीराधिका माधवचित्तरामं वन्दे जगन्नाथ विभुं वरेण्यम्।।1
श्री सूर्यकुण्डाश्रयिनः कृपालोर्विद्वद्वर श्रीमधुसूदनस्य।
प्रेष्ठस्वरूपेण विराजमानं वन्दे जगन्नाथ विभुं वरेण्यम्।।2

श्रीधामवृन्दावनवासिभक्त नक्षत्रराजिस्थित सोमतुल्यम्।
एकान्त नामाश्रित संघपाल वन्दे जगन्नाथ विभुं वरेण्यम्।।3
वैराग्यविद्या हरिभक्तिदीप्तं दौर्जन्य-कापट्यवि भेदव्रजम्
श्रद्धायुतेष्वादरवृत्तिमन्त वन्दे जगन्नाथ विभुं वरेण्यं।। 4
सं प्रेरिता गौरसुधांशुना यश्चक्रे हि तज्जन्मगृहप्रकाशम्।
देवैर्नुतं वैष्णव सार्वभौमं वन्दे जग नाथ विभुं वरेण्यम्।। 5
सन्चार्य सर्वं निजशक्तिराशिं यो भक्तिपूर्णे च विनोददेवे
तेने जगत्यां हरिनामवन्यां वन्दे जगन्नाथ विभुं वरेण्यम्।।6
श्रीनाम धाम्नोः प्रबल प्रचारे ईहापरं प्रेमरसाब्धिमग्नम्।
श्रीयोग पीठे कृतनृत्यभंग वन्दे जगन्नाथ विभुं वरेण्यम्।।7
मायापुरे धामनि सक्त चित्तं गौरप्रकाशेन च मोदयुक्तम्।
श्रीनामगानैर्गलदश्रुनेत्र वन्दे जगन्नाथ विभुं वरेण्यम्।।8
हे देव। हे वैष्णव सार्वभौम ! भक्त्या पराभूत महेन्द्रधिषण्य।
त्वदेगात्र विस्तारकृतिं सुपुण्यां वन्दे मुहर्भक्ति विनोद धाराम्।।

वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज के अलौकिक चरित्र के जितने भी जानने योग्य और शिक्षणीय विषय जो 'श्रीसरस्वती जयश्री' ग्रन्थ में प्रकाशित हुये हैं एवं श्रील सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी की स्वप्न समाधि में जो अनुभव हुये हैं, उनके सम्बन्ध में श्रीचैतन्य वाणी के सम्पादक संघपति श्रीभक्ति प्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज जी द्वारा लिखित विवृत्ति, जिज्ञासु पाठकों के उत्साह के लिये नीचे दी गयी है।

वैष्णव सार्वभौम सिद्ध बाबा जी महाराज जी ने

श्रीमन्महाप्रभु जी के मु:ख से निकले सोलह नाम बत्तीस अक्षर के महामंत्र नाम को छोड़कर और किसी आधुनिक स्वकपोलकल्पित सिद्धान्त विरुद्ध रसाभास दोष से युक्त दुष्ट नामापराध को ग्रहण करने के लिए प्रश्रय नहीं दिया।

परम पूज्य पाद श्री श्रील बाबा जी महाराज किसी को भी अपनी फोटो खींचने नहीं देते थे। हमने सुना है कि एक समय श्री श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने माणिकतला भक्ति भवन में उनकी फोटो खींचने की व्यवस्था की थी तो बाबा जी महाराज लकड़ी के एक ऊँचे आसन पर अपने नित्य सेव्य श्री श्री गिरिधारी जी को गोद में लेकर बैठे हुये हैं, इसी अवस्था में उनकी फोटो खींची गयी थी। बाबा जी महाराज श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी को बहुत ही प्रेम करते थे। हमने सुना है कि बाबा जी महाराज ठाकुर भक्ति विनोद जी को अपने नित्य सेव्य गिरिधारी जी को समर्पण कर गये थे। अभी भी भक्ति भवन में गिरिधारी जी की सेवा हो रही है।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी यदि बाबा जी महाराज की फोटो खींच कर नहीं रखते तो हम लोग उनकी श्रीमूर्ति के दर्शन से हमेशा के लिए वंचित हो जाते।

कलकत्ता, बागबाज़ार में स्थित श्रीगौड़ीय मठ से सन् 1314 बंगाब्द (लगभग सन् 1934) में प्रकाशित 'सरस्वती जयश्री' ग्रन्थ के वैभवपर्व प्रथम खंड के 27वें वैभव के प्रारम्भ में ही मिलता है कि परमाराध्यतम श्रील प्रभुपाद जी

कलकत्ता श्रीगौड़ीय मठ के वार्षिक उत्सव के पश्चात शारदीय पूजा के ठीक पहले अर्थात 28 सितम्बर सन् 1922 को रात की ट्रेन से यात्रा करते हुये 30 सितम्बर शनिवार श्री माध्वाविर्भाव तिथि और विजयदशमी के दिन प्रात: काल श्रीवृन्दावन धाम पहुँचे। डा० श्री बलहरि दास महाशय जी की चेष्टा से लाला बाबू जी की ठाकुर बाड़ी के सामने घोष बाबू जी की बाड़ी में प्रभुपाद जी के ठहरने की व्यवस्था हुयी थी। 3 अक्तूबर को श्रीरूपानुग श्रेष्ठ प्रभुपाद जी ने श्रीरूप गोस्वामी जी के प्राणधन श्रीश्रीराधा गोविन्द विग्रह के दर्शन किये। वृन्दावन में श्रीचैतन्य मठ की एक शाखा की प्रतिष्ठा के अभिप्राय से प्रभुपाद जी ने भक्तों के साथ कुछ स्थान भी देखे। प्रभुपाद जी के वृन्दावन आगमन का संवाद मिलने पर उसी दिन शाम को श्रीराधारमण घेरा के श्री गोपाल भट्टगोस्वामी परिवार के पंडित मधुसूदन गोस्वामी सार्वभौम महाशय जी प्रभुपाद जी से मिलने आये। प्रभुपाद जी ने लगभग दो घन्टे तक उनके साथ नानाविध शास्त्रों के विषय में विचार-विर्मश किया एवं बाद में गोस्वामी महाशय को नवप्रकाशित 'गौड़ीय साप्ताहिक' पत्रिका के पहले वर्ष के कुछ खंड उपहार में दिये। 'गौड़ीय' के समान उच्च विचार पूर्ण पारमार्थिक पत्रिका को देखकर गोस्वामी जी ने विशेष आनन्द प्रकाशित करते हुये कहा कि ये 'गौड़ीय' (पत्रिका) ही एक दिन समग्र गौड़ीय समाज की नियामक होगी।

4 अक्तूबर को प्रभुपाद जी श्रीसनातन गोस्वामी जी के प्राणधन श्रीश्रीराधामदनमोहन जी के दर्शनों के लिये गये। उसी दिन श्रील प्रभुपाद जी दीवार से घिरे बगीचे में राधावल्लभी सम्प्रदाय के मन्दिर के पास श्रीश्रीमदन मोहन जी के ठोर में पंडित श्रीयुत रामकृष्ण दास बाबा जी से मिले। उनके साथ भी प्रभुपाद जी की अनेक शास्त्रीय विषयों पर चर्चा हुई। पंडित जी ने कहा कि श्रीनाम संकीर्तन अन्य-2 भक्ति अंगों के समान ही है एवं आजकल आधुनिक कल्पित रसाभास से दूषित जो भजन सुनने को मिलता है वह सब भी नाम संकीर्त्तन के समान ही है। उन्होंने और भी कहा कि न्यायशास्त्र में पारंगत न होने से वेदान्त में अधिकार नहीं होता तथा प्राकृत और अप्राकृत विषयों की आलोचना की विशेष आवश्यकता नहीं है।

इस पर श्रीलप्रभुपाद जी ने श्रीमन्महाप्रभु और श्री रूपसनातन गोस्वामी आदि प्रमुख-2 महाजनों के सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुये कहा कि श्रीमन्महाप्रभु जी के उपदेश में नाम संकीर्तन ही मुख्य साधन और साध्य है। कीर्तन करते हुये स्वाभाविक अप्राकृत स्मरण हो आता है। यही गोस्वामियों का सिद्धान्त है।

हर समय अप्राकृत विचारों में प्रतिष्ठित नहीं रहने से प्राकृत सहज चित्तवृत्ति हरि भजन का रूप धारण कर के स्वयं को व लोगों को धोखा देती है।

श्री रूपानुग श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज की शिक्षा के अनुसार तो रसाभास युक्त संसार सम्बन्धी गीतों और किसी प्रकार के भी नामापराधों से युक्त नाम को शुद्धनाम या श्रीनाम कीर्तन पद नहीं कहा जा सकता। अवहेलना से और श्रद्धा से नाम लेना एक अलग बात है और नामापराध को न त्यागकर या फिर नामापराध को ही शुद्ध हरिनाम समझने के ज्ञात व अज्ञात विचार को लेकर दस प्रकार के नामापराधों में से किसी को पाल कर हरिनाम करते हुये ये भावना रखना कि हरिनाम ठीक ही हो रहा है,ये एक प्रकार की आत्मवंचना है जो कि ऊपर कहे गये श्रद्धा या अवहेलना से लिये हरिनाम से बिल्कुल पृथक है।

'सरस्वतीजयश्री' ग्रन्थ से

ॐ विष्णु पाद श्रीजगन्नाथ दास बाबा जी महाराज ने श्रीमद् भक्तिविनोद ठाकुर जी को यही बात बतलायी थी कि श्रीपन्चमी या माघी शुक्ला पंचमी ही श्री श्री विष्णुप्रिया देवी जी की आविर्भाव तिथि है। तब से वर्तमान जगत में व वैष्णव समाज में हर जगह इसी तिथि को श्रीविष्णुप्रिया देवी की आविर्भाव तिथि पूजा का प्रचलन हुआ है।

श्रील प्रभुपाद जी ने श्रीविष्णुप्रिया जी के आविर्भाव के दिन श्री श्री विश्व वैष्णवराजसभा की पुनः स्थापना करने की

इच्छा की और उसी के अनुसार हरि-संकीर्तन करते हुये यह सभा पुनः 5 फरवरी, 1919 को प्रतिष्ठित हुई।

श्रील प्रभुपाद जी ने विश्ववैष्णव राजसभा का प्राचीन इतिहास सुनाया। श्री भक्ति विनोद आसन में श्रीविष्णु प्रिया-महोत्सव और श्री विश्ववैष्णव राजसभा के पुनः स्थापन के सम्बन्ध में 10 फरवरी, 1919 के दिन दैनिक अमृत बाज़ार पत्रिका में इस प्रकार प्रचारित हुआ था।

"On Wednesday last (5th instant) was celebrated with great eclat the Advent Ceremony of Sree Sree Vishnupriya Devi at the same Asana (1, Ultadanga Junction Road) The occasion was solemnised by the reinstitution of Sree Viswa-vaishnava Raj Sabha as inaugurated by no less a personage than Sree Jeeva Goswami Himself eleven years after the passing of Sree Sree Mahaprabhu and was given a fresh impetus by Sree Bhakti Vinod Thakur, 33 years ago.

श्रीसज्जनतोषणी' के 21 वें वर्ष की ९वीं संख्या में श्रीविश्ववैष्णव राजसभा के संक्षिप्त इतिहास का एक पुराना लेख 'श्री विश्ववैष्णव राज सभा' नामक शीर्षक से प्रकाशित हुआ था।

श्रील प्रभुपाद जी की स्वप्न समाधि

श्री श्रील ठाकुर भक्ति विनोद और श्री श्रील गौर किशोर दास गोस्वामी महाराज की अप्रकट लीला के पश्चात श्री श्रील प्रभुपाद जी श्रीधाम में बड़े व्यथित हृदय से रह रहे थे। मायापुर-व्रजपत्तन में वे सोच रहे थे -'मैं अपने गुरुवर्ग के मनोऽभीष्ट स्वरूप शुद्ध श्रीचैतन्य वाणी को पुनः प्रचार करने में कैसे समर्थ हो सकूँगा? मेरे पास कोई जन- बल नहीं है, उपयुक्त धन बल नहीं है, दुनिया के लोगों को मोहित करने वाली विद्या नहीं है और जागतिक किसी प्रकार की सम्पदा भी नहीं है। मेरे द्वारा क्या ये महान प्रचार रूपी कार्य सम्पन्न होगा? गुरुवर्ग के मनोऽभीष्ट के अनुसार मैं प्रचार नहीं कर पाया, ये बातें सोचकर श्रील प्रभुपाद अत्यन्त विमर्ष चित्त से रह रहे थे। भक्तिग्रन्थों का प्रचारादि कार्य भी उनसे सम्भव नहीं हो पाया, ऐसा विचार कर वे हताश व्यक्ति की तरह लीला कर रहे थे। श्रील रूप गोस्वामी जी के 'उपदेशामृत' के ग्यारह श्लोकों में से आठ श्लोकों की अनुवृत्ति रचना का कार्य जो वे कर रहे थे, वह भी उन्होंने रोक दिया। उसी समय एक दिन प्रभुपाद जी ने रात्रि के समय स्वप्न समाधि योग से देखा कि श्रीधाम मायापुर योगपीठ के नाट्य मन्दिर (सत्संग भवन) के पूर्व दिशा की ओर पंचतत्त्वात्मक श्री श्रीगौरसुन्दर संकीर्तन मंडली के साथ अपनी आविर्भाव भूमि पर विचरण कर रहे हैं। साथ में गोस्वामी आचार्यवृन्द एवं वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथ,

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर, श्रील गौरकिशोर इत्यादि सभी गुरु-वर्ग दिव्य रूप से उदित होकर श्रील प्रभुपाद जी को प्रत्यक्ष रूप से आश्वासन देते हुये कह रहे हैं, ''तुम क्या सोच रहे हो! शुद्ध भक्ति को संस्थापन करने का कार्य शुरु करो, सर्वत्र गौरवाणी का प्रचार करो- गौरधाम-गौरनाम और गौरकाम की सेवा का विस्तार करो। हम सभी नित्य वर्तमान रहकर तुम्हारी सहायता करने के लिये तैयार हैं। तुम्हारे इस शुद्ध भक्ति प्रचार कार्य में तुम्हें हमेशा हमारी सहायता मिलेगी। तुम्हारे पीछे असंख्य जन-बल, अगणित धन-बल, असामान्य पाण्डित्य इत्यादि अपेक्षा कर रहें हैं, जब जो आवश्यक होगा, तभी वह सब आकर तुम्हारे भक्ति प्रचार कार्य में दास रूप में नियुक्त हो जायेगा। सर्वत्र श्रीमन्महाप्रभु जी द्वारा प्रचारित विमल प्रेम धर्म की बातों का प्रचार हो। जागतिक किसी भी प्रकार की विपत्ति तुम्हारे इस काम में विघ्न नहीं डाल सकेगी। हम हमेशा ही तुम्हारे साथ हैं।"

स्वप्न को देखने के अगले दिन ही श्रील प्रभुपाद जी ने अतीव आनन्द से मुझे (परमानन्द प्रभु कह रहे हैं) एवं और भी कुछ विशिष्ट श्रद्धावान् व्यक्तियों को इस स्वप्न प्रसंग के बारे में बताया। उसी समय से श्रील प्रभुपाद जी करोड़ गुना अधिक उत्साह का प्रदर्शन करते हुए जगत में श्रीमन्महाप्रभु जी की शिक्षाओं का प्रचार कर रहे हैं। इसके पश्चात ही प्रभुपाद जी की अनुवृत्ति का शेष भाग भी सम्पन्न हुआ तथा

उन्होंने भक्तिग्रन्थों का प्रकाशन और प्रचार विपुल रूप से आरम्भ कर दिया। आज उसी शुद्ध प्रचार की बाढ़ समग्र भारत के सेवोन्मुख जीवों के हृदय क्षेत्र को तो प्लावित कर ही रही है बल्कि इसकी कुछ धाराएँ पाश्चात्य देशों को भी अपने इस रस में डुबो रही हैं। इसीलिये मैं समझता हूँ कि आज श्रील प्रभुपाद कलियुग पावनादतारी श्रीश्रीगौरसुन्दर जी की यह वाणी हर समय सभी को बता रहे हैं -

''यारे देख, तारे कह कृष्ण उपदेश ।
आमार आज्ञाय गुरु हइया तार एइ देश ।।
इहाते न बाधिवे तोमार विषय तरंग ।
पुनरपि एइ ठाजि पावो मोर संग ।।
-चै च. म 7/128-129

अर्थात तुम जिसे देखो, उसे ही श्रीकृष्ण नाम का उपदेश करो, मेरी आज्ञा से गुरु बन कर इस देश का उद्धार करो, इस प्रकार करने से विषय तरंग तुम्हें कभी भी नहीं बांध पायेगी, दुबारा फिर यहीं आने पर तुम मुझे यहीं खड़ा पाओगे।

श्रील वंशीदास बाबा जी महाराज

श्रील वंशीदास बाबाजी महाराज अवधूत परम हंस वैष्णव थे। पूर्वबंग (अभी बंगलादेश) में मैमन सिंह ज़िले में जामालपुर के पास मजिदपुर ग्राम में बाबाजी आविर्भूत हुये थे। इनके माता पिता जी के परिचय के विषय में कोई जानकारी नहीं है। साप्ताहिक 'गौड़ीय' पत्रिकाओं में प्रकाशित बाबा जी महाराज के अलौकिक चरित्र-वैशिष्ट्य और भक्तों के साथ भ्रमण का वृत्तान्त पढ़ने से एवं श्रीभक्ति सिद्धांत सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी के और उनके निजजनों के श्रीमुख से कही बातों से जो जाना जाता है उसे संक्षिप्त रूप से लिखने का प्रयास किया जा रहा है ।

बाबा जी महाराज पूर्व बंग से नवद्वीप में आकर अवधूत के रूप में गंगा के किनारे, वृक्षों के नीचे रह कर बड़े वैराग्य के साथ भजन करते थे। श्रील सरस्वती ठाकुर उनकी विधि के बाहर परमहंसों जैसी क्रियायें देखकर आकर्षित हुये थे व उन्हें दूर से ही दण्डवत् प्रणाम करते थे और अपने अनुगत शिष्यों को बाबा जी महाराज जी के पास जाने को मना करते थे। कारण, महापुरुष होने पर भी विधि से बाहर का आचरण देख कर साधारण निम्नाधिकारी साधक उनकी क्रियाओं को न समझ पाने के कारण उनके चरणों में अपराध कर सकते हैं। विधि का मुख्य तात्पर्य श्री श्री राधागोविन्द जी को प्रसन्न

करना है। अनर्थयुक्त साधक के लिये उसके अधिकार व शास्त्रविधि के अनुसार जो वैधीभक्ति की व्यवस्था की गयी है, वह उसे ही हरिभजन का मापदंड समझते हैं, इसलिये जब वह श्रेष्ठ वैष्णव की शास्त्र से अतीत क्रियाओं को समझने का प्रयास करते हैं तो भ्रमित हो जाते हैं एवं महापुरुष के चरणों में अपराध कर बैठते हैं तथा भक्ति पथ से गिर जाते हैं । ऐसा सुना जाता है कि बाबा जी के दो कपड़े के झोले थे, एक झोले में वे निताई गौरांग और दूसरे झोले में राधागोविन्द जी की मूर्तियां रखते थे। वे नित्य उनकी पूजा करते थे। झोले से मूर्तियां निकाल कर मन-2 में मन्त्रादि जप करते हुये भाव के साथ सेवा करने के पश्चात फिर उन मूर्तियों को उन्हीं झोलों में रख देते थे। कभी-2 लोगों के दर्शन के लिये झोले से बाहर भी रख देते थे। कभी वे हुक्के में तम्बाकू भरकर दूर से ही हुक्के की नली राधागोविन्द जी को पिलाने की भावना से दिखाते थे, किन्तु निताई गौरांग को नहीं दिखाते थे। बहुत से व्यक्ति चावल,आटा, फल, केला व मूली इत्यादि बाबा जी महाराज को सेवा के लिये देते थे। किन्तु बाबा जी उस तरफ टेढ़ी नजर से भी नहीं देखते थे। द्रव्यों का जब ढेर लग जाता तो अचानक न जाने क्या ख्याल उन्हें आता और वे उन सबका दृष्टि भोग ठाकुर जी के अर्पण करके उपस्थित जन समूह में बांट देते थे। उनके इन सब अलौकिक आचरण को साधारण व्यक्ति कैसे समझ सकते हैं? बाबा जी महाराज मात्र डोर व कोपीन ही पहनते थे। उनकी दाढ़ी-मूंछ भी ऊल-जलूल

भाव से उनके चेहरे से चिपटी रहती थी। बड़ा लम्बा-चौड़ा शरीर था उनका, वे बड़े-2 वृक्षों से बिना किसी सहायता के ही हाथ ऊँचा करके पूजा के लिए फूल तोड़ लाते थे। एक बार फूल तोड़ने के प्रयास में वे वृक्ष से नीचे गिर पड़े और लंगड़ाने की लीला करने लगे। बाबा जी महाराज अपने भाव में ही विभोर रहते थे। वे किसी से ज्यादा नहीं बोलते थे। बहुत से लोग उनके पास जाकर बहुत कुछ पूछते थे। कभी कुछ ख्याल आता तो वे परोक्ष भाव से किसी के प्रश्न का उत्तर देते, नहीं तो अधिकतर मौन ही रहते थे। ठाकुर ज़ी की ओर मुख करके वे कितना व क्या-क्या बोलते उसका हिसाब नहीं । वे कभी हँसते तो कभी कभी व्याकुल होकर क्रन्दन करते-करते आकुल हो जाते। वे अपने उपदेशों में शास्त्रों के श्लोक नहीं बोलते थे किन्तु अपनी अलौकिक अनुभूति से जो दो-चार बातें बोलते वे चित्त में गंभीर रूप से रेखांकित हो जाती थीं। एक बार की बात है कि एक व्यक्ति प्रतिदिन बाबा जी के पास आता और पूछता कि भगवान की प्राप्ति कैसे होगी? बाबा जी महाराज चुप ही रहते,कुछ नहीं बोलते थे। एक दिन हठात् महाराज जी की दृष्टि उस पर पड़ी। उन्होंने पूछा 'क्या चाहते हो'? 'महाराज-मैं भगवान को प्राप्त करना चाहता हूँ ।' तो इसके उत्तर में बाबा जी महाराज जी ने कहा-'रोना' । बाबा जी ने केवल नवद्वीप में रहकर ही भजन किया था, ऐसी बात नहीं है । उन्होंने तो विभिन्न तीर्थ-स्थानों में जाकर भजन किया था । वे 'कृष्ण भक्ति

रस भाविता मति' थे। कृष्ण भाव से विभावित भावना से हमेशा कृष्ण-प्रेम रस-सागर में निमज्जित होने के कारण बाबा जी महाराज जहाँ भी जाते वहाँ की प्रत्येक वस्तु उनके हृदय में कृष्णलीला को उद्दीपन करवाती थी। विशेष रूप से, जब कहीं वट वृक्ष दिख जाता तो वे उसे वंशीवट समझ उसके नीचे बैठ जाते थे और आसानी से वहां से नहीं उठते थे। 24 फरवरी 1941, सोमवार त्रयोदशी के दिन बाबा जी महाराज जी ने श्रीकोलद्वीप (अभी जो नवद्वीप शहर है) से वृन्दावन की यात्रा की थी। रास्ते में कभी पैदल, कभी बैलगाड़ी तो कभी रेलमार्ग से उन्होंने यात्रा की । पहले वे काटोया में गये । वहाँ पर काटोया रेलवे स्टेशन के पास ही एक विशाल वट वृक्ष के नीचे दो दिन रहे। फिर वहाँ से ट्रेन में बैठकर भागलपुर स्टेशन पर उतर गये। वहाँ भी स्टेशन के पास ही वट वृक्ष के नीचे एक दिन रहे। अगले चार दिन वे गंगा के किनारे रहे। फिर भागलपुर से चढ़े, गया में उतर गये और वहाँ श्री विष्णु पादपद्म के नज़दीक फल्गु नदी के किनारे तीन दिन, काशी धाम के श्रीदशाश्वमेध घाट में गंगा जी के बीच नौका में तीन दिन, अयोध्या में सरयू नदी के किनारे तीन दिन, वहाँ पर वट वृक्ष के नीचे एक प्रहर (तीन घंटे), प्रयाग-त्रिवेणी में दस दिन, मथुरा में श्रीविश्राम घाट पर यमुना के किनारे दो दिन, वृन्दावन में वंशीवट में आठ दिन, यमुना के किनारे एक छोटी सी जगह पर नौ दिन, गोविन्द जी के मन्दिर में एक दिन, नन्दग्राम में सूर्यकुंड के पूर्व की तरफ तमाल वृक्ष के नीचे आठ

दिन, पावन सरोवर में दो दिन, पीलू फल के वृक्ष के नीचे चार दिन, पुनः वृन्दावन में वंशीवट में नौ दिन, भजनानन्द में विभोर रहकर लगभग तीन मास बाद ज्येष्ठ त्रयोदशी के दिन वापस नवद्वीप पहुँचे। जो लोग भ्रमण में बाबा जी महाराज जी के साथ थे, वे लोग बाबा जी को भिन्न-2 वनों में कृष्णलीला कीर्त्तन, कभी नवद्वीप धाम की महिमा कीर्त्तन, कभी उन्हें उच्च स्वर में गाते, कभी ज़ोर से हँसते, कभी उन्मत्त व्यक्ति की तरह ऊट-पटांग बातें करते व कभी मौन व कभी विग्रह के साथ मन-मन में बड़-बड़ बातें करते देखते रहते। ऐसा करते हुए उन्हें अलग अलग भावों में विभावित देख कर साथ वाले भक्त बार बार चमत्कृत हो उठते ।

प्राचीन साप्ताहिक गौड़ीय पत्रिकाओं के विभिन्नि स्थानों पर बाबा जी महाराज जी का जो भ्रमण वृत्तान्त मिलता है उससे ऐसा जाना जाता है कि उन्होंने 1943 ई0 में मार्च से आरम्भ करके साल के अन्त तक श्रीअम्बिका कालना, खड़गपुर (मेदिनीपुर), बालेश्वर, सोरों, भद्रक, खुरदारोड, पुरुषोत्तम धाम, दुबारा फिर गया, काशी, सैयदपुर ग्राम, पटना, मुंगेर इत्यादि बहुत से स्थानों पर शुभपदार्पण किया था।

बहुत से व्यक्ति बाबा जी महाराज जी से जो प्रश्न पूछते थे और बाबा जी जो उनका संक्षिप्त सा उत्तर देते थे उनमें कुछ एक नीचे दिये गये हैं -

प्रश्नः बाबा! हम क्या करें?

उत्तरः नित्यानन्द जी का भजन करने से श्री चैतन्य महाप्रभु जी मिलेंगे, दुःख चले जायेंगे और हृदय में परमानन्द का उदय हो जायेगा।

प्रश्नः इन्द्रियों की लताड़ से छुटकारा पाने का क्या उपाय है?

उत्तरः गोविन्द शब्द सुनते ही अनर्थ ठीक वैसे ही भाग जायेंगे जैसे सिंह की गर्जना सुनने से हाथी भाग जाते हैं।

प्रश्नः आपके संसार में भी तो दुःख ही है?

उत्तरः यहाँ पर निरानन्द है, किन्तु गौर-निताई का भजन करने से आनन्द मिलेगा।

हमारा यह संसार नित्य है जबकि आपका माया का संसार है। जैसे शिशु सोते-सोते हँसता है, रोता है- तुम्हारे संसार का सुख भी ऐसा ही है।

प्रश्नः कृष्ण की कृपा- भक्त की कृपा हम समझेंगे कैसे?

उत्तरः भगवान कहते हैं कि जो मेरी आशा करता है, मैं उसका सर्वनाश कर देता हूँ भगवान किसी को पैसा देता है, और किसी का लेता है। वैष्णव ठाकुर! आपके चरणों में अपराध होने से कहीं भी परित्राण नहीं है । कैसे धोखा देंगे? परित्राण कौन करेगा? और किसको मैं परित्राण के लिये कहूँ और सुनेगा भी कौन? वैष्णवों के चरणों में लेश मात्र भी रति नहीं हुयी।

प्रश्नः सुख किसमें है? त्याग में या भोग में?

उत्तरः साधु लोग सरयू नदी के किनारे रहते हैं और सीता राम कहते हैं, यहाँ आनन्द है। यहां निरानन्द नहीं रहता। दुर्योधन पक्ष में जितने हैं, सभी निरानन्द में हैं और युधिष्ठिर महाराज जी की तरफ जितने हैं, वे सुखी हैं। ये सुख और दुःख दो भाई हैं। भोग और त्याग कोई भोग करता है तो कोई त्याग करता है।

प्रश्नः आप कभी मायापुर गये हैं?

उत्तरः गया हूँ । उसे मायापुर भी कहते हैं और नवद्वीप भी। मायापुर मन्दिर के चारों तरफ घर हैं। नीम पेड़ के नीचे पूजा होती है। मैं एक बार गुदड़ी और कमंडलु लेकर गया था । शचीनन्दन आकर मेरा कमंडलु ले गया। मैं बैठा रहा । कुछ देर बाद वो कमण्डलु वापस दे गया और मैं वापस चला आया। श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के प्रतिष्ठाता श्रील गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज बाबा जी महाराज के सम्बन्ध में एक घटना कभी सुनाते थे कि श्रील गुरुदेव जी ने अपने दो गुरुभाईयों - श्रीमद्भक्ति विचार यायावार महाराज और श्रीमद् भक्ति कुमुद सन्त महाराज के साथ मिल कर प्रयास करके मेदिनीपुर शहर में 'श्रीश्यामानन्द गौड़ीय मठ' नामक एक मठ की स्थापना की । एक बार बाबा जी तीर्थ भ्रमण करते समय मेदिनीपुर में आये। श्रील गुरुदेव जी ने जब सुना कि बाबा जी महाराज बैलगाड़ी में बैठ कर आ रहे

हैं तो परमोल्लास के साथ बाबा जी महाराज को मेदिनीपुर मठ में आमंत्रण करने के लिये उन्होंने एक सेवक को उनके पास भेजा। बाबा जी महाराज ने सेवक को वचन भी दिया कि वह आयेंगे एवं श्रील गुरुदेव जी ने उनकी सेवा के लिये यथोचित व्यवस्था भी की। किन्तु दोपहर की भोग आरती के पश्चात बहुत देर तक़ प्रतीक्षा करने पर भी जब बाबा जी नहीं आये तब गुरु महाराज जी उनके पास पहुँचे। तब बाबा जी महाराज मेदिनीपुर शहर के प्रवेश स्थान के कुछ दूर एक वट वृक्ष को देख "यही वंशीवट - यही वंशीवट" बोलते हुए बैलगाड़ी से उतर पड़े और उन्होंने वहीं ठाकुर जी के भोग की व्यवस्था कर ली । श्रीलगुरुदेव जी को देखकर उन्होंने सरस्वती ठाकुर जी के सम्बन्ध में बहुत प्रेम प्रकट किया एवं स्नेह के साथ ठाकुर का खीर प्रसाद दिया।

श्रील गुरुदेव जी ने बाबा जी महाराज का दिया हुआ खीर का प्रसाद परम आदर के साथ पाया। गुरुदेव जी हमें बताया करते थे कि उस खीर प्रसाद का अपूर्व आस्वादन था। हमारे शिक्षा गुरु परमपूज्यपाद श्रीभक्ति प्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज जी ने बाबा जी महाराज जी के अलौकिक चरित्र के सम्बन्ध में कुछ एक घटनाओं का विवरण दिया है। एक आंखों देखी घटना बाबा जी की इस प्रकार है कि श्रीनवद्वीप में गंगा के किनारे पर स्थित भजन कुटीर में श्रीविग्रह के सामने फलों का ढेर लगा रहता था। उसमें किसी को भी

हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था। एक दिन सबने देखा कि एक गाय उन फलों को खा रही है और बाबा जी महाराज ताली बजा कर ज़ोर से हँस रहे हैं। बाबा जी के सेवक का नाम पूर्ण या पुण्य था। मैंने कौतुहल वश उससे पूछा कि बाबा आज इतना हँस रहे हैं, क्या कारण है? उसने कहा कल रात बाबा के भोग के और पूजा के बर्तन चोर चोरी करके ले गये हैं और अब ऊपर से फलों को गाय द्वारा खाते देख आनन्द से खिल खिला कर हँस रहे हैं और कह रहे हैं 'एक चोर देता है और एक चोर लेता है।'

गाय को भगाने का कोई उपाय नहीं है, ये चौराग्रगण्य पुरुष ही तो कृष्ण हैं।

बाबा किसी को भी अपने चरणों में हाथ नहीं लगाने देते थे किन्तु आज फाल्गुनी पूर्णिमा के अगले दिन श्रीजगन्नाथ मिश्र जी का आनन्दोत्सव है। आज बाबा आनन्द से अपने आप को भूले बैठे हैं और कल्पतरु हो गये हैं। आज मैं उनके पादपद्म को स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त कर कृतार्थ हो गया। एक दिन उनका फेंका हुआ कुछ मुझे ग्रहण करने का सौभाग्य मिला था।

त्यजिया शयनसुख विचित्र पालंक। कबे व्रजेर धूलाय धूसर हबे अंग।। इन सब पदों को गाते-2 छल छल नेत्रों से बाबा जी महाराज गद्‌गद् कण्ठ से कह उठते थे:

तोमरा त केवल गाहियाइ गेल, यार फाटल, तार फाटल! अर्थात् हम तो केवल महाजन के पदों को सुनते हैं व गाते हैं किन्तु हृदय नहीं पिघलता। धाम की धूलि अगर शरीर पर लग जाये तो हम उसे झाड़ देना चाहते हैं उसका मूल्य नहीं समझते हैं।

हमने सुना है कि श्रील वंशीदास बाबा जी ने हमारे परम गुरु जी, श्री गौर किशोरदास बाबा जी से वेश लिया था। एक दिन बाबा जी की कुटीर के आंगन में कोई व्यक्ति महामंत्र कीर्त्तन के बदले अन्य कोई स्वकपोलकल्पित अर्थात अपनी सोच से बनाया हुआ रसाभास दोष से दूषित और सिद्धान्त विरुद्ध नाम गान करने लगा। उसके शुरू करते ही बाबा ने 'ये नाम नहीं चलेगा' कह कर उसे गाने के लिए तुरन्त मना कर दिया था।

एक सज्जन प्रायः ही 'कृपा करो' 'कृपा करो'- कह कर प्रार्थना करते थे। एक दिन बाबा ने अपनी कौपीन खोली और उसको पकड़ाते हुए बोले कैसी कृपा लेगा, ले ये ले-बाबा जी की बोलने की भंगिमा सुनकर वह व्यक्ति डर गया। हम लोग 'वैष्णवेर कृपा, याहे सर्व सिद्धि'

(अर्थात वैष्णव कृपा-जिससे तमाम सिद्धियाँ मिल जाती हैं) ऐसी कृपा प्राप्त करने के लिये वैष्णव के चरणों में निष्कपट शरणागति की प्राप्ति का विचार हम अपने अन्दर देख नहीं पा रहे हैं?

.... मुख से 'कृपा करो' बोलने से क्या होगा?

श्रीगोकुल दास बाबा जी नामके एक हमारे वृद्ध गुरु भाई थे। मैंने उनसे सुना था कि उनका पूर्वाश्रम, बाबा जी के पूर्वाश्रम के पास में ही था। वे भी प्राय: मायापुर से बाबा जी के दर्शन करने जाते थे। बाबा पूर्व बंग की भाषा में अपना मन खोलकर हरिकथा कहते थे''

श्रील बाबा जी महाराज श्रीवृन्दावन व श्रीपुरुषोत्तम धाम की तरफ के दीर्घ भ्रमण के पश्चात् जब नवद्वीप धाम में वापस आते थे तो मजिदपुर वासी भक्तों के आग्रह से बीच-बीच में अपनी आविर्भाव स्थली पर भी शुभपदर्पण करते थे किन्तु इससे वे सुखी नहीं होते थे। कहते थे कि ये पांडव वर्जित स्थान है। श्रावण मास की शुक्ल चतुर्थी के दिन श्रील बाबा जी महाराज अप्रकट हो गये।

श्री श्रीलसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर

नमो भक्तिविनोदाय सच्चिदानन्दनामिने।

गौरशक्ति स्वरूपाय रूपानुगवरायते।।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी का अलौकिक स्वरूप तो उनके कृपापात्र जनों के हृदय में ही प्रकटित है। ये श्रीराधा जी की प्रधाना सखी-ललिता सखी की प्रियतमा, श्रीरूप मंजरी जी का अनुगत करने वालियों में श्रेष्ठ हैं। ठाकुर श्री भक्तिविनोद जी ने स्वरचित 'कल्याण कल्पतरु गीति' में अपने स्वरूप के सम्बन्ध में इंगित किया है-'युगलसेवाय, श्रीरासमंडले, नियुक्त कर आमाय। ललिता सखीर, अयोग्या किंकरी, विनोद धरिछे पाय।।' - कल्याणकल्पतरू ।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने स्वरचित 'गीतमाला' नामक भजन ग्रन्थ में एवं श्री राधाकुण्ड में श्री ललिता सखी के कुंज-श्रीव्रजस्वानन्द सुखद कुंज में भजन का आदर्श दिखा कर श्रीरूप मंजरी की अनुगत 'कमल मंजरी' के रूप में अपना सिद्ध परिचय दिया है।

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु जी, श्रीस्वरूपदामोदर, श्रीरायरामानन्द, षड़गोस्वामी गण, श्रीनिवासाचार्य, श्रीश्यामानन्द

प्रभु तथा श्रीनरोत्तम ठाकुर इत्यादि के अप्रकट हो जाने के बाद गौड़ीय गगन में अन्धकार का युग आ गया था। इस कारण से श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के विशुद्ध प्रेम धर्म के तात्पर्य को समझने में असमर्थ होने के कारण बहुत से अपसम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ। श्री तोताराम दास बाबा जी ने तेरह अपसम्प्रदायों का नाम उल्लेख किया है: -

आउल, बाउल, कर्त्ताभजा, नेड़ा, दरवेश, सांई। सहजिया, सखीभेकी, स्मार्त्त, जात गोसाञि।। अतिबाड़ी, चूड़ाधारी गौरांगनागरी।। तोता कहे, एइ तेरर संग नाहि करी।।

बंग देश के शिक्षित, प्रतिष्ठित व्यक्ति इन अपसम्प्रदायों का घृणित आचरण देखकर श्रीमन्महाप्रभु जी के प्रेमधर्म को अनपढ, नीच जाति और चरित्रहीन व्यक्तियों का धर्म समझकर उसके प्रति श्रद्धा खो बैठे थे। जीवों की इस दुरावस्था को देखकर उदारता के लीलामय विग्रह श्रीमन्महाप्रभु जी का मन दया से भर आया और उन्होंने जीवों के आत्यन्तिक मंगल के लिये अपने निजजन श्रील भक्ति विनोद जी को जगत में भेजा। ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी ने अपनी अलौकिक शक्ति से विभिन्न भाषाओं में सौ से भी अधिक ग्रन्थ लिख कर शुद्ध भक्ति सिद्धान्तों के विरुद्ध मतों का खंडन किया और ऐसा करते हुए उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु जी की शिक्षा का सर्वश्रेष्ठत्व स्थापित किया। उनके ऐसा करने से शिक्षित समाज और जगत वासी उसके प्रति आकृष्ट हुये। फिर भक्ति विनोद ठाकुर जी

को अवलम्बन कर उनके उत्तराधिकारी के रुप से विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ और श्रीगौड़ीय मठों के प्रतिष्ठाता नित्यलीला प्रविष्ट ॐ 108 श्री मद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी आविर्भूत हुये और उन्होंने श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जी के मनोऽभीष्ट का विपुल रूप से प्रचार किया।

पृथिवी ते यत आछे देश-ग्राम। सर्वत्र सन्चार हइवेक गौर नाम।। (श्री चैतन्य भागवत, अन्त्य 4/126) ठाकुर श्रीभक्तिविनोद जी ने श्रीमन्महाप्रभु जी की इस वाणी को सार्थक किया। मानव जाति का सर्वोत्तम पारमार्थिक कल्याण करने में श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी का अवदान अतुलनीय है।

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने 'जैव धर्म' ग्रन्थ के उपोद्घात (प्रस्तावना) में ठाकुर भक्ति विनोद जी का परिचय इस प्रकार दिया है, "श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी श्रीचैतन्यचन्द्र जी के अत्यन्त प्रियजन हैं। जब काल के प्रभाव से श्रीचैतन्यदेव के मनोऽभीष्ट का प्रचार करने वाले प्रपन्च से नित्यलीला में प्रवेश कर गये तो उस समय गौड़ीय गगन गौर विहित कीर्तन किरण से वंचित हो गया एवं भोग और त्याग की घनघोर घटाओं से ढक गया। जब गौड़ गगन के सूर्य, चन्द्र और उज्जवल तारे एक-एक करके लोगों की दृष्टि से ओझल हो जाने लगे तो आकाश में अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने के लिये बिजली के प्रकाश

को छोड़कर और कोई उपाय नहीं था। समय बीतने पर 31 साल के बाद नदिया जिले के अन्तर्गत वीर नगर ग्राम में श्री गौर निज जन का आविर्भाव गौड़ीय गगन में उद्भासित हुआ।

सर्व महागुणगण वैष्णव शरीरे। कृष्ण भक्ते कृष्णेर गुण सकल संचारे। सेइ सब गुण हय वैष्णव-लक्षण। सब कहा न याय करि दिग्दर्शन।। कृपालु, अकृत-द्रोह, सत्य-सार, सम। निर्दोष, वदान्य, मृदु, शुचि, अकिंचन।। सर्वोपकारक शान्त, कृष्णैकशरण। अकाम, निरीह, स्थिर, विजित-षड़गुण। मितभुक, अप्रमत्त, मानद, अमानी। गम्भीर, करुण, मैत्र, कवि, दक्ष, मौनी।

कृष्ण भक्त के ये तमाम गुण हमें श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी के शुद्वभक्तिमय जीवन में परिपूर्ण रूप से प्रस्फुटित देखने को मिलते हैं। कृपालु, दयानिधि गौरहरि जी ने बद्धजीवों पर जैसे नौ प्रकार से कृपा वर्षण की है, उनके निजजन श्रीलभक्ति विनोद ठाकुर महाशय को भी वैसी ही दया को वितरण करते देखा जाता है।

श्रीचैतन्यमठ, श्रीगौड़ीयमठ, श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ तथा श्रीगौड़ीय मिशनों में प्रतिदिन श्रीकृष्णभजनमय जितने भी कृत्यों को किया जाता है, उनके मूल में हैं श्रील सच्चिदानन्द भक्ति विनोद ठाकुर। श्रीगौड़ीय मठ प्रतिष्ठान और श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी दोनों अभिन्न हैं। श्रीभक्ति विनोद

ठाकुर जी के इस अलौकिक अवदान के लिये प्रतिष्ठान हर प्रकार से सदैव ऋणी रहेगा।

श्रील सरस्वती प्रभुपाद जी ने लिखा है कि श्रीरूप गोस्वामी जी के अनुगत भक्त अपनी शक्ति के प्रति आस्था स्थापना न कर मूल स्थान पर ही सारी महिमा को आरोपित करते हैं अर्थात प्रत्येक अच्छे कार्य का श्रेय वे स्वयं को न देकर अपने मूल को ही देते हैं। हम भी श्रीकृष्णचैतन्य, श्रीरूप, श्रीभक्तिविनोद और श्रीगुरुपादपद्म क उद्देश्य से ही सब कार्य करते हैं। पत्रावली तृतीय खण्ड 89 पेज पर।

श्रीब्रह्म-माध्व सारस्वत गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्त, श्री गुरु परम्परा में श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जी को नित्य इस प्रकार स्मरण करते हैं।

"शुद्ध भक्ति प्रचारस्य मूलीभूत इहोत्तमः।"

"श्रीभक्तिविनोदो देवस्तत् प्रियत्वेन विश्रुतः।"

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी के अनुकम्पित शिष्यों में से दो प्रधान पार्षद पूज्यपाद श्रीमद् भक्ति रक्षक श्रीधर देव गोस्वामी जी महाराज जी एवं पूज्यपाद श्रीमद् भक्ति विचार यायावर गोस्वामी महाराज जी द्वारा रचित क्रमशः श्री भक्ति विनोद ठाकुर वन्दना (संस्कृत) एवं बंगला स्तुति नीचे दी जा रही हैं-

"वन्दे भक्तिविनोदं श्रीगौरशक्ति स्वरूपकम्।
भक्ति शास्त्र सम्राजं राधारससुधानिधिम्।।"

अर्थात साक्षात श्रीगौर शक्ति स्वरूप भक्ति शास्त्र सम्राट, श्रीराधामृतसमुद्र श्री श्रील ठाकुर भक्ति विनोद जी की मैं वन्दना करता हूँ।

श्री श्री भक्ति विनोद स्तुति।

भक्ति विनोद प्रभु दया कर मोरे।
तब कृपा बले पाइ श्रीप्रभुपादेरे।।
भक्ति सिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद।
जगते आनिया दिले करिया प्रसाद।।
सरस्वती कृष्ण प्रिया, कृष्णभक्ति ताँर हिया,
विनोदेर सेइ से वैभव।
एइ गीतेर भावार्थ, प्रभुपाद-पर-अर्थ,
एवे मोरा करि अनुभव।
श्रीचैतन्येर जन्म स्थान श्रीमायापुर।
तोमार प्रचारे एवे जानिल संसार
शिक्षामृत, जैव धर्म आदि ग्रन्थ शत।
सज्जन तोषणी पत्रि सर्वसमादृत
एइ सब ग्रन्थपत्रि करिया प्रचार।
लुप्तप्राय शुद्ध भक्ति करिले उद्धार।।
जीवेरे जानाले-तुमि हओ कृष्णदास

कृष्णभज कृष्ण चिन्त, छाड़ि अन्य आश।।
कृष्ण दास्ये जीव सब परानन्द पाय।
सकल विपद ह'ते मुक्त ह'ये याय।।
आपनि आचारि धर्म शिखाले सबारे।
गृहे किम्वा धामे थाकि भजह कृष्णेरे।।
गदाधर गौरहरिसेवा प्रकाशिले।
श्रीराधामाधव रूपे ताँदेर देखिले।।
गोस्वामीगणेर ग्रन्थ विचार करिया।
सुसिद्धान्त शिखायेछ, प्रमाणादि दिया।।
ताहा पड़ि शुनि लोक आकृष्ट हइला।
जगभरि तब नाम गाहिते लागिला।।
व्यासेर अभिन्न तुमि पुराण प्रकाश[19]।
शुकाभिन्न प्रभुपाद श्री दयित दास।।
वैष्णवेर यत गुण आछये ग्रन्थेते।
सकल प्रकाश हैला तोमार देहेते।।
श्रीगौड़मंडल माझे श्रीवीर नगर।
तव आविर्भाव स्थान सर्वशुभंकर।।
वन्दि आमि नतशिरे सेइ पुण्य क्षेत्र।
मस्तके धारण करि से धूलि पवित्र।।
तोमार कृपाय ईशोद्याने स्थान पाई।
भागवत मठे वसि तव नाम गाई।।

19. पुराण प्रकाश- पुराण-प्रकाश-पद्म पुराणदि को प्रकाशित करने वाले।

तोमार दासानुदास यति यायावर।
प्रार्थना करये धामवास निरन्तर।।

जिस प्रकार स्वयं भगवान श्रीकृष्ण की नरवपुस्वरूप मे सर्वोत्तम नर लीला है, उसी प्रकार कृष्ण पार्षद भक्त भी पतित जीवों का उद्धार करने के लिय मनुष्य कुल में अवतीर्ण होकर नरलीला के अनुरूप ही आचरण करते हैं। मनुष्य जैसे दिखने पर भी माया के जगत् से स्पर्श न होने के कारण वे सदा अप्राकृत हैं। श्रीकृष्ण में गाढ़ प्रेम रखने वाले भगवत् भक्त का गृहस्थ आश्रम में रहना, विषयों में आसक्त बद्धजीवों की तरह नहीं है। उन भक्तों का गृहस्थ में रहना तो मनुष्यों के साथ लेन देन के लिये मनुष्य की तरह अनुकरणिक लीला मात्र है। विष्णु - वैष्णवों के चरणो में निष्कपट भाव से शरणागत व्यक्ति उनकी कृपा से ही उनकी अलौकिकता को समझने में समर्थ हो सकता है।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी का वंश परिचय

आदिशूर के द्वारा बुलाये जाने पर श्रीपुरुषोत्तम जी बंग देश गये थे। श्रीपुरुषोत्तम जी के वंश में सातवें एवं आठवें अधस्तन रूप में श्री विनायक और उनके पुत्र श्री नारायण राजमंत्री बने थे। इस वंश में 15वें अधस्तन के रूप में राजा कृष्णानन्द का जन्म हुआ। ये कृष्ण भक्त थे। श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जी ने सपार्षद इनके घर शुभागमन करके इनके प्रति प्रचुर आशीर्वाद किया था। बाद में इनके वंश में ही महात्मा

श्रीगोविन्द शरण दत्त जी ने जन्म ग्रहण किया जिन्होंने गोविन्दपुर का निर्माण करवाया था. कालीघाट, सुतानुटी और गोविन्दपुर - इन तीन शहरों को लेकर ही कलकत्ता बना है। गोविन्द शरण जी के पोते श्री राम चन्द्र व श्री राम चन्द्र जी के पौत्र श्री मोहन दत्त थे। इन्होंने जनसाधारण के प्रयोग में लाने के लिये कलकत्ता के हेदुआ सरोवर को Municipal Committee को दान में दे दिया था। गया के प्रेतशिला तीर्थ में और चन्द्रनाथ के पहाड़ पर बहुत पैसे खर्च कर सीढ़ियों का निर्माण करवाया था। इनके पौत्र श्री राजा बल्लभ दत्त थे। श्रीराजा बल्लभ के पुत्र परमधार्मिक, विषयविरक्त श्री आनन्द चन्द्र दत्त थे।

नदिया ज़िले के उलाग्राम के प्रसिद्ध जमींदार श्री ईश्वर चन्द्र मुस्तोकी की कन्या श्री जगन्मोहिनी के साथ श्री आनन्द चन्द्र जी का विवाह हुआ।

उला ग्राम में ठाकुर जी का आविर्भाव

श्री आनन्द चन्द्र दत्त और श्री जगन्मोहिनी देवी को माता पिता के रूप में अंगीकार करते हुये सन् 1838, 2 सितम्बर रविवार की शुक्ला त्रयोदशी की शुभ तिथि को उलाग्राम (वीरनगर) में बसे अपने ननिहाल में आप आविर्भूत हुये थे। इनके माता पिता ने इनका नाम रखा था श्रीकेदारनाथ।

शिशुकाल से ही ठाकुर की अलौकिक प्रतिभा

अतीव शिशु अवस्था में अर्थात मात्र दो साल की आयु में ठाकुर जी की जिह्वा में कवित्व की स्फूर्ति हो गयी थी। इस प्रकार की असाधारण योग्यता इस बात की ओर इंगित करती है कि भविष्य में उनके द्वारा लिखी गयी भगवद्भाव पूर्ण और रस से परिपूर्ण अप्राकृत गीतावलियाँ उन्हें हृदय में स्वत: ही स्फुरित होंगी, न कि इनके किसी भी प्रकार के सांसारिक पांडित्य, विद्या या मनोगत भाव से। अप्राकृत नित्य सिद्ध भगवद् पार्षदों के हृदय में अप्राकृत भाव स्वयं ही प्रकट होते हैं। वैकुंठ पुरुषों के मुखारविन्द से निकले शब्द – शब्दी भगवान से अभिन्न होते हैं। इनसे जागतिक किसी भी शब्द की तुलना नहीं होती। श्रीलभक्ति विनोद ठाकुर जी के द्वारा प्रयोग किया गया प्रत्येक शब्द भगवद् भाव को पैदा करने वाला और भक्ति रस से पूर्ण अमृत है।

श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी ने मात्र छ: साल की आयु में रामायण और महाभारत पर सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था। क्या साधारण छ: साल के शिशु के लिये ये सब करना सम्भव है? रामायण और महाभारत आदि शास्त्र भगवान के अभिन्न स्वरूप हैं। भगवान की कृपा को छोड़कर केवल पांडित्य द्वारा इन सब भक्ति शास्त्रों का तात्पर्य समझ में आने वाला नहीं है। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जी के हृदय में शास्त्रों के अर्थ स्वयं प्रकटित थे। इसलिये श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी के द्वारा किये गये शास्त्रों के अर्थ तथाकथित पांडित्य के द्वारा की गयी व्याख्या से पूरी तरह अलग हैं।

नौ वर्ष की उम्र में इन्होंने ज्योतिष शास्त्र पर खोज शुरू कर दी थी। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने अपने आत्मचरित में लिखा है कि दस साल की आयु में उनके चित्त में तत्त्व जिज्ञासा जागी। वे तो सदा तत्त्वज्ञान से उद्भासित ही थे फिर भी मनुष्य जन्म की विशेषता स्थापन करने के लिये उन्होंने ऐसी लीला की थी। ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी अत्यन्त मृदु और सुमधुर भाषी थे। वे प्रेमपूर्ण और मर्यादा पूर्ण वाक्यों के द्वारा सबका हृदय जीत लेते थे। यहां तक कि माधुर्यपूर्ण वाक्यों से जिनके विचारों का खंडन करते, वे भी दु:खी न होकर सुख का ही अनुभव करते थे। ऐसी शक्ति चंचल चित वाले साधारण बालक में नहीं हो सकती। ठाकुर श्री भक्ति विनोद जी के स्वलिखित जीवन चरित में ऐसी कई घटनाओं के विषय में जाना जाता है: –

"जिसके भी घर में कोई उत्सव हो मैं देखने जाता हूं। ब्रह्मचारी जी के घर पर बहुत पूजा होती है। उस घर के बाहर एक सुन्दर मन्दिर है। उसी घर के अन्दर की तरफ एक बगीचा भी है और होम करने का स्थान भी है। ब्रह्मचारी जी तान्त्रिक मंत्रों से उपासना करते हैं। उन्होंने मुर्दों की खोपड़ियाँ छोटे – 2 खानों में रखी हुयी हैं। किसी किसी का कहना था कि उन खोपड़ियों में दूध और गंगा जल देने से वे हंसती हैं। मैंने स्वयं खोपड़ी को उतार कर उसके ऊपर जल देकर देखा लेकिन मैंने कोई भी हँसी नहीं देखी। वहां पर ज्योतिषियों के भी घर

हैं। मैं वहाँ गाने सुनने जाता था।

एक वृद्ध तरखान वहाँ नियुक्त रहता था। मैं उसके पास बैठकर उससे अनेक बातें पूछता था। वह मेरी सब बातों का उत्तर देता था । मैंने उससे पूछा कि इस प्रतिमा में देवता कब आयेंगे? उस ने उत्तर दिया,-जिस दिन मैं इन्हें नेत्र प्रदान करूँगा उसी दिन देवता आकर प्रतिमा में अधिष्ठित हो जायेंगे। मैं उस दिन बड़ी उत्सुकता के साथ देखने आया, किन्तु किसी भी देवता का अधिष्ठान देखने को नहीं मिला। तब मैंने कहा कि गोलोक पाल ने पहले धान की पराली से और उसके ऊपर मिट्टी से इस प्रतिमा को बनाया है और तुमने भी पहले चाक से और फिर रंगों से इसमें कलाकारी की है। वास्तव में देवता तो यहाँ कहीं आए नहीं। तब उस वृद्ध सूत्रधार ने कहा कि अभी ब्राह्मण आयेंगे और घड़ा बिठाएगें, तब भगवान का आविर्भाव होगा।

मैं तब भी गया परन्तु मैं तब भी कुछ नहीं देख पाया। उस वृद्ध को ज्ञानवान जानकर मैंने उसके घर में जाकर उससे सब बातें पूछीं तब उसने कहा-'प्रतिमा पूजा में मेरा कोई विश्वास नहीं है। मुझे ऐसा लगता है कि ब्राह्मण इस तरीके से पैसे इकट्ठे करते हैं'। वृद्ध के इस प्रकार कहने पर मुझे बहुत अच्छा लगा । मैने उससे परमेश्वर के बारे मे पूछा। उसने कहा-कोई कुछ भी बोले, मैं एक परमेश्वर को छोड़ कर किसी पर विश्वास नहीं करता। देवी देवता कल्पित हैं, मैं तो

प्रतिदिन उस परमात्मा की आराधना करता हूँ। वृद्ध की इस बात पर मुझे बहुत श्रद्धा हुयी।

मैं जिज्ञासु हो उठा। गुलाम खां नामक एक सेवक पहरेदार था । मैंने उससे पूछा तो उसने कहा कि 'ईश्वर का नाम खुदा है। वह एक ही था दूसरा और कोई नहीं था। खुदा ने शरीर की मैल को रोटी की तरह बना कर एकार्णव के जल में फेंका। रोटी का ऊपर का हिस्सा तो आकाश बना और नीचे का हिस्सा पृथ्वी बन गया। इस प्रकार जगत की सृष्टि होने पर आदम की सृष्टि के बाद मनुष्यों की सृष्टि हुई। हम सभी उस आदम के ही वंशज हैं। ये बात सुनकर मैंने उससे पूछा कि आप राम को क्या कहते हो? उसने कहा कि 'राम व रहीम एक ही हैं। वही खुदा है। तभी मैंने भूतों के मंत्र के बारे में पूछा। भूतों की बात पर गुलाम खाँ ने कहा कि सभी भूत शैतान की औलाद हैं, वे रहीम के नाम से डरते हैं । इस तत्व ज्ञान से मेरा मन प्रसन्न हुआ। परशुराम मुस्तौफी तब वकालत पढ़ते थे। पहले वह थोड़ा बहुत ईश्वर को मानते थे परन्तु बाद में ईश्वर के सम्बन्ध में जवाब दिया कि जब वह ईश्वर को मानते थे। तब रघुमामा और नशु मामा उनके चेले थे और जब ईश्वर को छोड़ा तो राममोहन राय को 'गुरु महाशय' कहने लगे। मेरे लिये बड़ी मुश्किल हुयी। मैं एक छोटा बालक ज्यादा बातें जानता नहीं था फिर भी इस प्रकार के मतभेद देखकर मन में सुख नहीं हुआ। परशुराम मामा ने कहा, 'बेटा, सब कुछ प्रकृति से ही हुआ है। फिर यही बातें

मैंने किसी-2 सम्प्रदाय के भट्टाचार्यों से पूछी तो वे भी गोलमोल उत्तर देने लगे किन्तु अस्थिर सिद्धान्त अवस्था में भी मैंने राम नाम नहीं छोड़ा।

इन सब बातों के द्वारा श्रीलभक्ति विनोद ठाकुर जी ने अनावश्यक तर्क वितर्क के मार्ग को छोड़कर अपरिपक्व अवस्था में गोलमोल सिद्धान्तों में प्रवेश न कर, श्रद्धा के साथ हरिनाम करने का उपदेश दिया है। श्रीमन्महाप्रभु जी भी जब पढ़ाते थ तो उन्होंने भी ज़ोर देकर छात्रों को हरिनाम करवाया था। हरिनाम के द्वारा ही वास्तविक तत्व ज्ञान (हृदय में) प्रकटित होगा। जड़ीय मन व बुद्धि के द्वारा वास्तविक तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। 'उल्टा बुझिलि राम' अर्थात ऐसे में जो समझते हैं वे समझ उल्टी ही होती है।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ईश्वर चन्द्र विद्यासागर महाशय के बड़े पुराने और स्नेही छात्र थे। एक बार वे कलकता में विद्यासागर महाशय जी के घर गये तो विद्यासागर महाशय जी ने उनसे कहा था कि जब ईश्वर को हमने देखा ही नहीं तो उसकी आलोचना न करना ही अच्छा है। छात्र होने पर भी ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी सच बात बोलने से नहीं हटे। उन्होंने कहा -पंडित महाशय। आपने बोधोदय नामक पुस्तक में 'ईश्वर निराकार चैतन्य स्वरूप' क्यों लिखा है? ईश्वर को न देख उसके सम्बन्ध में अपना मत-अमत प्रकट करना क्या ठीक है? ईश्वर सर्वशक्तिमान है, उनमें क्या अपने

आकार की रक्षा करने की क्षमता भी नहीं है? परमेश्वर हमारे नित्य प्रभु हैं, हम उनके नित्यदास हैं। उनके प्रति हमारे हृदय में जो स्वाभाविक अनुराग है। वेदों ने उसे ही 'भक्ति', 'ब्रह्मविद्या' या 'पराविद्या' कहा है। उस विद्या को प्राप्त करने से किसी प्रकार के ज्ञान का अभाव नहीं रहता। जिनका हमेशा वास्तव वस्तु भगवान के साथ साक्षात् सम्बन्ध है, वे लोग ही तत्वविरोधी बातें धीरे-2 समझने में समर्थ होते हैं। ग्रन्थों के अध्ययन से प्राप्त विद्या एवं स्वतः सिद्ध वस्तु के आविर्भाव से उत्पन्न ज्ञान दोनों पूरी तरह से अलग-2 हैं।

विवाह लीला

11 वर्ष की आयु में ही ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी का पितृ वियोग हो गया था। उस समय के बंग देश की सामाजिक प्रथा के अनुसार श्रीकेदारनाथ जी की माता जी ने 12 वर्ष के बालक का राणाघाट निवासी पाँच वर्ष की एक बालिका के साथ विवाह कर दिया। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने लिखा है कि जैसे मिट्टी के गुड्डे-गुड्डियों का खेल होता है वैसे ही मेरा विवाह हुआ। ठाकुर जी ने ये भी लिखा कि मैं अकेला ससुराल में नहीं रह सकूँगा। इसलिए उनकी पत्नी भी साथ गई थी। सब कुछ समझते हुये भी ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी ने संसार में प्रवृत्त मनुष्यों की बद्ध अवस्था की असुविधाओं को साक्षात् हृदयंगम करते हुये उसके प्रतिकार की व्यवस्था प्रदान करने के लिये ही सामाजिक प्रथा में बाधा नहीं दी।

अध्ययन लीला

ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी छः वर्ष की आयु में विद्यावाचस्पति जी की पाठशाला में संस्कृत का पाठ श्रवण करते थे। श्री ईश्वर चन्द्र मुश्तोफी महाशय ने श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी को 7 साल की आयु में कृष्ण नगर के कालेज में पढ़ने के लिये भेजा था। उस समय कैप्टन डी.एल. रिचर्डसन कृष्ण नगर कालेज के प्रिसींपल थे तथा देशीय प्रधान- अध्यापक रूप से श्री रामतनु लाहिड़ी। बाद में जब उलाग्राम में उच्च अंग्रेज़ी विद्यालय खुल गया तो ठाकुर जी 8 साल की आयु में उस में भर्ती हो गये। कृष्ण नगर कालेज में अध्ययन करते समय कूचबिहार के बालक - राजा ठाकुर के सहपाठी थे।

उला ग्राम में नानी के स्वधाम प्राप्त हो जाने के बाद श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी माता जी के साथ कलकत्ता आ गये। वहाँ हेदुआ और विड़न स्ट्रीटस के मोड़ पर एक घर में रहने लगे और कलकत्ता में हिन्दु चैरिटेबल इन्स्टीच्यूशन में उन्होंने पुनः शिक्षा आरम्भ कर दी। चार साल वहां विद्या प्राप्त करने के पश्चात् सन 1865 में हिन्दु स्कूल में भर्ती हो गये। उसी साल ही कलकत्ता में विश्वविद्यालय खुल गया। कलकत्ता में विश्वविद्यालय खुल जाने पर वहां एन्टरेन्स परीक्षा आरम्भ हो गई। उस समय श्रीसत्येन्द्रनाथ ठाकुर, श्री गणेन्द्र नाथ ठाकुर, श्री तारक नाथ पालित और श्री नवगोपाल मित्र श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी के सहपाठी थे। श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी की

अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य में प्रतिभा को देखकर प्रिसींपल कलिन्ट साहब, पाद्री डाल साहब, जार्ज टम्सन एवं श्री केशव चन्द्रसेन आपके प्रति बहुत आकर्षित हुये थे। 1865 के अन्त में ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में लिखित 'पोरियेड' काव्य का शिक्षित व्यक्तियों के द्वारा बड़ा समादर हुआ। ठाकुर जी द्वारा रचित कवितायें 'लाइब्रेरी गज़ट' पत्रिका में प्रकाशित हुयी थीं। ब्रिटिश इंडियन सोसाइटी में ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी के तत्त्वज्ञान से भरे भाषण को सुनकर सभी विस्मित हो गये थे। ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी ने सनातन धर्म के शास्त्रों के अतिरिक्त बाईबल एवं कुरानादि तमाम- धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया था। क्रिश्चियन धर्म में नित्य-सविशेष भगवान के विचार हैं इसलिये उन्होने ब्राह्मधर्म की अपेक्षा क्रिश्चियन धर्म के श्रेष्ठत्त्व का अनुभव किया था। सिपाही विद्रोहरूपी संकट के समय उन्होंने प्रचार में बाहर निकल विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया था।

दादा राजवल्लभ जी की भविष्यवाणी

1858 ई0 में ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी ने गौड़देश से नीलाचल की यात्रा की । रास्ते में याजपुर के पास ही छुट्टीग्राम (छुटीगोविन्द्पुर) में अपने दादा जी के साथ इनका मिलन हुआ था। वाक्सिद्ध पुरुष दादा श्री राजवल्लभ दत्त ठाकुर जी ने ये भविष्य वाणी की थी कि 'ठाकुर बड़े वैष्णव बनेंगे। ये भविष्य वाणी करने के साथ-2 उनका ब्रह्मतालु भेद हो गया

और उनके प्राण निकल गये। ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी कटक से पैदल यात्रा कर चन्दन यात्रा के समय पुरी में श्री जगन्नाथ जी के पादपद्मों में पहुँचे तथा कुछ दिन वहां रह कर वे कटक, भद्रक, मेदिनीपुर इत्यादि स्थानों से होकर वापस कलकत्ता आ गये।

श्रीभक्ति विनोद नाम की प्राप्ति

श्री ईश्वर चन्द्र विद्यासागर महोदय जी की इच्छा के अनुसार ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी ने कटक के सरकारी उच्चविद्यालय में प्रधान शिक्षक एवं भद्रक सरकारी उच्चविद्यालय के प्रधान शिक्षक का पद स्वीकार किया था। उसी समय ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी द्वारा रचित उड़ीसा के मठों पर लिखी एक तथ्यपूर्ण 'Maths of Orissa' नामक पुस्तक प्रकाशित हुयी। सर विलियम हन्टर की 'Orissa' पुस्तक में ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी की 'Maths of Orissa' पुस्तक की बहुत सी बातों का उल्लेख है। ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य गीता नामक एक ग्रन्थ लिख कर उसमें 'सच्चिदानन्द प्रेमालंकार के रूप में अपना परिचय दिया है । 400 श्रीगौराब्द में श्रीगौड़ीय गोस्वामी संघ के द्वारा ठाकुर 'भक्ति विनोद' नाम से भूषित हुये। तभी से श्रीकेदारनाथ 'श्री सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर जी के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी का प्रचार भ्रमण

ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी ने मेदिनीपुर स्कूल के शिक्षक के पद पर भी कार्य किया था। मेदिनीपुर की साहित्य सभा में ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी का धर्मतत्त्व के सम्बन्ध में ज्ञान से भरा भाषण सुनकर ब्राह्म धर्म अवलम्बी श्री राजनारायण बसु चमत्कृत हो उठे थे। ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी की पहली पत्नी के अन्तर्ध्यान करने पर मेदिनीपुर में रहते समय उन्होंने भगवती देवी को पत्नी रूप से स्वीकार किया था। प्रचार भ्रमण में ठाकुर मेदिनीपुर से वर्द्धमान में भी आये थे। वर्द्धमान में रहते समय उन्होंने 'our wants' नामक एक पुस्तक लिखी थी। स्थानीय व्यक्तियों के विशेष अनुरोध पर आपने ब्राह्म धर्म तथा क्रिश्चियन धर्म की एकता के लिए भी चेष्टा की थी। अपने दो भाषणों के द्वारा आपने उनकी अयौक्तिक्ता (जो युक्तिसंगत न हो) का प्रदर्शन किया।

ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी ने वर्द्धमान में भ्रातृसमाज की स्थापना की थी। भ्रातृसमाज में आत्मा के सम्बन्ध में अंग्रेज़ी भाषा में तत्त्वज्ञान से भरा भाषण सुनकर हिली साहब तक प्रभावित हो गये थे। ठाकुर वर्द्धमान से चूयाभांगा, राणाघाट भ्रमण करने के पश्चात् बिहार में छपरा और पश्चिम में काशी, मिर्जापुर, प्रयाग तथा आगरा इत्यादि स्थानों से होकर वृन्दावन पहुँचे थे। छपरा में रहते समय आपने उर्दू और फारसी भाषा सीखकर उसमें पारदर्शिता प्राप्त की थी। छपरा की विशेष सभा में 'गौतमस्पीच' नामक एक भाषण दिया था। छपरा से पूर्णिया

होकर डिप्टी मैजिस्ट्रेट का पद ग्रहण कर आप दिनाजपुर आ गये थे। दिनाजपुर में हिन्दुओं और ब्रह्मवादियों के बीच मे विवाद हो जाने से आपने उन्हें समझाने का प्रयास किया एवं 'भागवत स्पीच' नामक एक भाषण भी दिया। सन् 1868 के जून मास में मालदह में ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी ने श्रीरूपसनातन जी के स्थान और राजमहल इत्यादि के दर्शन किये। उसके पश्चात् कलकत्ता वापस आकर ठाकुर विनोद जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत और श्रीमद्भागवत् दोनों ग्रन्थों का संग्रह करने के लिये अनेक खोज की। बड़े कष्ट के पश्चात् बड़े तला से प्रकाशित दोनों ग्रन्थ मिले। इन दोनों ग्रन्थों को लेकर ठाकुर पुनः पुरुषोत्तम धाम में पहुँचे। उस समय सरकार की तरफ से श्रीजगन्नाथ मन्दिर की सुचारू रूप से सेवा परिचालना करने के लिये इन्हें मंदिर का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया गया। एक एक करके पाँच साल आप पुरी में रहे थे।

प्रताड़ना के लिये विषकिषण को दंड प्रदान

ठाकुर के चरित्र में 'मृदुनि कुसुमादपि वज्रादपि कठोराणि' स्वभाव प्रकटित था। स्वाभाविक ही मृदु स्वभाव वाले होने पर भी इन्होंने कभी अन्याय को पालकर नहीं रखा। इससे सम्बन्धित उड़ीसा की एक घटना का उल्लेख किया जा रहा है:- सन 1871 ई0 में उड़ीसा की अतिवाड़ी सम्प्रदाय का 'विषकिषण' नाम काईत वंश का एक व्यक्ति था जो योगबल से कुछ शक्ति संचित कर अपने आप को महाविष्णु का

अवतार कहता फिरता था। विषकिषण भुवनेश्वर के पास एक जंगल के इलाके में अपने दल बल के साथ रहता था। उसने ऐसी घोषणा करवायी कि 14 चैत्र को वह चतुर्भुज मूर्ति धारण कर पृथ्वी का मलेच्छों के हाथों से उद्वार करेगा और धर्म की स्थापना करेगा। उसके द्वारा प्रचार की गयी घोषणा इस प्रकार थी- "बनेर अछि विषकिषण, गुप्तेर आछि न जानइ आन।

13मीनेर आरम्भिव रण, चतुर्भुज होइ नाशिव म्लेन्छगण।।"

उसने योग बल से असाध्य रोगों को दूर कर और बहुत सी आश्चर्यजनक्क विभूतियां दिखाकर लोगों का मन जीत लिया था। बाद में बस्ती की स्त्रियों के पास संदेशा भेजा कि पूर्णिमा की रात के समय वह रासलीला करेगा। भृगांर कुल के चौधरी को विषकिषण की इस घोषणा से संदेह हुआ कि वह यहाँ की महिलाओं से शोचनीय व्यवहार करेगा। इसलिए वह महिलाओं के अभिभावकों को साथ लेकर कमिश्नर रेवेन्स के पास गया और उसे सारी बातों से अवगत कराया। कमिश्नर साहब ने इस का सारा भार श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी को सौंप दिया। अपनी योजना के अनुसार श्रीभक्ति विनोद रात के समय वन में जा कर विषकिषण से मिले और उसे ऐसे अनुचित कार्य न करने के लिये समझाने लगे। विषकिषण ने स्वयं को जीवन्त महाविष्णु और श्रीजगन्नाथ देव को अचेतन लकड़ी बताया तथा नाना प्रकार से ठाकुर श्रीभक्तिविनोद जी को संतुष्ट करने का प्रयास करने लगा। जब वह लोगों को

ठगने के इस कार्य को न करने के लिये किसी भी प्रकार से न माना तो ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी ने उसे गिरफ्तार कर लिया और उसे पुरी में ले आये। उस योगी की वास्तविकता को जानने के लिये ठाकुर श्रीभक्ति विनोद उड़ीसा की विभिन्न बस्तियों, बौद्ध विहार भूमि व खंडगिरी आदि स्थानों पर भी गये थे। खोज में विषकिषण के कपट आचरण के जब उन्हें पक्के प्रमाण मिल गये तो ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी ने उसे दंड देने का संकल्प लिया। फैसला होने से पहले चल रहे विचार के समय उस योगी ने ठाकुर श्रीभक्तिविनोद जी को कई प्रकार डराया यहाँ तक कि योग शक्ति से उन्हें और उनके परिवार वालों को शारीरिक रूप से बीमार भी कर दिया। किन्तु ठाकुर जी ने वज्रादपि कठोराणि अर्थात वज्र से भी कठोर विचारों का अवलम्बन करते हुये उसके इन सब दुराचारों को सहा और उसे डेढ साल के कारावास का दंड प्रदान किया। विषकिषण ने 21 दिनों तक जल की बूँद भी ग्रहण न की और देह त्याग दी। याजपुर में भी एक व्यक्ति अपने आप को ब्रह्मा का एवं खुरदा नामक स्थान पर एक व्यक्ति अपने आपको बलदेव का अवतार कहता था। उन्हें भी श्रीभक्ति विनोद जी ने विषकिषण की तरह ही सजा प्रदान की

नीलाचल में ठाकुर श्रीभक्ति विनोद

1869 से 1874 तक पुरी में रहते समय आपने श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास जी द्वारा रचित श्रीमद्भागवत्, श्रील जीव

गोस्वामी जी द्वारा रचित षट्सन्दर्भ, श्रील बलदेव विद्याभूषण जी द्वारा रचित वेदान्त का गोविन्द भाष्य, सिद्धान्त-रत्न, प्रमेयरत्नावली और अन्य-2 ग्रन्थ, श्रील रूप गोस्वामी जी द्वारा रचित श्रीभक्ति रसामृत सिंधु आदि ग्रन्थों की विशेष रूप से चर्चा एवं अध्ययन किया। इस लीला का आदर्श दिखाकर उन्होंने ये शिक्षा दी कि यदि कोई व्यक्ति अपना मंगल चाहता है तो उसे इन सब शुद्ध भक्ति सिद्धान्त-सम्मत ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये। श्रीमन्महाप्रभु जी ने पाँच प्रकार के भक्ति अंगों में भागवत्-श्रवण' की बात कही है। श्रील जीव गोस्वामी प्रभु जी ने 'भागवत्-श्रवण' को ही परम श्रेष्ठ कहा है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी ने भी तमाम शास्त्रों की चर्चा में से भागवत् की चर्चा और अध्ययन की विशेषता का प्रचार करने के लिये श्रीजगन्नाथ बल्लभ उद्यान में भागवत्-संसत् नामक एक वैष्णव सभा की स्थापना की थी। श्रीनित्यानन्द, श्रीपरमानन्द इत्यादि विशिष्ट वैष्णव एवं महन्त श्री नारायण दास उत्तर की तरफ के महन्त श्री हरिहर दास आदि विद्वान लोग ठाकुर भक्ति विनोद जी के मुखारविन्द से निःसृत भागवत् की व्याख्या श्रवण करते थे। जिस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्री गदाधर पंडित गोस्वामी जी से भागवत् श्रवण करने का आदर्श दिखाया, उसी प्रकार ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी भी श्री गोपीनाथ पंडित से भागवत् विषय में चर्चा और भागवत् श्रवण करते थे। हाती अखाड़े के कन्थाधारी श्रीमद्रघुनाथ दास बाबा जी ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी की सभा का विरोध करने

के कारण भयंकर रोग से पीड़ित हो गये थे तथा बाद में श्रीजगन्नाथ देव जी द्वारा स्वप्न में आदेश देने पर जब उन्होंने ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी से क्षमा माँगी तब जाकर वे रोग से मुक्त हुये। ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी जगन्नाथ मंदिर में मायावादी शासन-ब्राह्मणों के मुक्ति मंडप में न बैठकर श्रीलक्ष्मीदेवी जी के मंदिर में और श्रीमहाप्रभु जी के पादपद्मों के सान्निध्य में बैठकर भक्ति शास्त्रों की चर्चा करते थे। मुक्ति मंडप के ब्राह्मण पंडित भी इस भक्ति सिद्धान्त को सुनने के लिये आते थे। ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी ने इस स्थान को 'भक्ति प्रांगण' या 'भक्ति मण्डप' नाम दिया था। ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी विशेष रूप से श्रीकृष्ण दास कविराज गोस्वामी जी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत एवं श्रीनरहरि चक्रवर्ती ठाकुर जी के 'भक्तिरत्नाकर' ग्रन्थ की चर्चा करते थे। जयानन्द के 'चैतन्य मंगल' नामक ग्रन्थ को श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी ने प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में स्वीकार नहीं किया। वे पुरी में सिद्ध वैष्णव श्री स्वरूप दास बाबा जी महाराज जी के साथ धर्मतत्त्व के विषय में चर्चा करते थे। पुरी में रहते समय ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी ने 'दत्तकौस्तुभ' नामक ग्रन्थ लिखा था तथा साथ ही श्रीकृष्णसंहिता के कई श्लोकों की रचना भी उसी समय की थी।

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर जी का आविर्भाव

पुरी के एक धनी परिवार ने ग्रांड रोड के बगल में दक्षिण की तरफ lease पर मठ की ज़मीन लेकर उस पर घर का निर्माण करवाया। इस घर में श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी रहते थे। ये स्थान श्री जगन्नाथ मन्दिर के पास के नारायण छाता[20] के साथ जुड़ा हुआ है।

6 फरवरी, शुक्रवार, सन् 1874, माघी कृष्णा पंचमी तिथि की दोपहर साढ़े तीन बजे के बाद ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी के हरिकीर्तन से गुंजायमान उपरोक्त वास भवन में श्री भगवती देवी की गोद में एक ज्योतिर्मय दिव्यकान्ति युक्त शिशु का आविर्भाव हुआ। शिशु के आविर्भाव के पश्चात स्वाभाविक ही उसके शरीर पर उपवीत (जनेऊ) को देख कर सभी विस्मित हो उठे थे। श्रीजगन्नाथ देव जी की श्रेष्ठ शक्ति श्री विमला देवी के नामानुसार ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी ने शिशु का नामकरण किया श्री विमलाप्रसाद। श्रीजगन्नाथ देव जी के महाप्रसाद से इनका अन्नप्राशन हुआ था। यही महापुरुष ही बाद में विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ और श्रीगौड़ीय मठों के प्रतिष्ठाता श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के नाम से प्रसिद्ध हुये। प्रभुपाद जी के आविर्भाव के दस मास

---

20. श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता नित्यलीला प्रविष्ट ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी ने बहुत प्रयास के पश्चात इस स्थान का उद्धार किया था और यहां पर श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ की स्थापना की। इस मठ में सुरम्य विशाल श्रीमन्दिर में श्रील प्रभुपाद जी का श्रीविग्रह विराजित है।

के पश्चात् ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी भगवती देवी और शिशु के साथ पुरुषोत्तम धाम से पालकी के सहयोग से समतल रास्ते से होते हुए बंगदेश के राणाघाट पर आ गये।

कृष्ण भक्ति के प्रचार के मूल में श्रील भक्ति विनोद

श्री श्रीजगन्नाथ देव जी के निजजन श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी का श्री पुरुषोत्तम धाम में रहना एवं श्री जगन्नाथ मन्दिर की सेवा की सुचारू व्यवस्था में उनकी नियुक्ति श्री जगन्नाथ देव जी की इच्छा से हुई। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी को अवलम्बन कर श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी के आविर्भाव के पश्चात् पुरुषोत्तम धाम से पूरी पृथ्वी पर कृष्ण भक्ति का प्रचार होने पर श्री कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास मुनि द्वारा रचित पद्मपुराण में कही 'हृयत्कले पुरुषोत्तामात्' वाक्य की सार्थकता दिखाई दी।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी का अद्वितीय अवदान

सनातन धर्मावलम्बी तमाम सम्प्रदायों के मूल गुरु शक्त्याविष्ट अवतार श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास मुनि जी ने स्वयं आचरण करते हुये स्पष्ट रूप से नित्य शान्ति का रास्ता बताया है। वेदों का विभाग करने वाले महामुनि श्रीवेदव्यास जी वेदान्त, 18 पुराण, महाभारत, महाभारत के अन्तर्गत श्रीमद्भगवत गीता लिख कर भी शान्ति नहीं प्राप्त कर पाये। अन्त में

उन्होंने बदरिकाश्रम में श्रीनारद गोस्वामी जी के उपदेश के अनुसार श्रीकृष्ण की प्रीति के लिये श्रीकृष्ण की महिमा का कीर्तन करते हुए बारह स्कन्धों वाला श्रीमद्भागवत लिखकर पराशान्ति की प्राप्ति की। उसी सर्वोत्तम भागवत धर्म का श्रीचैतन्यमहाप्रभु जी ने प्रचार किया है। श्रीमन्महाप्रभु और उनके पार्षदों के अन्तर्धान करने के पश्चात शुद्ध भक्ति पथ-भागवत धर्म का रास्ता करोड़ों-करोड़ों काँटों से भर गया। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने अवतीर्ण होकर बहुत से ग्रन्थ लिख कर एवं अनथक परिश्रम के साथ प्रचार करके उन शुद्ध भक्ति के प्रतिकूल तमाम उपसिद्धान्तों का खंडन करके जीवों का जो अत्यन्त मंगल किया है और करुणा दिखायी है उसे अद्वितीय कहना होगा। श्रीकृष्ण शक्ति के बिना कृष्ण भक्ति का प्रचार नहीं होता है। साक्षात् गौर-पार्षद या कृष्ण-पार्षद को छोड़ कर और किसी में इस प्रकार की अद्भुत शक्ति का प्रकट होना सम्भव नहीं है । बाहरी रूप से गृहस्थ लीला में व सरकार के शासन विभाग के दायित्वशील कार्य में नियुक्त रहते हुये भी उन्होंने किस प्रकार विभिन्न भाषाओं में सौ से भी अधिक ग्रन्थ लिखे एवं प्रचार किया, यही आश्चर्य का विषय है। उनकी लेखनी का प्रत्येक शब्द ही शास्त्र व अधोक्षज भगवान का उद्दीपक है। जागतिक असाधारण पाण्डित्य के द्वारा भी इस प्रकार लिखना सम्भव नहीं है। उनका कोई भी लेख बहुत सोच-2 कर व कल्पना करके लिखा हुआ नहीं है, उनके सभी लेख स्वत: सिद्ध व

स्वाभाविक हैं। उन्होंने ग्रन्थ लिख कर सभी जीवों के प्रति स्थायी रूप से करुणा की है। परमाराध्यतम् श्रील गुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी अपने शिष्यों को ऐसा कहते थे कि:-

"तुम्हें और कुछ भी नहीं करना होगा। केवल मात्र भक्तिविनोद ठाकुर जी के ग्रन्थों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद करके प्रचार कर सको तो जगत के जीवों का परम कल्याण हो जायेगा।"

वास्तव में श्री गौड़ीय मठ में प्रतिदिन होने वाले जितने भी कृत्य हैं वे सब श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी की ही देन है।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी द्वारा रचित ग्रन्थ

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी द्वारा रचित ग्रन्थ जिनका उल्लेख पहले किया गया है, उनके अतिरिक्त और भी रचित ग्रन्थों और लेखों, (जितनों की जानकारी मिली) की तालिका यथा सम्भव क्रम से नीचे दी गयी है।

(सन् 1866 से 1907 तक)

क्रमांक	ग्रन्थ	भाषा	सन्
1.	वालिद में रजिस्ट्री	उर्दू	1866
2.	Speech on Gautam	अंग्रेजी	1866
3.	Speech on Bhagwatam	अंग्रेजी	1869
4.	गर्भस्तोत्रव्याख्या	बंगला	1870
5.	Reflections	अंग्रेजी	1871
6.	Shlokas of Haridas		
	Thakur's Samadhi	अंग्रेजी	1871
7.	Jagannath Mandir of Puri	अंग्रेजी	1871
8.	Akhra etc. of Puri	अंग्रेजी	1871
9.	वेदान्ताधिकरण माला	संस्कृत	1872
10.	दत्तकौस्तुभम	संस्कृत	1874
11.	दत्तवंशमाला	संस्कृत	1876
12.	बौद्धविजयकाव्यम	संस्कृत	1878
13.	श्रीकृष्णसंहिता	संस्कृत (बंगानुवाद सहित)	1880
14.	कल्याणकल्पतरु	बंगला-गीति	1881
15.	श्रीसज्जनतोषणी (1 से 17वां खण्ड)	बंगला मासिक पत्र	1881
16.	Review on 'नित्यरूप-संस्थापन'	अंग्रेजी	1883

17. श्रीमद् भगवत गीता बंगला 1886
(विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद जो की टीका सहित)
(रसिक रंजन मर्मानुवाद)
18. श्रीचैतन्यशिक्षामृत बंगला 1886
19. शिक्षाष्टक संस्कृत 1886
(सन्मोदन भाष्य सहित)
20. मन:शिक्षा (पद्यानुवाद) बंगला 1886
(श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी विरचित)
21. दशोपनिषद चूर्णिका संस्कृत 1886
22. भावावली संस्कृत 1886
(श्लोक और भाष्य)
23. प्रेम प्रदीप (उपन्यास) बंगला 1886
24. श्रीविष्णुसहस्त्रनाम बंगला 1886
(श्रीबलदेव कृत भाष्य सहित)
25. श्रीकृष्णविजय बंगला 1886
-गुणराज खाँनकृत पद्यग्रन्थ प्राचीन हस्तलिपि मुद्रित)
26. चैतन्योपनिषद संस्कृत 1887

(श्रीचैतन्यचरणामृत भाष्य सहित)
27. वैष्णव सिद्धान्तमाला बंगला 1888
28. श्रीमद् आम्नाय सूत्रम बंगला व्याख्या 1890
(संस्कृत सूत्र टीका)
29. श्रीनवद्वीप धाम महात्म्य बंगला 1890
30. सिद्धान्तदर्पणानुवाद बंगला 1890
31. श्रीमद्भगवद गीता बंगला 1899
(बलदेवकृत भाष्य) (विद्वत रंजन भाषा भाष्य सहित)
32. श्रीहरिनाम बंगला 1892
33. श्रीनाम बंगला 1892
34. श्रीनाम तत्त्व (शिक्षाष्टक) बंगला 1892
35. श्रीनाम महिमा बंगला 1892
36. श्रीनाम प्रचार बंगला 1892
37. श्रीमन्महाप्रभु शिक्षा बंगला 1892
38. तत्त्वविवेक (संस्कृत श्लोक) बंगला व्याख्या 1893
39. शरणागति बंगला-गीति 1893
40. शोक-शातन (गीति) बंगला 1893

41.	जैवधर्म	बंगला	1893
42.	तत्त्वसूत्र (संस्कृत)	बंगला व्याख्या	1894
43.	ईशोपनिषद	वेदार्कदीधिति व्याख्या	1894
44.	तत्त्वमुक्तावली या मायावाद शतदूषिणी	बगला व्याख्या	1894
45.	श्रीचैतन्यचरितामृत का अमृतप्रवाह भाष्य	बंगला	1895
46.	श्रीगौरांगस्मरणमंगल स्तोत्रम्	संस्कृत	1896
47.	Life and Precepts of Sree Chaitanya Mahaprabhu	अंग्रेजी	1896
48.	श्रीरामानुज उपदेश	बंगला	1896
49.	अर्थपंचक	बंगला	1896
50.	ब्रह्मसंहिता का अनुवाद	बंगला	1897
51.	कल्याणकल्पतरु (Revised)	बंगला-गीति	1897
52.	श्रीकृष्णकर्णामृतम	बंगला व्याख्या	1898
53.	उपदेशामृत (पीयूषवर्षिणी वृत्ति)	बंगला	1898
54.	श्रीमद् भगवत गीता (माध्वभाष्य सम्पादन)	बंगला	1898

55.	श्रीसनातन गोस्वामी प्रभु जी का भगवद्धामामृतम	बंगला भाष्य	1898
56.	श्रीसनातन गोस्वामी प्रभु जी का भक्तिसिद्धान्तामृतम	बंगला	1899
57.	श्रीनरहरि ठाकुर कृत श्रीभजनामृतम	बंगला	1899
58.	श्रीनवद्वीपभावतरंगिनी	बंगला पयार	1899
59.	श्रीहरिनामचिन्तामणि	बंगला पद्य	1900
60.	तत्त्ववंशमाला	बंगला	1900
61.	श्रीभागवतार्कमरीचिमाला	बंगला व्याख्या	1901
62.	श्रीसंकल्पकल्पद्रुम	बंगला व्याख्या	1901
63.	पद्मपुराण (सम्पादन)	बंगला	1901
64.	भजनरहस्य (संस्कृत श्लोक)	बंगला पद्यानुवाद	1902
65.	विजनग्राम और सन्यासी (संशोधित)	बंगला	1902
66.	श्रीकृष्णसंहिता (संशोधित)	बंगला	1903
67.	सत्क्रियासार दीपिका (संपादन)	बंगला	1904

68.	श्री चैतन्य शिक्षामृत		
	संशोधित और परिवर्धित	बंगला	1905
69.	श्री प्रेम विवर्त्त (सम्पादन)	बंगला	1906
70.	स्वनियम द्वादशकम (असम्पूर्णम)	संस्कृत	1907
71.	श्री निम्बार्क दश श्लोकी		
	(अनुवाद और विवृत्तिसहित)	संस्कृत	1907
72.	श्री गीत माला (गीति)	बंगला	1907
73.	श्री गीतावली (गीति)	बंगला	1907
74.	हरिकथा	बंगला पद्य	1850

1878 से 1881 तक नडाल (यशोहर) ज़िले में रहते समय ठाकुर श्रील भक्ति विनोद जी द्वारा रचित श्रीकृष्णसंहिता और कल्याण कल्पतरु-ये दोनों ग्रन्थ ठाकुर श्रील भक्ति विनोद जी द्वारा सम्पादित सज्जनतोषणी (बंगला) पत्रिका में प्रकाशित हुये थे।

सन् 1886 में श्री रामपुर में रहते हुये ठाकुर भक्ति विनोद जी ने श्रीमद्भगवद्गीता का (विश्वनाथ चक्रवती ठाकुर जी की टीका सहित) बंगला में रसिक रंजन मर्मानुवाद, श्रीचैतन्य शिक्षामृत, श्रीशिक्षाष्टक का सन्मोदन भाष्य और 'भक्तिविनोद' नाम से एक ग्रन्थ लिखा। 1883 ई० में वरासात

में रहते समय ठाकुर भक्ति विनोद जी की अंग्रेज़ी में सज्जनतोषणी पत्रिका प्रकाशित हुयी। 1887 में श्रील ठाकुर भक्ति विनोद जी को सम्बलपुर में श्रीमुधुसूदनदास नामक एक शिक्षित शिष्य से श्रीचैतन्य उपनिषद की एक हस्तलिपि प्राप्त हुयी थी। इसी साल कृष्ण नगर में रहते हुये ठाकुर ने 'श्रीआम्नाय सूत्र' ग्रन्थ लिखना शुरू किया और श्री नवद्वीप धाम-माहात्मय ग्रन्थ की रचना की। 1896 में त्रिपुरा से कलकत्ता में वापस आने के पश्चात उनके द्वारा अंग्रेजी भाषा में लिखा Life and Precepts of Sree Chaitanya Mahaprabhu एवं संस्कृत भाषा में लिखी 'श्री गौरांग स्मरण स्तोत्र' प्रकाशित हुये।

ठाकुर जी की पुनः प्रचार भ्रमण लीला

श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी के आविर्भाव के पश्चात पुरी से गौड़देश वापिस आकर ठाकुर भक्ति विनोद जी ने भारत के विभिन्न स्थानों पर श्रीमन्महाप्रभु जी की शुद्ध भक्ति सिद्धान्त वाणी की प्रचार लीला की एवं अनेक तीर्थ स्थानों के दर्शन किये। 1877 से 1910 तक जिन सब स्थानों में उन्होंने प्रचार किया एवं जिन सभी तीर्थ स्थानों का दर्शन किया उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

पश्चिम बंग में उलुवेडिया महकुमार आम्ता, खानाकुल कृष्ण नगर (गौरपार्षद अभिराम ठाकुर जी का श्रीपाट), श्यामपुर, उड़ीसा का भद्रक, यशोहर ज़िले (वर्तमान बंगलादेश)

में नड़ाइल, कलकता, प्रयाग, वृन्दावन, (वृन्दावन में श्रीजगन्नाथ दास बाबा जी महाराज के साथ पहला साक्षात्कार), श्रीराधाकुण्ड, श्रीगोवर्धन (ठाकुर भक्ति विनोद जी के प्रयास से ब्रजमंडल के तीर्थ यात्रियों पर कंझड़ नाम डाकुओं के गिरोह के अत्याचारों का विनाश हुआ) मथुरा, लक्ष्णों, फैज़ाबाद, गोमती का घाट, अयोध्या और काशी, कलकत्ता नें वापसी, वारासात, श्रीधाम मायापुर, कलकत्ता में भक्ति भवन (1882 में 181 मणिकतला स्ट्रीट में भक्ति भवन का निर्माण हुआ। नींव खोदते समय कूर्म देव जी की मूर्ति प्रकट हुयी एवं ठाकुर भक्ति विनोद जी द्वारा श्रीभक्ति सिद्धान्त सरस्वती जी को कूर्मदेव जी की अर्चना की शिक्षा प्रदान), वारासात महकुमा में डिप्टी कलैक्टर का पद ग्रहण, श्रीरामपुर वैद्यनाथ, बांकिपुर, गया (पड़दादा मदन मोहन दत्त जी की प्रेतशिला की सीढ़ियों के दर्शन), वारासात, मेमारी, कुलिन ग्राम, व्याण्डेल, सप्तग्राम (कुलिनग्राम में नामापराध, नामाभास और शुद्ध नाम के सम्बन्ध में ठाकुर भक्ति विनोद जी के उपदेश एवं सरस्वती ठाकुर जी को हरिनाम और श्रीनृसिंह मंत्र प्रदान) कलकत्ता (कलकत्ता वेथुनरो में कृष्ण सिंह की गली में रामगोपाल बसु के दुर्गा भवन में ठाकुर भक्ति विनोद जी की अध्यक्षता में विश्ववैष्णव सभा की प्रतिष्ठा एवं वहां पर श्रीभक्तिरसामृत सिन्धु एवं श्रीचैतन्य चरितामृत पर विचार विमर्श), श्री राम कृष्ण देव के साथ भक्ति विनोद ठाकुर जी का साक्षात्कार-निर्विशेष वाद का

खंडन और शुद्ध भक्ति सिद्धान्त की महिमा स्थापन, श्री रामपुर, कलकता भवन (चैतन्य यंत्र नामक प्रैस की स्थापना), तारकेश्वर (निद्रा में तारकेश्वर जी का स्वप्न में आदेश-तुम वृन्दावन जाना चाहते हो तो जाओ किन्तु तुम्हारे घर के पास नवद्वीप धाम के जो तमाम कार्य बाकी रहते हैं, उनका क्या किया?) कुलिया नवद्वीप (एक दिन संध्या के पश्चात् शहर नवद्वीप में भक्ति विनोद ठाकुर जी ने घर की छत पर चढ़ कर धाम के सौन्दर्य का दर्शन करते समय रात को 10 बजे अन्धकार से ढके मेघों में उत्तर की तरफ एक प्रकाशमय अट्टालिका को देखा। ठाकुर भक्ति विनोद जी के साथ कमलाप्रसाद भी उसे देखकर आश्चर्य चकित हुये। अगले दिन सुबह मालूम हुआ कि वह स्थान बल्लाल दीघि है, वहां के प्राचीन लोगों से पूछा तो उन्होंने बताया कि ये महाप्रभु जी का जन्म स्थान है। बाद में प्राचीन फाइलें एवं नक्शे आदि देखकर निश्चित रूप से समझ लिया गया कि ये स्थान ही महाप्रभु जी का अविर्भाव स्थान है) कृष्ण नगर, उलाधाम, कलकता, भक्ति भवन (जगन्नाथदास बाबा जी महाराज द्वारा दी गयी गिरिधारी-गोवर्धन शिला भक्ति भवन में पूजित है) गोद्रुम द्वीप, 1888 में सुरभि कुंज में लिया स्थान मैमन सिंह ज़िले के नेत्रकोणा साबभिभिसन, नारायण गंज, मैमन सिंह, गौरापहाड (हाज जाति के व्यक्तियों के ऊपर ठाकुर भक्ति विनोद जी की कृपा) नारायण गंज, गोयालन्द, कलकता, टांगाईल, वर्द्धमान, शान्तिपुर, कालना, वामन पाड़ा, काइग्राम, देनूड़, (वृन्दावन

ठाकुर जी का श्रीपाट दर्शन) कुलिया, नवद्वीप(जगन्नाथ दास बाबा जी की भजन कुटीर के दर्शन–ठाकुर भक्तिविनोद जी ने भजन कुटीर का पक्का बरामदा बनाया) वर्द्धमान जिले के आमलाजोड़ा ग्राम, गोपालपुर, राणीगंज, बराकर, दुर्गापुर दिनाजपुर, कलकत्ता (शिशिर घोष महाशय जी ठाकुर भक्ति विनोद जी को अपने से ज्येष्ठ एवं गुरु समझते थे। प्रायः भक्ति भवन में उनसे मिलने आते थे। शिशिर बाबू ठाकुर भक्ति विनोद जी को सप्तम गोस्वामी कहते थे। ठाकुर जी की प्रेरणा से ही शिशिर बाबू तुलसी की माला पर महामंत्र को जाप करते थे किन्तु सम्पूर्ण रूप से वे भक्ति सदाचार ग्रहण नहीं कर पाये) मेदिनीपुर ज़िले के रामजीवन पुर (सीतानाथ महापात्रों भक्तों को नाम प्रेम का प्रचार) हुगली ज़िले के अन्तर्गत कयापाट, वदनगंज, घाटाल, मेदिनीपुर, कलकत्ता, सुरभिकुंज, गोद्रुम कृष्णनगर (विशेष–2 धर्म सभाओं में ठाकुर भक्तिविनोद जी के भाषण, मिस्टर मलेश साहब, मिस्टर वेभायलेश और मिस्टर वाटलर आदि अंग्रेज लोग ठाकुर भक्तिविनोद जी का भाषण सुनते थे) 1892, 9 मार्च को आमला जोड़ा ग्राम में वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज जी के साथ मिलन हुआ तथा एकादशी उपवास के दिन वहां पर सारी रात जागराण किया और हरिनाम संकीर्तन करते रहे। बक्सर, प्रयाग, श्रीधाम वृन्दावन बिल्व वन, भाण्डीर वन, माटवन, मानसरोवर, मथुरा, गोकुल, मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन राधाकुंड व श्रीगोवर्धन इत्यादि व्रजमंडल की लीला स्थलियों

का दर्शन किया। श्रीधाम वृन्दावन से कानपुर, इलाहाबाद होते हुये कलकता वापस। कलकत्ता के भक्ति भवन में शुद्ध भक्ति सिद्धान्त वाणी का प्रचार। कृष्णनगर में महाप्रभु जी की शिक्षा का प्रचार, 1893 में वैष्णवसार्वभौम श्रीजगन्नाथ दास बाबा जी महाराज जी के आनुगत्य में श्री गोद्रुम में ठाकुर भक्तिविनोद जी का हरिकीर्तन महोत्सव । इसी समय ही श्रीजगन्नाथ दास बाबा जी महाराज ने श्रीमहाप्रभु जी के जन्म स्थान का निर्देश किया। उसी समय अपने आप को आचार्य का अभिमान करने वाले किसी गोस्वामी की सन्तान द्वारा श्रीमन्महाप्रभु जी के पार्षद को शूद्र जाति का समझने पर ठाकुर भक्तिविनोद जी ने अत्यन्त असन्तोष प्रकट किया और सब को होशियार कर दिया 'वैष्णव चरित्र सर्वदा पवित्र, येइ निन्दे हिंसा करि। श्री भक्तिविनोद, न सन्तोषे तारे, थाके सदा मौन धरि, (अर्थात वैष्णवों का चरित्र हमेशा ही पवित्र है, जो उस पावन चरित्रों की निन्दा करता है या उनसे ईर्ष्या व हिंसा करता है, भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि मैं ऐसे लोगों से बात भी नहीं करता हूं) उसके पश्चात ही ठाकुर भक्ति विनोद जी के द्वारा भक्ति भवन के सामने गुरुपरम्परा लिखकर टांग दी गयी थी। बिहार में सासाराम में नासिरि गंज में तथा डिहीरी आदि स्थानों में श्रीमन्महाप्रभु जी के प्रेमधर्म की वाणी का प्रचार। 1924 के जनवरी महीने में कृष्णनगर ए. बी. स्कूल में एक महान सभा(सभा में श्रीमन्महाप्रभु जी की आविर्भाव स्थली श्रीधाम मायापुर में नित्य सेवा की व्यवस्था के लिये निर्णय एवं श्री

नवद्वीप धाम प्रचारिणी सभा का संस्थापन, नदिया जिले के नाटुदह के जमींदार श्री नफर चन्द्रपाल चौधरी भक्ति भूषण महोदय को सभा के सम्पादक पद पर चुना गया) 1898, 21 मार्च, बुद्धवार फाल्गुणी पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण के दिन द्वारका बाबू, नफर बाबू और सर्वसाधारण के प्रस्ताव से एवं ठाकुर भक्ति विनोद जी के अनुमोदन से मायापुर की संग्रहीत ज़मीन पर फूस से बनी झोंपड़ी में श्रीगौरविष्णुप्रिया जी की श्रीमूर्ति का प्रतिष्ठा महोत्सव विशाल संकीर्तन के साथ सम्पन्न हुआ। उपरोक्त सेवा के संरक्षण और समृद्धि के लिये श्री श्यामलाल गोस्वामी, श्री शशिभूषण गोस्वामी, श्री राधिकानाथ गोस्वामी, श्री विपिन विहारी गोस्वामी, महोपाध्याय पंड़ित श्री अजितनाथ न्यायारत्न, श्री महेन्द्र नाथ भट्टाचार्य विद्यारण्य, श्री सत्यजीवन लाहिड़ी, पावना तरास के श्री वनमाली राय बहादुर, श्री शिशिर कुमार घोष, श्री मतिलाल घोष, ढाकी के श्री यतीन्द्र नाथ राय चौधरी, इंजीनियर श्री द्वारिका नाथ सरकार, राणाघाट के श्री सुरेन्द्र नाथ पाल चौधरी, श्री महेन्द्रनाथ मजुमदार, एडवोकेट श्री किशोरी लाल सरकार, श्री नलिनाक्ष दत्त, श्री कनाईलाल डे बहादुर, डिप्टी मैजिस्ट्रेट श्री नवीन चन्द्रसेन, श्री जगतचन्द्र राय, श्री मायापुर के सेवा समिति सदस्य बने थे। 4 अक्तूबर 1898 ई0 में सरकारी कार्य से अवकाश ग्रहण करते हुये ठाकुर भक्ति विनोद जी ने कृष्णनगर से गोद्रुम सुरभि कुन्ज में जाकर एक महीने तक शास्त्रों की चर्चा की। 1895 में श्रीजगन्नाथ दास बाबा जी महाराज की के अप्रकट होने के

पश्चात जुलाई मास में स्वाधीन त्रिपुरा के अधिपति पंचश्री महाराज, श्री वीरचन्द्र देव वर्मन, माणिक्य बहादुर के द्वारा बुलाने का विशेष आग्रह करने पर ठाकुर भक्ति विनोद जी सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी को साथ लेकर (त्रिपुरा) अगरतला भी गये थे। ठाकुर भक्ति विनोद जी के मुखारविन्द से शुद्धभक्ति धर्म की बातें श्रवण कर वहां के महाराज विशेष रूप से आकृष्ट हुये थे। 1896 मे ठाकुर भक्ति विनोद जी सरस्वती गोस्वामी जी को लेकर कार्शियाङ में गये 1898 में श्री गोद्रुम में स्वानन्द सुखद कुंज प्रकाशित हुआ। उसके पश्चात् सरस्वती गोस्वामी जी को साथ लेकर काशी और प्रयाग का दर्शन करके आये। 1899 में स्वानन्द सुखद कुंज में घर का निर्माण होने पर ठाकुर भक्ति विनोद जी ने वहां भजन का आदर्श दिखाया था । उस समय श्रील गौर किशोर दास बाबा जी श्री मद् भागवत की व्याख्या श्रवण करने के लिए ठाकुर भक्तिविनोद जी के पास आते थे, वहीं पर सरस्वती ठाकुर जी को पहली बार गौर किशोर दास बाबा जी के दर्शन हुये थे। 1900 में ठाकुर भक्ति विनोद जी सरस्वती गोस्वामी जी को लेकर बालेश्वर, रेमुना, भुवनेश्वर, साक्षी गोपाल होकर श्री पुरीधाम में पहुंचे। उस समय श्रील हरिदास ठाकुर जी की समाधि के पास समुद्र के किनारे श्रील सरस्वती गोस्वामी जी की भजन की तीव्र इच्छा को देख श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी के कहने पर पुरी के सब डिप्टी मैजिस्ट्रेट श्री जगबन्धु पट्टनायक ने सरस्वती ठाकुर जी को सातासन मठ में गिरिधारी आसन की सेवा दिलवाने में सहायता

की थी। मार्च, 1901 में भक्तिविनोद ठाकुर श्रील सरस्वती गोस्वामी जी को लेकर दुबारा फिर पुरी में आकर कुछ दिन रहे थे। 1902 में हरिदास ठाकुर जी की समाधि के पास भजन कुटीर का निर्माण कार्य आरम्भ हुआ। उस समय कासिम बाज़ार के महाराज श्री मणीन्द्र चन्द्र नन्दी महोदय ने ठाकुर भक्ति विनोद जी से बहुत से उपदेश श्रवण किये थे।

1903 में श्रील सरस्वती गोस्वामी, भक्ति कुटीर में ठाकुर भक्ति विनोद जी के सामने नियमित रूप से श्रीचैतन्य चरितामृत पढ़ते और व्याख्या करते थे। उसी समय ठाकुर भक्ति विनोद जी के साथ श्री चरणदास बाबा जी का साक्षात्कार हुआ तथा उनसे शुद्ध भक्ति सिद्धान्त के विषयों पर चर्चा हुई । श्रील सरस्वती ठाकुर जी ने चरणदास बाबा जी के शुद्ध भक्ति सिद्धान्त के विरुद्ध आचरण और विचारों का खंडन किया। ठाकुर भक्ति विनोद जब वापस नवद्वीप आ गये तो चरणदासबाबा जी महाशय ने श्रील सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी को शुद्ध वैष्णव समाज में एक मात्र भावी आश्रय का स्थल कहकर अपना अभिमत ठाकुर जी के सन्मुख बताया था। इसी समय ही कुलिया में श्री वंशीदास बाबा जी के दर्शन हुये। श्रीधाम मायापुर में रहते समय ठाकुर भक्ति विनोद जी के द्वारा परिवर्तित नवद्वीप परिक्रमा में योग दान देने की श्री चरणदास बाबा जी ने इच्छा व्यक्त की। किन्तु उसके पश्चात ही उनके स्वधाम प्राप्त हो जाने पर उनकी इच्छा पूरी नहीं हो पायी।

1906 में ढाकी के जमींदार श्री यतीन्द्र नाथ चौधरी के वास भवन में श्री चैतन्य देव जी की शिक्षाओं के सम्बन्ध में ठाकुर श्रीभक्ति विनोद जी का काफी लम्बा भाषण हुआ। 26 फरवरी को ठाकुर कलकत्ता में आ गये और पुनः गोद्रुम स्वरूपगंज में स्वानन्द सुखदकुंज में रहकर भजन करने लगे। यशोहर हरिनदी ग्राम के श्रीतारकब्रह्म गोस्वामी जी की विशेष प्रार्थना से उनके द्वारा दी गयी श्रीराधामाधव जी की मूर्ति की श्री धाम मायापुर में प्रतिष्ठा की गयी। तारकब्रह्म गोस्वामी अपनी स्त्री और परिवार के सदस्यों के साथ कुछ दिन मन्दिर के पास ही रहे किन्तु उनका आचरण शुद्धभक्ति परायण न होने के कारण वे कहीं और चले गये। 29 अप्रैल 1906 को श्री भक्ति भवन में श्री विग्रह सेवा के खर्चे के लिये तारकब्रह्म गोस्वामी को श्री धाम प्रचारिणी सभा की तरफ से 500 रुपए दिये गये। 25 मार्च 1910 को फाल्गुनी पूर्णिमा के दिन त्रिदण्डिस्वामी श्री मद्भक्ति प्रदीप तीर्थ महाराज जी ने गृहस्थ आश्रम में रहते समय ठाकुर भक्ति विनोद जी से दीक्षा ग्रहण की । उस समय ठाकुर जी के शिष्य श्रीमद कृष्णदास बाबा जी महाशय वहीं रह रहे थे। ठाकुर भक्ति विनोद जी ने दैववर्णाश्रम धर्म के पालन की आवश्यकता के सम्बन्ध में अनेक उपदेश दिये थे। इसी समय सत्क्रियासार दीपिका के विधानं के अनुसार श्री जगदीश भक्ति प्रदीप, श्री सीता नाथ महापात्र, श्री बसन्त कुमार घोष, श्री मन्मथ राय ने उपनयन संस्कार के साथ ठाकुर भक्ति

विनोद जी से दीक्षा ग्रहण की। इस प्रसंग में ठाकुर भक्तिविनोद जी द्वारा निम्नलिखित उपदेशावली विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है- 'सामाजिक वैष्णव धर्म और ऐकान्तिक पारमार्थिक वैष्णव धर्म एक नहीं हैं। वर्णाश्रम धर्म के याजन मात्र से शरणागति की पूर्णता नही मिलती। गीताके चरम श्लोक के अनुसार तमाम वर्णधर्म और आश्रम धर्मो को परित्याग कर तमाम प्रकार की उपाधियों से निर्मुक्त होकर आत्मा के स्वाभाविक अहैतुक और निर्मल राग के साथ जो भगवान का अनुशीलन है वह अधिक्तर उन्नत स्तर पर अवस्थित है। गौड़ीय वष्णवों की ये अहैतुकी शुद्ध भक्ति की महिमा राध वाचारी की तरह नैष्ठिक पंडित के भी अधिकार के अन्तर्गत नहीं हो सकती । 1901 में गोद्रुम स्वानन्द सुखद कुंज में 'स्वनियमद्वादशकम्' नामक ग्रन्थ की रचना करते समय अचानक ठाकुर जी द्वारा अस्वस्थ लीला का अभिनय करने के समय उनके नित्यलीला में प्रवेश कर जाने की आशंका से सरस्वती ठाकुर आदि सभी विरह से व्याकुल हो उठे। उस समय अस्वस्थ अभिनय में भी गौरवाणी के प्रचार में भक्ति विनोद ठाकुर जी का अदम्य उत्साह देखा गया।

चलने की सामर्थ्य न रहने पर भी उन्होंने घोड़े पर चढ़कर देश-देश, ग्राम-2 में श्रीचैतन्य महाप्रभु जी द्वारा प्रचारित एवं आचरित भक्ति सिद्धान्त वाणी के प्रचार की इच्छा व्यक्त की।

मेदिनीपुर में बालिघाई पाइ की विचार सभा में सरस्वती ठाकुर जी को भेजना

ठाकुर भक्तिविनोद जी के अप्रकट होने से तीन वर्ष पहले जब वे इस चिन्ता से व्याकुल हो उठे कि कौन है जो शुद्ध भक्ति सिद्धान्तों के विरुद्ध मतों का खंडन करके जीवों का वास्तव मंगल करेगा तो उस समय श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने स्कंल्प लिया था कि मैं ठाकुर भक्ति विनोद जी के अयोग्य सेवक के रूप में इस कार्य को करूंगा। तब ये सुनकर उन्होंने अपने हृदय के परमोल्लास भाव प्रकट किये थे। 8 सितम्बर से 11 सितम्बर 1911 तक मेदिनीपुर बालीघाई उद्धवपुर में गोपीवल्लभ पुर के श्री विश्वम्भरानन्द देव गोस्वामी जी के सभापतित्व में जो विचार सभा बुलाई गयी थी उसमें योगदान देने के लिए ठाकुर जी ने श्री सरस्वती जी को श्रीसुरेश चन्द्र मुखोपाध्याय के साथ भेजा था। उपरोक्त विचार सभा में वृन्दावन के श्री राधारमण घेरे के पंडित प्रवर श्री मधुसूदन गोस्वामी सार्वभौम एवं प्रसिद्ध पंडित समाज उपस्थित था। श्रील सरस्वती ठाकुर जी ने 'ब्राह्मण और वैष्णव' के तारतम्य मूलक अपूर्व खोज पूर्ण भाषण देकर पंडित वर्ग को निर्वाक और मुग्ध कर दिया था। 1912 में श्रील मधुसूदन गोस्वामी महाशयजी ने कलकता भक्ति भवन में आकर ठाकुर भक्तिविनोद जी के समक्ष परम उत्साह के साथ घोषणा की कि श्रील सरस्वती गोस्वामी अवश्य ही आपके मनोऽभीष्ट को

पूरा करने में एवं गौड़ीय सम्प्रदाय की रक्षा करने में समर्थ होंगे। 1913 में श्रीचैतन्य चरितामृत के भक्ति विनोद ठाकुर जी के द्वारा किये गये अमृतप्रवाह भाष्य के अनुसरण में श्री सरस्वती गोस्वामी रचित ग्रन्थ के कुछ अंश के अनुभाष्य को सुनकर ही 'यत्परोनास्ति अर्थात जिससे श्रेष्ठ और कोई आनन्द नहीं हो सकता, ऐसे आनन्द को अनुभव किया गया।

1914 में अप्रकट होने के कुछ दिन पहले ठाकुर भक्ति विनोद जी कुछ दिनों के लिये कलकता भक्ति भवन से गोद्रुम में गये थे।

ठाकुर भक्ति विनोद जी द्वारा परमहंस वेश ग्रहण

1908 में श्री श्री राधा गोविन्द जी के गूढ़ प्रेम रस के आस्वादन में प्रत्येक क्षण रत रहने के लिये ठाकुर भक्ति विनोद जी ने श्री भागवत परमहंस वेश ग्रहण किया था।

ठाकुर भक्ति विनोद जी का नित्यलीला में प्रवेश

23 जून सन् 1914 में श्रील सच्चिदानन्द भक्ति विनोद ठाकुर जी ने कलकता भक्ति भवन में गौरशक्ति श्री गदाधर पंडित गोस्वामी जी की अप्रकट तिथि के दिन श्री राधा कुंड की माध्याह्निक लीला में प्रवेश किया। ठाकुर भक्ति विनोद जी के अप्रकट होने के 6 वर्ष के पश्चात् परमपूजनीया माता ठाकुरानी श्री भगवती देवी जी ने भी भक्ति भवन में ही अन्तर्धान की लीला प्रकट की।

श्रीमद् भक्तिविनोद विरह दशकम्

(श्रीमद् भक्ति रक्षक श्रीधर देव गोस्वामी विरचितम्)

हा हा भक्तिविनोद ठक्कुर! गुरो! द्वाविंशतिस्ते समा
दीर्घाद्दुःख भरादशेषविरहाद्दुःस्थिकृता भूरियम् ।
जीवानां बहुजन्मपुण्यनिवहाकृष्टो महीमंडले
आविर्भावकृपां चकार च भवान् श्रीगौरशक्ति स्वयम् ।।1

दीनोऽहं चिरदुष्कृति र्न हि भवत् पादाब्ज धूलिकणाः
स्नानानन्दनिधिं प्रपन्नशुभदं लब्धुं समर्थोऽभवम् ।
किन्त्वौदार्यगुणात्तवातियशसः कारुण्यशक्तिः स्वयम्
श्रीश्रीगौरमहाप्रभोः प्रकटिता विश्वं समन्वग्रहीत् ।।2

हे देव! स्तवेन तवाखिलगुणानां ते विरिंचादयो
देवा व्यर्थमनोरथाः किमु वयं मर्त्त्याधमाः कूर्महे ।
एतन्नो विबुधैः कदाप्यतिशयालंकार इत्यच्यतां
शास्त्रेस्वेव 'न पारयेऽहं' मिति यदगीतं मुकुन्देन तत् ।।3

धर्मश्चर्मगतोऽज्ञतैव सतता योगश्च भोगात्मको
ज्ञाने शून्यगतिर्जपेन तपस्या ख्यातिर्जिघांसैव च ।
दाने दाम्भिकताऽनुराग भजने दुष्टापचारो यदा
बुद्धिं बुद्धिमतां विभेद हि तदा धात्रा भवान् प्रेषितः ।।4

विश्वेऽस्मिन् किरणैर्यथा हिमकरः संजीव यन्नोषधी
र्नक्षत्राणि रन्जयन्निजसुधां विस्तारयन् राजते।
सच्छास्त्राणि च तोषयन् बुधगणं सन्मोदयंस्ते तथा
नूनं भूमितले शुभोदय इति हलादो वहः सात्वताम् ।।5

लोकानां हितकाम्यया भगवतो भक्ति प्रचारकस्त्वया
ग्रन्थानां रचनैः सतामभि मतैर्नाना विधैर्दर्शितः ।
आचार्यैः कृतपूर्वमेव किल तद्रामानुजाद्यै बुधैः
प्रेमाम्भोनिधिविग्रहस्यभवतो। माहात्म्यसीमा न तत् ।। 6
यद्धाम्नः खलु धाम चैव निगमे ब्रह्मेति संज्ञायते
यस्यांशस्य कलैव दुःख निकरैर्योगेश्वरैर्मृग्यते।
वैकुण्ठे परमुक्त भृंग चरणौनारायणौ यः स्वयम्
तस्यांशी भगवान् स्वयं रसवपुः कृष्णो भञान् तत् प्रदः ।।7
सर्वाचिन्त्यमये परत्परपुरे गोलोक वृन्दावने
चिल्लीलारसरंगिनीपरिवृता सा राधिका श्रीहरेः।
वात्सल्यादि रसैश्च सेवित-तनोर्माधुर्यसेवासुखं
नित्यं यत्र मदातनोति हि भवान् तद्धामसेवाप्रदः ।।8
श्रीगौरानुमतं स्वरूपविदितं रूपाग्रजेनादृतं।
रूपाद्यैः परिवेशितं रघुगणैरास्वादितं सेवितम् ।
जीवाद्यैरभिरक्षितं शुक-शिव ब्रह्मादिसम्मानितं
श्रीराधापदसेवनामृतमहो तदर्धांतुमीशो भवान्।। 9
क्वाहं मन्दमतिस्त्वतीव पतितः क्व त्वं जगत्पावन :
भो स्वामिन कृपया पराधनिचयो नूनंत्वया क्षम्यताम्
याचेऽहं करुणानिधे वरमिमं पादाब्ज मूले भवत् ।
स्वं स्वावधि-राधिका-दयित-दासानां गणेगण्यताम्।।10

श्रीमद् भक्तिविनोद दशकम्

अमन्दकारुण्य गुणाकर श्री चैतन्यदेवस्य दयावतारः।

स गौरशक्तिर्भविता पुनः कि पदं दृशोर्भक्तिविनोद देवः।। (1)

जो परम करुणा गुण के आधार श्रीचैतन्य देव जी की दया के अवतार स्वरूप हैं, वही गौरशक्ति श्रीमद् भक्तिविनोद देव जी कभी हमें दुबारा फिर दर्शन देंगे क्या?

श्रीमद् जगन्नाथ प्रभुप्रियो य एकात्मको गौरकिशोरकेन।
श्रीगौरकारुण्य मयो भवेत् किं नित्यं स्मृतौ भक्ति विनोद देवः।।

जो श्रीजगन्नाथ प्रभु जी के परम प्रिय अनुगत एवं श्रीमद् गौरकिशोर देव जी के अभिन्न आत्मस्वरूप हैं वह श्री गौर महाप्रभु जी की करुणा शक्ति श्रीमद् भक्ति विनोद देव क्या हमेशा हमारे स्मृति पटलों पर रहेंगे क्या?

श्रीनामचिन्तामणि समप्रचारैरादर्शमाचार विधौ दधौ यः।
स जागरूकः स्मृति मन्दिरे किं नित्यं भवेद् भक्तिविनोद देवः।।

जिन्होंने श्रीनामचिन्तामणि का प्रचार करते हुए आचार विचार का आदर्श स्थापित किया है, वह भक्ति विनोद देव जी हमेशा हमारे स्मृति मन्दिर में प्रकट रहेंगे क्या?

नामापराधै रहितस्य नाम्नो माहात्म्यजातं प्रकटं विधाय।
जीवे दयालुर्भविता स्मृतौ किं कृतासनो भक्ति विनोद देवः।।

जिन्होंने नाम-अपराधों से रहित श्रीनाम की महिमा को प्रकाशित करके जीवों के प्रति परम दयालुता का परिचय दिया है, वह भक्तिविनोद देव क्या हमेशा हमारे स्मृति सिंहासन पर

विराजमान रहेंगे ?

गौरस्यगूढ प्रकटालयस्य सतोऽसतो हर्षकुनाढ़योश्च।
प्रकाशको गौरजनो भवेत् किं स्मृतयास्पदं भक्ति विनोद देवः।।

जिन्होंने गौरांग देव जी के आविर्भाव स्थान को प्रकाशित करके सज्जनों के हर्ष और दुर्जनों के भाव दोनों को एक साथ प्रकाशित किया है उन्हीं गौरजन श्री मद्भक्ति विनोद देव जी क्या हमेशा हमारी स्मृति का विषय बने रहेंगे।

निरस्य विघ्नानिह भक्तिगंगा प्रवाहनेनोद्धृतं सर्वलोकः।
भगीरथो नित्यधियां पदं किं भवेदसौ भक्ति विनोद देवः।।

जिन्होंने कांटों को साफ करके भक्ति गंगा के प्रवाह से समस्त लोगों का उद्धार किया है उस भक्ति भागीरथी के भगीरथ स्वरूप श्री मद् भक्ति विनोद देव क्या हमारे नित्य धारण करने के विषय बनेंगे?

विश्वेषु चैतन्य कथा प्रचारी माहात्म्यशंसी गुरुवैष्णवानाम्।
नामग्रहादर्शी इह स्मृतः किं चित्ते भवेद् भक्तिविनोद देवः।।

जिन्होंने सारे संसार में श्री चैतन्य महाप्रभु जी की वाणी का प्रचार किया है, गुरु वैष्णव की महिमा को प्रकाशित किया है और हरिनाम करने के आदर्श को दिखाया है उन श्री भक्ति विनोद देव जी की स्मृति क्या हमारे हृदय में हमेशा बनी रहेगी?

प्रयोजनं सन्नभिधेय भक्ति सिद्धान्त वाण्या सममत्र गौरकिशोर।
सम्बन्धयुतो भवेत किं चित्तं गतो भक्ति विनोद देवः।।

जो स्वयं प्रयोजन तत्त्व स्वरूप हैं, वही श्री भक्ति विनोद देवः श्रीगौर किशोर रूप सम्बन्ध तत्त्व के साथ मिलकर अभिधेयतत्त्व रूपी श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त वाणी के साथ हमारे चित्त में प्रकट होंगे क्या?

शिक्षामृतं सज्जन तोषणीन्च चिन्तामणिन्यात्र सजैवधर्मम।
प्रकाश्य चैतन्यप्रदो भवेत् किं चित्ते धृतो भक्ति विनोद देवः।।

जिन्होंने सज्जनतोषणी, हरिनाम चिन्तामणि, जैवधर्म आदि ग्रन्थों की रचनाकर जीवों में चेतनता को वितरण किया है वही श्री भक्तिविनोद देव क्या हमारे हृदय में धारण होंगे?

आसाढदर्शेऽहनि गौरशक्ति गदाधराभिन्नतनुर्जहो यः।
प्रपंचलीलामिह नो भवेत किं दृश्यः पुनर्भक्ति विनोद देवः ।।

जिन्होंने आषाढ़ की अमावस्या तिथि को श्री गौरशक्ति श्रील गदाधर पंडित गोस्वामी प्रभु जी के अभिन्नविग्रह रूप में प्रपंच लीला को परित्याग किया था, उन भक्ति विनोद देव जी के दर्शन हमें पुनः होंगे क्या?

श्री श्रीलभक्तिविनोद–ठाकुर की अप्रकाशितपूर्व संस्कृत पद्यावली

श्रीगोद्रुमचन्द्र - भजनोपदेश:

(गौड़ीय 18वां खण्ड 47 - 48 संख्या पृष्ठ 757 - 58)

यदि ते हरिपादसरोजसुधारसपानपरं हृदयं सततम्।
परिहृत्य गृहं कलिभारमयं भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।
धन - यौवन - जीवन - राज्यसुखं नहिनित्यमनुक्षण - नाशपरम्।
त्यज ग्राम्यकथासकलं विफलं भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

रमणीजनसंगसुखञ्च सखे चरमे भयदं पुरुषार्थहरम्।
हरिनामसुधारस - मत्तमतिर्भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

जड़काव्यरसो नहि काव्यरस: कलिपावन - गौररसो हि रस:।
अलमन्यकथाद्यनुशीलनया भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

वृषभानुसुतान्वितवामतनुं यमुनातटनागर - नन्दसुतम्।
मुरलीकलगीतविनोद परं भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

हरिकीर्तन - मध्यगतं स्वजनै: परिवेष्टित - जाम्बुनदाभहरिम्।
निजगौड़जनैककृपा - जलधिं भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

गिरिराजसुतापरिवीत - गृहं नवखण्डपतिं यतिचित्तहरम्।
सुरसंघनुतं प्रियया सहितं भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

कलिकुक्कुरमुद्‌गर - भावधरं हरिनाममहौषध - दानपरम्।
पतितार्त्त - दयार्द्र - सुमूर्त्तिधरं भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

रिपुबान्धवभेदविहीनदया यदभीक्ष्णमुदेति मुखाब्जततौ।
तमकृष्णमिह व्रजराजसुतं भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।
इह चोपनिषत् - परिगीतविभुर्द्विजराजसुत: पुरटाभ हरि:।
निजधामनि खेलति बन्धुयुतो भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

अवतारवरं परिपूर्णफलं परतत्त्वमिहात्मविलासमयम्।
व्रजधामरसाम्बुधि गुप्तरसं भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

श्रुति - वर्ण - धनादि न यस्य कृपाजनने बलवत् भजनेनबिना।
तमहैतुकभावपथा हि सखे भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

अपि नक्रगतो हृदमध्यगतं कममोचयदार्त्तजनं तमजम्।
अविचिन्त्यबलं शिवकल्पतरुं भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

सुरभीन्द्रतप: परितुष्टमनो वरवर्णधरो हरिराविरभूत्।
तमजस्रसुखं मुनिधैर्यहरं भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

अभिलाषचयं तदभेदधियमशुभञ्च शुभं त्यज सर्वमिदम्।
अनुकूलतया प्रियसेवनया भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

हरिसेवकसेवन - धर्मपरो हरिनामरसामृत - पानरत:।
नतिदैन्य - दया - परमानयुतो भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

वद यादव माधव कृष्ण हरे वद राम जनार्दन केशव हे।
वृषभानुसुताप्रियनाथ सदा भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

वद यामुनतीरवनाद्रिपते वद गोकुलकानन पुञ्जरवे।
वद रासरसायन गौरहरे भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

चल गौरवनं नवखण्डमयं पठ गौरहरेश्चरितानि मुदा।
लुठ गौरपदांकित - गांगतटं भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

स्मर गौर - गदाधर - केलिकलां भव गौर - गदाधर - पक्षचर:।
श्रृणु गौर - गदाधर - चारुकथां भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम्।।

M M M M M
M M M
M

श्रील गौरकिशोर दास बाबा जी महाराज

पूर्व बंग (वर्तमान में बंगलादेश) में फरीदपुर जिले के अन्तर्गत टेपाखोला के निकट पद्मानदी के तट पर स्थित 'बागयान' ग्राम में परमहंस श्रील गौरकिशोर दास बाबा जी का आविर्भाव हुआ था। उनके माता पिता जी का नाम अज्ञात है। बाबा जी का पिता जी द्वारा दिया नाम 'वंशीदास' था। इनका विशेष परिचय यह है कि ये विश्व व्यापी श्रीचैतन्य मठ और श्रीगौड़ीय मठों के प्रतिष्ठाता नित्यलीला प्रविष्ट ॐ 108 श्री श्री मद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के दीक्षा गुरु थे।

समाज की उस समय की प्रथानुसार इनके पिता माता जी ने बाल्यकाल में ही वंशीदास जी का विवाह कर दिया था । किन्तु विवाह होने पर भी वंशीदास जी सदा संसार से विरक्त और भगवद् विरह में व्याकुल अवस्था में घर पर रहते थे। पत्नी के वियोग के पश्चात् कठोर वैराग्य के साथ विविक्तानन्दी रूप से भजन करने कि लिये उन्होंने श्रीमद् भागवतदास बाबा जी महाराज जी से परमहंस बाबा जी का वेश ग्रहण किया और गौर किशोर दास बाबा जी के नाम से प्रसिद्ध हुये। श्रीमद् भागवत दास बाबा जी महाराज ने वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज जी से बाबा जी का वेश

लिया था। वेश लेने के पश्चात श्रीमद् गौरकिशोर दास बाबा जी महाराज जी ने तीस साल व्रजमंडल के विभिन्न स्थानों में रहते हुये तीव्र भजन किया था। बीच -2 में वे उत्तर भारत और श्रीगौड़ मंडल के तीर्थो का दर्शन कर आते थे। तीर्थ पर्यटन के समय बाबा जी महाराज जी का श्रीक्षेत्र में श्री स्वरूप दास बाबा जी, कालना में श्री भगवान् दास बाबा जी और कुलिया में श्रीचैतन्य दास बाबा जी से मिलन हुआ था।

श्रीमन्महाप्रभु जी की आविर्भाव स्थली श्री मायापुर योगपीठ के प्रकाशित होने पर श्रील गौर किशोर दास बाबा जी महाराज जी ने श्रीलजगन्नाथ दास बाबा जी महाराज जी के आदेश के अनुसार श्री व्रजमंडल से गौड़मंडल में आकर अप्रकट होने तक श्रीमन्महाप्रभु जी की लीला स्थली श्री नवद्वीप मंडल के विभिन्न स्थानों में रहे थे। ये अपने अप्राकृत नेत्रों से नवद्वीप मंडल के अधिवासियों को धामवासियों के रूप में देखते थे तथा माधुकरी में मिले भिक्षा के द्रव्यों को लोगों के द्वारा फेंके मिट्टी के बर्तनों में पका कर किसी प्रकार अपना जीवन चलाया करते थे। ऐसा भी सुना जाता है कि ये कभी गंगाजल पानकर, कभी गंगा की मिट्टी खाकर और कभी तो भूखे रहकर ही निरन्तर हरिनाम करते रहते थे। विविक्तानन्दी, त्यक्ताश्रमी के आदर्श स्वरूप श्री गौरकिशोर दास बाबा जी महाराज निरपेक्ष रूप में रहते थे। श्री गौर निजजन, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी श्रील गौर किशोर दासबाबा जी महाराज जी के आसाधारण वैराग्य व

शुद्ध भक्ति और भगवान में उनके अनुराग को देखकर मुग्ध हो गये थे। बाबा जी बीच-2 में गोद्रुम द्वीप में स्थित श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी के घर स्वानन्दसुखदकुंज में आकर रहते एवं ठाकुर भक्तिविनोद जी से श्रीमद्भागवत श्रवण करते और उनके साथ भक्ति सिद्धान्त के विषयों में चर्चा करते रहते थे।

बाबा जी महाराज कभी भी किसी से अपनी सेवा नहीं करवाते थे। वे हर समय कभी तुलसी माला तो कभी फटे कपड़े में गांठ देकर बनायी गयी माला धारण कर हरिनाम करते थे । श्रील नरोत्तम ठाकुर जी की 'प्रार्थना' और 'प्रेम-भक्ति चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ ही उनके सब कुछ थे।

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी जी के वैराग्य की तरह बाबा जी के वैराग्य की विशेषता यह थी कि सांसारिक वैराग्य के साथ साथ इनका कृष्ण में गाढ़ अनुराग भी था।

1898 में गोद्रुम द्वीप में स्थित श्रीस्वानन्द सुखद कुंज में श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर जी का श्रील गौर किशोर दास बाबा जी के साथ पहली बार मिलन हुआ था। उस समय श्रील गौर किशोर दास बाबा जी महाराज के मुख से व्याकुल हृदय से गाये हुये भजनों को सुनकर श्रील प्रभुपाद जी मुग्ध और प्रेमाविष्ट हो उठे थे। उस समय श्रील प्रभुपाद ने वह भजन लिख लिया था और बाद में इसे भक्तों को पढ़ाया। उस मत्र को पढ़कर भक्त लोग स्वयं को कृतार्थ सा अनुभव करने

लगे। श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी जी के उद्देश्य से रचित गीत के रूप में प्रचलित यह गीत इस प्रकार है–

"कोथाय गो प्रेममयि राधे राधे।
राधे राधे गो जय राधे राधे।।
देखा दिये प्राण राख राधे राधे।
तोमार कांगाल तोमाय डाके राधे राधे।।
राधे वृन्दावन–विलासिनि राधे राधे।
राधे कानुमनोमोहिनी राधे राधे।।
राधे अष्टसखीर शिरोमणि राधे राधे।
राधे वृषभानुनन्दिनी राधे राधे।।

(गोसाञी) नियम क'रे सदाइ डाके राधे राधे।
(गोसाञी) एकबार डाके केशीघाटे,
आबार डाके वंशीवटे राधे राधे।।
(गोसाञी) एकबार डाके निधुवने,
आबार डाके कुञ्जवने राधे राधे।।
(गोसाञी) एकबार डाके राधाकुण्डे,
आबार डाके श्यामकुण्डे राधे राधे।।

(गोसाञी) एकबार डाके कुसुमवने
आबार डाके गोवर्धने राधे राधे।।
(गोसाञी) एकबार डाके तालवने,
आबार डाके तमालवने राधे राधे।
(गोसाञी) मलिन वसन दिये गाय,
व्रजेर धूलाय गड़ागड़ि याय राधे राधे।।
(गोसाञी) मुखे राधा राधा बले,
भेसे नयनेर जले राधे राधे।।
(गोसाञी) वृन्दावने कूलिकूलि,
केंदे बेड़ाय राधा बलि राधे राधे।।
(गोसाञी) छाप्पान्न दण्ड रात्रि दिने, जाने ना
राधागोविन्द बिने राधे राधे।।
तारपर चारि दण्ड शुति थाके स्वपने
राधा–गोविन्द देखे राधे राधे।।

जनवरी सन् 1900 में श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी के आदेशानुसार श्री भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने गोद्रुम स्वानन्द सुखद कुंज में श्रील गौर किशोर दास बाबा जी महाराज जी से दीक्षा ग्रहण की थी श्रील भक्ति सिद्धान्त

सरस्वती प्रभुपाद जी श्रील गौर किशोरदास बाबा जी महाराज जी के एक मात्र शिष्य थे। विविक्तानन्दी श्रील बाबा जी का ये संकल्प था कि वे किसी को भी मंत्र नहीं देंगे। किन्तु श्रील प्रभुपाद जी की अनन्य निष्ठा को देखकर वे अपने संकल्प को छोड़ने में मजबूर हो गये। ऐसा सुना जाता है कि श्रील प्रभुपाद जी द्वारा बार बार बाबा जी से दीक्षा के लिये प्रार्थना करने पर बाबा जी महाराज जी ने उन्हें कहा "मैं श्री महाप्रभु जी की अनुमति मिलने पर मंत्र दूंगा। दूसरी बार आकर पूछने पर बाबा जी ने कहा कि वे महाप्रभु जी को पूछना भूल गये हैं। श्रील प्रभुपाद जी हताश नहीं हुये। उन्होंने जब तीसरी बार उनको निवदेन किया तो बाबा जी ने कहा:- 'सुनीति और पांडित्य के द्वारा भगवान को नहीं पाया जा सकता और न ही इसके द्वारा दीक्षा ग्रहण का अधिकार होता है। बाबा जी महाराज जी द्वारा वापस भेजने पर भी प्रभुपाद जी ने अपनी निष्ठा नहीं छोड़ी। श्रीरामानुजाचार्य जी ने 18 बार वापस भेजे जाने के बाद जिस प्रकार गोष्ठी पूर्ण जी की कृपा प्राप्त की थी, उसी प्रकार प्रभुपाद जी द्वारा भी असीम धैर्य धारण करने पर तथा बार-बार दीनता पूर्वक प्रार्थना करते रहने पर अन्त में बाबा जी महाराज जी ने सुप्रसन्न चित्त से स्नेह से भर कर प्रभुपाद को अपनी धूलि में अभिषिक्त करते हुये दीक्षा प्रदान की। यदि कोई कपटी विषयी व्यक्ति श्रील बाबा जी महाराज जी के चरणों को स्पर्श करता था तो वे क्रोधित हो पड़ते थे और गुस्से से कहते :- 'तेरा सर्वनाश होगा'। कई लोग इसी

भय से उनके चरणों को स्पर्श भी नहीं करते थे। किन्तु आज उन्होंने स्नेह से भर कर स्वयं ही अपनी पदधूलि लेकर प्रभुपाद जी के अंगों पर लेपन कर दी। श्रील प्रभुपाद जी के गणों से ऐसा सुना जाता है कि श्रील प्रभुपाद जी को 12 बार वापस आने के पश्चात् 13वीं बार श्रील गौर किशोर दास बाबा जी की कृपा मिली थी। ऐसा भी सुना जाता है कि तीन बार वापस होने के पश्चात् चौथी बार प्रभुपाद जी को गौर किशोर दास बाबा जी महाराज जी की कृपा मिली थी।

इस लीला से विविक्तानन्दी श्रील लोकनाथ गोस्वामी जी से श्रील नरोत्तम ठाकुर जी के दीक्षा लेने की लीला की स्मृति ताज़ा हो उठती है। गुरु में अनन्य निष्ठा ही सत् शिष्य का लक्षण है। बाबा जी महाराज जी ने प्रभुपाद जी को श्री मन्महाप्रभु जी के प्रचार के योग्य समझकर आशीर्वाद करते हुये उन्हें सारी पृथ्वी पर श्रीमहाप्रभु जी की वाणी के प्रचार के लिये आदेश दिया।

श्रील प्रभुपाद जी ने अत्यन्तदीनता पूर्ण वचनों से जगत्वासियों को निश्चित मंगल का रास्ता दिखाने के लिये अपने गुरुदेव श्रील बाबा जी महाराज जी के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है:- " मैं अपने अभाव को पूरा करने के लिये जड़ से लेकर ब्रह्मा तक सभी कुछ अपने अधीन करने में लगा हुआ था।मैं समझता था कि विषयों के मिलने से ही मेरा अभाव दूर हो जाएगा और कई बार अनेक दुर्लभ विषय प्राप्त

भी किए किन्तु मेरा अभाव दूर नहीं हुआ। जगत में मुझे बहुत से महान चरित्र के आदमी मिले किन्तु उनके नाना प्रकार के अभावों को देखकर मैं उनको सम्मान नहीं दे पाया। ऐसे दिनों में मेरी शोचनीय अवस्था को देखकर परमकारुणिक श्रीगौरसुन्दर जी ने अपने दो प्रियतमों को मेरे प्रति प्रसन्न होने की अनुमति दे दी। मैं अपने सांसारिक अहंकार में प्रमत्त होकर अपनी प्रशंसा करते करते अपना वास्तविक मंगल खो बैठा था किन्तु पुरानी सुकृतियों के प्रभाव से मैंने अपने मंगलमय शुभाकांक्षी के रूप में श्री ठाकुर भक्ति विनोद जी को पाया।

मेरे प्रभु (गौरकिशोर दास बाबाजी)कई बार उनके पास शुभागमन करते थे एंव अनेक बार उनके पास भी रहते थे। श्रीमद् भक्ति विनोद ठाकुर जी ने दया परवश होकर मुझे मेरे प्रभु को दिखला दिया। प्रभु को देखते ही मेरा जड़ीय अभिमान कम होने लगता। मैं समझता था कि नराकार धारणकर सभी मेरी तरह हेय और अधम हैं परन्तु अपने प्रभु के अलौकिक चरित्र को देखकर मुझे धीरे-2 अनुभव हुआ कि आर्दश वैष्णव भी इस जगत में हो सकते हैं।

उन्होंने और भी लिखा है कि "उनको श्रील गौरकिशोर दास बाबा जी महाराज जी को देखते हुए भी बहुत से नये चतुर-बालक, वृद्ध, पंडित, मूर्ख व भक्त होने का अभिमान करने वाले, उनके दर्शन नहीं कर पाये। यही कृष्ण भक्त की ईश्वरीय शक्ति है। ये सत्य है कि सैंकड़ों सांसारिक इच्छाएँ

रखने वाले लोग अपनी छोटी-2 मांगों के लिये उनसे परामर्श लेते थे किन्तु वे उपदेश उनकी वन्चना करने वाले ही थे। असंख्य लोग साधु का वेश धारण करते हैं किन्तु वास्तविकता में वह साधुपनें से बहुत दूर होते हैं। मेरे प्रभु ऐसे कपटी नहीं थे। निष्कपटता ही सत्य है, ये उनके आचरण से अभिव्यक्त होता था। उनका निष्कपट स्नेह अतुलनीय था जो विभूति की प्राप्ति को भी कपटता में प्रतिष्ठित करता था, अर्थात उनके निष्कपट स्नेह के सामने विभूतियां भी कपटता प्रतीत होती थीं। उनकी अपने प्रतिद्वन्द्वी या विरोधी व्यक्ति के प्रति किसी भी प्रकार की उदासीनता नहीं थी और न ही कृपापात्र के प्रति विशेष अनुग्रह का दिखावा ही था। वे कहते थे कि मेरे विराग या प्रीति का भाजन इस जगत् में कोई नहीं है। सभी मेरे सम्मान के पात्र हैं। एक अलौकिक बात ये भी है कि शुद्ध भक्ति धर्म विरोधी अनेक दुष्ट नासमझ लोग हमेशा उनको घेर कर बैठे रहते थे एवं अपने आपको उनका स्नेहपात्र समझकर सांसारिक गन्दे विषयों में ही फंसे रहते थे। किन्तु उन्होंने भी न तो सीधा सीधा प्रत्यक्ष रूप से उनका त्याग ही किया और न ही उन्हें किसी प्रकार से ग्रहण किया। उनकी अन्तर्दृष्टि व बाहरी दृष्टि-दोनों ही प्रबल थीं। वे भविष्य में घटने वाली घटनाओं को जान लेते थे तथा उनके पास आने वाले व्यक्ति का चरित्र उसे देखकर ही पहचान लेते थे।

1322 बंगाब्द की 30 कार्तिक की शेषरात्रि को परमहंस श्रील गौर किशोर दास बाबा जी महाराज जी ने नित्यलीला में

प्रवेश किया। अप्रकट होने से पहले बाबा जी महाराज कुलिया नामक स्थान में राणी की धर्मशाला में रह रहे थे। जब श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी को बाबा जी के संसार से गमन व नित्यलीला में प्रवेश का समाचार मिला तो वे विरह से व्याकुल हो उठे तथा उस स्थान पर पहुंचे जहां श्रील गौर किशोर दास बाबा जी महाराज जी का दिव्य शरीर रखा था। उन्होंने वहां पहुंच कर देखा कि वहां विभिन्न अखाड़ों के महन्त बाबा जी आपस में इस बात को लेकर तर्क-वितर्क कर रहे थे कि बाबा जी को समाधि किस प्रकार दी जाये? उन बाबा जी लोगों का ये अभिप्राय था कि श्रील गौर किशोर दास बाबा जी महाराज जी को जैसे तैसे समाधि दे दो। यदि हम इनकी समाधि दे सकें एवं उस स्थान पर यदि मन्दिर बन सके तो ये हमारे लिए धन कमाई का एक अच्छा रास्ता बन जायेगा। श्रील प्रभुपाद जी ने अकेले वहां डट कर उन लोगों के इस कार्य का विरोध किया। बात के अधिक बढ़ जाने पर व शान्ति भंग होने की आशंका से नवद्वीप के दरोगा राय बहादुर श्री यतीन्द्र नाथ सिंह महाशय भी आ पहुंचे। श्रीलप्रभुपाद जी ने उस समय त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण नहीं किया था। वे वेषधारी बाबा जी लोग ये तर्क दे रहे थे कि गौर किशोर दास जी त्यागी थे इसलिये उनकी समाधि बनाने का केवल उन्हें ही अधिकार है। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती संन्यासी नहीं है इसलिये उनका अधिकार नहीं है। तब श्रील प्रभुपाद जी ने अपना महापुरुषोचित महातेजस्वी रूप प्रकट करते हुये

कहा-केवल वह ही बाबा जी के एकमात्र शिष्य हैं। यदि इन वेषधारी बाबा जी लोगों में से किसी ने पिछले एक साल में, छः महीने में, पिछले तीन महीनों में, एक महीने में या पिछले तीन दिनों में भी अवैध स्त्री का संग किया हो तो वह श्रीलगुरुदेव जी के चिन्मय कलेवर (शरीर) को स्पर्श न करे। यदि वह स्पर्श करेगा तो उसका सर्वनाश हो जायेगा।

ये बात सुनकर दरोगा यतीन्द्र बाबू ने कहा:- महन्त बाबा जी लोगों ने स्त्रीसंग किया है या नहीं इस का प्रमाण क्या है? प्रभुपाद जी ने कहा: - मैं उनकी बात पर ही विश्वास कर लूंगा।

श्रील प्रभुपाद जी के महातेजस्वी रूप को देखकर बाबा जी लोग धीरे-2 वहां से खिसकते चले गये। ये देख दरोगा जी अत्यन्त लज्जित होकर श्रील प्रभुपाद जी के प्रति श्रद्धा निवेदन करते हुये चले गये। कुलिया के कुछ व्यक्तियों ने श्रील प्रभुपाद जी से बाबा जी महाराज की अन्तिम इच्छा की बात बताते हुये कहा- कि बाबा जी महाराज ज़ी ने अपने अप्रकट होने से पहले इस प्रकार इच्छा व्यक्त की थी कि उनके शरीर को नवद्वीप धाम के रास्ते में घसीट कर धाम की रज से अंभिषिक्त किया जाये। ये सुनकर श्रीलप्रभुपाद ने कहा-जिनको कन्धों एवं मस्तक पर धारण करने से स्वयं श्रीकृष्ण चन्द्र अपने आप को कृतार्थ समझते हैं, उन्होंने तो लोगों की दाम्भिकता को तोड़ने के लिये ही ये सब बातें कही

थीं। हम मूर्ख, अज्ञानी, अपराधी होने पर भी उनके तात्पर्य को समझने से मुख नहीं मोड़ेंगे। श्री गौर सुन्दर जी ने ठाकुर हरिदास जी के शरीर त्याग के पश्चात उनकी चिदानन्द देह को गोद में लेकर नृत्य किया था व उन्हें कितने बड़े गौरव से विभूषित किया था। इसलिये हम भी श्रीमन्महाप्रभु जी के चरण चिन्हों का अनुसरण करते हुये बाबा जी महाराज की चिदानन्द देह को अपने मस्तक पर रख कर ले जायेंगे।

वैष्णव स्मृति के विधानानुसार 1 अग्रहायन 1322 बंगाब्द की श्री उत्थान एकादशी तिथि को दोपहर के समय श्रील प्रभुपाद जी ने कुलिया के नवीन टीले के उपर बाबा जी की समाधि का कार्य समापन किया यशोहर ज़िले के लोहगढ़ निवासी पोद्दार महाशय जी ने समाधि के लिये स्थान देते समय कहा था कि अब उस स्थान के प्रति उनका कोई अधिकार नहीं रहेगा किन्तु बाद में अपने वचन को भुलाकर उस स्थान को हथियाने के लिए उसने बहुत कोशिश की। उस स्थान पर अधिकार जमाने के लिये उसने नाना प्रकार के अवैध कार्यों को बढ़ावा दिया परन्तु दैव-वशत: बाद में वह धीरे-2 गंगा जी में लुप्त हो गया। गंगा जी की धारा बदल जाने से गौरकिशोर दास बाबा जी महाराज जी का समाधि स्थल जब गंगा जी में लुप्त होने लगा तो श्रील प्रभुपाद जी श्रीलगौर किशोर दास बाबा जी की चिन्मय समाधि को गंगा जी से उठाकर राधा कुंड के किनारे श्रीचैतन्यमठ में ले आये और

1339 बंगाब्द को पुन: उसकी स्थापना की । धीरे-2 इस स्थान पर समाधि मन्दिर का निर्माण हुआ और बाबा जी महाराज की श्रीमूर्ति की प्रतिष्ठा हुयी। तब से उस मन्दिर में नित्य पूजा चल रही है।

"नमो गौरकिशोराय साक्षाद्वैराग्य मूर्तये।
विप्रलम्भरसाम्भोधे पादाम्बुजाय ते नम:"।।

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के निजजनों से सुनीं बाबा जी महाराज की शिक्षामूलक कुछ अलौकिक-चरित्र-वैशिष्ट्य घटनायें निम्न प्रकार से हैं-

1. कुलिया नवद्वीप के एक वैष्णव वेशधारी व्यक्ति को साथ लेकर उसके कुछ साथी गौर किशोर दास बाबा जी के पास आये और बाबा जी को उसकी महिमा सुनाते हुए कहने लगे- "बाबा! हमारे ये प्रभु पतित जीवों का उद्धार करने के लिये देश-विदेश में भ्रमण करते हुए कितना कष्ट सहन करते हैं, यदि ये अन्य स्थानों में न जायें तो उन जीवों की क्या गति होगी? ये सुनकर बाबा जी विरक्त हो उठे और उत्तर में उन्होंने कहा- "लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा के उद्देश्य से जगत उद्धार करने का नाटक करने से जगत् का उद्धार होने की बात तो दूर, वे स्वयं ही पतित हो जायेंगे। उनका ये कार्य मात्र जगत को धोखा देना कहलाएगा।

2. एक बार कुछ व्यक्तियों ने एक प्रसिद्ध भागवत की

व्याख्या करने वाले पाठक की महिमा बाबा जी को सुनाई। बाबा जी तो अन्तर्यामी थे, वे उस पाठक के पैसे के बदले पाठ करने के उद्‌देश्य को जान गये और उन्होंने कहा – "वह भागवत शास्त्र की गोस्वामी शास्त्र की तरह व्याख्या नहीं करता है। वह तो हमेशा इन्द्रिय–तर्पण शास्त्र की व्याख्या करता है वह 'गौर' 'गौर', 'कृष्ण' 'कृष्ण', का कीर्तन नहीं करता है, वह तो केवल 'पैसा' 'पैसा' ही कहता रहता है। ये कभी भी भजन नहीं है। ऐसा करने से तः वास्तविक वैष्णव धर्म ढक रहा है। उपकार के स्थान पर जगत् का अनिष्ट ही हो रहा है"

3. एक दिन बाबा जी नवद्वीप मंडल में बैठे हरिनाम कर रहे थे कि अचानक रात 10 बजे बोल उठे – देखा–देखा पावना ज़िले में इतनी रात को एक पाठ करने वाला एक विधवा का धर्म नष्ट कर रहा है। हाय! हाय! ये दुष्ट लोग धर्म के नाम पर कलंक लगा रहे हैं" बाबा वो बात इस प्रकार से बोल रहे थे जैसे वे सामने देख रहे हों।

4. नवद्वीप में धर्मशाला के अधिकारी गिरीशबाबू की स्त्री ने जब बाबा जी महाराज के लिये एक कुटिया बना कर देनी चाही तो बाबा जी महाराज ने कहा– " नाव की बनी छत के नीचे रहते मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। मुझे तो एक कष्ट है। बहुत से कपटी व्यक्ति मेरे पास आकर हमेशा 'कृपा करो' 'कृपा करो' कहते हैं और मुझे भजन नहीं करने देते व

अपना मंगल तो चाहते ही नहीं बरन दूसरों के भजन में विघ्न डालते हैं, यदि आप अपना टट्टी घर मुझे दे दें तो मैं वहां निश्‍चिंत होकर भजन कर सकता हूं। वहां मुझे कोई तंग नही करेगा। बाबा जी महाराज टट्टी घर में जायेंगे, ये सोचकर गिरीश बाबू ने उसी समय उसे गोबर से साफ करवा कर राजमिस्त्री द्वारा पूरी तरह नया बनवा दिया।

5. शीत में कष्ट होगा, ये सोचकर कोई बाबा जी महाराज जी को एक रजाई दे गया था। बाबा जी महाराज जी ने उसे छत पर लटका कर रख दिया। जब उस व्यक्ति ने इस का कारण पूछा तो बाबा जी ने कहा कि इसे देख कर ही ठंड भाग जायेगी।

6. एक बार कासिम बाज़ार के स्वनामधन्य महाराज सर श्रीमणीन्द्र चन्द्र नन्दीबहादुर ने गौर किशोरदास बाबा जी महाराज जी को कासिम बाज़ार में अपने महल में हो रही वैष्णव सभा में आमन्त्रित किया तो बाबा जी ने महाराज जी से कहा – "आप यदि मेरा संग करने की इच्छा करो तो अपनी सारी धन–सम्पति छोड़कर नवद्वीप में गंगा के किनारे छप्पर डालकर मेरे साथ रहो। आपको भोजन की चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी मैं माधुकरी मांग कर आपको खिलाऊंगा, किन्तु यदि मैं आपके निमन्त्रण की रक्षा करने के लिये आपके महल में जाऊंगा तो कुछ दिनों के बाद ही मुझमें विषय प्रवृत्ति आ जायेगी। मैं भी अधिक से अधिक ज़मीन जोड़ने के चक्कर में पड़ जाऊंगा।

फल क्या होगा– मैं आपकी हिंसा का पात्र बन बैठूंगा।

आपके साथ हमेशा प्यार रखना हो एवं वैष्णव दोस्त के हिसाब से आप यदि मुझ पर कृपा करें तब तो हम दोनों का यहां अप्राकृत धाम में रहकर किसी प्रकार माधुकरी करके जीवन निर्वाह करते हुये हरिभजन करना ही कर्तव्य है।

नरोत्तम ठाकुर जी के पदावली कीर्त्तन बाबा जी महाराज जी को अत्यन्त प्रिय थे। एक कीर्त्तन वे प्रायः ही करते थे। वह कीर्त्तन सारी शिक्षाओं का सार है–

"गोरा पँहु न भजिया मैंनु ...."

प्रेमरतनधन हेलाय हाराइनु।।

अधने यतन करि' धन तेयागिनु।

आपन करमदोषे आपनि डुबिनु।।

सत्संग छाड़ि कैनु असते विलास।

ते–कारणे लागिल ये कर्मबन्ध–फाँस।।

विषय विषम–विष सतत खाइनु।

गौरकीर्तन रसे मगन ना हैनु।।

केन वा आछये प्राण कि सुख लागिया।

नरोत्तमदास केन ना गेल मरिया।।

प्रभुपाद श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर

(साप्ताहिक ''गौड़ीय'' पत्रिका से उद्धृत तथा 'श्री चैतन्यवाणी' पत्रिका के तेरहवें वर्ष में भी प्रकाशित)

श्रीपुरीधाम में आविर्भाव

श्रीजगन्नाथपुरी में श्रीजगदीश मन्दिर के पास, 'नारायण छाता' से संलग्न (लगे हुए) भवन में, श्रीभक्तिविनोद ठाकुर के हरिकीर्तन से आप्लावित गृह में, श्रीमती भगवतीदेवी की गोद से, 25 माघ, कृष्णा–पंचमी तिथि, शुक्रवार, 6 फरवरी 1874 ई० स०, 1795 शकाब्द को, दिन के साढ़े तीन बजे के बाद, एक ज्योतिर्मय दिव्य छटा के रूप में, ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादजी का आविर्भाव हुआ था। जिन लोगों ने, उस समय उस शिशु को देखा, वे सब, उनके शरीर में स्वाभाविक रूप से, यज्ञोपवीत के चिह्न को देखकर बड़े चकित हुए। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर ने, श्रीजगन्नाथदेव की पराशक्ति श्रीविमलादेवी के नाम से, शिशु का नाम भी 'श्रीविमलाप्रसाद' रखा।

शिशु की रुचि

शिशु के आविर्भाव (जन्म) के छः महीने बाद, श्रीजगन्नाथ जी

की रथयात्रा का महोत्सव आया । उस वर्ष, वह रथ, श्रीजगन्नाथ देव जी की ही इच्छा से, श्रीभक्तिविनोद ठाकुर के घर के द्वार तक आकर रुक गया और किसी भी प्रकार आगे नहीं बढ़ा । उनके घर के सामने, तीन दिन तक, श्रीजगन्नाथ देव रथ में विराजे रहे । श्रीभक्तिविनोद ठाकुर के नेतृत्व में, श्रीजगन्नाथदेव देव के सामने, तीन दिन तक निरन्तर श्रीहरिकीर्तन महोत्सव होता रहा । इसी बीच, एक दिन माँ की गोद में छः महीने के शिशु ने श्रीजगन्नाथदेव देव के सामने आकर हाथ फैलाकर, श्रीजगन्नाथजी के चरणों का आलिंगन किया, कि तभी श्रीजगन्नाथजी के गले की एक प्रसादी माला गिर पड़ी जिसे इस दिव्य शिशु ने ग्रहण किया । श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी ने, शिशु के मुँह में महाप्रसाद देकर उसका अन्नप्राशन संस्कार सम्पन्न किया ।

आविर्भाव के बाद शिशु, माँ के साथ दस महीने तक श्रीजगन्नाथपुरी में रहे। उसके बाद पालकी द्वारा, बंगाल के राणाघाट – नामक स्थान में आये। आपका बचपन हरिकीर्तन महोत्सव में ही व्यतीत हुआ था।

हरिनाम और नृसिंह – मंत्र ग्रहण

श्रीरामपुर (पश्चिम बंगाल) में रहते समय, ठाकुर श्रीलभक्तिविनोदजी ने श्रीजगन्नाथपुरी से तुलसी की माला

मँगवाई । उस समय आप (प्रभुपादजी) सातवीं कक्षा में अध्ययन करते थे । श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी ने पुत्र को तुलसी की माला, हरिनाम और श्रीनृसिंह मन्त्रराज प्रदान किया। श्रीरामपुर में पाँचवीं कक्षा में पढ़ते समय, आपने Phonetic type की तरह एक नई लेखन प्रणाली का आविष्कार किया था, जिसका नाम 'विकृन्ति' या Bicanto हुआ। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर ने आपको 'श्रीचैतन्यशिक्षामृत' ग्रन्थ का अध्ययन कराया ।

श्रीकूर्मदेव का अर्चन

सन् 1861 ई0 में जिस समय, ठाकुर श्रीभक्तिविनोद कलकत्ता के रामबागान में 'भक्तिभवन' का निर्माण करा रहे थे, तभी उस भवन की नींव खोदते समय, मिट्टी के अन्दर से, एक श्रीकूर्म – मूर्ति प्रकट हुई । आप 8 या 9 साल के ही थे कि, ठाकुर श्रीभक्तिविनोदजी ने, आपको श्रीकूर्मदेव की पूजा का मंत्र और अर्चन – विधि की शिक्षा दी । आपने नियमपूर्वक कूर्मदेव की पूजा की, और तिलक आदि सदाचार का पालन करने लगे । सन् 1885 ई. में भक्तिभवन में 'वैष्णवडिपोजिटरी' नामक एक भक्तिग्रन्थ का प्रचार विभाग खोला गया था । उस समय से ही आपने मुद्रायंत्र (छापाखाना) के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त की, और प्रूफ संशोधन आदि कार्य में सहायता देने लगे । इन्हीं दिनों श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी

द्वारा सम्पादित 'सज्जनतोष्णी' - नामक पत्रिका (द्वितीय वर्ष) फिर से प्रकाशित हुई । सन् 1885 में ही आपने श्रीभक्तिविनोद ठाकुर के साथ, श्रीगौरपार्षदगण की आविर्भाव - भूमि कुलीनग्राम, सप्तग्राम आदि स्थानों के दर्शन किये और वहीं पर नामतत्त्व के विषय में शास्त्र - विचार श्रवण किया ।

ज्योतिष - शास्त्र में प्रतिभा

जब आप, पाँचवीं कक्षा के छात्र थे, तभी गणित और फलित ज्योतिष - शास्त्र में, अपूर्व प्रतिभा का प्रदर्शन किया था । तारकेश्वर लाइन के शियाखाना ग्राम के पण्डितवर महेशचन्द्र चूड़ामणि से गणित, ज्योतिष - शास्त्र अध्ययन करके थोड़े - से समय में ही आपने इस शास्त्र में अभूतपूर्व प्रतिभा और पारदर्शिता का प्रकाश किया। आप अलवर (राज0) के निवासी पण्डित सुन्दरलाल नाम के एक ज्योतिषी से भी, ज्योतिष - शास्त्र का अध्ययन करके, ज्योतिर्विद्या में पारंगत हुए थे ।

"सिद्धान्त सरस्वती"

15 वर्ष की आयु में ही, आपकी प्रतिभा देखकर, चूड़ामणि महाशय विशेष प्रभावित हुए थे । किशोर अवस्था से आपके महाभागवत गुरुवर्ग आपको 'श्रीसिद्धान्त सरस्वती' नाम से कहने लग गये थे । सन् 1918 ई0 में त्रिदण्डसंन्यास को ग्रहण कर, आप

'परिव्राजकाचार्य श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती' नाम से प्रसिद्ध हुए । विशेष स्थलों पर आपने 'श्रीवार्षभानवीदयितदास' इस नाम से भी, अपना परिचय प्रदान किया है ।

विश्ववैष्णव - सभा

सन् 1885 ई0 अर्थात् 399 चैतन्याब्द में कृष्णसिंह की गली (जिसको आजकल 'बेथून रो' कहते हैं) में परलोकवासी रामगोपाल वसु के भवन में श्रीभक्तिविनोद ठाकुर ने 'विश्व - वैष्णव - सभा' की प्रतिष्ठा की, और 400 चैतन्याब्द, अर्थात् सन् 1886 में श्रीचैतन्य महाप्रभुजी का 400वाँ वार्षिक आविर्भाव महोत्सव सम्पन्न किया । मदनगोपाल गोस्वामी, नीलकान्त गोस्वामी, विपिनविहारी गोस्वामी, राधिकानाथ गोस्वामी, शिशिरकुमार घोष आदि बहुत से सज्जनगण, विश्ववैष्णव - सभा के विभिन्न विभागों के सदस्य उपस्थित थे । श्रीसरस्वती ठाकुर विश्ववैष्णव - सभा के साप्ताहिक अधिवेशन में, प्रत्येक रविवार को, श्रीभक्तिविनोद ठाकुर के साथ 'भक्तिरसामृतसिन्धुः' ग्रन्थ को लेकर चलते, और सभा में बड़े ध्यान से शास्त्रचर्चा को श्रवण करते थे ।

असत्संग और जड़विद्या के प्रति अरुचि

श्रीसरस्वती ठाकुर अपने विद्यार्थीजीवन में, किसी भी असत्

प्रवृत्तिवाले छात्रों का संग कभी नहीं करते थे । असत्संग को त्यागने में, सुदृढ़ संकल्प और निष्कपट साधुसंग के प्रति अनन्यनिष्ठा आप में बचपन से ही देखी गई थी । पहली और दूसरी कक्षा में पढ़ते समय, आपने ज्योतिष - शास्त्र की चर्चा और धर्मग्रन्थों के अध्ययन में अधिक समय व्यतीत किया । स्कूल की पाठ्यपुस्तकों के प्रति आपका मन नहीं लगता था । पाठशाला में अध्ययन के समय को छोड़कर घर में पाठशाला की पाठ्यपुस्तकों को पढ़ना तो दूर रहा उन्हें स्पर्श करना भी अनावश्यक समझते थे । उन पाठ्यपुस्तकों के स्थान पर श्रीनरोत्तमदास ठाकुर महाशय विरचित 'प्रार्थना' और 'प्रेमभक्ति - चन्द्रिका' तथा श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी द्वारा रचित ग्रन्थों का अध्ययन करते थे ।

अगस्त एसेंब्ली

अपने अध्ययनकाल में ही, श्रील प्रभुपादजी ने 'सूर्य - सिद्धान्त, 'भक्तिभवन - पन्जिका' आदि गणित - ज्योतिषग्रन्थों को प्रकाशित किया था । अपराह्न में कलकत्ता के बिडन - उद्यान में छात्रों के साथ, नानाप्रकार से तर्क - वितर्क तथा धार्मिक प्रसंगों की चर्चा किया करते थे । सन् 1891 में आलोचना करने की इस सभा का नाम 'अगस्त एसेंब्ली' (August Assembly) रखा गया । इस सभा के सज्जनों को दृढ़तापूर्वक ब्रह्मचर्यव्रत के पालन

करने का संकल्प लेना पड़ता था । युवक, वृद्ध तथा सभी प्रकार के शिक्षित और सम्पन्न व्यक्ति ही इस सभा की चर्चा सुनने आया करते थे ।

संस्कृत कालेज में

सन् 1892 में श्रीसरस्वती ठाकुर ने, संस्कृत कालेज में प्रवेश किया । वहाँ पाठ्यपुस्तकों के स्थान पर कालेज के पुस्तकालय की मुख्य - मुख्य पुस्तकों का और कालेज के अतिरिक्त दूसरे समय में वैदिक - पण्डित पृथ्वीधर शर्मा से वेदों का अध्ययन करते थे । सन् 1898 में सारस्वत चतुष्पाठी में अध्यापकलीला के समय 'भक्तिभवन' में पृथ्वीधर शर्मा से 'सिद्धान्त कौमुदी' का अलग से अध्ययन किया और अल्प समय में उसको सम्पूर्ण पढ़ डाला । पृथ्वीधर शर्मा ने राय दी कि आप जीवनभर सिद्धान्तकौमुदी का अध्ययन करते रहें; परन्तु सरस्वती ठाकुर ने, उनके विचार से मतभेद होकर कहा कि - ''मेरा जीवन, हरिभजन के लिए है । शिशुशास्त्र व्याकरण का 'डुकृञ' या जड़साहित्य - काव्य के अनुस्वार - विसर्ग का अभ्यास करने के लिए नहीं है ।'' संस्कृत कालेज में पढ़ते समय ही, आपने काशी के सुप्रसिद्ध पण्डित महामहोपाध्याय बापुदेव शास्त्री के छात्र और संस्कृत कालेज के अध्यापक, पन्चानन साहित्याचार्य के समर्थित विचारों का प्रतिवाद (विरोध) किया था ।

सारस्वत – चतुष्पाठी

सन् 1897 में कलकत्ता स्थित 'भक्ति भवन' में सारस्वत – चतुष्पाठी की स्थापना की गई । लाला हरगौरीशंकर, डा0 एकेन्द्रनाथ घोष एम0 बी0, सातकड़ि चट्टोपाध्याय सिद्धान्तभूषण, नित्यानन्द प्रभु के वंशज पण्डित श्यामलाल गोस्वामी, शरच्चन्द्र ज्योतिर्विनोद महाशय आदि अनेक शिक्षित और सम्पन्न लोगों ने एवं कालेज के बहुत – से छात्रों ने आपकी इस सारस्वत – चतुष्पाठी में गणित – ज्योतिष का अध्ययन करके शिक्षा प्राप्त की थी । सारस्वत – चतुष्पाठी से सरस्वती ठाकुर ने 'ज्योतिर्विद', 'बृहस्पति' आदि कई मासिक पत्रिकाएँ और ज्योतिष – शास्त्र के बहुत – से प्राचीनग्रन्थों को प्रकाशित किया था ।

जागतिक विद्या का परित्याग

श्रीमन्महाप्रभुजी ने जिस प्रकार सर्वप्रथम विद्याविलास और दिग्विजय आदि लीला का प्रदर्शन किया था, और बाद में हरिकीर्तन के प्रचार की लीला की थी, ठीक उसी प्रकार वही आदर्श श्रीमहाप्रभुजी के निजजन सरस्वती ठाकुर जी के जीवन में भी देखने को मिलता है । आपने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि – ''यदि मैं, मन देकर विश्वविद्यालय मे पढ़ता रहूँ तो मेरे रिश्तेदार मुझे संसार में प्रवेश कराने (अर्थात् विवाह आदि कराने) के लिए इतना

अधिक दबाव डालते रहेंगे कि, फिर बाकी कुछ नहीं रह जायेगा । परन्तु यदि मैं, उन लोगों के पास, मूर्ख और अकर्मण्य (जागतिक कार्यों के लिए अयोग्य) निकम्मा दिखलाई पड़ूं तो, फिर वे, सांसारिक तरक्की के लिए मुझे मदद नहीं देंगे । यही सोचकर मैंने संस्कृत कालेज का परित्याग कर, हरिसेवामय जीवन बिताने का दृढ़ संकल्प और जीवन निर्वाह के लिए एक छोटे – से पवित्र उपाय का विचार लिया ।"

त्रिपुरा में

सन् 1895 में उपर्युक्त उद्देश्य को लेकर, सरस्वती ठाकुर स्वाधीन त्रिपुरा स्टेट में एक कार्य स्वीकार कर वहाँ के राजाओं का जीवन – चरित्र 'राजरत्नाकर' – ग्रन्थ प्रकाशन के सहकारी – सम्पादक का कार्य करने लग गये । वहाँ के राजपुस्तक भण्डार में जितनी भी प्रमुख – प्रमुख पुस्तकें थीं, आपने उन सबको पढ़ने का अवसर भी प्राप्त किया । 11 दिसम्बर सन् 1896 में, महाराज वीरचन्द्र के परलोक गमन के बाद महाराज राधाकिशोर माणिक्य बहादुर राजसिंहासन पर बैठे । इसके दूसरे वर्ष, श्रीसरस्वती ठाकुर को युवराज बहादुर और राजकुमार व्रजेन्द्रकिशोर को संस्कृत और बंगला पढ़ाने का भार सौंपा गया और बाद में कलकत्ता में विभिन्न कार्यों की देखरेख का भार भी सौंप दिया गया; किन्तु आपने, इन सारे कार्यों से भी अवकाश ग्रहण करने की इच्छा

प्रकट की, जिससे महाराज राधाकिशोर माणिक्य बहादुर ने सरस्वती ठाकुर को सन् 1905 में पूर्ण वेतनसहित पेन्शन प्रदान की। आपने सन् 1908 तक उस पेन्शन को स्वीकार किया।

श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जी के साथ तीर्थभ्रमण

अक्तूबर सन् 1898 में आप, श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी के साथ तीर्थयात्रा के लिये निकले। उस समय काशी, प्रयाग गये और वापिस लौटते समय गयाधाम के दर्शन किये। काशी में आपने महामहोपाध्याय राममिश्र शास्त्री के साथ रामानुज सम्प्रदाय के विभिन्न विचारों पर वार्तालाप किया। इसी समय आपके जीवन में अद्भुत वैराग्य का प्रकाश दिखलाई दिया। सन् 1897 ई0 से ही आप वैष्णव शास्त्र के विधानानुसार नियम पूर्वक चातुर्मास्यव्रत का पालन अपने हाथों से शुद्ध भोजन (हविष्यान्न) बनाकर, बिना किसी पात्र के ज़मीन-पर भोजन तथा बिस्तर आदि छोड़ कर, भूमि में शयन किया करते थे। सन् 1899 में कलकत्ता से प्रकाशित 'निवेदन' - नामक साप्ताहिक पत्र से, आप पारमार्थिक विषयों की चर्चा और प्रचार करते रहे। सन् 1900 में आपकी रचित 'बंगे सामाजिकता' (बंगाल में सामाजिकता) - नाम से एक समाज और धर्मनीति के सम्बन्ध में बड़ी खोजपूर्ण पुस्तक प्रकाशित हुई थी।

श्रीगुरुदेव के दर्शन

सन् 1897 में श्रीभक्तिविनोद ठाकुर ने नवद्वीप के गोद्रुमद्वीप में सरस्वती नदी के किनारे 'आनन्द - सुखद - कुन्ज' - नाम से, अपने लिए एक भजनकुन्ज की स्थापना की। इसी स्थान पर सन् 1898 के शीतकाल में श्रील प्रभुपाद जी को श्रील गौरकिशोर गोस्वामीजी महाराज के नाम से एक प्रसिद्ध अलौकिक चरित्र के अवधूत महाभागवत परमहंस के दर्शन मिले। आप, स्वाभाविकरूप से ही, उनके श्रीचरणों में आकृष्ट हुए, और श्रीभक्तिविनोद ठाकुर की आज्ञा से सन् 1900 के माघ महीने में श्रील श्रीगौरकिशोरदासजी महाराज से भागवती दीक्षा ग्रहण की।

"सातासन मठ, भक्तिकुटी"

सन् 1900 के मार्च महीने में, श्रीभक्तिविनोद ठाकुर के साथ, श्रीसरस्वती ठाकुर बालेश्वर होकर, रेमुणा में ''खीरचोरा गोपीनाथजी'' के दर्शन करके भुवनेश्वर होकर जगन्नाथपुरी गये। इस समय ही सरस्वती ठाकुरजी का पुरीधाम से घनिष्ट सम्पर्क हुआ था। श्रीहरिदास ठाकुर की समाधि के सामने, एक मठ को स्थापित करने के विचार से, उस समय के सब-रजिस्ट्रार जगबन्धु पट्टनायक आदि प्रमुख सज्जनों के आग्रह से श्रीप्रभुपादजी ने अतिप्राचीन 'सातासन मठ' के अन्यतम (अर्थात् सात आसनों

में से एक आसन) श्रीगिरिधारी आसन के सेवा-भार को ग्रहण किया। सन् 1902 में समुद्र के किनारे श्रीहरिदास ठाकुर की समाधि के पास श्रीभक्तिविनोद ठाकुर ने 'भक्तिकुटी'-नाम से एक भजन-भवन का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया। उसी समय कासिमबाजार के महाराज श्रीमणीचन्द्र नन्दी बहादुर अपने रिश्तेदार की मृत्यु के कारण शोक की शान्ति के लिए भक्तिकुटी और सातासन के पूर्व की ओर खाली पड़ी हुई भूमि में तम्बू लगाकर उसमें ठहरे और श्रीभक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रीसरस्वती ठाकुर से हरिकथा श्रवण करने लगे। इन्हीं दिनो सरस्वती ठाकुर भक्तिकुटी में श्रीभक्तिविनोद ठाकुर के सामने नियमपूर्वक 'श्रीचैतन्य-चरितामृत' ग्रन्थ की व्याख्या और चर्चा किया करते थे।

मञ्जूषा का उपकरण संग्रह

श्रीसरस्वती ठाकुर, जिस समय पुरी में वैष्णवमञ्जूषा के लिए सामग्री एकत्रित कर रहे थे, और घर-घर में विशिष्ट व्यक्तियों के पास हरिकथा का प्रचार कर रहे थे, उस समय इस कार्य में, नाना प्रकार की विघ्न बाधाएँ उपस्थित हुई। सातासन मठ के गिरिधारी आसन की सेवा का जो भार प्राप्त हुआ था, उसमें भी नाना प्रकार से विघ्न पैदा होने लगे, किन्तु श्रीप्रह्लादजी जैसा

आदर्श दिखलाकर सरस्वती ठाकुर जी ने नाना प्रकार के कष्टों में सहिष्णुता और दुष्ट लोगों के दुर्वचनों को अनसुना करने का प्रदर्शन किया। तब श्रीभक्तिविनोद ठाकुर ने आपको श्रीरामानुजाचार्य के तिरूनारायणपुर में एकान्तवास की तरह श्रीधाम-मायापुर में जाकर हरिभजन कने के लिए आज्ञा की।

महात्मा श्रीवंशीदास

नवद्वीपमण्डल में आकर श्रीसरस्वती ठाकुर श्रीभक्तिविनोद ठाकुर के माध्यम से महात्मा श्रीवंशीदास बाबाजी महाराज से परिचित हुए। इसके कुछ समय बाद चरणदास बाबाजी महाशय अपने साथ में कालना के विष्णुदास आदि बहुत-से लोगों को लेकर श्रीधाम-मायापुर के उत्सव में योगदान देने के लिए पधारे और वहाँ सबने मिलकर नृत्य संकीर्तन आदि किया। दूसरे वर्ष उन्होंने (श्रीचरणदास बाबाजी ने) श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी से कहा कि वे दलबल के साथ प्रतिवर्ष नवद्वीपधाम-परिक्रमा की सेवा करेंगे; किन्तु सन् 1906 में उनका परलोक-गमन होने के कारण, वे, फिर परिक्रमा में योगदान नहीं दे सके।

पुरी में प्रचार

जगन्नाथपुरी में रहते समय सरस्वती ठाकुर के साथ वहाँ के गोवर्धन मठ के मठाधीश मधुसूदनतीर्थ का विशेष परिचय और

शास्त्रीय विचारादि हुआ था । सरस्वती ठाकुर में वे विशेष श्रद्धा रखते थे । उस समय समाधिमठ के श्रीवासुदेव रामानुजदास, श्रीदामोदर रामानुजदास, एमार मठ के श्रीरघुनन्दन रामानुजदास, जमायेत सम्प्रदाय के पापड़िया मठ के जगन्नाथदास, स्वर्गद्वार छाता के ॐकारजपी वृद्ध तापस (तपस्वी), महामहोपाध्याय सदाशिव मिश्र, बड़े हरीशबाबू वकील (हरिश्चन्द्र बसु), गंगामाता मठ के श्रीबिहारीदास पुजारी, राधाकान्त मठ के अधिकारी नरोत्तमदास, अनन्तचरण महान्ति आदि सज्जनों के साथ सरस्वती ठाकुर का परिचय हुआ था, और प्रायः धर्मप्रसंगों को लेकर चर्चा किया करते थे ।

'श्री'-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की चर्चा

बंगाल में श्रीसरस्वती ठाकुर ने ही सबसे पहले श्रीरामानुजाचार्य और उनके सम्प्रदाय के सम्बन्ध में, मौलिक गवेषणापूर्ण (मूल खोजपूर्ण) ग्रन्थों का प्रकाशन किया था । सन् 1898 से उन्होंने 'सज्जनतोषणी'-पत्रिका में श्रीनाथमुनि, श्रीयामुनाचार्य आदि आचार्यों के चरित्र और उनकी शिक्षा को प्रकाशित किया था । इससे पहले उन्होंने पण्डित सुन्दरेश्वर श्रौति से दक्षिणदेश की चार भाषाओं की पुस्तकें आदि मंगवाकर रामानुज और मध्वसम्प्रदाय के ग्रन्थों की समालोचना (चर्चा) की ।

ज्योतिष-शास्त्र में दिग्विजय

2 जनवरी सन् 1903 में रायबहादुर राजेन्द्रचन्द्र शास्त्री पी0 आर0 एस0 महाशय की मध्यस्थता में उनके घर पर ही वापुदेव शास्त्री का एक प्रतिष्ठाशाली छात्र और संस्कृत कालेज का अध्यापक तथा दुनियाँ में बहुत प्रसिद्ध किसी अद्वितीय गणित-ज्योतिष शिक्षा के आचार्य के साथ वर्ष प्रवेश लेकर अयनांश के सम्बन्ध में विचार हुआ । वह पण्डित श्रीप्रभुपादजी से बुरी तरह पराजित हुआ और यहाँ तक कि उस विचार-सभा में उसका मलमूत्र निकल गया ।

तीर्थभ्रमण

जनवरी सन् 1904 में श्रील सरस्वती ठाकुर सीताकुण्ड चन्द्रनाथ आदि स्थानों में गये और दिसम्बर के महीने पुरी में पधारकर उन्होने 23 फरवरी सन् 1905 को दक्षिण भारत के तीर्थ-पर्यटन के लिए प्रस्थान किया । सिंहाचल, राजमहेन्द्रि, मद्रास, परेम्बेदुर, तिरुपति, कांजीवरम्, कुम्भकोणम्, श्रीरंगम, मदुरा इत्यादि स्थानों के दर्शन करके वापिस कलकत्ता होकर श्रीमायापुर पधारे । परेम्बेदुर में एक रामानुजीय त्रिदण्डि सन्यासी से सरस्वती ठाकुर ने वैदिक त्रिदण्ड-वैष्णव सन्यास की विधि के सारे तथ्यों को संग्रह किया ।

श्रीमायापुर में वास और शतकोटि महामंत्र करने का व्रत

श्रीसरस्वती ठाकुर ने श्रीमायापुर में रहकर, सन् 1905 से श्रीमहाप्रभुजी की वाणी का प्रचार प्रारम्भ किया। वहाँ पर श्रील हरिदास ठाकुर के अनुगमन में, प्रतिदिन नियमपूर्वक निरन्तर तीन लाख महामंत्र कीर्तन करते थे। इस प्रकार उन्होंने सौ-करोड़ महामंत्र कीर्तनव्रत का अनुष्ठान किया था। सन् 1906 में श्रीयुत् रोहिणीकुमार घोष, जो कि जस्टिस चन्द्रमाधव घोष महाशय के रिश्ते से भाई के पुत्र थे, ने एक अपूर्व स्वप्न देखकर श्रीसरस्वती ठाकुर से सर्वप्रथम दीक्षा-ग्रहण की। सन् 1909 के फरवरी महीने में सरस्वती ठाकुर ने श्रीमायापुर के अन्दर चन्द्रशेखर-भवन में एक भजन-कुटीर का निर्माण किया, और श्रीराधाकुण्डतट की भावना करके, वहीं पर निरन्तर भगवद्भजन करते रहे।

'ब्राह्मण-वैष्णव'

सन् 1911 में वैष्णवों के लिए, एक दुर्भाग्यपूर्ण दिन आया था। वह था, तथाकथित स्मार्त सम्प्रदायवालों का शुद्ध वैष्णव धर्म और वैष्णव आचार्यो के प्रति आक्रमण या विद्वेष करना। यहाँ तक कि, नाममात्र के आचार्य या गोस्वामी वंशजों ने भी स्मार्त सम्प्रदायवालों का पिट्ठू बनने के लिए उनका साथ दिया था। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर उस समय बीमारी के कारण बिस्तर पर ही

पड़े रहने की लीला का अभिनय कर रहे थे। उनकी ही इच्छानुसार सरस्वती ठाकुर मेदनीपुर के अन्तर्गत 'बालिघाई'-नामक स्थान की एक सभा में उपस्थित हुए। उस सभा के सभापति थे धुरन्धर शास्त्रज्ञाता पण्डितप्रवर विश्वंभरानन्ददेव गोस्वामी महाशयजी। वहाँ पर वृन्दावन के पण्डित मधुसूदन गोस्वामी सार्वभौम महाशय के अनुरोध से आपने 'ब्राह्मण और वैष्णव'-नाम से एक लेख को पढ़ा और अपने भाषण से कर्म-जड़-स्मार्त-सम्प्रदायवालों की सारी युक्तियों को बहुत अच्छे ढंग से खण्डित कर डाला।

नवद्वीप में गौरमंत्र की सभा

नवद्वीप शहर के 'बड़े अखाड़ा' में गौरमंत्र के सम्बन्ध में एक सभा हुई, जिसमें सरस्वती ठाकुर ने अथर्ववेद के अन्तर्गत श्रीचैतन्योपनिषद एवं दूसरे शास्त्रों के प्रमाणों से, गौरमंत्र की नित्यता को स्थापन किया।

कासिमबाज़ार सम्मेलन

21 मार्च सन् 1912 को आप कासिमबाज़ार-सम्मेलन में पधारे। वहाँ पर आपने निरपेक्ष भाव से, शुद्ध-भक्तिधर्म के विषय में भाषण दिया। परन्तु शुद्ध-भक्ति के स्थान पर तथाकथित प्रचारकों की विषय-चेष्टा और बहिर्मुख-लोगों को ही प्रसन्न करने की प्रवृत्ति को देखकर आप दुःखी हुए एवं उसके विरोध में चार दिन तक उपवास करके वापिस श्रीमायापुर चले गये।

गौरजन – लीलाक्षेत्रों में भ्रमण और प्रचार

4 नवम्बर सन् 1912 को सरस्वती ठाकुर ने कुछ भक्तों को साथ लेकर श्रीखण्ड, कटवा, याजिग्राम, झामटपुर, आंकाइहाट, चाखन्दि, दाँइहाट आदि श्रीमन्महाप्रभुजी के पार्षदों की लीलाभूमि में भ्रमण किया, और वहाँ पर शुद्ध – भक्तिधर्म की बातों का फिर से प्रचार किया।

'भागवत – यन्त्र' और 'अनुभाष्य'

सन् 1913 के अप्रैल माह में कलकत्ता – स्थित कालीघाट के अन्तर्गत 4 नं. सानगरलेन में 'भागवत – यन्त्रालय' (Press) को स्थापित किया, और उसमें स्वरचित अनुभाष्य के साथ श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका के साथ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, उड़ीसा के कवि श्रीगोबिन्ददास का 'गौरकृष्णोदय' महाकाव्य आदि ग्रन्थों का प्रकाशन किया, और हरिकथा प्रचार करते रहे । 23 जून सन् 1914 को श्रीभक्तिविनोद ठाकुर ने नित्यलीला में प्रवेश किया । सन् 1915 जनवरी महीने में 'भागवत – यन्त्र' को श्रीमायापुर – अन्तर्गत श्रीव्रजपत्तन स्थान में ले गये और वहाँ से भी ग्रन्थ प्रचार करते रहे । श्रीव्रजपत्तन में ही 14 जून (सन् 1915) को श्रीचैतन्य चरितामृत के 'अनुभाष्य' की रचना समाप्त की ।

'सज्जनतोषणी' सम्पादन

श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी के अप्रकट होने के बाद, उनकी सम्पादित 'सज्जनतोषणी' मासिक पत्रिका सरस्वती ठाकुर की सम्पादकता में फिर से प्रकाशित होने लगी । जुलाई सन् 1915 में 'भागवत – यन्त्र' को कृष्णनगर में स्थानान्तरित करके 'सज्जनतोषणी' और श्रीभक्तिविनोद ठाकुर के रचित विभिन्न ग्रन्थों का प्रचार करते रहे ।

श्रील गौरकिशोर दास बाबा जी का तिरोभाव

श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराज जी 17 नवम्बर, 1915 उत्थान एकादशी के दिन इस संसार का परित्याग कर भगवान् के धाम में चले गये थे। श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने प्राचीन कुलिया नवद्वीप शहर के नये टीले के ऊपर अपने हाथों से श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी द्वारा रचित 'संस्कार दीपिका' के विधान के अनुसार अपने गुरुदेव जी को समाधि दी।

त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण लीला एवं श्रीचैतन्य मठ की प्रतिष्ठा

नित्यसिद्ध अद्वितीय विद्वान होने पर भी परिव्राजक वेश में पृथ्वी के कोने – कोने में श्रीचैतन्य देव जी की वाणी का प्रचार करने के उद्देश्य से सरस्वती ठाकुर जी ने दैववर्णाश्रम

-धर्म का आदर्श स्थापित किया। उन्होंने गुरुवर्ग के परमहंस वेश की सर्वोत्तमता को बताने के लिये 7 मार्च सन् 1918 को गौर महाप्रभु जी की जन्मतिथि के अवसर पर श्रीमायापुर में वैदिक विधान से त्रिदण्ड संन्यास-ग्रहण लीला की एवं श्रीचन्द्रशेखर आचार्य जी के भवन में श्री श्रीगुरु गौरांग और श्री श्रीराधागोविन्द जी के बिग्रहों की स्थापना करके श्रीचैतन्य मठ की स्थापना की। ये श्रीचैतन्य मठ ही कलकत्ता के प्रमुख श्रीगौड़ीय मठ की विश्वव्यापी शाखाओं का मूल मठ हैं। मार्च महीने के अन्त में उन्होंने कृष्णनगर के टाउन हाल में हो रही साहित्य सभा में वैष्णव दर्शन के सम्बन्ध में बड़ा ही खोजपूर्ण प्रवचन प्रदान किया एवं मई मास में दौलतपुर इत्यादि स्थानों में हरिकथा का प्रचार किया।

श्रीक्षेत्रमण्डल भ्रमण

2 जून को सरस्वती ठाकुर जी 23 भक्तों के साथ कलकत्ता से पुरी की ओर रवाना हुये। रास्ते में उन्होंने साउरि व कूयामारा इत्यादि स्थानों में हरिकथा का प्रचार करके रेमुणा में खीर चोरा गोपीनाथ जी के दर्शन किये तथा बालेश्वर-हरिभक्ति प्रदायिनी सभा में 'शिक्षाष्टक' के सम्बन्ध में भाषण दिया। पुरी के रास्ते चलते-2 श्रीसरस्वती ठाकुर जी श्रीगौरसुन्दर जी के विप्रलम्भ भाव में भावित हो गये। बालेश्वर के सब-डिविज़नल मैजिस्ट्रेट रायसाहब श्रीयुत गौरश्याम महान्ति इत्यादि सज्जनों ने सरस्वती ठाकुर जी का अभिनन्दन किया।

आपने कटक के मंत्री बहादुर श्रीकृष्ण महापात्र जी की विशेष प्रार्थना से उनके भवन में रहकर हरिकथा का प्रचार एवं पुरी में भक्तिकुटी में रहकर पुरुषोत्तम धाम की परिक्रमा और विप्रलम्भ भाव में विभावित रहने का आदर्श दिखाया। सन् 1907 में पुरी के भूतपूर्व कलैक्टर और उस समय के डिप्टी मैजिस्ट्रेट अटल बिहारी मैत्र जी ने सरस्वती ठाकुर जी से श्रीचैतन्य चरितामृत और श्रीमद्भागवत की व्याख्या श्रवण की थी। जून 1918 में राय हरिबल्लभ वसु बहादुर जी के 'शशी भवन' के प्रांगण में हो रही एक विराट सभा में सरस्वती ठाकुर जी ने 'सविशेष और निर्विशेष-तत्त्व' के सम्बन्ध में भाषण दिया था। पुरी श्रीमन्दिर के श्रीचैतन्यपाद पीठ के सम्बन्ध में सरस्वती जी ने कुछ श्लोकात्मक स्तवों की रचना की थी।

विरोधियों की जिह्वा स्तम्भन

सन् 1918 के अगस्त और सितम्बर महीने में तत्त्व - विषय में ज्ञानहीन पाषण्ड सम्प्रदाय के एक व्यक्ति ने वैष्णव आचार्यों के विरोध में 29 प्रश्न उठाये तो सरस्वती ठाकुर जी ने इन सब प्रश्नों का शास्त्र की युक्तियों के साथ उत्तर देकर भक्ति-विद्वेषि जिह्वा को कंपा कर रख दिया था। कुछ समय पश्चात इसी संदर्भ में 'प्रतीप के प्रश्नों का प्रत्युत्तर' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई।

भक्तिविनोद आसन और श्रीविश्ववैष्णव राजसभा

कलकत्ता में विशेष रूप से प्रचार शुरु करने के उद्देश्य से श्रीभक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर जी ने नवम्बर, 1918 में 1 न0 उल्टाडिंगी जंक्शन रोड पर 'श्रीभक्ति विनोद आसन' की स्थापना की फिर वहां से यशोहर और खुलना के विभिन्न स्थानों में भ्रमण कर हरिकथा का प्रचार किया। 5 फरवरी 1919 में कलकत्ता के श्रीभक्ति विनोद आसन में पुनः श्रीविश्ववैष्णव राजसभा की संस्थापना की। 27 जून को गोद्रुम स्वानन्द सुखद कुंज में श्री भक्ति विनोद ठाकुर जी के विग्रह की स्थापना हुई और 18 अगस्त से 18 सितम्बर तक चार सप्ताह के हरिकीर्तन उत्सव का प्रवर्त्तन किया।

पूर्व बंग में शुभागमन

4 अक्तूबर को मध्वाचार्य जी की आविर्भाव तिथि को प्रभुपाद जी उत्तर और पूर्व बंगाल में हरिकथा का प्रचार करने के लिये निकले। अप्रैल सन् 1920, कुमिल्ला काशिमबाजार के महाराज की समिति में विश्ववैष्णव राजसभा के सम्पादकों ने सात प्रश्न भेजकर सर्वसाधारण में इस बात का प्रचार किया कि विद्धववैष्णव धर्म शुद्ध वैष्णव धर्म से अलग है, श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी के अप्रकट होने के ठीक छः साल के बाद 23 जून 1920 को माता ठाकुरानी श्रीभगवती देवी जी नित्यधाम में चली गयीं।

श्रीगौड़ीय मठ प्रकाश

6 सितम्बर 1920 को श्री भक्ति विनोद आसन में श्रीगुरु गौरांग और श्रीराधागोविन्द जी की श्रीमूर्ति स्थापना की और वहां श्रीगौड़ीय मठ की स्थापना हुई।

वैष्णव मंजूषा :

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी का आज्ञा पालन और शिशिर कुमार घोष महाशय जी के अनुरोध करने पर श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने एक सार्वभौम वैष्णव विश्वकोष का संकलन करने की चेष्टा की थी एवं उसके लिये उन्होंने 1900 से शुरु कर पुरुषोत्तम धाम, दक्षिण भारत और गौड़मण्डल के विभिन्न स्थानों में स्वयं भ्रमण कर अनेक तथ्यों का संग्रह भी किया था। 1920 अक्तूबर में काशिम बाजार के महाराजा सर मणीन्द्रचन्द्र नन्दी बहादुर की विशेष प्रार्थना पर श्री सरस्वती ठाकुर जी ने काशिमबाजार में शुभ पदार्पण किया और वैष्णव मंजूषा के संकलन का महत्त्व बताकर उन्हें इस कार्य को पूरा करने के लिये आर्थिक रूप से सेवा करने का अनुरोध किया। इस पर महाराज जी ने मंजूषा के कार्य के लिये मासिक निश्चित सहायता करना स्वीकार किया। किन्तु अन्त तक वह पूरी सहायता नहीं दे पाये। श्री सरस्वती ठाकुर जी अपने पार्षदों के साथ काशिमबाजार से सैदाबाद, नोयाल्लिशपाड़ा, खेतुरी आदि श्रीगौरपार्षदों के लीलास्थानों के दर्शन करते रहे एवं हरिकथा का प्रचार करते रहे।

त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण

1 नवम्बर 1920 को श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर जी के कृपा प्राप्त महामहोपदेशक श्रीमद्जगदीश भक्ति प्रदीप, वैष्णव सिद्धान्त भूषण सम्प्रदाय वैभवाचार्य, बी.ए. महोदय ने सरस्वती ठाकुर जी से त्रिदण्ड सन्यास ग्रहण किया और विश्ववैष्णव राजसभा के सर्वप्रथम त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रदीप तीर्थ के नाम से जाने गये।

श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा

14 मार्च 1921 में सरस्वती ठाकुर जी ने पुनः श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा आरम्भ की। मार्च के अन्त में पुरी में जाकर सरस्वती ठाकुर जी ने वहां हरिकथा का प्रचार किया। उसी समय श्रीमद्भक्ति प्रदीप तीर्थ स्वामी जी की मीमाँसा के साथ 'आचार और आचार्य' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुयी थी जिसने धर्म का व्यवसाय करने वाले और लौकिक गुरु - गोस्वामी की उपाधियाँ धारण करने वालों की सम्प्रदाय के विचारों में जड़ से परिवर्तन ला दिया था।

पूर्व बंग में प्रचार और मठ की स्थापना

उसके पश्चात् सरस्वती ठाकुर जी ने प्रचार के लिये ध नबाद, कातरासगड़ व ढाका इत्यादि स्थानों में जाकर वहां हरिकथा का प्रचार किया। ढाका में प्रभुपाद जी ने एक महीने तक "जन्माद्यस्य" श्लोक की तीस प्रकार से व्याख्या की तथा

13 अक्टूबर, 1921 में वहां श्री माधव गौड़ीय मठ की स्थापना की और 31 अक्टूबर को ही वहां श्रीविग्रहों की प्रतिष्ठा की तथा धूम-धाम से महोत्सव किया था। ढाका से मैमन सिंह में हरिकथा का प्रचार करने के बाद श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने नवद्वीप मण्डल आकर चांपाहाटी में गौरगदाधर जी की लुप्त सेवा को पुनः आरम्भ किया। श्रीवृन्दावनदास ठाकुर जी की आविर्भाव भूमि मोदद्रुम-द्वीप में छत्र प्रतिष्ठा एवं कलकत्ता एवं उसके आसपास के स्थानों में श्रीचैतन्य वाणी का प्रचार किया।

श्रीपुरुषोत्तम मठ

"ह्युत्कले पुरुषोत्तमात्" उड़ीसा से सारी पृथ्वी पर वैष्णव धर्म का प्रचार होगा - व्यास जी की इस वाणी की आराधना के लिये सरस्वती ठाकुर जी ने 9 जून, 1922 को भक्तिकुटी में श्रीपुरुषोत्तम मठ की प्रतिष्ठा और श्रीगौर महाप्रभु जी के विग्रह को प्रकाशित किया। तत्पश्चात् महाप्रभु जी के अनुगमन में श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने गुन्डिचा-मार्जन-लीला की तथा पुरुषोत्तम धाम की परिक्रमा की तथा अनवसर काल में अलालनाथ चले गये। श्रील गदाधर पण्डित और ठाकुर भक्ति विनोद जी की अप्रकट तिथि के उपलक्ष में उन्होंने श्रीपुरुषोत्तम मठ में विरह-महोत्सव मनाने का प्रवर्त्तन किया। पुरी से अपने अनुगत प्रचारकों को भेज कर श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने कटक, वारिपदा, कूयामारा, उदाला, कप्तिपदा और नीलगिरि

इत्यादि स्थानों में चैतन्य वाणी का प्रचार किया।

"गौड़ीय"

19 अगस्त 1922 में भागवत प्रेस से श्रीगौड़ीय मठ के प्रचार की मुख्य साप्ताहिक पत्रिका "गौड़ीय" का प्रथम प्रचार किया गया।

श्रीव्रजमण्डल में

व्रजमण्डल में शुद्धभक्ति कथा के प्रचार केन्द्रों की स्थापना के उद्देश्य से सरस्वती ठाकुर जी 28 अक्टूबर को भक्तों के साथ मथुरा, वृन्दावन और राधाकुण्ड में आ गये। श्रीवृन्दावन में लाला बाबू के मन्दिर में विद्वन्मण्डली से सुशोभित सभा में श्रीमन्महाप्रभु जी की शिक्षा और वैष्णव धर्म के सम्बन्ध में भाषण दिया। इसके कुछ दिनों के पश्चात् श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने कार्तिक व्रत के समय ढाका में शुभपदार्पण किया तथा शुद्ध वैष्णव धर्म के यथार्थ स्वरूप पर विचार किया। इसके पश्चात ही कुलिया में अपराध-भंजन-पाट को प्रकाशित और साँओताल परगणा में हरिकथा का प्रचार किया।

श्रीचैतन्य मठ में मन्दिर

2 मार्च 1923 को श्रीगौरजन्मोत्सव से श्रीचैतन्य मठ के मन्दिर का निर्माण कार्य शुरु हुआ। श्री सरस्वती ठाकुर जी की योजना के अनुसार मन्दिर के मध्य मूल भाग में श्री श्रीगुरु

गौरांग और श्री श्रीराधागोविन्द जी के विग्रह एवं चारों कोनों में श्री, ब्रह्म, रुद्र, चतु:सन के साथ क्रमश: श्रीरामाजुनाचार्य, श्रीमध्वाचार्य, श्रीविष्णु स्वामी और श्रीनिम्वार्क जी के आसन बनाये गये।

पुरी में

पश्चिम और पूर्व बंग में प्रचार करने के पश्चात् सरस्वती ठाकुर जी ने दुबारा पुरुषोत्तम मठ के उत्सव के उपलक्ष में पुरी में आकर महाप्रभु जी की विप्रलम्भ लीला का अनुगमन करते हुये रथ के आगे नृत्य किया तथा रथयात्रा में आये बहुत से श्रोताओं के सन्मुख हरिकथा की। उस साल महाराज सर मणिन्द्र चन्द्र नन्दी बहादुर व भद्र के शशीमोहन गोस्वामी इत्यादि अनेक विशिष्ट व्यक्तियों ने हरिकथा श्रवण की। श्रील प्रभुपाद जी ने मयूरभंज और मद्रास प्रेजिडेन्सी में प्रचारकों के द्वारा प्रचार करवाया एवं वर्द्धमान आमलाजोड़ा ग्राम और वरिशाल के वानरिपाड़ा में उन्होंने स्वयं अपने पार्षदों के साथ जाकर हरिकथा का प्रचार किया।

'श्रीमद्‌भागवत' प्रचार

सन् 1923 में श्रीगौड़ीय मठ के वार्षिक उत्सव से पहले कलकत्ता में गौड़ीय प्रिन्टिंग वर्क्स की स्थापना करके वहां से 'गौरकिशोरान्वय', 'स्वानन्दकुंजानुवाद', 'अनन्त गोपाल तथ्य' और 'सिन्धुवैभव' ग्रन्थविवृत्ति के साथ अलग-2 खण्डों में

छापकर श्रीमद्भागवत् का प्रचार किया।

श्रीव्यास पूजा का प्रथम प्रवर्तन

24 फरवरी 1924 को श्रील सरस्वती ठाकुर जी के आविर्भाव के 50 साल पूरे होने पर 50वीं आविर्भाव तिथि के आने पर श्रीगौड़ीयमठ में व्यासपूजा का प्रथम प्रवर्तन हुआ। उसके उपलक्ष में श्रील प्रभुपाद जी ने जो अभिभाषण दिया था, वह वैष्णव साहित्य के भण्डार के एक अतिमर्त्य अमूल्य रत्न के रूप में प्रकटित हुआ है।

श्रीचैतन्य भागवत्

सन् 1924 में श्रीगौरजन्मोत्सव के अवसर पर श्रीमाध्व गौड़ीय मठ से सरस्वती ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य भागवत के प्रथम संस्करण का संपादन किया।

त्रिदण्डि मठ और सारस्वत आसन

7 जुलाई 1924 को भुवनेश्वर में त्रिदण्डिमठ की प्रतिष्ठा, मद्रास प्रेजिडेन्सी में प्रचार और श्रीगौड़ीय मठ में सारस्वत आसन की प्रतिष्ठा करके सरस्वती ठाकुर जी ने भक्तों की अध्यापना और भक्ति विनोद ग्रन्थावली का बहुत प्रचार किया था। सन् 1924, सितम्बर मास के शुरु में मयूरभंज के राउत राय साहब, जस्टिस श्रीयुत मन्मथनाथ मुखोपाध्याय, नेपाल के एक्सिलेन्सी जनरल पुण्य शमशेर राणा जंग बहादुर इत्यादि अति-विशिष्ट व्यक्तियों ने गौड़ीय मठ में

आकर सरस्वती ठाकुर जी की वाणी श्रवण की थी।

माध्व गौड़ीय सिद्धान्त विचार

अक्तूबर मास में ढाका में पाँचवीं बार पदार्पण कर श्रीमाध्व गौड़ीय मठ में माध्व सम्प्रदाय, मध्व और पूर्णप्रज्ञ दर्शन, मध्व और वर्णाश्रम धर्म एवं माध्व गौड़ीय सिद्धान्त के सम्बन्ध में विशेष खोजपूर्ण भाषण दिया था।

काशी विश्वविद्यालय में

16 दिसम्बर को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में विद्वानों से सुशोभित सभा में 'धर्मजगत में वैष्णव धर्म का स्थान' के सम्बन्ध में भाषण देकर विश्वविद्यालय के प्राच्य विभाग के अध्यक्ष महामहोपाध्याय पण्डित श्रीयुत प्रेमनाथ तर्कभूषण, प्रोफेसर श्री फणीभूषण अधिकारी एम.ए. प्रमुख श्रोत्र मण्डली द्वारा अभिनन्दित हुये। इसके पश्चात् काशी में श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के पादांकित स्थानों की खोज की तथा प्रयाग में दशाश्वमेध घाट पर श्री रूपशिक्षा का स्थान निर्देश करते हुये महाप्रभु जी के चरण चिन्हित स्थान आड़ाइल ग्राम में जाकर हरिकथा का प्रचार किया।

गौड़मण्डल परिक्रमा

29 जनवरी 1925 को बहुत से भक्तों के साथ गौड़मण्डल में महाप्रभु जी के पार्षदों के विभिन्न लीला स्थलों की परिक्रमा करते हुए गौर पार्षदों के सेवामय भाव से भावित होकर

उन-उन स्थानों पर शुद्ध भक्ति का प्रचार किया।

उसी साल नवद्वीप परिक्रमा के अन्तर्गत कोलद्वीप की परिक्रमा के समय जब हाथी की पीठ पर श्री श्रीराधागोविन्द जी को विराजित किया गया और सरस्वती ठाकुर जी अपने पार्षदों और यात्रियों के साथ उनके पीछे-पीछे चल रहे थे, उस समय सपार्षद सरस्वती ठाकुर और परिक्रमाकारी यात्रियों के प्रति ईर्ष्यावश धर्म का व्यवसाय करने वाली सम्प्रदाय के प्रतिनिधि दुराचारियों ने कोलद्वीप के पोड़ामातला में उन पर सैकड़ों ईटें बरसायी। उस समय इस घटना को प्रत्यक्ष देखने वालों ने (24 फागुन 1331 तारीख को) आनन्द बाजार पत्रिका में लिखा था - "लगभग चार सौ वर्ष पहले उस समय के दो दुराचारियों जगाई और मधाई ने अवधूत नित्यानन्द जी के प्रति जो कार्य किया था आज भी उसी लीला का पुन:अभिनय यहां देखने को मिला।"

मदन मोहन मालवीय

1 अप्रैल 1925 को पण्डित मदन मोहन मालवीय ने श्रीगौड़ीय मठ में आकर सरस्वती ठाकुर जी से भागवत वाणी और 'आगमप्रमाण्य' ग्रन्थ से दैववर्णाश्रम धर्म के विचारों को श्रवण किया था। उसके पश्चात उन्होंने प्रचारक वर्ग को श्रीहट्ट आदि स्थानों में प्रचार करने के लिये भेजा।

श्रीनित्यानन्द जी का जन्मोत्सव और भागवत् जनानन्द मठ

सन् 1926 में श्रीमायापुर में श्रीनित्यानन्द प्रभु जी का जन्मोत्सव मनाया गया तथा तीन दिन तक चलने वाले नाम यज्ञ का आरम्भ किया। अप्रैल महीने में श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने चिरुलिया में 'भागवतजनानन्द' मठ की प्रतिष्ठा की तथा मेदिनीपुर के विभिन्न स्थानों में हरिकथा का प्रचार किया एवं अपने अनुयायी त्रिदण्डि परिव्राजकों को श्रीचैतन्य वाणी के प्रचार के लिये बंगाल, बिहार, उड़ीसा व पश्चिम भारत में भेजा। भारत में हर जगह शुद्धभक्तिसंघाश्रम की प्रतिष्ठा की तथा बड़ी तीव्रता व बड़े प्रभावशाली ढंग से हरिकथा के प्रचार-प्रसार का कार्य आरम्भ किया।

भारत भ्रमण और प्रचार

सन् 1926 के नवम्बर मास के प्रारम्भ से ही श्रील प्रभुपाद जी ने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण आरम्भ कर दिया था। इसके अन्तर्गत उन्होंने श्रीचैतन्य वाणी का प्रचार, विद्वानों के साथ विचार-विमर्श और तथ्य-आदि संग्रह किये। उसी समय विभिन्न सम्प्रदाय के आचार्यों ने सरस्वती ठाकुर जी को गौड़ीय-वैष्णव-आचार्य मुकुटमणि कह कर उनका अभिनन्दन किया था। श्रीनाथद्वारा के महान्त महाराज, बम्बई के गोकुल नाथ गोस्वामी महाराज, उडुपी के मध्वाचार्य मठ के मठाधीश व सलीमाबाद की गद्दी के मठाधीश आदि प्रमुख वैष्णव

सम्प्रदाय के श्रेष्ठ व्यक्तियों ने श्रील सरस्वती ठाकुर जी को एक महान वैष्णवाचार्य के रूप में अभिनन्दन प्रदान किया।

परमहंस मठ और पराविद्या पीठ

इसी समय सरस्वती ठाकुर जी ने नैमिषारण्य में परमहंस मठ, उसके पश्चात् श्रीमायापुर में परविद्यापीठ की स्थापना की। 29 शिखरों वाले मन्दिर में आचार्यों की मूर्तियां और श्रीराधागोविन्द जी के श्रीविग्रहों की प्रतिष्ठा की।

दि हारमोनिस्ट

15 जून 1927 से श्रील प्रभुपाद जी ने 'सज्जनतोषणी' पत्रिका को अंग्रेजी, संस्कृत और हिन्दी - इन तीन भाषाओं में दुबारा आरम्भ किया। 'सज्जनतोषणी' का अंग्रेजी नाम हुआ - 'The Harmonist' 17 सितम्बर, 1927 को मानभूम जिले के डुमुरकोन्दा नामक स्थान में 'श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ' की स्थापना की।

भारत भ्रमण में

सितम्बर मास के अन्त में श्रील प्रभुपाद जी ने काशी, कानपुर, लखनऊ, जयपुर, गल्ता पर्वत, सलिमाबाद, पुष्कर, अजमेर, द्वारका, सुदामापुरी, गिर्णार पर्वत, प्रभास, अवन्ती, मथुरा मण्डल, इन्द्रप्रस्थ, कुरुक्षेत्र एवं नैमिषारण्य में श्रीचैतन्य वाणी का प्रचार किया। सन् 1928 में श्री गौड़ीय मठ के उत्सव के समय कलकत्ता के ऐलबर्ट हाल में श्रीसरस्वती

ठाकुर जी का प्रवचन हुआ। इसके अलावा उन्होंने कलकत्ता के विभिन्न साधारण स्थानों में अपने प्रवचनों के द्वारा सर्वसाधारण में हरिकथा का प्रचार किया तथा इसी समय श्रील प्रभुपाद जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत के प्रथम संस्करण का सम्पादन भी किया।

26 सितम्बर, 1928 को श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने बाग बाजार में गंगा के किनारे श्री गौड़ीय मठ की नींव रखी। 7 अक्टूबर को सरस्वती ठाकुर जी श्रीचैतन्य वाणी का प्रचार करने के लिये बहुत से भक्तों के साथ आसाम की ओर गये और उसके पश्चात शिलांग पर्वत पर राजर्षि कुमार व श्रीमान शरदिन्दु नारायण राय प्रमुखस सज्जनों के सन्मुख श्रीचैतन्य देव के अद्वितीय विचार प्रदान किये तथा शिलांग की कुछ साधारण सभाओं में भी सरस्वती ठाकुर जी ने हरिकथा का कीर्तन किया।

कुरुक्षेत्र सूर्यग्रहण के समय

4 नवम्बर को कुरुक्षेत्र - सूर्योपराग में माथुर विरह कातर अवस्था में गोपियों के और नीलाचल में श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के विप्रलम्भ भाव की सेवा का अनुसरण करने के लिये श्रील प्रभुपाद जी वहां पहुंचे। वहां पर उन्होंने अनुक्षण श्रीचैतन्य वाणी का कीर्तन किया और लाखों लोगों को गौर महाप्रभु जी का नाम श्रवण करवाया। उस समय कुरुक्षेत्र में श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने श्रीव्यास गौड़ीय मठ में श्रीगौर - विग्रह

की प्रतिष्ठा और भागवत् प्रदर्शनी का भी उद्घाटन किया।

एकायन मठ की प्रतिष्ठा

30 दिसम्बर को महामहोपाध्याय प्रेमनाथ तर्कभूषण के श्रीगौड़ीय मठ में आने पर सरस्वती ठाकुर जी ने उनके सन्मुख दैववर्णाश्रम धर्म का विस्तार से वर्णन किया था। जनवरी, 1929 में कृष्णनगर में एकायन मठ की स्थापना करके प्रभुपाद जी ने श्रुति के एकायन स्कन्ध और बहवयन शाखा के सम्बन्ध में मौलिक विचारों का जगत् में प्रवर्तन किया। 14 जनवरी, 1929 को अमेरिका के विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मि0 ऐलबर्ट-इ-सादार्स नामक दार्शनिक को इस सम्बन्ध में अनेक बातें बताई कि वैष्णव धर्म ही विशाल एवं पूर्णतम क्रिश्चियन धर्म (Extended and perfect Christianity) है। 16 जनवरी 1929 को नई दिल्ली में दिल्ली गौड़ीय मठ की स्थापना करके उन्होंने भारत की राजधानी के उच्च सम्प्रदायों में श्रीचैतन्य देव जी की कथा प्रचार करने का अभूतपूर्व अवसर प्रदान किया।

कृष्णनगर के टाउन हाल में भाषण

30 मार्च 1929 को कृष्णनगर के टाउन हाल में श्रील प्रभुपाद जी ने 'श्रीनाम' के सम्बन्ध में एक भाषण दिया। मई 1929 में नीलाचल में श्रीगौरसुन्दर जी की चन्दन यात्रा का प्रवर्तन किया और अलालनाथ मन्दिर के संस्कार का कार्य आरम्भ किया। 11 अगस्त को श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने

कलकत्ता के एलबर्ट हाल में 'गौड़ीय दर्शन' के सम्बन्ध में एक भाषण दिया था।

श्रीचैतन्यपाद पीठ

श्रीचैतन्यदेव जी ने भारत के जिन-2 स्थानों को अपने श्रीचरणों से पवित्र किया था ऐसे 108 स्थानों पर श्रीचैतन्य पाद पीठ स्थापना करने की इच्छा से 13 अक्तूबर, 1929 को कानाई नाटशाला और 15 अक्तूबर को मन्दार में श्रीचैतन्य पाद पीठ की स्थापना करते हुये राजमहल, भागलपुर, नालन्दा, राजगिरी इत्यादि स्थानों पर भक्तों के साथ श्रीचैतन्य वाणी का प्रचार करते करते काशी में पहुंचकर श्रीसनातन शिक्षा की व्याख्या की।

परिव्राजक रूप से सम्पूर्ण भारत में प्रचार

काशी, फैजाबाद, अयोध्या, नैमिषारण्य, करौणा, मिश्रिक, सीतापुर व लखनऊ इत्यादि स्थानों पर बहुत से शिक्षित और विशिष्ट लोगों ने सरस्वती ठाकुर जी का अभिनन्दन किया और उन्होंने सत्य-खोजी व्यक्तियों को शुद्ध भक्ति धर्म में दीक्षित किया। लखनऊ के सुप्रसिद्ध और प्राचीन - बार एट ला मि0 ए.पी.सेन, प्रोफेसर डा0 राधाकुमुद मुखोपाध्याय, डा0 राधाकान्त मुखोपाध्याय, डा0 ए.एन. सेनगुप्त इत्यादि बहुत से विशेष-2 व्यक्तियों ने सरस्वती ठाकुर जी की वाणी श्रवण की।

'श्रीमायापुर' डाकघर

1 जून 1929 से श्रीमायापुर का पोस्ट आफिस आरम्भ हुआ और 1 नवम्बर से वह स्थायी डाकघर के रूप में बदल गया। इसी समय सरस्वती ठाकुर जी ने अपने अनुगत भक्तों द्वारा श्रीमायापुर में श्री भक्तिविनोद जी के वान्छित ईशोद्यान और श्रीचैतन्य मठ के शिखरों पर लाइटें लगवायी।

म0 म0 हरप्रसाद शास्त्री

8 जनवरी 1930 को महामहोपाध्याय डा0 हरप्रसाद शास्त्री जी ने सरस्वती प्रभुपाद जी से वैष्णव सम्प्रदाय के इतिहास, विभिन्न आचार्यों के प्रकट काल, पन्चरात्र, गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय एवं श्रीचैतन्य देव जी के सम्बन्ध में अनेक तथ्य और विचार श्रवण किये। जनवरी मास के मध्य में प्रयाग के पूर्ण कुम्भ के मेले में पहुंच कर वहां श्रीरूप शिक्षा का प्रचार करने के लिये श्रीचैतन्य मठ के प्रचारकों को लगाया एवं कुम्भ मेले के क्षेत्र त्रिवेणी संगल में रीरूपानुगवरों के प्राणधन श्रीराधागोविन्द-विग्रहों को प्रकाशित किया। श्रीरूपानुगवरों की कृपा से कुम्भ मेले में आये लोग शुद्ध भक्ति को प्राप्त कर धन्य-धन्य हो उठे।

श्रीधाम मायापुर नवद्वीप-प्रदर्शनी

श्रील प्रभुपाद जी ने 3 फरवरी से 17 मार्च तक श्रीमायापुर में एक अभूतपूर्व 'श्रीधाम मायापुर नवद्वीप

प्रदर्शनी' नाम की एक भागवत प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। विज्ञानाचार्य डा0 सर पी. सी. राय ने इस प्रदर्शनी के द्वार का उद्घाटन किया था।

18 फरवरी को श्रीचैतन्य मठ में श्रीव्यासपूजा का अनुष्ठान किया गया और आचार्य की पादपीठ की प्रतिष्ठा की गई। 4 मई को मि0 ई.एच. नेपार ने सरस्वती ठाकुर जी से भारतीय पारमार्थिक दर्शन के बारे में सुना था। 25 मई को गौरपदांकित तीर्थ छत्रभोग में जाकर श्रीसरस्वती ठा.कुर जी ने बहुत से सत्य-खोजी व्यक्तियों पर कृपा की। जुलाई मास में कटक सच्चिदानन्द मठ में पहुंच कर कटक के शिक्षित सम्प्रदाय और जनसाधारण लोगों में हरिकथा का कीर्तन किया। 22 अगस्त को इलाहाबाद पहुंच कर रिटायर्ड सेशन जज मनोमोहल सान्याल जी को श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के पादपद्मों में आकृष्ट किया एवं डा0 पी.के. आचार्य आदि प्रमुख-2 स्थानीय शिक्षित व्यक्तियों की अनेक जिज्ञासाओं की मीमांसा की।

पारमार्थिक समिति

5 अक्तूबर 1930 को श्री श्रीगुरु गौरांग गान्धर्विका गिरिधारी जी ने भक्तों के साथ कलकत्ता के 1 नं0 उल्टाडिंगी जंक्शन रोड से कलकत्ता के ही बागबाजार में बने नये गौड़ीय मठ में प्रवेश किया और वहां श्रीराधा-मदनमोहन, श्रीराध ा-गोविन्द और श्रीराधा गोपीनाथ जी का उत्सव, पारमार्थिक प्रदर्शनी का उद्घाटन और एक पारमार्थिक समिति बुलायी

गयी। श्रीगौड़ीय मठ के नवीन मन्दिर के निर्माणकारी श्रेष्ठ आर्य श्रीजगबन्धु भक्तिरन्जन 19 नवम्बर को नित्यधाम चले गये।

श्रील सरस्वती ठाकुर जी ने 25 दिसम्बर को याजपुर, 26 दि0 को कूर्मक्षेत्र, 27 को सिंहाचल, 29 को कभुर और 31 दि0 को मंगलगिरी आदि स्थानों पर श्रीचैतन्यपाद पीठ की स्थापना की तथा श्रीचैतन्य वाणी का प्रचार किया। सर पी. एस. शिवस्वामी अय्यर, क. सी. एस. आई., डा0 यू राम राओ; पी.एन. सुब्रहमण्य अय्यर इत्यादि विशिष्ट व्यक्ति श्री चैतन्यवाणी की ओर आकृष्ट हुये।

भक्तिविनोद इन्सटिच्यूट

श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने 3 अप्रैल 1931 को श्रीधाम मायापुर में ठाकुर भक्तिविनोद इन्सटीच्यूट का उद्घाटन किया और उसके उपलक्ष में बुलायी गयी एक विराट सभा में 'अपरा और पराविद्या' के सम्बन्ध में एक भाषण भी प्रदान किया। 3 मई को दार्जलिंग में शुभपदार्पण कर वहां श्रीचैतन्य वाणी का प्रचार किया। 12 जुलाई को अलालनाथ श्रीब्रह्मगौड़ीय मठ में श्रीगौड़ीया नाथ जी को प्रकाशित किया और 17 जुलाई को मयूरभंज के महाराज जी के द्वारा आर्थिक सहायता से ली गयी भूमि पर श्रीपुरुषोत्तम मठ के श्रीमन्दिर की नींव रखी थी। तत्पश्चात कटक में शुभ पदार्पण कर श्रीसच्चिदानन्द मठ में आपने हरिकथा कीर्तन किया। कुछ प्रचारकों को शिमला में

भेज कर हरि कथा का प्रचार किया। 30 जुलाई को गौड़ीय मठ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के डा0 कालिदास नाग आदि प्रमुख-2 व्यक्तियों ने हरि कथा श्रवण की।

कलकत्ता में सद्शिक्षा-प्रदर्शनी

6 सितम्बर को कलकत्ता गौडीय मठ के उत्सव के समय कलकत्ता नगरी में विशाल 'सद्शिक्षा प्रदर्शनी' लगायी। 13 सितम्बर को श्रीमान् यतीन्द्र नाथ वसु एम. ए., एम. एल. सी. महाशय, 16 सितम्बर को राय बहादुर, डा0 दिनेश चन्द्र सेन, यूनिवर्सिटी के वाइस प्रिंसीपल श्रीमान् विराज मोहन मजूमदार, 18 सितम्बर को पृथ्वी-भ्रमण करने वाले प्रसिद्ध दार्शनिक Dr. Magnus hirsch feld तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय के डा0 स्टेला क्रेमरिस इत्यादि अनेक शिक्षित व्यक्तियों ने गौड़ीय मठ में आकर श्रीसरस्वती ठाकुर जी की वाणी श्रवण की थी। गौड़ीय मठ के विशेष-विशेष उत्सवों में सरस्वती ठाकुर जी ने भाषण भी दिये। 29 सितम्बर को मैडिकल कालेज के प्रिंसीपल, कर्नल द्वारका प्रसाद गोयल, आई.एम.एस. एवं 9 अक्तूबर को अमेरिकन पृथ्वी-भ्रमणकारी ए.जारस्ट्रड़ जेकब साहब इत्यदि के सन्मुख अप्राकृत शब्द तत्त्व के वैशिष्ट्य के सम्बन्ध में श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने हरिकथा की थी। 11 अक्तूबर को प्रयाग में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर महामहोपदेशक डा0 गंगा नाथ झा, इलाहाबाद के डिविजनल कमिश्नर मि0 विनायक नन्द शंकर मेटा, आई.

सी.एस. इत्यादि विशेष-2 व्यक्तियों के साथ साक्षात्कार कर उनके प्रश्नों के उत्तर दिये थे।

हिन्दी 'भागवत' पत्रिका

16 अक्तूबर को काशीवासी सज्जनों द्वारा भव्य स्वागत करने पर काशी नरेश के मिन्ट पैलेस में श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने हरिकथा की तथा आपके ठहरने की व्यवस्था भी वहीं पैलेस में थी। 19 और 20 अक्तूबर को डिप्टी अकाउटैंट जनरल, बेंगल साहित्यिक के श्रीमान वसन्त कुमार चट्टोपाध्याय एम. ए. महाशय को काफी समय तक वैष्णव दार्शनिक सिद्धान्त और लीला के सम्बन्ध में आपने हरि कथा सुनायी थी। नवम्बर मास के आरम्भ में प्रचारकों को शिमला के भज्जी राज्य में श्रीचैतन्य वाणी का प्रचार करने के लिये भेजा। 31 अक्तूबर को आप हरि कथा प्रचार करने के लिये लखनऊ गये और फिर 9 नवम्बर अमावस्या के दिन लखनऊ से नैमिषारण्य परमहंस मठ से वहां मुख्य पत्र के रूप में 'भागवत' नाम की हिन्दी पत्रिका आरम्भ की। 14 नवम्बर को प्रचारकों के द्वारा नई दिल्ली से महामान्य वर्डलाट लार्ड उलिंटन के पास गौड़ीय मठ का प्रचार-कार्यक्रम भेजा। 17 नवम्बर को दिल्ली गौड़ीय मठ के वार्षिक उत्सव का प्रवर्तन करके वहां के उच्च सम्प्रदायों एवं जनसाधारण में श्रीचैतन्य कथा का प्रचार किया। नई दिल्ली के 'गुरुद्वारा बंगला साहिब के हाल में 'भक्ति' के सम्बन्ध में भाषण दिया। 29 नवम्बर को मुजफ्फर नगर में

आनरेबल कौन्सिल आफ स्टेट के सदस्य राय बहादुर तथा लाला जगदीश प्रसाद के उद्यान भवन में एक विशाल सभा में श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने भाषण दिया। 30 नवम्बर को भागवत कीर्तनस्थली 'शुकरताल' में आपने अपने पार्षदों के साथ जाकर भागवत पाठ किया।

6 दिसम्बर को दिल्ली गौड़ीय मठ में श्रीराधागोविन्द जी के विग्रहों की प्रतिष्ठा की। 9 दिसम्बर को कलकत्ता गौड़ीय मठ के सौध निर्माणकारी स्वधामगत् श्रेष्ठ आर्य श्रीजगबन्धु भक्ति रन्जन जी के प्रथम वार्षिक महोत्सव में योगदान दिया तथा 'भक्तपूजा' के सम्बन्ध में भाषण दिया। माननीय जस्टिस सर मन्मथनाथ मुखोपाध्याय जी ने इस सभा के सभापति का आसन ग्रहण किया था। 13 दिसम्बर को सर मन्मथ नाथ जी ने श्रीधाम मायापुर जाकर श्रीसरस्वती ठाकुर जी की वाणी श्रवण की, धाम दर्शन किया और ठाकुर भक्तिविनोद इन्सटीच्यूट का भी परिदर्शन किया।

10 जनवरी 1932 को 20 भक्तों के साथ सरस्वती ठाकुर जी जब मद्रास पहुंचे तो वहां के कार्पोरेशन के प्रेज़ीडेंट मि० टी.एस.गोस्वामी अय्यर, आनरेबल मि० टी. रजन, मि० एस.वी. रामस्वामी मुदालियार, आनरेबल दीवान बहादुर जी, नारायण स्वामी चेट्टियार सी. आई. ई. व मि० टी. पुनुरुल्ला पिल्लाइ आदि विशिष्ट-2 व्यक्ति बेसिन-ब्रिज स्टेशन से विशाल नगर संकीर्तन शोभायात्रा आरम्भ करके उन्हें उस

समय के गोपालपुरम मोहल्ले में स्थित गौड़ीय मठ में ले गये। वहां के विशिष्ट व्यक्तियों ने सरस्वती ठाकुर जी का अभिनन्दन किया तथा तभी आनरेबल मि0 दीवान बहादुर कुमार स्वामी (रीडर) ने श्रीसरस्वती ठाकुर जी के चरणों में श्रद्धा-सूचक भाषण भी दिया। 14 जनवरी को मद्रास हाईकोर्ट के माननीय न्यायाधीश दीवान बहादुर सुन्दरम चेट्टियार मद्रास गौड़ीय मठ में कुछ जिज्ञासा लेकर सरस्वती ठाकुर जी के पास आये और आपने श्रीसरस्वती ठाकुर जी से अनेक सिद्धान्तों को श्रवण किया। 23 जनवरी को मद्रास गौड़ीय मठ में श्रीविग्रह प्रतिष्ठा और को रयापेट्टा नामक मोहल्ले में आपने नये मन्दिर की नींव रखी। 24 जनवरी को एक विशाल सभा में प्रवचन देकर सर पी.एस. शिवस्वामी अय्यर जैसे बहुत से विशेष-2 व्यक्तियों को श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की शिक्षा की ओर आकर्षित किया। 27 जनवरी को मद्रास के महामान्य गवर्नर सर जार्ज फरैडरिक स्टेनलि ने मद्रास गौड़ीय मठ में श्रीकृष्ण कीर्तन हाल की नींव रखी। 29 जनवरी को मद्रास सिटी कार्पोरेशन ने श्रील सरस्वती ठाकुर जी का नगर-अभिनन्दन किया। इसके उपलक्ष में सरस्वती ठाकुर जी ने कार्पोरेशन की रिपन बिल्डिंग में एक प्रवचन किया था।

30 जनवरी को पश्चिम गोदावरी जिले के इलार नगर में विशाल संकीर्तन-वाहिनी सभा में विभिन्न स्थानों से आये विशेष-2 व्यक्तियों के द्वारा श्रील सरस्वती प्रभुपाद जी का

अभिनन्दन किया गया। जनार्दन-प्रार्थना-समाज के द्वारा प्रस्तुत अभिनन्दन पत्र के प्रति भी सरस्वती ठाकुर जी ने भाषण दिया। यही नहीं, उन्होंने वहां पर बहुत से सज्जन व्यक्तियों को शुद्ध वैष्णव धर्म की दीक्षा देकर उनका उत्साह वर्द्धन किया। 58वें आविर्भाव के दिन श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने एक प्रवचन लिखकर मद्रास से कलकत्ता गौड़ीय मठ में भेजा।

श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा से पहले श्रीधाम मायापुर में वापस लौट कर श्रीमन्महाप्रभु जी के जन्मोत्सव के दिन श्रील सरस्वती ठाकुर जी ने श्रीअद्वैत भवन में नये मन्दिर की नींव रखी एवं 'भक्तिशास्त्री' प्रवेशिका परीक्षा और 'सम्प्रदाय वैभवाचार्य' की परीक्षा लेने के पश्चात श्रीधाम प्रचारिणी सभा के वार्षिक अधिवेशन में प्रवचन दिया। 3 अप्रैल को ठाकुर भक्ति विनोद इन्स्टीच्यूट की पारितोषिक वितरणी सभा में 'Altruism and extended Altruism के सम्बन्ध में श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने भाषण दिया।

मद्रास, उतकामण्ड, महीशूर और कभूर में

23 मई को दुबारा मद्रास गौड़ीय मठ में शुभ पदार्पण कर श्रीशंकर, श्रीरामानुज और श्रीमध्वसम्प्रदाय के विद्वान आचार्यों को गौड़ीय वैष्णव धर्म की विशेषता की बात बतलायी। 25 मई को पुडुकोट कालेज के अध्यापक मि0 के.पन्चपागेसन आदि व्यक्तियों की जिज्ञासा को शान्त किया। 29 मई को

श्रील गौरकिशोर दास बाबा जी की समाधि स्थानान्तरित

कुलिया में नवीन टीले पर बने श्रील गौरकिशोर दास गोस्वामी महाराज जी के समाधि मन्दिर को धीरे-2 गंगा के बहाव में जाते देख, सरस्वती ठाकुर जी की इच्छा के अनुसार 21 अगस्त 1932 के दिन उस समाधि को यथावत् श्रीधाम मायापुर के श्रीचैतन्य मठ में संस्थापित किया गया। सितम्बर मास के आरम्भ में श्रील सरस्वती ठाकुर जी के निर्देश के अनुसार आसाम धुवड़ी से असमिया भाषा में 'कीर्तन' नामक एक पारमार्थिक मासिक पत्रिका का प्रचार आरम्भ हुआ। 3 सितम्बर को सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने श्रीगौड़ीय मठ में 'पुरुषार्थ-विनिर्णय' के सम्बन्ध में एक प्रवचन दिया था। 4 सितम्बर को कलकत्ता विश्वविद्यालय के डा0 सुनीति चट्टोपाध्याय और नदिया के डिप्टी मैजिस्ट्रेट टी.सी.राय ने मठ में आकर श्रीसरस्वती ठाकुर जी की वाणी श्रवण की। 11 सितम्बर को श्रीगौड़ीय मठ में वेदान्त के सम्बन्ध में प्रवचन दिया। ये तीनों प्रवचन पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुये हैं। 16 सितम्बर को श्रीचैतन्य मठ में श्रीराधाकुण्ड के तट पर श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने श्रीगौरकिशोर बाबा जी की समाधि कुंज की प्रतिष्ठा की।

श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा

9 अक्तूबर को श्रीमन्मध्वाचार्य जी की आविर्भाव तिथि से श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने असंख्य भक्तों के साथ चौरासी कोस की व्रजमण्डल परिक्रमा आरम्भ की एवं प्रत्येक लीला स्थान में स्वयं जाकर और विभिन्न स्थानों से आये यात्रियों को सहज समझाने के लिये अपने प्रचारकों द्वारा हरिकथा की और करवायी। श्रीराधाकुण्ड और श्रीश्यामकुण्ड के संगम तीर्थ पर व्रजवासी और पण्डितों की एक विराट सभा में श्रीरूप गोस्वामी जी के 'उपदेशामृत' की व्याख्या की। व्रजमण्डल परिक्रमा के पश्चात 4 नवम्बर को हरिद्वार में जाकर श्री सारस्वत गौड़ीय मठ की स्थापना की। श्रीसरस्वती ठाकुर जी के सामने उनके अनुरोध के अनुसार संयुक्त देश के गवर्नर सर विलियम मैल्कम हेइली ने श्रीरूप गौड़ीय मठ की नींव रखी। 24 नवम्बर को सरस्वती ठाकुर जी ने काशी के श्री सनातन गौड़ीय मठ में श्रीराधागोविन्द जी के विग्रह प्रकाशित किये। 27 नवम्बर को सर मन्मथराय चौधरी राजा बहादुर जी की अध्यक्षता में श्रीगौड़ीय मठ की दूसरी वार्षिक-भक्तिरन्जन-विरह स्मृति सभा की गयी। 4 दिसम्बर को कृष्ण नगर कालेज अध्यापक डा0 सुधीन्दु कुमार दास, पुरी के राधाकान्त मठ के श्रीविश्वम्भर व्याकरण तीर्थ, वेदान्त शास्त्री इत्यादि ने श्रीधाम मायापुर में आकर श्रीसरस्वती ठाकुर जी से विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों के तथ्य श्रवण किये।

ढाका में सद्शिक्षा प्रदर्शनी

21 दिसम्बर को सरस्वती ठाकुर जी ने ढाका में सद्शिक्षा प्रदर्शनी का शुभारम्भ करने के लिये वहां शुभपदार्पण कर लगभग एक महीने से अधिक (30 जनवरी, 1933 तक) वहां ठहरकर बहुत से शिक्षित और विशेष-2 लोगों को हरिकथा श्रवण करवायी। 6 जनवरी 1933 को ढाका के पुरानी पल्टन के मैदान में एक अद्भुत सद्शिक्षा-प्रदर्शनी का उद्घाटन किया और इसी उपलक्ष में विद्वानों से सुशोभित सभा में 'प्रदर्शक का अभिभाषण' नामक एक भाषण देकर शिक्षित व साधारण व्यक्तियों के विचारों और तथाकथित धर्मों की धरणाओं में जड़ से परिवर्तन ला दिया था। 2 फरवरी को कलकत्ता गौड़ीय मठ में आये हुये हावड़ा के नरसिंह कालेज के अध्यक्ष श्रीमान् सतीश चन्द्र डे और प्रोफेसर श्रीरणदा चरण चक्रवर्ती दोनों के प्रश्नों का उत्तर देते समय 'एकदण्ड' और 'त्रिदण्ड' सन्यास के सम्बन्ध में अनेक तथ्य कहे। 8 फरवरी को श्रीमायापुर में पहुंचकर वहां श्रीनित्यानन्द जन्मोत्सव व व्यास पूजा इत्यादि का सम्पादन किया तथा श्रीगौर जन्मोत्सव के पश्चात यूरोप में श्रीचैतन्यवाणी का प्रचार करने का संकल्प लिया। श्रीगौर जन्मोत्सव के दिन प्रोफेसर श्रीनिशिकान्त सान्याल जी द्वारा संकलित 'श्रीकृष्ण चैतन्य' नामक अंग्रेजी ग्रन्थ प्रकाशित हुआ।

यूरोप में प्रचारकों को भेजना

18 मार्च को यूरोप के प्रचारक यात्री त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति प्रदीप तीर्थ महाराज, श्रीमद्भक्ति हृदयवन महाराज और श्रीसच्चिदानन्द दास, एम. ए. भक्तिशास्त्री, तीनों को विदा करते समय श्रीमान यतीन्द्र नाथ वसु एम.एल.सी. की अध्यक्षता में सभा बुलायी गयी, जिसमें सरस्वती प्रभुपाद जी ने तीनों प्रचारकों को 'मेरी कथा' शीर्षक वाला उपदेश दिया था। उसी समय श्रील सरस्वतो गोस्वामी ठाकुर जी ने मद्रास के श्रीकृष्ण कीर्तन हाल का उद्घाटन भी किया। वहां से बम्बई पहुंचकर नेपाल के प्रवासी अध्यापक श्रीमन् संजीव कुमार चौधरी (एम. ए.) महाशय की तीन जिज्ञासाओं का उत्तर दिया था। लन्दन में प्रचार के फलस्वरूप मई मास के आरम्भ में लन्दन में '39 नं0 ड्रेइन गार्डनस केनसिंटन, एस. डब्ल्यू -10', इसी स्थान पर गौड़ीय मठ का एक प्रचार कार्यालय स्थापित हुआ।

बम्बई, कृष्णनगर और लन्दन में प्रचार

इस समय सरस्वती ठाकुर जी ने बम्बई में बाबुल नाथ रोड पर जंगुभिला में 'गौड़ीय मठ' के कार्यालय की स्थापना की और बम्बई में ठहर कर श्रीचैतन्य देव जी की वाणी का बहुत प्रचार किया। 20 मई को दादाभाई नारोजी के किसी नजदीकी सम्बन्धी के प्रश्न पूछने पर 'अस्पृश्यता और मन्दिर में प्रवेश' आन्दोलन की समस्या का समाधान किया। 31 मई को लन्दन में मार्कुइस आफ लुदियान तथा लार्ड जेरलेनड के

प्रश्नों के उत्तर, भेजे हुए प्रतिनिधि के माध्यम से दिये। 18 जून को माननीय लर्ड जेरलेनड की अध्यक्षता में ग्रेडफो स्क्वेयर "Society for study of Religion द्वारा बुला गयी सभा में प्रचारकों द्वारा श्रीकृष्ण चैतन्य देव जी की कथा का प्रचार करवाया।

16 जून को श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने कृष्ण नगर के टाउन हाल में 'श्रीमद्भागवत का वैशिष्ट्य' के सम्बन्ध में भाषण दिया। इस टाउन हाल में 'श्रीमान क्षितिपति नाथ मि और रायबहादुर दीनानाथ सान्याल महाशय – दोनों की अध्यक्षता में भक्ति विनोद स्मृति सभा का अधिवेशन हुआ। 23 जून को लन्दन के गौड़ीय मठ में श्री भक्तिविनोद विरहोत्सव के दिन 'The Hon'ble Justice विष्ट्रो आदि प्रमुख शिक्षि व्यक्तियों ने श्री भक्तिविनोद वाणी श्रवण की। 3 जुलाई को लार्ड आरवेनर के प्राईवेट सैक्रेटरी और मि० आर.ए.ब्रटलर; 4 जुलाई को मार्कुइस आफ् लुदियान; 12 जुलाई को 'टाइसस' के सम्पादक मि० ब्राडन और 1 अगस्त को सर स्टेनली जेक्सन ने सरस्वती ठाकुर जी को कई पत्र लिखकर गौड़ीय मिशन के सर्वोत्तम कार्य की बात कही और कृतज्ञता ज्ञापन की। 3 जुलाई को प्रभुपाद जी ने त्रिदण्डि गौड़ीय मठ के नवनिर्मित मन्दिर में श्रीगौरसुन्दर और श्रीराधागोविन्द जी के विग्रह प्रकाशित किये और हरिकथा कीर्तन उत्सव का भी सम्पादन किया। 5 जुलाई को लन्दन के प्रचारकों के द्वारा लन्दन में लर्ड और लेडी

आरविन एवं पार्लियामेंट महासभा के ज्वाइंट सिलेक्ट ने अपनी कमेटी के प्रतिनिधि वर्ग में कार्यकर्त्ताओं के द्वारा यूरोप गौड़ीय मिशन का प्रचार करवाया। 20 जुलाई को भारत के सचिव सर सैमुयल होड़ ने दोपहर 4 बजे लंदन के बरकिंघम पैलेस में गौड़ीय मठ के प्रतिनिधि प्रचारक को महामान्य भारत-सम्राट पन्चम जार्ज और साम्राज्ञी मेरी के साथ मिलवाया तथा उन्हें सम्मान-प्रदर्शन और मठ के उद्देश्य से अवगत कराने का सुअवसर प्रदान किया। 14 जुलाई को प्रचारकों के द्वारा क्रिश्चनों के सर्वप्रधान पादरी आर्क बिशप आफ् केन्टरबरी को भी गौड़ीय मठ के उद्देश्य से परिचित करवाया। कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के उपलक्ष में दूसरी बार गौड़ीय प्रदर्शनी अगस्त में हुयी। गौड़ीय मठ के उत्सव के समय नगर संकीर्तन के द्वारा कलकत्ता के विभिन्न मोहल्लों में हरि नाम का प्रचार किया गया।

श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने 12 अगस्त को श्रीगौड़ीय मठ में सभापति के रूप में 'मानव का परम धर्म' के सम्बन्ध में भाषण दिया। 20 अगस्त को सारस्वत श्रवण सदन में 'श्रीचैतन्य देव का वैशिष्ट्य'; 21 अगस्त को 'The Vedanta its Morphology and Ontology' के सम्बन्ध में भाषण दिया। 7 सितम्बर से 'लीला और सुरधुनी' मोटरलान्च के सहयोग से सपार्षद नवद्वीप के विभिन्न स्थानों में संकीर्तन मण्डलियों के साथ श्रीनाम वितरण और हरिकथा की।

7 और 8 अक्तूबर को आक्सफोर्ड के विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों और छात्रों की दो विशाल सभाओं में 'नामतत्त्व' के सम्बन्ध में श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने भाषण प्रदान किया। 27 अक्तूबर को पटना में शुभपदार्पण कर वहां के स्थानीय अधिवासियों में श्रीचैतन्यदेव जी की कथा का प्रचार किया। 29 अक्तूबर को रायबहादुर अमरेन्द्रनाथ दास, तीन नवम्बर को विहार उड़ीसा और छोटा नागपुर डिविजन में सरकार के पुरातत्व विभाग के सुपरिंटेन्डेंट श्रीमान् गणेश चन्द्र दास, बैरिस्टर पी.आर.दास, एडवोकेट, श्रीमान् नवद्वीप चन्द्र घोष, डिस्ट्रिक्ट और सेशन जज श्रीमान शिवप्रिय चट्टोपाध्याय इत्यादि बहुत से व्यक्तियों ने सरस्वती ठाकुर जी के उपदेश श्रवण किये।

14 नवम्बर को दरभंगा के महाराजाधिराज आनरेबल सर कामेश्वर सिंह के.सी.एस.आई. बहादुर ने सरस्वती ठाकुर जी की इच्छा के अनुसार पटना में सद्शिक्षा-प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। इस उपलक्ष में बिहार और पटना विश्वविद्यालय के बहुत से जाने माने व्यक्तियों ने भाग लेकर उस अभूतपूर्व सद्शिक्षा-प्रदर्शनी से अनेक प्रकार की शिक्षाएं ग्रहण कीं।

19 नवम्बर को कलकत्ता गौड़ीय मठ में सर विजय प्रसाद सिंह राय की अध्यक्षता में श्रेष्ठ आर्य जगबन्धु भक्तिरन्जन जी की तृतीय वार्षिक स्मृतिसभा का अधिवेशन हुआ। नवम्बर के अन्त में सरस्वती ठाकुर जी द्वारा सम्पादित 'भक्तिसन्दर्भ'

सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित हुआ। 24 नवम्बर को नवद्वीप मण्डल के अन्तर्गत श्रीनृसिंह पल्ली के पास तेतिया पल्ली के दर्शन करते हुये सरस्वती ठाकुर जी ने वहा पर हरिकथा कीर्तन एवं 26, 27 नवम्बर को एकायन मठ में संकीर्तन महोत्सव का समापन किया। मेदिनीपुर जिले के आमर्षिग्राम में सरस्वती ठाकुर जी की कृपा से इसी समय शुद्धभक्ति कथा का प्रचार हुआ।

प्रचारकों को जर्मनी में भजना

24 और 25 नवम्बर को 'East Bourn Theosophical Society' में, 10 दिसम्बर को जर्मनी के म्यूनिच शहर में ड्यूटसी अकैडमी में , 12 दिसम्बर को बर्लिन शहर के हाम्बलड् हाउस में, 14 दिसम्बर को कैनिंगसबर्ग में, 16 से 18 दिसम्बर को फ्रान्स के इन्स्टीच्यूट डि. ग्लिलिरेसन इण्डियानी में श्रीचैतन्य वाणी के प्रचार का आयोजन हुआ। 20 दिसम्बर को लण्डन गौड़ीय मठ "3 ग्लस्टर हाऊस कर्णोयल गार्डन्स, एस. डब्ल्यु. 7" पर स्थानन्तिरित किया गया।

इसी समय कराची में श्रीचैतन्य-कथा का प्रचार हुआ। 24 दिसम्बर को श्रील सरस्वती ठाकुर जी की योजना के अनुसार काशीधाम में मिछि पोकरा नाम मोहल्ले में सरस्वती ठाकुर जी के अनुयायी डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट और कलैक्टर मि0 पन्नालाल आई.सी.एस. महोदय ने पारमार्थिक प्रदर्शनी के द्वार का उद्घाटन किया।

श्री गौड़ीय मठ में त्रिपुराधीश

15 जनवरी 1934 को स्वाधीन त्रिपुराधीश पन्चश्रीक महाराज वीर विक्रम किशोर देववर्ग माणिक्य बहादुर ने अपने बन्धुबान्धवों के साथ कलकत्ता श्री गौड़ीय मठ में आकर आचार्य सरस्वती ठाकुर के समक्ष श्रद्धा ज्ञापन की और एक विशाल सभा में गौड़ीय मठ की प्रशंसनीय कार्यावली के सम्बन्ध में भाषण भी दिया। 2 फरवरी को हेतमपुर के कुमार बहादुर श्रीमान् राधिकारन्जन चक्रवर्ती बो.ए. और उसके प्राइवेट सैक्रेटरी इत्यादि ने श्रील सरस्वती ठाकुर जी के पास आकर उपदेश श्रवण किये। 4 फरवरी को सरस्वती ठाकुर जी के 60 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष में 2 फरवरी को आचार्य जी की आविर्भाव-तिथि के उपलक्ष में व्यास पूजा और 'सरस्वती जयश्री' ग्रन्थ के वैभव पर्व प्रकाशित करने का प्रयास एवं लण्डन के पार्कलेन पर स्थित ग्रसवेनर हाउस में लार्ड जैटलेण्ड की अध्यक्षता में एक अधिवेशन हुआ।

25 फरवरी को मोदद्रुम द्वीप में श्रीवृन्दावन दास ठाकुर जी के श्रीपाट के नये श्रीमन्दिर का उद्घाटन किया। श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा से पहले श्रीमायापुर में जाकर परिक्रमा की और श्रीगौर-जन्मोत्सव का सम्पादन भी किया। श्रीवास आंगन में श्रीमन्दिर की प्रतिष्ठा, श्रीगौरकिशोर जी के नये समाधि मन्दिर का उद्घाटन किया तथा भक्ति विजय भवन में हरिकथा कीर्तन किया गया। इस समय तीन भक्तों को

त्रिदण्ड सन्यास प्रदान किया गया और नवद्वीप धाम प्रचारणी सभा के वार्षिक अधिवेशन में भाषण दिया। 19 फरवरी को रायबहादुर रामप्रसाद चन्द, राजर्षि कुमार शरदिन्दु, नारायण राय इत्यादि ने श्रीधाम मायापुर के विभिन्न स्थानों के दर्शन किये तथा सरस्वती ठाकुर जी से बहुत से विषयों के सम्बन्ध में श्रवण किया था।

चाँचुरि पुरुलिया में

5 मार्च को सरस्वती ठाकुर जी बहुत से भक्तों के साथ गौड़ीय मठ के रक्षक महामहोपदेशक आचार्यत्रिक श्रीयुत कुन्जबिहारी विद्याभूषण जी की जन्मभूमि यशोहर चाँचुरी पुरुलिया ग्राम में पदार्पण किया। वहां के स्थानीय लोगों के द्वारा श्रीसरस्वती ठाकुर जी का भव्य अभिनन्दन किया गया। वहां पर श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने पांच दिन तक निरन्तर हरिकथा-कीर्तन की।

योगपीठ का नया मन्दिर

18 मार्च को योगपीठ के प्रस्तावित श्रीमन्दिर और श्रीध ाम मायापुर में श्रीमुरारी गुप्त भवन के मन्दिर की नींव रखी गयी। 2 अप्रैल को श्रीचैतन्य पदांकित छत्रभोग ग्राम में श्रीचैतन्यपाद पीठ की प्रतिष्ठा की। छत्रभोग ग्राम के अधि वासियों द्वारा सरस्वती ठाकुर जी का अभिनन्दन करने पर आचार्य जी ने प्रतिभाषण दिया। 8 अप्रैल को श्रीसरस्वती

ठाकुर जी ने अपने अनुयायी प्रचारकों को त्रिदण्ड सन्यास प्रदान किया। 20 अप्रैल को कलकत्ता से पुरुषोत्तम क्षेत्र की ओर यात्रा की।

लण्डन गौड़ीय मिशन सोसायटी

24 अप्रैल को वैस्टमिनिस्टर कैक्स्टन हाल में एक सभा का आयोजन किया गया जहां लार्ड जैटलैंड की अध्यक्षता में गौड़ीय मिशन सोसायटी का सूत्रपात हुआ। 6 मई को श्रीगौड़ीय मठ में प्रत्नतात्त्विक राय रामप्रसाद चन्द बहादुर, श्रीमान् यतिन्द्र नाथ वसु न्यायनिधि एम. एल. सी. की अध्यक्षता में श्रीगौड़ीय मठ में 'श्रीचैतन्य के समय का नवद्वीप' के सम्बन्ध में भाषण दिया था।

पुरी में

18 मई को पुरी के संस्कृत कालेज के आयुर्वेद विभाग के प्रधान अध्यापक श्रीमान् आनन्द महापात्र काव्य व्याकरण तीर्थ, 18 मई को प्रवीण उपन्यासिक श्रीमान शचीश चन्द्र चट्टोपाध्याय, 20 मई को एमार मठ के महन्त श्रीमान गदाध र रामानुज दास और श्रीमान हनुमान् खुंटिया, 21 मई को राय साहब श्रीमान् गौरश्याम महान्ति और श्रीमान् राधाश्याम महन्ति, 23 मई को ढाका विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जुनाकर, 24 मई को श्रीमान रेवतीनाथ चट्टोपाध्याय, डिप्टी मैजिस्ट्रेट और पुरी के मैजिस्ट्रेट राय श्रीमान् नरेन्द्रनाथ दत्त बहादुर, 2 जून

को बोधना आश्रम के प्रतिष्ठाता श्रीमान गिरिजा प्रसन्न मुखोपाध्याय, 7 जून को रायबहादुर अध्यापक श्रीमान खगेन्द्र नाथ मित्र इत्यादि व्यक्तियों को हरिकथा श्रवण करवायी।

अधोक्षज विष्णुमूर्ति का आविर्भाव

श्रीमान सखीचरण राय भक्ति विजय जी की आर्थिक सहायता से श्रीमायापुर-योगपीठ मन्दिर की नींव खोदते समय 13 जून को 10 बजे श्रीजगन्नाथ जी द्वारा सेवित गृहदेवता अधोक्षज चतुर्भुज विष्णु मूर्ति मिट्टी के अन्दर से प्रकट हुयी। 27 जून को अलालनाथ-ब्रह्म गौड़ीय मठ में श्रीगोपीनाथ जी को प्रकाशित किया और हरिकथा कीर्तन किया। इसी समय 'ब्राह्मण और वैष्णव' ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण बड़े आकार में प्रकाशित हुआ। श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने 12 जुलाई को श्रीध ाममायापुर के श्रीगौर किशोर समाधि मन्दिर में संकीर्तन करते हुये श्रील गौरकिशोर प्रभु जी के अर्चा विग्रह को प्रकाशित किया तथा 13 अगस्त को प्रसिद्ध एन. मुखर्जी महाशय के पुत्र श्रीमान् यामिनीमोहन मुखोपाध्याय को हरिकथा श्रवण करवायी।

पटना गौड़ीय मठ में श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा

14 अगस्त को पटना गौड़ीय मठ में श्रीविग्रह प्रतिष्ठा-महोत्सव का अनुष्ठान हुआ। श्रीगौड़ीय मठ के उत्सव के समय प्रत्येक वर्ष की तरह संकीर्तन मण्डली के साथ कलकत्ता महानगरी में श्रीनाम वितरण किया गया।

'सरस्वती जय श्री' तथा नये रूप में हारमोनिस्ट पाक्षिक पत्रिका

1 सितम्बर को श्रीकृष्णजन्माष्टमी के दिन 'सरस्वती जयश्री' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। 4 सितम्बर को मासिक 'हारमोनिस्ट' पत्रिका पाक्षिक पत्रिका के नये रूप में परिवर्तित होकर आरम्भ हुयी।

16 सितम्बर को कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठ में श्रीमान् द्वारका नाथ एम. ए., डी. एल. महाशय जी की अध्यक्षता में 'राधाष्टमी' के सम्बन्ध में भाषण सभा का अधिवेशन हुआ। श्रीगौड़ीय मठ के इस उत्सव के समय असंख्य लोगों के मध्य श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने हरिकथा की।

मथुरा में कार्तिक व्रत

मथुरा में बहुत से भक्तों के साथ 17 अक्तूबर से एक मास से भी अधिक लम्बे समय तक चलने वाले कार्तिक व्रत का श्रीलसरस्वती ठाकुर जी ने पालन किया एवं अष्टकालीन लीला कथा को श्रवण-कीर्तन करने का आदर्श दिखाया। 29 अक्तूबर को सातघरा मोहल्ले में उस स्थान की खोज की जहां पर श्रीरूप गोस्वामी जी ने गोपाल के दर्शन किये थे। अक्तूबर मास के तृतीय सप्ताह में जर्मनी के विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रचारकों को भेज कर श्रीचैतन्य देव जी की कथा का प्रचार किया। 1 नवम्बर को व्रजमण्डल में चन्द्रसरोवर,

परासौलि, गौरीतीर्थ और पैठग्राम इत्यादि के दर्शन और उन-2 स्थानों की लीला के भाव में भावित होकर हरिकथा कीर्तन की। 17 नवम्बर को अपने मठवासी ब्रह्मचारी को त्रिदण्ड सन्यास प्रदान किया।

29 नवम्बर को नई दिल्ली में स्थित राजेन्द्र भवन में श्रीमान एन चैटर्जी, डा0जे.के.सेन इत्यादि व्यक्तियों को 'मनुष्य जीवन के कर्तव्य', 'श्रीचैतन्य की दया और उपदेश' के सम्बन्ध में हरिकथा श्रवण करवायी।

तेलगू भाषा में 'श्रीचैतन्य शिक्षामृत'

6 दिसम्बर को राजा भूपेन्द्र नारायण सिंह बहादुर जी की अध्यक्षता में चतुर्थ वार्षिक भक्तिरन्जन स्मृति सभा का अधि वेशन हुआ। उसी समय सरस्वती ठाकुर जी के चरणाश्रित आन्ध्र देशवासी पण्डित श्रीमान उयाइ जगन्नाथम् बी.ए. ठाकुर की इच्छा से तेलगू भाषा में श्रीचैतन्य शिक्षामृत और अंग्रेजी भाषा में जैवधर्म प्रकाशित हुआ था।

बंगाल का गवर्नर श्रीमायापुर में

15 जनवरी 1935 को बंग देश के महामान्य गवर्नर सर जान एण्डारसन गौर महाप्रभु जी के जन्म स्थान श्रीधाम मायापुर में आये और श्रीसरस्वती ठाकुर जी से उन्होंने श्रीध ाममायापुर के तथ्य श्रवण किये तथा एक भाषण भी दिया। 23 फरवरी को सरस्वती ठाकुर जी का 61 वां वर्ष पूरा होने पर

आचार्य जी के प्रकटस्थान श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में चट्टक पर्वत पर आविर्भाव-तिथि पूजा का अनुस्ठान किया गया। उसके उपलक्ष में माननीय पुरीराज गजपति श्रीमान रामचन्द्र देव बहादुर जी की अध्यक्षता में एक विराट सभा हुयी। उसके अगले दिन सभी ने श्रीसरस्वती ठाकुर जी के अनुगमन में श्री पुरुषोत्तम धाम की परिक्रमा की और उपस्थित भक्तों को श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने एक सुन्दर प्रवचन भी प्रदान किया। श्रीगौर महाप्रभु जी के जन्मोत्सव से पहले ही श्रीमान् सखीचरण भक्ति विजय महोदय जी ने श्रीधाम मायापुर के योगपीठ के श्रीमन्दिर को लाइटों से सजा दिया था। 4 मार्च को श्रीधाम मायापुर में सर बी.एल.मित्र ने श्रीसरस्वती ठाकुर जी से श्रीचैतन्य देव जी की कथा श्रवण की।

त्रिपुराधीश के द्वारा मन्दिर के द्वार का उद्घाटन

20 मार्च को श्रीगौरजन्मयात्रा के दिन स्वाधीन त्रिपुरा के अधिपति धर्मधुरन्धर सर श्रीमद् वीर विक्रमकिशोर देववर्ग माणिक्यबहादुर ने श्रीमायापुर में आकर गौरजन्म स्थान पर नवनिर्मित श्रीमन्दिर के द्वार का उद्घाटन किया। 24 भक्तों के साथ खुलना के देउलि ग्राम में आगमन करके गौड़ीय आचार्य ने एक विशाल सभा में हरिकथा कीर्तन का कार्यक्रम किया। 31 मार्च को वर्द्धमान के महाराजाधिराज बहादुर सर विजय चांद महाताब जी ने श्रीगौड़ीय मठ में आकर आचार्य वाणी श्रवण की थी।

पूर्व बंग में हरिकीर्तन और श्रीविग्रह-प्रकाश

8 अप्रैल को श्रीमाधव गौड़ीय मठ के नारिन्दा मोहल्ले में स्थित प्रस्तावित नये मन्दिर की नींव रखी। ढाका और नारायण बंग वासी सज्जनों ने आचार्य श्रीसरस्वती ठाकुर जी का अभिनन्दन किया।

12 अप्रैल को मैमनसिंह, श्री जगन्नाथ गौड़ीय मठ में श्री विग्रह प्रतिष्ठा और महाराज शशीकांत आचार्य के द्वारा 15 अप्रैल तक दिए 'शशीलज' में अवस्थान कर बहुत से शिक्षित और विशिष्ट व्यक्तियों को हरि कथा सुनाई।

गया गौड़ीय मठ की प्रतिष्ठा

19 अप्रैल को श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने गया में शुभागमन कर वहां पर श्रीमन्महाप्रभु जी के पदांकित स्थानों का दर्शन किया तथा बहुत से कुलीन और शिक्षित व्यक्तियों के सन्मुख हरिकथा की। 22 अप्रैल को श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने गया गौड़ीय मठ की प्रतिष्ठा की। 30 अप्रैल को कुछ प्रचारकों को बर्मादेश में भेजकर वहां के विभिन्न स्थानों में श्रीचैतन्य वाणी का प्रचार किया। 31 मई को बहुत से भक्तों के साथ दार्जीलिंग में हरिकथा का प्रचार करने के लिये प्रस्थान किया तथा वहां पर एकत्रित श्रोताओं को हरिकथा कीर्तन श्रवण करवायी।

सर यदुनाथ सरकार और कर्नल श्रीमान् उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय महाशय जी की अध्यक्षता में क्रमशः 9 व 10 जून को भक्तों द्वारा श्रीचैतन्यवाणी का प्रचार करवाया। 9 जून को इण्डियन ब्राडकास्टिंग सर्विस केन्द्र से रेडियो के माध्यम से श्रीचैतन्य वाणी का प्रचार किया गया। 28 जून को कूच बिहार की महारानी श्रीमती इन्दिरा देवी, महाराज कुमारी इला देवी, महाराज-कुमारी गायत्री देवी, महाराज़कुमार श्रीइन्द्रजितेन्द्र नारायण बहादुर, फांस की विदुषी म्याक्सिमियानि पोटार्स (पी. एच.डी.) ने श्रीसरस्वती ठाकुर जी से हरिकथा और वैष्णव दर्शन के बारे में श्रवण किया। 8 जुलाई को प्रोक्टार रोड पर स्थित बम्बई श्रीगौड़ीय मठ में श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा की एवं Peoples Jinnha Hall में एक विराट सभा में 'पन्चरान्त्र और भागवत' के सम्बन्ध में भाषण दिया। उसी समय लन्दन में भेजे हुये आचार्य की कृपा प्राप्त श्रीमान सच्चिदानन्द दास (एम.ए.) भक्तिशास्त्री, परातत्वविशारद ने वैष्णव इतिहास और साहित्य के अन्वेषण कार्य से लन्दन-विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। जुलाई मास के अन्त से अगस्त मास के शुरु तक श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने नवद्वीप मण्डल के विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करके हरिकथा का प्रचार किया।

रेडियो के माध्यम से श्रीचैतन्य वाणी का प्रचार

श्रीगौड़ीय मठ में उत्सव आरम्भ होने से प्रति रविवार को नगर संकीर्तन एवं जन्माष्टमी, नन्दोत्सव, राधाष्टमी और भक्ति

विनोद आविर्भाव के उत्सव के सम्बन्ध में रेडियो के माध्यम से प्रवचन होता था। बलदेव जी के जन्मोत्सव से लेकर 16 दिन तक दोपहर के समय आचार्यवर्य श्रील सरस्वती ठाकुर जी ने भागवत की व्याख्या की थी। उत्सव के समय काशिम बाजार के महाराज श्रीमान् श्रीशचीन्द्र नन्दी बहादुर जी की अध्यक्षता में 'संसार और भक्ति' के सम्बन्ध में भाषण दिया और कुमार श्रीमान् हिरण्य कुमार मित्र महाशय की अध्यक्षता में 'विराग और भक्ति' के सम्बन्ध में भाषण दिया था।

18 सितम्बर को कलकत्ता के स्थानीय व्यक्ति लंदन गौड़ीय मठ के जिम्मेदार प्रचारक त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति हृदय बन महाराज एवं उनके साथ भारतवर्ष में आये हुये जर्मनी के दो भक्तों की अभ्यर्थना की और उन्हें मानपत्र भी प्रदान किया। 12 सितम्बर को भाद्रपूर्णिमा के दिन आचार्यवर्य द्वारा की गयी विवृत्ति-समन्वित 12 स्कन्ध भागवत सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित हुआ एवं आचार्य जी ने श्रीमद्भागवत के प्रकाशन की समाप्ति के सम्बन्ध में श्रीगौड़ीय मठ में एक भाषण दिया। 1 से 7 अक्तूबर तक नई दिल्ली गौड़ीय मठ में रहकर बहुत से विशिष्ट व्यक्तियों को हरिकथा श्रवण करवायी।

श्रीराधाकुण्ड में नियम सेवा और व्रजधाम प्रचारणी सभा

8 अक्तूबर से महीने से कुछ अधिक समय तक श्रीराधाकुण्ड में कार्तिक व्रत के उद्यापन के बहाने श्रीसरस्वती ठाकुर

जी ने प्रतिदिन उपनिषद, श्रीचैतन्य चरितामृत और श्रीमद्भागवत की व्याख्या, श्रीकुण्ड की परिक्रमा और श्रीराधाकृष्ण जी की अष्टकालीय लीलाओं को श्रवण-कीर्तन करने का आदर्श दिखाया। उसी समय ब्रजमण्डल की सेवा उन्नति के लिये श्रीव्रजधाम प्रचारणी सभा का भी उन्होंने सूत्रपात किया।

श्रीकुन्ज बिहारी मठ और वजस्वानन्दसुखद कुन्ज

4 नवम्बर को श्रीकुन्ज बिहारी मठ में श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा की तथा 6 नवम्बर को व्रजस्वानन्द सुखद कुन्ज में भाव सेवा और पुष्प समाधि की स्थापना की एवं 7 नवम्बर को शेषशयी होते हुये दिल्ली पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने 10 नवम्बर को दिल्ली में हरिकथा कीर्तन और एक साधारण उत्सव का समापन किया। तत्पश्चात गया में 11 नवम्बर से 13 नवम्बर तक गयावासी और प्रवासियों को श्रीचैतन्य देव जी की दया की बात बतायी। इसी बीच 13 नवम्बर को गया मठ में श्रीसरस्वती प्रभुपाद जी ने श्रीविग्रह की प्रतिष्ठा की। इसी समय बर्मा देश में विशेष रूप से श्रीचैतन्य देव जी की कथा का प्रचार हुआ। 27 दि0 को त्रिपुराधीश पन्चश्रीक सर वीर विक्रम किशोर देववर्म माणिक्य बहादुर धर्मधुरन्धर महोदय की अध्यक्षता में श्रेष्ठ आर्य जगबन्धु भक्तिरन्जन की पन्चमवार्षिक सभा का अधिवेशन हुआ। सभा समाप्त होने के पश्चात आचार्य ने कैलिफोर्निया

के डा. हेनरि ह्वाण्ड् और मि0 एस. बी. रोसिये, बैरिस्टर मि0 एस. एन. रुद्र, रिटायर्ड जज श्रीमान् ललित मोहन वसु इत्यादि व्यक्तियों को अधोक्षज तत्व के सम्बन्ध में सुनाया। 27 दिसम्बर को श्री सरस्वती ठाकुर जी ने पटना श्रीगौड़ीय मठ में हरिकथा की एवं 30 दि0 को उन्होंने इलाहाबाद में जाकर श्रीचैतन्य जी की श्रीरूप शिक्षा की वाणी कीर्तन की।

प्रयाग में प्रदर्शनी

7 जनवरी 1936 को श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने प्रयाग में पारमार्थिक प्रदर्शनी का उद्घाटन किया और विद्वानों से सुशोभित विशाल सभा के अध्यक्ष के रूप में अंग्रेजी भाषा में एक भाषण दिया। 11 जनवरी से पूरे दो मास तक श्रीधाम मायापुर में रहते हुये श्रीगौरजन्म स्थली में और श्रीचैतन्य मठ में भक्तों को हरिकथा श्रवण करवायी।

कृष्णानुशीलनागार एवं दैववर्णाश्रम संघ

श्रीसरस्वती ठाकुर जी के 62वें आविर्भाव के दिन 12 फरवरी को ठाकुर श्रीभक्ति विनोद रिसर्च इन्स्टीच्यूट या अनुकूल कृष्णानुशीलनागार और दैववर्णाश्रम संघ की प्रतिष्ठा की। इस दिन श्रीवास-आंगन में श्री व्यासपूजा का अनुष्ठान हुआ। लंदन में भी लंदन-गौड़ीय-मिशन सोसायटी के चेयरमैन दि राइट आनरेबल सर सादिलाल जी की अध्यक्षता में आचार्य-तिथि का सम्मान किया गया था। आचार्य प्रवर ने नवद्वीप परिक्रमा के पहले 25 फरवरी से नवद्वीप के विभिन्न

द्वीपों में उनके विषय और आश्रय विग्रहों को प्रकाशित किया था। 1 मार्च को सुवर्ण विहार में सुवर्ण विहारी मठ और श्रीविग्रह सेवा प्रकाशित की। 5 मार्च को विद्यानगर में श्री सार्वभौम गौड़ीय मठ की और वहां पर श्रीविग्रहों की प्रतिष्ठा की तथा इसी प्रकार रुद्रद्वीप में श्रीगौड़ीय मठ और वहां पर विग्रहों की स्थापना की। 8 मार्च को श्रीगौरजन्म तिथि को आचार्य जी के निर्देशानुसार ब्रह्मदेश के शिक्षामन्त्री डा. वामे आदि प्रमुख व्यक्तियों की सहायता से 29 नं0 ब्रुकिंग स्ट्रीट में रंगून गौड़ीय मठ का कार्यालय खोला गया। इसी दिन लंदन गौड़ीय मठ में डा. पाढ़ि महाशय की अध्यक्षता में श्रीमन्महाप्रभु जी के जन्मोत्सव के उपलक्ष में एक धर्मसभा हुई। 15 मार्च को आसाम में श्री संरभोग गौड़ीय मठ में श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने श्रीविग्रहों की प्रतिष्ठा की। सरभोग वासी सज्जनों ने श्रीसरस्वती ठाकुर जी का अभिनन्दन किया तथा बड़ी गर्मजोशी से उनका स्वागत किया। 27 मार्च को कटक में शुभागमन कर श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने नवीन उड़ीसा के विशिष्ट व्यक्तियों को हरिकथा सुनायी।

उड़ीसा में सौ दिन व्यापी – कीर्तनोत्सव

29 मार्च से पुरी के चटक पर्वत पर रहते हुये श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने वहां साधुनिवास और श्रीराधागोविन्द जी के श्रीमन्दिर को प्रकाशित किया। इसके इलावा उन्होंने बहुत से शिक्षित व्यक्तियों को हरिकथा श्रवण कराते हुये उड़ीसा में सौ

दिन तक चलने वाले उत्सव का अनुष्ठान किया। 4 मई को अलालनाथ ब्रह्म गौड़ीय मठ में जाकर वहां नृसिंह-चतुर्दशी पालन की और हरिकीर्तनोत्सव का सम्पादन किया। 30 मई को पुरी में प्रचारक ब्रह्मचारी को त्रिदण्ड सन्यास प्रदान किया।

7 जून को श्रीसरस्वती ठाकुर जी ढाका में श्रीमान् सुपतिरंजन नाग; एम.ए., बी . एल. महाशय के भवन में ठहरे और वहीं पर उन्होंने बहुत से श्रोताओं को हरिकथा सुनायी और सत्य के खोज की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों को श्रीचैतन्य पादपद्मों में दीक्षित किया।

बालियाटि, गोद्रुम, दार्जीलिंग और बगुड़ा में

श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने 9 जून को बालियाटी ग्राम में शुभपदार्पण कर स्थानीय सज्जनों का अभिनन्दन ग्रहण किया और सभा में प्रतिभाषण प्रदान किया। 10 जून को बालियाटी में श्रीगदाई-गौरांग मठ के नवनिर्मित श्रीमन्दिर का उद्घाटन किया और वहां श्रीराधागोविन्द जी के श्रीविग्रहों की प्रतिष्ठा की। 13 और 14 जून को ढाका विश्वविद्यालय में और ढाका बार लाइब्रेरी में कृपाप्राप्त जर्मन के भक्तों और त्रिदण्डि स्वामी प्रचारक द्वारा हरिकथा प्रचार करवाई। 19 जून को गोद्रुम-स्वानन्द सुखदकुंज में भक्तिविनोद ठाकुर जी की 22वीं विरह-तिथि पर 'दुःसंगवर्जन' के सम्बन्ध में भाषण दिया और संकीर्तन महोत्सव का सम्पादन किया। इसी दिन सूर्यग्रहण के उपलक्ष में कुरुक्षेत्र में एकत्रित हुये लाखों-2

लोगों को 'श्रीचैतन्यवाणी' को श्रवण करने का सुअवसर प्रदान करने के लिये आपने वहां पर 'सद्शिक्षा प्रदर्शनी' लगवायी। 27 जून को दार्जीलिंग गौड़ीय मठ के प्रांगण में शुभपदार्पण कर वहां विशिष्ट व्यक्तियों के सम्मुख स्वयं हरिकथा की एवं अनुकम्पित प्रचारकों द्वारा हरिकथा करवायी। 19 जुलाई को श्रीसरस्वती ठाकुर जी ने दार्जीलिंग गौड़ीय मठ में श्रीराधागोविन्द जी के श्रीविग्रहों को प्रकाशित कर उसके उपलक्ष में आये विशिष्ट श्रोताओं के सन्मुख हरिकथा की। 24 जुलाई को बगुड़ा के सज्जनों द्वारा अत्यधिक आग्रह करने पर वहां शुभपदार्पण किया। वहां के विशिष्ट-2 व्यक्तियों नें श्रीसरस्वती ठाकुर जी का भव्य स्वागत किया। वहां पर स्थानीय हिन्दूसभा में स्थानीय लोगों के द्वारा अभिनन्दन करने पर आचार्य जी ने श्री नरोत्तम ठाकुर महाशय जी के कृपा वर्षित उत्तर बंग में श्रीचैतन्य वाणी के पुनः प्रचार की आवश्यकता के सम्बन्ध में प्रतिभाषण दिया।

श्रीवृन्दावन में पुरुषोत्तम व्रत

श्रील प्रभुपाद जी ने श्री गौड़ीय मठ में बलदेव जी का आविर्भाव और जन्माष्टमी के अवसर पर हरिकथा कीर्तन कर पुरुषोत्तम मास में मथुरा मण्डल में पुरुषोत्तम-व्रतोत्सव का पालन करने का आदर्श दिखाने के लिये 12 अगस्त को कलकत्ता से मथुरा की यात्रा की। प्रभुपाद जी ने मथुरा कैंटोन के शिवालय में अवस्थान करते हुये हरिकथा की एवं मथुरा

से श्री वृन्दावन आये और 'मधुमंगल कुंज' में शुभपदार्पण किया तथा वहां श्रीमद्भागवत की व्याख्या की। इसी समय श्रील प्रभुपाद जी ने एक भजन स्थान को भी प्रकाशित किया। 9 सितम्बर को कलकत्ता श्रीगौड़ीय मठ में वापस आये तथा वहां पहुच कर उन्होंने मठ से वार्षिक उत्सव में निरन्तर हरिकथा की।

गौड़ीय संघपति को प्रचार के लिये विला में भेजना

16 अक्तूबर को श्रील प्रभुपाद जी ने डा० शिवपद भट्टाचार्य, एम. बी महाशय को लगातार लगभग एक घंटा हरिकथा सुनायी। 27 अक्तूबर को श्रीमद्भक्ति सारंग प्रभु को विला औ अमेरिका में प्रचार का भार सौंपकर लंदन भेजने से पहले गोमती, गण्डकी और गोवर्धन जी की शिला का अर्चन करने का उपदेश दिया। इसी समय उन्होंने सारस्वत श्रवण सदन में एक भाषण दिया तथा 24 अक्तूबर को पुरी के लिए रवाना हुए। 1 नवम्बर को श्रीवास आंगन में प्रभुपाद जी के परम प्रिय त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिश्रीरूप पुरी महाराज जी निर्याण को प्राप्त हुए।

अप्रकटलीला का पूर्वाभास और आशीर्वाणी

श्रील प्रभुपादजी ने पुरी में गिरिराज-गोवर्धन से अभिन्न चटकपर्वत में श्रीमध्वाचार्यजी का जन्मोत्सव और श्रीरूप-रघुनाथ

के कहे हुए मंत्र से गोवर्धन-पूजोत्सव तथा अपने प्रभु श्रीगौरकिशोरदास गोस्वामी जी महाराज का विरहमहोत्सव मनाया था। प्रतिदिन उनकी हरिकथारूपी मन्दाकिनी धारा में भक्तों और सज्जनों को स्नान का सुअवसर प्राप्त हुआ था। श्रीजगन्नाथपुरी में रहते समय सर्वदा श्रील प्रभुपाद सावधान करते हुए कहते थे कि, ''आप लोग, निष्कपटभाव से हरिभजन कर लीजिए, और अधिक दिन नहीं हैं।'' विशेषकर वे, निरन्तर श्रीरूप और रघुनाथ के, इन कुछ एक वाक्यों का उच्चारण करते थे –

"प्रत्याशां मे त्वं कुरु गोवर्धन पूर्णाम्।"

अर्थात् हे गोवर्धन! तुम, मेरी अभिलाषा को पूर्ण करो।

"निज निकटनिवासं देहि गोवर्धन त्वम्।"

अर्थात् हे गोवर्धन! तुम, मुझको अपने पास (राधाकुण्ड-तटपर) रहने का स्थान प्रदान करो।

इनके अतिरिक्त श्रील प्रभुपादजी ने बहुत-से भक्तिग्रन्थों का प्रकाशन, सम्पादन और रचना की (जिनकी विस्तृत तालिका 'श्रीचैतन्यवाणी' पत्रिका में प्रकाशित होगी)। आपने 'सज्जनतोषणी' या 'The Harmonist' और 'गौड़ीय' पत्रिका के अतिरिक्त भी 'नदिया प्रकाश' पत्र सन् 1926 में पहले अंग्रेजी और बंगला भाषा में सप्ताह में दो दिन, और पीछे

सन् 1928 से दैनिक पत्र के रूप में प्रकाशित किया था। सन् 1932 में आसाम के ग्वालपाड़ा से असमीया भाषा में 'कीर्तन'-नामक मासिक पत्र, और इसी वर्ष, कटक के सच्चिदानन्द मठ से उड़ियाभाषा में 'परमार्थी-पत्रिका प्रकाशित हुई थी। जिस समय आप अध्यापन की लीला करते थे उस समय अर्थात् सन् 1896 में 'बृहस्पति' या 'Scientific Indian' नामक गणित और फलित ज्योतिष विषय का मासिक पत्र और फिर 1901 से 'ज्योतिर्विद'-नाम देकर प्रकाशित किया था। सन् 1919 में निवेदन या 'Sign Board' साप्ताहिक पत्र भी आपने प्रकाशित किया था।

आपने भक्तिग्रन्थों के प्रचारार्थ कृष्णनगर, कलकत्ता, श्रीधाममायापुर और कटक में मुद्रणालयों (छापाखानों) की स्थापना की थी।

आपने भारत में एवं भारत के बाहर 66 प्रचार केन्द्रों की स्थापना की थी।

7 दिसम्बर को श्रील प्रभुपादजी पुरुषोत्तम मठ से गौड़ीय मठ में वापिस आये और सब समय सब उपस्थित भक्तों के पास, इतनी हरिकथा धारावाहिक रूप से कहने लगे कि, जिसकी कोई तुलना नहीं की जा सकती।

श्रील प्रभुपादजी की अन्तिम वाणी

गौड़ीयाचार्य – भास्कर ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने अपनी अप्रकट लीला के कुछ दिन पूर्व, अर्थात् 23 दिसम्बर सन् 1936 ई. को प्रातःकाल में सब उपस्थित भक्तों के पास अपने श्रीमुख से निम्नलिखित उपदेशावली का कीर्तन किया था –

"मैंने, बहुत लोगों को उद्वेग दिया है । निष्कपट सत्यकथा कहने को मैं बाध्य हुआ हूँ और निष्कपट हरिभजन करने को कहा है। संभवतः इसी कारण बहुत – से लोगों ने मुझे अपना शत्रु समझा है । अन्य अभिलाषाएं और कपटता को छोड़कर निष्कपट कृष्ण की सेवा में उन्मुख होने के लिए ही मैंने बहुत – से लोगों को नाना प्रकार से उद्वेग दिया है । आशा है, इन सब बातों को वे लोग किसी न किसी दिन समझ सकेंगे।"

"तात्पर्य – रोग से व्याकुल रोगी, यद्यपि कुपथ्य की वस्तु ही मांगता है, तथापि सच्चा वैद्य, उसकी इच्छा के विरुद्ध होने पर भी उसकी मनचाही वस्तु उसे नहीं देता । किन्तु उसको, निरोग बनाने के उद्देश्य से कठोरता धारण करके उसको कड़वी औषधि का सेवन कराता है, रोगी औषध सेवन के समय सच्चे वैद्य के भाव को नहीं समझ पाता है, प्रायः मन में, वैद्य के प्रति अन्मना

ही बना रहता है । किन्तु जब निरोग हो जाता है, तब वैद्य के गुणों की भूरि – भूरि प्रशंसा करता है; उसके आन्तरिक भाव को समझ जाता है । ठीक उसी प्रकार बाहर से कड़वे लगने वाले भी मेरे उपदेशों का आन्तरिक भाव संसाररूप रोग से व्याकुल प्राणी संसाररूप रोग से जब उन्मुक्त होंगे, तभी समझ सकेंगे, तथा तभी मुझसे आन्तरिक स्नेह करेंगे।"

"सभी लोग, श्रीरूप – रघुनाथ की वाणी का प्रचार बड़े उत्साह के साथ करें । श्रीरूपानुगगणों की पादपद्मों की धूलि होना ही हमारी चरम आकांक्षा की वस्तु है । आप सभी लोग, एक अद्वयज्ञान की अप्राकृत इन्द्रियतृप्ति के उद्देश्य से आश्रय – विग्रह के आनुगत्य (अधीनता) में मिलजुल कर रहें । सभी लोग, केवल एक हरिभजन के उद्देश्य से, इस दो दिन के अनित्य संसार में किसी प्रकार जीवन निर्वाह कर चलें । सैकड़ों विपत्तियाँ, सैकड़ों तिरस्कार और सैकड़ों लाञ्छनों में भी हरिभजन नहीं छोड़ें । जगत् में अधिकतर लोग, निष्कपटकृष्णसेवा की बात को ग्रहण नहीं कर रहे हैं, ऐसा देखकर, किसी प्रकार निरुत्साहित नहीं होवें । अपना भजन, अपना सर्वस्व कृष्णकथा के श्रवण, कीर्तन को नहीं छोड़ें । तृणादपि सुनीच और वृक्ष के समान सहिष्णु होकर, सब समय हरिकीर्तन करते रहें।"

"हम अपनी इस जरद्गव – तुल्य या नश्वर देह को सपार्षद

श्रीकृष्णचैतन्य के संकीर्तनयज्ञ में आहुति देने की इच्छा कर रहे हैं। हम कोई कर्मवीर या धर्मवीर होने के इच्छुक नहीं हैं; किन्तु जन्म-जन्म में श्रीरूपगोस्वामी प्रभु की पादपद्म की धूलि होना ही हमारा स्वरूप और सर्वस्व है।"

"श्रीभक्तिविनोद-धारा कभी भी अवरुद्ध (बन्द) नहीं होगी। आप लोग और भी अधिक से अधिक उत्साह के साथ भक्तिविनोद के मनोऽभीष्ट प्रचारकार्य को दृढ़ता के साथ करते रहें। आप लोगों के बीच में बहुत योग्य और कर्मकुशल-व्यक्ति हैं। हमारी और कोई आकांक्षा नहीं है। हम लोगों की एकमात्र बात यही है कि :-

आददानस्तृणं दन्तैरिदं याचे पुनः पुनः ।
श्रीमद्रूपपदाम्भोजधूलिः स्यां जन्मजन्मनि ।।"

"संसार में रहते समय, नाना प्रकार की असुविधाएँ हैं; किन्तु उन असुविधाओं से घबराना या असुविधाएँ दूर करने का प्रयत्न करना ही हमारा उद्देश्य नहीं है। ये सारी असुविधाएँ दूर होने के बाद हम कौन-सी वस्तु को प्राप्त करेंगे, हमारा नित्य जीवन क्या होगा, ये सब बातें, यहाँ रहने तक हमको जान लेने की आवश्यकता है। इस दुनियाँ में जितने प्रकार की भोग और त्याग की वस्तुएँ हैं, जो हमें चाहिएँ या जो नहीं चाहिएँ, इन दोनों प्रकार की बातों

को समझना आवश्यक है। कृष्णपादपद्म से, हम जितना दूर होंगे, उतना ही यहाँ के भोग और त्याग के विषय में हम लोग आकर्षण और विकर्षण में आकृष्ट होंगे। इस जगत् के भोग और त्याग से दूर रहकर, अप्राकृत श्रीनाम में आकृष्ट होने से श्रीकृष्ण की सेवा के रस की बात समझ में आ सकती है। श्रीकृष्ण की कथा प्रारम्भ में विस्मयजनक (Startling) और जटिल (Perplexing) लगती है, जो समझ में नहीं आती। जो आने वाली समस्याएँ हमारे नित्य प्रयोजन की अनुभूति में बाधा दे रही हैं उन सबको दूर (eliminate) करने के लिए, मनुष्य-नामधारी सभी लोग जानकर या बिना जाने किसी न किसी रूप में प्रयत्न (Struggle) कर रहे हैं। द्वन्द्वातीत होकर, उस नित्य प्रयोजन के राज्य में प्रवेश करना ही हमारा एकमात्र लक्ष्य है।"

"इस दुनियाँ में, हमारा किसी के भी प्रति अनुराग या विराग नहीं है। जगत् की सारी वस्तुएं ही क्षणभंगुर हैं। प्रत्येक के लिए ही, उस परमप्रयोजन को अनिवार्य रूप से ग्रहण करने की आवश्यकता है। आप सब लोग, एक ही उद्देश्य से, एक साथ रहकर, मूल-आश्रयविग्रह के सेवा-अधिकार को प्राप्त करें। जगत् में श्रीरूपानुग चिन्तास्रोत प्रवाहित होता रहे। सप्तजिह्व श्रीकृष्णसंकीर्तन-यज्ञ के प्रति, हम कभी भी वैरागी नहीं बनें। इसमें निरन्तर अनुराग रहने से सर्वसिद्धि होगी। आप लोग

श्रीरूपानुग - जनों के एकान्त आनुगत्य में श्रीरूपरघुनाथ की वाणी को, बड़े उत्साह के साथ और निर्भय होकर प्रचार करें ।"

अप्रकटलीला के दिन, प्रातः श्रीलप्रभुपादजी ने त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज को श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशय के 'श्रीरूपमञ्जरी पद, सेइ मोर सम्पद'; और श्रीपाद नवीनकृष्ण विद्यालंकार प्रभु को, शिक्षाष्टक के 'तुहुँ दयासागर तारयिते प्राणी' - वाले भजनों को कीर्तन करने के लिए कहा।

श्रीभक्तिसुधाकर प्रभु की सेवा से संतुष्ट होकर श्रीप्रभुपादजी ने उनको सन्तोष और कृतज्ञता ज्ञापन किया । पटना के श्रीपाद व्रजेश्वरीप्रसाद प्रभु को सेवा - उत्साह देने की बात भी प्रभुपाद ने कही । अपराह लगभग 4 बजे श्रीपाद सखीचरणराय भक्तिविजय प्रभु को बुलाकर कहा कि, उन्होंने श्रीमायापुर की सेवा के लिए बहुत कुछ किया है, इसलिए वे धन्य हैं । सायंकाल को श्रीपाद भारती महाराज से कहा कि, "आप, काम के व्यक्ति हैं, मिशन को देखते रहें । प्रेम (love) और विरोध (rupture) एक तात्पर्ययुक्त होना अच्छा है । रूप - रघुनाथ के विचार, ठाकुर नरोत्तम ने ग्रहण किये, उसी विचारानुसार चलना अच्छा है।" श्रील प्रभुपादजी ने सबसे कहा कि, "आप लोग, जो यहां पर उपस्थित हैं, और जो नहीं हैं, वे सभी, मेरा आशीर्वाद ग्रहण करें । यह स्मरण रखें कि, भक्त और भगवान् की सेवा प्रचार करना ही

हमारा एकमात्र कृत्य और धर्म है।"

नित्यलीला में प्रवेश

श्रील प्रभुपादजी ने 16 पौष 1343 बंगाब्द, के बृहस्पतिवार कृष्णाचतुर्थी तिथि के शेषभाग में, रात्रि के अन्तिम प्रहर में, लगभग 5.30 बजे श्रीराधागोबिन्द की प्रथम यामसेवा में, अर्थात् निशान्तलीला में प्रवेश किया । जिस निशान्तलीला में श्रीराधामाधव का गाढ़ समाश्लेष, अर्थात् जिस काल में, जिस स्थान में श्रीराधागोविन्द मिलित - तनु श्रीगौरसुन्दर की अप्राकृत नित्यलीला का प्राकट्य है, उसमें ही श्रीवार्षभानवीदयितदास प्रभुवर प्रविष्ट हुए ।

नमस्ते गौरवाणीश्रीमूर्तये दीनतारिणे ।
रूपानुगविरुद्धापसिद्धान्त - ध्वान्तहारिणे ।।

'गौड़ीय' - सेवकों के प्रति प्रभुपाद की अप्रकटकालीन आशीर्वाणी

गौड़ीय - आचार्यभास्कर, गौड़ीयसम्प्रदाय के संरक्षक, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय के नवम - अधस्तनान्वयवर परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीस्वरूपरूपानुगवर्य ॐ विष्णुपाद

श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद ने 4 नारायण, 16 पौष, 450 गौराब्द, 1343 बंगाब्द बृहस्पतिवार की शेषरात्रि में, तदनुसार 1 जनवरी सन् 1937, शुक्रवार को, श्रीश्रीराधागोविन्द की प्रथम यामसेवा में, अर्थात् निशान्तलीला में प्रवेश किया था। उनके श्रीगुरुपादपद्म, अर्थात् हमारे परमगुरुदेव, ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराज भी, निशान्तलीला में प्रविष्ट हुए थे।

श्रीस्वरूप.रूपानुगजनों के निशान्तलीला में ही प्रवेश होने के गंभीर रहस्य का कारण तो, भक्त लोगों के हृदय में, उन्हीं की कृपा से स्फुरित होता है। तब भी यहां पर संकेत मात्र से परम्परा से सुनी बात कही गई है। निशान्तलीला में अप्राकृत राधागोविन्द जी की अप्राकृत गाढ समाश्लिष्टावस्था रहती है, यथा – 'गाढालिगंननिर्भेदमाप्तौ '। श्रीजयदेव सरस्वती ने अपने रचित गीतगोविन्द में 'मेघैर्मेदुरमम्बरम्' – वाले श्लोक में 'नक्तं' के बाद जिस अवस्था का संकेत किया है वही निशान्तलीला में श्रीराधागोविन्द की सम्मिलित अवस्था है, और इधर श्रीश्रीराधागोविन्द – मिलितविग्रह श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु की अप्राकृत नित्यलीला है। इसीलिए उस लीला में ही, श्रीमन्महाप्रभु के निजजन, श्रीवार्षभानवीदयितदास प्रभुपादजी ने प्रवेश किया है।

गौड़ीयवैष्णवों के प्रभु, श्रीस्वरूप और श्रीरूपगोस्वामी के अभिन्न विग्रह, गौड़ीयाचार्य – भास्कर के अप्रकट होने से न केवल गौड़ीयवैष्णव – धर्म के प्रचार – गगन में ही अन्धकार छाया है वरन् सारे विश्व में ही, निष्कपट भागवतसूर्य का प्रकाश आच्छादित होने लग गया है। किन्तु आचार्य – भास्कर श्रील प्रभुपादजी ने जिस अतुलनीय अधोक्षज (इन्द्रियातीत) सेवा की प्रेरणा दी तथा हरिसेवा में जो नित्य नवनवायमान उत्साह दिया है एवं इस संसार में जो दुर्लभ है, उस आचार (आचरण) और प्रचार के आदर्श को अपने निष्कपट अनुगामीजनों के अन्दर सञ्चारित किया है, उससे विश्वास होता है कि श्रीस्वरूप – रूपानुग – भक्तिविनोदधारा दिन – दिन बढ़ती रहेगी। इसके अतिरिक्त और दूसरी कोई बात 'घुणाक्षर' की तरह भी, हृदय में नहीं बैठती है। श्रील प्रभुपादजी ने अपनी अप्रकटलीला के कुछ समय पूर्व, जो आशीर्वाद प्रदान किया है, उससे, उनकी वाणी के कीर्तनसेवा में ही, उनका साक्षात्संग; और शक्तिसंचार हम लोग हर समय प्राप्त कर सकेंगे। एवं निर्भीक कण्ठ से, निरपेक्ष हृदय से और निष्कपट सेवानुगत्यमय चरित्रबल से हमारे प्रभु के प्रभु (श्रीगुरुदेव के प्रभु) श्रीगौरसुन्दर की वाणी को जगत् में स्वयं आचरण कर प्रचार करके उनकी कृपा आशीर्वाद को और भी अधिकमात्रा में ग्रहण कर सकेंगे। यही हमारे लिए कोटि कण्टकाकीर्ण शुद्ध – भक्तिमार्ग में निर्भय होकर विचरण

कर सकने का एकमात्र प्रकाशस्तम्भ है ।

यद्यपि आज, गौड़ीय की लेखनी आश्रयहीन है और भक्ति के सिद्धान्त की परीक्षा करने वाले श्रीस्वरूप-रूपानुगजन के पास साक्षात् रूप में, हम, गौड़ीय के प्रबन्धों की परीक्षा भी नहीं करा सकते, तथा गौड़ीय के प्रबन्धों को बार-बार पढ़ने पर प्रभुपाद हमारे प्रति प्रचुर आशीर्वाद कर रहे हैं, और मन में प्रसन्न हो रहे हैं, यह बात भी हम साक्षात् रूप से प्रत्यक्ष में अनुभव नहीं कर सकते, तब भी, वे अपने हृदय के सिद्धान्त और अभीष्ट में प्रवेश का अधिकार प्राप्त करने के लिए, भक्तिविनोद की वाणी की कृपा से स्नात भक्तिसिद्धान्तविद्-व्यक्ति की दास्यता में हमको सौंप गये हैं, इस आशा से भरोसा होता है कि, हम आश्रयहीन नहीं हुए हैं, और उनके नित्य आशीर्वाद तथा कृपाशक्ति के संचार से भी, हम वंचित नहीं हुए ।

ॐ विष्णुपाद श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर की नित्यलीला प्रवेश के बाद, श्रील प्रभुपादजी ने 'सज्जनतोष्णी'-पत्रिका के सम्पादन करने पर कहा था कि -

"सज्जनतोष्णी का पहले जो उद्देश्य था, अब भी वही रहेगा। नित्यलीला प्रविष्ट ठाकुर महाशय की कृपा से यह पत्रिका, पहले की तरह, हरिकथा द्वारा सब सज्जनों को सन्तोष प्रदान करेगी।"

"कुछ लोग, विषयी लोगों का मतानुगमन करके, शुद्ध-भक्ति को विलुप्त कर देते हैं और मन में समझते हैं कि उनकी भक्तिमार्ग में उन्नति हो गई है । दूसरे कुछ लोग प्राकृत-सम्प्रदायों की कुछ सुविधाएँ देखकर, शुद्धभक्ति के सौन्दर्य को नष्ट कर देते हैं।"

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने 'कल्याणकल्पतरू' में गाया है :-

भक्तिबाधा याहा ह'ते, से विद्यार मस्तकेते,
पदाघात कर अकैतव ।
सरस्वती कृष्णप्रिया, कृष्णभक्ति ताँर हिया,
विनोदेर सेइ से वैभव ।।

अर्थात् जिस विद्या से, भक्ति में विघ्न पहुँचे, उस विद्या के सिर पर निष्कपट होकर, जोर से लात मारो। (क्योंकि) सरस्वती तो श्रीकृष्ण की प्रिया है, और उसके हृदय में कृष्णभक्ति निवास करती है; भक्तिविनोद का तो यही वैभव है ।

श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर जी ने, श्री गौरांग महाप्रभु जी ने तथा श्री भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद जी ने, न तो कभी भक्ति के विरुद्ध बातों का समर्थन ही किया और न ही भक्ति की गरिमा को कम करते हुए उनसे तालमेल रखा । श्रीकृष्ण प्रिय श्री चैतन्य सरस्वती श्री भक्ति

विनोद ठाकुर जी के वैभव हैं अर्थात मूल आश्रय विग्रह के श्री पाद पद्मों के विस्तार हैं - अभिन्न वार्षभानवी भक्ति विनोद जी ने ही गौर वाणी के रूप में विस्तार प्राप्त किया है । उन्हीं वाणी - विनोद व गौर जी की सेवा ही गुरुदेव जी के अनुगत्य में श्रीराधागोविन्द जी की सेवा है तथा यही श्री रूप मंजरी के आनुगत्य में गोपीनाथ जी की सेवा है ।

भक्ति के दीपक के प्रकाश रूपी विनोद - वाणी ने गौर महाप्रभु जी के कुंज का पथ दिखलाकर, हमारे समान, अनादि बहिर्मुख जीवों के कर्ण रूपी प्रांगण में गौर - सरस्वती जी की इस आदेशरूपी वाणी को प्रकट किया है कि ''श्रीस्वरूप - रूपानुग दास्ये थाकिया त' सदा लह नाम'' - (अर्थात् श्रीस्वरूप - रूपानुग के दास्य में रहकर, तुम सब, सदा नाम लेना) जिससे हम लोग, एक साथ एक प्राण से उस वाणी - कुंज के, कृष्णाभिन्न गौरगुणधाम के संकीर्तन में, अप्राकृत रूचि विशिष्ट हो सकें । स्वरूप - रूपानुगवर आचार्यों के श्रीचरणानुग समस्त वैष्णवचरणों में, आज हम इसी आशीर्वाद की प्रार्थना करते हैं ।

श्रील प्रभुपादजी की उपदेशावली

1. श्रीमन्महाप्रभु के शिक्षाष्टक में लिखित 'परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्' ही गौड़ीय मठ का एकमात्र उपास्य है ।

('पत्रावली' 3रा खण्ड, पृ. 38)

2. विषयविग्रह श्रीकृष्ण ही एकमात्र भोक्ता हैं, बाकी सब, उनके भोग्य हैं । (पृ. 58)

3. हरिभजनकारी के अतिरिक्त सभी मूर्ख और आत्मघाती हैं । (पृ. 76)

4. सहनशीलता की शिक्षा प्राप्त करना, मठवासी का एक प्रधान कर्तव्य है । (पृ. 88)

5. श्रीरूपानुग भक्तगण, अपनी शक्ति के प्रति कोई आस्था स्थापित न करके, मूल - कारणपर सारी महिमा का आरोप करते हैं । (पृ. 89)

6. श्रीहरिनाम - ग्रहण और भगवान् का साक्षात्कार, दोनों एक ही हैं । (2रा ख., पृ. 3)

7. जो पांच मिशाल अथवा पंचदेवोपासना करते हैं, वे लोग, भगवान् की सेवा नहीं कर सकते । (पृ. 13)

8. मुद्रणालय की स्थापना, भक्तिग्रन्थों का प्रचार और नाम के प्रचार से ही, श्रीमायापुर की वास्तविक सेवा होगी । (पृ. 51)

9. सब, परस्पर मिलकर तथा एक उद्देश्य लेकर, हरि - सेवा

करें ।

(पृ. 53)

10. जहाँ हरिकथा, वहीं तीर्थ हैं । (2रा खं., पृ. 82)

11. हम लोग सत्कर्मी, कुकर्मी या ज्ञानी, अज्ञानी नहीं हैं । हम तो, निष्कपट - हरिजनों के पादत्राणवाही 'कीर्तनीय: सदा हरि:' मंत्र में दीक्षित हैं ।

(पृ. 104)

12. दूसरे के स्वभाव की निन्दा न करके, अपना ही सुधार करना, यही मेरा उपदेश है ।

(पृ. 106)

13. श्रीमन्महाप्रभु की नीति के अन्दर, क्षत्रियनीति, वैश्य, शूद्र और यवननीति नहीं दिखलाई पड़ती । उनके प्रचारित वाक्य से मालूम होता है कि, उन्होंने ऋषिनीति का सर्वश्रेष्ठ शृंग (शिखर) अवलम्बन किया था । हम भी, उसी पद का अनुसरण करके, ब्रह्मनीति भागवतधर्म का अवलम्बन करेंगे ।(पहला खं. 27)

14. कृष्णविरह - कातर व्रजवासियों की सेवा करना ही हमारा परमधर्म है ।

(पृ. 66)

15. महाभागवत्, सर्वत्र गुरु दर्शन करता है; इसलिए महाभागवत ही, एकमात्र जगद्गुरु है। (पृ. 58)

16. यदि श्रेय:पथ (नित्यकल्याण मार्ग) चाहूँ तो, असंख्य लोगों के विचारों को परित्याग करके, श्रौतवाणी का ही, श्रवण

करूँगा । (भाषण 22 आषाढ़, 1333 बंगाब्द)

17. श्रेय: (नित्यमंगलमय) वस्तु ही, प्रिय होनी उचित है ।

(भाषण 2रा कार्तिक 1333 बंगाब्द)

18. रूपानुगजन के दासत्व बिना, अन्तरंगभक्त की और कोई लालसा नहीं है । (स. तो. 19/10/380)

19. वैष्णवगुरु की आज्ञा - पालन करने पर, यदि मुझको 'दाम्भिक' होना पड़े, पशु होना पड़े और अनन्तकाल तक नरक में जाना पड़े तो, मैं अनन्तकाल के लिए, इस प्रकार के नरक में चला जाऊँगा । दुनियाँ के और सब लोगो के विचारों को, श्रीगुरुपादपद्म की शक्ति से मुष्टिकाघात द्वारा विदूरित करूँगा । मैं, इतना बड़ा दाम्भिक हूँ । (भाषण 25 आषाढ़, 1344 बंगाब्द)

20. निर्गुण - वस्तु का साक्षात्कार करने के लिए, एकमात्र कान को छोड़कर, और कोई उपाय नहीं है । (18 फा., 1334 बंगाब्द)

21. जिस क्षण, हमारा रक्षाकर्ता नहीं रहेगा, उसी क्षण हमारी निकटवर्तिनी सब वस्तुएँ शत्रु होकर हम पर आक्रमण करेंगी । सच्चे साधु की हरिकथा ही, हमारी रक्षक है ।

22. खुशामद करने वाला गुरु या प्रचारक नहीं होता ।

(12 चैत्र, 1334 बंगाब्द)

23. पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि लाखों योनियों में रहना अच्छा है; तथापि कपटता का आश्रय लेना अच्छा नहीं है । कपटरहित - व्यक्ति का ही मंगल होता है ।

(18 कार्तिक 1334 बंगाब्द)

24. सरलता का दूसरा नाम ही वैष्णवता है, परमहंस वैष्णवदासगण सरल होते हैं, इसलिए वे ही, सर्वोत्कृष्ट ब्राह्मण हैं ।

25. जीव की बहिर्मुख रुचि को बदलना ही, सर्वापेक्षा दयालु व्यक्तियों का एकमात्र कर्तव्य है । माया के जाल से, एक जीव की रक्षा कर सको तो, अनन्त - कोटि अस्पताल बनाने की अपेक्षा, उससे अनन्तगुण परोपकार का कार्य होगा ।

26. गौड़ीय मठ का निःस्वार्थ - दयाशील प्रत्येक व्यक्ति, इस मनुष्य समाज में से, प्रत्येक व्यक्ति के चित्शरीर के पोषण के लिए, दो सौ गैलन रक्त खर्च करने के लिए प्रस्तुत रहे ।

(12 चैत्र 35)

27. गौड़ीय मठ के सेवकों के रात - दिन के परिश्रम से जो अर्थ संग्रह होता है, उसकी एक - एक पाई, जगत् का इन्द्रियतर्पण बन्द करके, कृष्णइन्द्रियतर्पण की कथा में खर्च होता है ।

28. जिनकी आत्मविद् के पास, स्वतः भगवत्सेवा की वृत्ति, सब समय जागृत नहीं हुई, उन सब लोगों का संग कितना ही प्रीतियुक्त

क्यों न हो, परित्याग करना चाहिए ।

(पत्रावली प्रथ म खण्ड, 73 पृ.)

29. केवल आचाररहित प्रचार, कर्म के अन्तर्गत है ।

(भाषण 23 अक्तूबर 1936)

30. भोगी के भोगों के लिए ईधन जोड़ने और ज्ञानी के विषय से विदग्ध विचारों का अनुगमन करने के लिए, हमारे मठ की स्थापना नहीं हुई है । केवल एक - दो रुपयों से, मठ का उपकार समझना, हमारा लक्ष्य नहीं है । परन्तु यदि किसी का भी उपकार कर सको तो, तभी वह व्यक्ति, कृष्णसेवामय मठ की सेवा करेगा । (पत्रावली 3रा खण्ड 70)

31. श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जी ने 'श्रीनामहट्ट' के झाड़ूदाररूप से, अपना परिचय देकर, जो अप्राकृतलीला को प्रकट किया है । यह ठीक है कि उनकी प्रपंच को मार्जन करने की इस सेवा के उपकरण के रूप में हमारे जैसे सैंकड़ों लोगों द्वारा महाजनानु गमन एवं बहिर्मुखसंग का परित्याग करने का कार्य, जगत् का अप्रिय होने पर भी, हम लोगों का वास्तविक कल्याण करेगा । (गौड़ीयकण्ठहार - भूमिका)

32. भगवान् और भक्त की सेवा करने से ही, गृहव्रत - धर्म क्षीण होता है । (पत्रावली 3रा ख. 74)

33. श्रीकृष्ण के अतिरिक्त, विषय आदि का संग्रह करना ही, हमारी मूल - व्याधि है । (पृ. 83)

34. हम लोग जगत् में लकड़ी, पत्थर के कारीगर बनने नहीं आये हैं । हम तो, श्रीचैतन्यदेव की वाणी के वाहकमात्र हैं ।

(8 नवम्बर 1936)

35. हम लोग, इस जगत् में अधिक दिन नहीं रहेंगे, हरिकीर्तन करते - करते हमारा देहपात होने से ही, इस देह - धारण की सार्थकत्ता होगी । (8 नवम्बर 1936)

36. श्रीचैतन्यदेव के मनोऽभीष्ट संस्थापक, श्रीरूपगोस्वामी के चरणकमलों की धूलि ही, हमारे जीवन की एकमात्र अभिलाषा की वस्तु है । (8 नवम्बर 1936)

श्रीलप्रभुपाद के श्रीकरकमलांकित 'गौड़ीय' प्रबन्ध में उनका मनोऽभीष्ट और आशीर्वाणी

'गौड़ीय' पत्र का, आज 15वें वर्ष में पदार्पण हा रहा है । जिस प्रकार भगवान् राम की सेवा में लक्ष्मण ने 14 वर्ष तक नियमपूर्वक व्रतपालन और उद्यापन किया, उसी प्रकार गोलोक के अपूर्वसौन्दर्य का कीर्तन करते - करते, गौड़ीय को भी 14 वर्ष पूरे हो गये हैं ।

15 वर्ष के गौड़ीयपत्रिका रूपी वृक्ष के मंगलप्रद फलों का आस्वादनकर, पाठकवृन्द और श्रोतागण, वास्तविक आनन्द को प्राप्त करें । श्रीमन्महाप्रभु जी की कृपा से, अमेरिका में भी, गौड़ीय के विचार का प्रसार हो, उनके चरणों में ऐसी कामना करनी चाहिए । जब उनकी कृपा से यूरोप में, और विशेषरूप से लन्दन में, गौड़ीय की वाणी का प्रचार हुआ है, तब फिर अमेरिका में क्यों नहीं होगा ?

श्रीनरोत्तमदास ठाकुर महाशय विरचित 'प्रार्थना' का गंभीर मर्म, एवं ठाकुर श्रीभक्तिविनोद जी के प्रचारित भजन, गीति, परमार्थिक साहित्य आदि का बंगाल, उड़ीसा और आसाम में, अधिक से अधिक संख्या में प्रचार होवे । तामिल भाषा में 'शरणागति', आन्ध्रभाषा में 'श्रीचैतन्यशिक्षामृत' का प्रचार हो जाने से, वहां के लोगों को निश्चय ही, पारमार्थिक - पथ का सन्धान मिलेगा । गौड़ीय त्रिदण्डिसन्यासीगण, गौड़ीय का आनन्दवर्धन करें । ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ ये सभी, गौड़ीय लोग, श्रीमन्महाप्रभुजी की सेवा में दृढ़भाव प्राप्त करें ।

"पृथिवीते यत कथा धर्म नामे चले ।
भागवत कहे ताहा परिपूर्ण छले।।"

अर्थात् इस दुनियाँ में जितनी भी बातें 'धर्म' के नाम से चलती

हैं, उन्हें यदि भागवत के विचार से देखें तो सब छल - कपटता से परिपूर्ण हैं। इस वाणी से, समस्त मनुष्य जाति लाभ उठाकर यथार्थ धर्मपथ का अनुसरण करे। जैवधर्म और श्रीचैतन्यशिक्षामृत - ये दो ग्रन्थ, विश्व के विद्धानों की आराध्य वस्तु होवें ताकि इनके अनुसार, वे, धर्म का ठीक - ठीक पालन कर सकें। सभी लोग पक्षपात छोड़कर यथार्थ धर्म की विजय - पताका को लेकर श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु, श्रीभगवन्नाम और श्रीमद्भागवतग्रन्थ - इन तीनों को, एक ही वस्तु समझ सकें। निरन्तर भागवत - श्रवण और कीर्तन तथा इसकी निरन्तर स्मृति, गौड़ीय और विश्ववासियों के अनुशीलन की वस्तु बने। श्रीरूपानुग वैष्णवों के पारमार्थिक श्रीगौड़ीय मठ नित्यकाल श्रीमन्महाप्रभुजी की सेवा के लिए स्थित रहें। दुनियाँ में जितनी भी छल - कपट की आंधी है, वे सब, 'भागवत रूपी सूर्य की एक किरण को प्राप्त कर अपने आप मानव हृदय से दूर हो जायेगी।

श्रील प्रभुपाद जी के प्रतिष्ठित 'गौड़ीय' साप्ताहिक पत्र में प्रभुपाद जी द्वारा लिखित कुछ लेख

प्रथम वर्ष (1922 - 27) - श्रीकृष्णजन्म, मधुरलिपि, लोकविचार, परमार्थ, पुराण - संवाद, नीतिभेद, रूचिभेद, श्रीजीव

गोस्वामी, गौड़ीये - प्रीति, दुर्गापूजा, शारदीया वाहन, जिस तरफ हवा, मरू में सेंचन, स्मार्त्त के काण्ड, विचार - अदालत, सेवापर नाम, त्रिदिण्ड भिक्षु गीति, श्रीमध्व - जन्मतिथि, वर्णाश्रम, अप्रकट - तिथि, ब्रज में वानर, सामाजिक भेद, च्युतगोत्र, नृमात्राधिकार, पेशेदार श्रोता, वैष्णव और अभृतक, दीक्षाविधान, आसुरिक प्रवृत्ति, श्रीबलदेव विद्या - भूषण, सदाचार स्मृति, पंचरात्र, निगम और आगम, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, वैष्णव - दर्शन, वर्णान्तर, परिचय में प्रश्न, असत्य में आदर, अयोग्य सन्तान, अशुद्र दीक्षा, पूजाधिकार, अनात्मज्ञान, निज - परिचय, वंश - प्रणाली, गौर - भजन, धान्य और श्यामा, तृतीय जन्म, अवैध साधन, वैध - ब्राह्मण, प्रचार में भ्रान्ति, भगवत - श्रवण, मठ क्या है ? अधि कार है, श्रीधरस्वामी, व्यवहार, कमिना, शक्तिसंचार, वर्षपरीक्षा, एकजाति, इहलोक, परलोक।

2रा वर्ष (1923 - 24) - वर्ष प्रवेश, ब्रह्मण्यदेव, गुरुब्रुव, कीर्त्तन में विज्ञान, आविर्भाव तिथि, मठ का उत्सव, दीक्षित, गोस्वामीपाद, कृष्ण में भोगबुद्धि, गौड़ीय - भजन - प्रणाली, श्रीविग्रह, जाबाला - कथा स्मार्त्त और वैष्णव, सामाजिक अहित, वास्तविक भोक्ता कौन ? गौड़ीय का वेष, प्रतिसम्भाषण, सूत्रविद्वेष, सामयिक प्रसंग (42 - 44, 49 - 50 संख्या आंशिक)।

3रा वर्ष (1924 - 25) - गौड़ीय हस्पताल, सामयिक प्रसंग (7म संख्या), भागवत विवृति, श्रीकुलशेखर।

4था वर्ष (1925 - 26) - मधुर लिपि, श्रीव्यासपूजा में अभिभाषण, प्राप्तपत्र (रहस्य), अश्रौत दर्शन, वेदान्त तत्त्वसार का उपोद्घात ।

5वां वर्ष (1926 - 27) - पत्रावली, दर्शन में भ्रान्ति (38 संख्या), वैष्णव - श्राद्ध - व्यवस्था (41 संख्या), आलोचक की आलोचना, भोलेपन का स्वरूप ।

6वां वर्ष (1927 - 28) - मान - दान और हानि, प्रतिनिवेदन, परमार्थ, गौड़पुर असली और नकली, अहैतुक धामसेवक, सर्वप्रधान विवेचना का विषय, भाई कुतार्किक, कृष्णभक्त निर्बोध नहीं है, प्राचीन कुलिया शहर नवद्वीप, कपटता दरिद्रता का मूल, एकश्चन्द्र,. पुण्यारण्य, मूल में ही दोष, नीलाचल में श्रीमद् सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ।

7वां वर्ष (1928 - 29) - सामयिक प्रसंग (पहली संख्या), विरक्त घृणित नहीं हैं, मैं यह नहीं हूँ मैं वही हूँ, व्यवसायी लोगों की कपटता, हंस जाति का इतिहास, पत्रावली, मन्त्रसंस्कार, भोग और भक्ति, सुनीति और दुर्नीति, कृष्णतत्त्व, श्रीधाम - विचार, एकायनश्रुति और उसका विधान, प्रतीच्ये कार्ष्ण - सम्प्रदाय,

विज्ञप्ति, पंचरात्र, नीलाचल में श्रीमद्‌भक्तिविनोद, तीर्थ पण्ढरपुर, माणिक्यभास्कर, वैष्णवस्मृति, महान्त - गुरुतत्त्व (42 संख्या) वैष्णव पार्लियामैन्ट, अलौकिक भक्तचरित्र (48 संख्या) ।

8वा वर्ष (1929 - 30) - श्रीधाम मायापुर कहाँ है ? गौड़ाचल में श्रील भक्तिविनोद, सात्वत और असात्वत, भारत और परमार्थ, परमार्थ का स्वरूप, पत्रावली, व्यास पूजा में प्रत्यभिभाषण, प्राचीन कुलिया में द्वारभेट, शिक्षक और शिक्षित, विषयी का कृष्णप्रेम, आत्महारा पाठक, आश्रम का वेष ।

9वां वर्ष (1930 - 31) श्रीभक्तिमार्ग, पारमार्थिक सम्मिलनी के सभापति का अभिभाषण, भवरोगी का हस्पताल, जगबन्धु का कृष्णानुशीलन, पत्रावली ।

10वां वर्ष (1931 - 32) - गौड़ीय - महिमा, पत्रावली, सत् शिक्षार्थी का विवेच्य, निम्बभास्कर, अज्ञ और विज्ञ की नर्मकथा, वैष्णव - वंश, वार्षिक अभिभाषण (व्यास - पूजा में मद्रास से भेजा गया), कुन्फुँचों के विचार पत्र ।

11वां वर्ष (1932 - 33) - एकादश - प्रारम्भिका, पत्रावली (1), वैष्णव में जातिबुद्धि, माधुकर भैक्ष्य, प्रदर्शक का अभिभाषण, पत्रावली (2) दृष्टि वैक्लव्य (28 सं.), मेरी बात, सत् शिक्षा - प्रदर्शनी (35 संख्या), कृष्णभक्ति ही शोककाम - जड़ता

का अपहरण, कृष्ण में मतिरस्तु ।

12वां वर्ष (1933 - 34) - कृपाशीर्वाद ।

13वां वर्ष (1934 - 35) - स्व - पर - मंगल, वैकुण्ठ और गुणजात जगत्, भोगवाद और भक्ति।

14वां वर्ष (1935 - 36) - नववर्ष, पत्रावली, बड़ा मैं और अच्छा मैं, तद्वन वास्तववस्तु ।

15वां वर्ष (1936 - 37) - वर्षारम्भ, पत्र ।

इसके अलावा श्रील प्रभुपाद जी द्वारा लिखित और भी लेख, पत्र, आत्मचरित, दिनपंजी, व्याख्या, विवृति, ग्रन्थ और साहित्य, गौड़ीय कार्यालय में संरक्षित हैं, 'नदीया - प्रकाश' और 'हार्मोनिस्ट' पत्र में लिखित श्रील प्रभुपाद जी के बहुत - से लेख हैं ।

प्रभुपाद के सम्पादित और प्रवर्त्तित सामयिक पत्र

(1) 'सज्जनतोषणी' या 'The Harmonist' - श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी के अप्रकट होने के बाद सन् 1915, मार्च से श्रील सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद द्वारा पुनः सम्पादन होता रहा ।

(2) 'गौड़ीय' - बंगाब्द 1329, 2रा भाद्र, 19 अगस्त 1922 कलकत्ता श्रीगौड़ीय मठ से साप्ताहिक पारमार्थिक पत्रिका ।

(3) 'दैनिक नदीया प्रकाश' - बंगाब्द 1333, फाल्गुन, मार्च 1926 में सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी द्वारा श्रीधाम मायापुर से

प्रकाशित । यह पहले सप्ताह में अंग्रेज़ी और बंगला भाषा में सप्ताह में दो बार प्रकाशित होती थी, बाद में बंगाब्द 1334, 15 फाल्गुन, 28 फरवरी 1928 से श्रील प्रभुपाद जी की इच्छा अनुसार 'नदीया प्रकाश' दैनिक पत्र रूप से प्रकाशित हुई ।

(4) 'भागवत' - श्रीनैमिषारण्य श्रीपरमहंस मठ से बंगाब्द 1338, सन् 1931 में हिन्दी भाषा में ।

(5) 'कीर्तन - बंगाब्द 1339, सन् 1932, असमीया भाषा में आसाम ग्वालपाड़ा प्रपन्नाश्रम से प्रकाशित ।

(6) 'परमार्थी - कटक श्रीसच्चिदानन्द मठ से उड़ीया भाषा में बंगाब्द 1339, सन् 1932, पाक्षिक पत्रिका ।

(1) 'वृहष्पकि' 'Scientific Indian' - बंगाब्द 1303, कार्त्तिक, 1896, अक्तूबर के महीने में गणित और फलित ज्योतिष - विषयक पत्रिका पहली बार प्रकाशित हुई ।

(2) 'ज्योतिर्विद्' - बंगाब्द 1308 साल के वैशाख, सन् 1901 के अप्रैल मास में गणित और फलित ज्योतिष मासिक पत्रिका माणिकतला स्ट्रीट, कलकत्ता से पहली बार प्रकाशित हुई ।

(3) 'निवेदन' 'Sign Board' - साप्ताहिक पत्र, 1899 खृष्टाब्द से प्रचारित हुई ।

प्रभुपादजी के कीर्तन का अंग मुद्रायन्त्र या 'वृहत् मृदंग'

(1) 'भागवत - यन्त्र' (कृष्णनगर) - सन् 1931 में प्रभुपाद जी के अनुभाष्य के साथ श्रीचैतन्यचरितामृत प्रकाशित हुआ। जनवरी 1914 को भागवत - यन्त्र व्रजपत्तन नामक स्थान पर स्थानान्तरित हो गया। जुलाई 1915 में भागवत - यन्त्र पुनः कृष्णनगर में स्थानान्तरित हो गया और (भागवत - प्रैस) के नाम से परिचित हुआ। (2) 'गौड़ीय प्रिटिंग वर्क्स (कलकत्ता) - सन् 1923। (3) 'नदीया - प्रकाश यन्त्रालय' (श्रीधाम मायापुर) - सन् 1928। (4) 'परमार्थी प्रिटिंग वर्क्स (कटक) - सन् 1936।

श्रील प्रभुपाद जी द्वारा प्रकाशित शुद्धभक्तिमठ समूह

(1) श्रीचैतन्य मठ (मूलमठ), श्रीधाम मायापुर, (नदीया), (2) श्रीगौड़ीय मठ, पोस्ट बागबाजार, कलकत्ता, (3) श्रीयोगपीठ - श्रीमन्दिर, (नदिया), (4) श्रीअद्वैत - भवन, (5) श्री श्रीवास - अंगन, (6) काजि का समाधिपाट, (7) श्रीमुरारिगुप्त का श्रीपाट, (8) परविद्यापीठ, (9) ठाकुर भक्तिविनोद इन्स्टीच्युट सन् 1931, (10) अनुकूल कृष्णानुशीलनागार या ठाकुर भक्तिविनोद रिसर्च इन्स्टीच्युट, श्रीधाम मायापुर, (11) जयदेव - गौड़ीय मठालय, श्रीनाथपुर (नदिया), (12) स्वानन्दसुखद कुंज, श्रीगोद्रुम, पोस्ट स्वरूपगंज (नदिया), (13) सुवर्णबिहार गौड़ीय मठ (नदिया), (14) श्रीकुंजकुटीर, कृष्णनगर, (नदिया),

(15) तेतिया कुंजकानन, पो: कृष्णनगर (नदिया), (16) श्रीभागवत - आसन, कृष्णनगर (नदिया), (17) श्रीगौर - गदाधर मठ चाँपाहाटी, पो: समुद्रगड़ (वर्धमान), (18) श्रीमोदद्रुम - छत्र माउगाछि, पो: जान्नगर (वर्धमान), (19) श्रीसार्वभौम - गौड़ीय मठालय, विद्यानगर, (वर्धमान), (20) श्रीरूद्रद्वीप - गौड़ीय मठ, पो: श्रीमायापुर (नदिया), (21) श्रीएकायन मठ गोविन्दपुर, पो: हाँसखालि (नदिया), (22) श्रीमहेश पण्डित का पाट, काँठालपुलि, पो: चाकदह (नदिया), (23) श्रीमाध्व गौड़ीय मठ, ढाका, (24) श्रीगोपालजी मठ, कमलापुर, पो: ढाका, (25) श्रीगदाइगौरांग मठ, पो: बालियाटि (ढाका), (26) श्रीजगन्नाथ गौड़ीय मठ, बाड़ाबाजार, पो: मैमनसिंह, (27) आमलायोड़ा - प्रपन्नाश्रम मठ, पो: राजवाँध (वर्धमान), (28) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, डुमुरकोन्दा, पो: चिरकुण्डा (मानभूम), (29) श्रीभागवत जनानन्द मठ, चिरुलिया, पो: वासुदेवपुर, (मेदिनीपुर), (30) अमर्षि गौड़ीय मठ पो: अमर्षि (मेदिनीपुर), (31) ब्राह्मण पाड़ा - प्रपन्नाश्रम मठ, पो: माजु (हावड़ा), (32) दार्जलिंग गौड़ीय मठ, आगष्टभिला, (दार्जलिंग), (33) राणाघाट गौड़ीय मठासन, (34) पुँड़ा श्री गौड़ीय मठ, (चबिश परगाणा), (35) ग्वालपाड़ा प्रपन्नाश्रम, (आसाम), (36) सरभोग गौड़ीय मठ, पो. चक्चका, कामरूप (आसाम), (37) श्रीपुरुषोत्तम मठ

चटक पर्वत, पुरी, (38) भक्तिकुटी, स्वर्गद्वार, पुरी, (39) त्रिदण्डि गौड़ीय मठ, पो: भुवनेश्वर, (पुरी), (40) श्रीब्रह्म गौड़ीय मठ, अलवर नाथ, पो: ब्रह्मगिरि (पुरी), (41) सच्चिदानन्द मठ, वाँशगलि, पो: उड़िया बाजार, (कटक), (42) बालेश्वर - गौड़ीय मठ - पीठ, (43) श्रीरामानन्द गौड़ीय मठ, पो: कभुर, पश्चिम गोदावरी, (44) मद्रास - गौड़ीय मठ, पो: रयापेट्टा, मद्रास, (45) पटना गौड़ीय मठ, पो: बाँकीपुर, कदमकूया, (46) दानापुर गौड़ीय मठालय, (47) गया गौड़ीय मठ, रम्णा रोड, (गया), (48) श्रीसनातन गौड़ीय मठ, 42 फरिदापुर, बनारस - सिटी, (49) श्रीरूप गौड़ीय मठ, इलाहबाद, (उत्तरप्रदेश), (50) श्रीपरमहंस मठ, पो: निमसार (नैमिषारण्य), सीतापुर, (51) भागवत - पाठशाला, (नैमिषारण्य), (52) श्रीव्यास गौड़ीय मठ, कुरुक्षेत्र, थानेश्वर, करनाल, (53) श्री सारस्वत गौड़ीय मठ, हरिद्वार, सहारनपुर (हुय. पि), (54) श्रीकृष्ण चैतन्य मठ, पुराण शहर, श्रीधाम वृन्दावन, मथुरा, (55) श्रीमथुरा - गौड़ीय मठालय, विश्राम घाट, मथुरा, (56) श्रीकुंजबिहारी मठ, श्रीराधाकुण्ड, (मथुरा), (57) श्रीब्रजस्वानन्द सुखदकुंज, (राधाकुण्ड), (58) श्रीराधा कुण्ड गोष्ठबाटी (श्रीराधाकुण्ड), (59) श्रीसंकेतबिहारी मठ, पो: बरसाना, (मथुरा), (60) श्रीनन्दग्राम गौड़ीय मठालय (मथुरा), (61) बरसाना - गौड़ीय मठालय (मथुरा), (62)

श्रीगोष्ठबिहारी मठ, शेषशायी, पो: होडोल, जिला गुढ़गाँव, (पंजाब), (63) दिल्ली गौड़ीय मठ, 43 हनुमान रोड, (नई दिल्ली), (64) बाम्बे गौड़ीय मठ, कल्याणदास बिल्डिंग, ग्वालियर, टैंक रोड, (65) लण्डन गौड़ीय मठालय 3 ग्लास्टर हाऊस, कर्णुआल गार्डनस, एस, डब्लियू - 7, लण्डन, (66) रेंगुन गौड़ीय मठालय, 224 लुइस स्ट्रीट, रेंगुन।

श्रील प्रभुपाद जी के प्रतिष्ठित श्रीचैतन्य पादपीठ

(1) मन्दार - श्रीचैतन्यपादपीठ, 27 आश्विन, 1336; 13 अक्तूबर सन् 1929 में प्रकाशित।

(2) कानाइ नाटशाला - श्रीचैतन्यपादपीठ, 29 आश्विन, 1336; 15 अक्तूबर सन् 1929 में प्रकाशित।

(3) याजपुर - श्रीचैतन्यपादपीठ, 9 पौष, 1337, 25 दिसम्बर, सन् 1930 में प्रकाशित।

(4) कूर्मक्षेत्र - श्रीचैतन्यपादपीठ, 10 पौष, 1337; 26 दिसम्बर, सन् 1930 में प्रकाशित

(5) सिंहाचल - श्रीचैतन्यपादपीठ, 11 पौष, 1337; 27 दिसम्बर, सन् 1930 में प्रकाशित।

(6) कभुर - श्रीचैतन्यपादपीठ, 13 पौष, 1337; 29 दिसम्बर, सन् 1930 में प्रकाशित ।

(7) मंगलगिरि - श्रीचैतन्यपादपीठ, 15 पौष, 1337; 31 दिसम्बर, सन् 1930 में प्रकाशित ।

(8) छत्रभोग - श्रीचैतन्यपादपीठ, 19 चैत्र, 1340; 2 अप्रैल, सन् 1934 में प्रकाशित ।

श्रील प्रभुपादजी द्वारा प्रतिष्ठित कुछ प्रचार - प्रतिष्ठान, सभा, सम्मिलनी और संघ

(1) श्रीभक्तिविनोद - आसन, नवम्बर 1918 में कलकत्ता में प्रकाशित । (2) श्रीविश्ववैष्णव - राजसभा, श्रीसनातन - श्रीरूपादि - गोस्वामिवर्ग की प्रतिष्ठित उक्त सभा श्रील प्रभुपाद जी द्वारा 5 फरवरी 1919 को पुनः कलकत्ता में प्रकाशित । (3) श्रीसारस्वत आसन, जुलाई सन् 1924 में प्रकाशित । (4) गौड़ीय - सम्पादक संघ, 1925 में 15 अगस्त को स्थापित । (5) निखिल - वैष्णव - सम्मिलनी, 18 मार्च, 1927, गौरपूर्णिमा में श्रीधाम मायापुर में आहुत । (6) पारमार्थिक आलोचना सम्मिलनी, 28 अक्तूबर 1930 से 9 दिन तक कलकत्ता श्रीगौड़ीय मठ में आहुत । (7) लण्डन - गौड़ीय - मिशन सोसायटी, 29 अप्रैल 1934, भारतसचिव लर्ड जेटलैन्ड के सभापतित्व में यूरोप

में प्रचारानुकूल्य के कारण लण्डन में स्थापित, (8) श्रीब्रज़धाम - प्रचारिणी सभा, 9 अक्तूबर 1935 को श्रीराधाकुण्ड में प्रकाशित । (9) अनुकूल - कृष्णानुशीलनागार, 12 फरवरी 1936 को श्रीमायापुर में प्रकाशित । (10) दैव - वर्णाश्रम - संघ, 12 फरवरी 1936 को श्रीमायापुर में प्रकाशित ।

श्रील प्रभुपाद जी द्वारा प्रदर्शित पारमार्थिक प्रदर्शनी समूह

(1) कुरुक्षेत्र - गौड़ीय प्रदर्शनी, 8 नवम्बर, 1928 में उदघाटित । (2) श्रीधाम - मायापुर - नवद्वीप प्रदर्शनी, 9 फरवरी, 1930 में उदघाटित । (3) कलकत्ता - गौड़ीय मठ में पारमार्थिक - प्रदर्शनी, 5 नवम्बर, 1930 में उद्घाटित । (4) कलकत्ता - श्रीगौड़ीय मठ में सत् शिक्षा - प्रदर्शनी, 6 सितम्बर 1931 में उद्घाटित । (5) ढाका - सत् शिक्षा प्रदर्शनी, 6 जनवरी, 1933 में उद्घाटित । (6) कुरुक्षेत्र गौड़ीय प्रदर्शनी 21 अगस्त, 1933 में उद्घाटित । (7) पटना - पारमार्थिक - प्रदर्शनी, 14 नवम्बर, 1933 में उद्घाटित । (8) काशी - पारमार्थिक - प्रदर्शनी, 24 दिसम्बर, 1933 में उद्घाटित । (9) प्रयाग - सत् शिक्षा - प्रदर्शनी, 7 जनवरी, 1936 में उद्घाटित । (10) कुरुक्षेत्र - सत् शिक्षा - प्रदर्शनी, 19 जून 1936 में उद्घाटित ।

श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज

"नम ॐ विष्णुपादाय रूपानुगप्रियाय च ।
श्रीमते भक्तिदयित माधव स्वामि नामिने ।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे ।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः ।।
सतीर्थ प्रीति सद्धर्म गुरु प्रीति प्रदर्शिने ।
ईशोद्यान प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नमः ।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार सुकीर्तये ।
सारस्वत गणानन्द सम्वर्द्धनाय ते नमः ।।"
"श्रीभक्तिदयित नामाचार्य वर्यम् जगद्गुरुम् ।
वन्दे श्रीमाधवं देवं गोस्वामी प्रवरं प्रभुम् ।।"

विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ एवं श्री गौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता, नित्यलीला प्रविष्ट परमहंस ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' जी के प्रियतम पार्षद, श्रीकृष्णचैतन्य-आम्नाय धारा के दशम् अधस्तन एवं अखिल

भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता, अस्मदीय गुरु पादपद्म, परमहंस परिव्राजकाचार्य, ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी, शुक्रवार, 18 नवम्बर, सन् 1904 (3 अग्रहायण 1311 बंगाब्द) की एक परम पावन तिथि अर्थात् उत्थान एकादशी को प्रातः 8 बजे पूर्व बंगाल (वर्तमान बंगला देश) में फरीदपुर ज़िले के कांचन-पाड़ा नामक गाँव में एक दिव्य बालक के रूप में प्रकट हुए ।

जिस प्रकार 'उत्थान एकादशी' के दिन परम करुणामय, परमानन्द स्वरूप श्रीहरि की जागरणलीला सब जीवों के लिए मंगलदायक और आनन्दवर्धक होती है, उसी प्रकार त्रिताप से पीड़ित जीवों के सौभाग्य से श्रीहरि के प्रियतम जन एवं करुणामय मूर्ति हमारे परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव भी सब जीवों के वास्तविक मंगल के लिए एवं उनके उल्लास वर्धन हेतु 'उत्थान एकादशी' को आविर्भूत हुए । ये ही नहीं, वैराग्य की पराकाष्ठा की मूर्ति, हमारे परमेष्ठी गुरुपाद पद्म परमहंस-वैष्णव श्रील गौर किशोर दास बाबा जी महाराज जी ने भी इस शुभ तिथि को ही भगवान् की नित्यलीला में प्रवेश किया था-ये भी अति विशेष रहस्यपूर्ण बात है ।

कांचनपाड़ा गाँव, भेदार गंज थाने के अन्तर्गत पद्मावती नदी के मुख की ओर स्थित है । यहाँ का वातावरण अत्यन्त पवित्र

एवं रमणीय है । प्रेम भक्ति प्रदान करने के लिए इस नदी की महिमा खूब सुनने में आती है । जागतिक विचार से बहुत से लोग इस नदी को बहुत अच्छा नहीं समझते, इसे कीर्तिनाशा कहते हैं क्योंकि इस नदी के बहाव में अब तक अनेक गाँवों और शहरों का अस्तित्व ही खत्म हो चुका है ।

ये वही नदी है जहाँ पतित पावन श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जी ने स्नान करने के पश्चात् श्रील नरोत्तम ठाकुर जी के लिए प्रेम संरक्षण किया था । इसलिए आज भी लोग इस स्थान को 'प्रेमतली' के नाम से पुकारते हैं । अब भी पद्मावती नदी के किनारे पर प्रेमतली नाम का गांव है । परमाराध्यतम् श्रील गुरुदेव जी की माता जी के मामाजी का घर इसी गाँव में था। बंगला देश के बनने के बाद कांचनपाड़ा गाँव का वह रमणीय परिवेश और बाहरी दर्शन अब उस प्रकार दृष्टिगोचर नहीं होता।

श्रील गुरुदेव जी की माता जी के मामा लोग प्रसिद्ध धनी व्यक्ति थे । वे वहाँ के तालुकदार होने पर भी गाँव में उनकी एक बड़े ज़मींदार के समान मर्यादा थी ।

तत्कालीन अंग्रेज़ सरकार ने उन्हें 'राज चक्रवर्ती' की उपाधि से विभूषित किया था । बन्द्योपाध्याय वंश के होने पर भी परवर्ती काल में वे 'चक्रवर्ती बाड़ी' रूप से प्रसिद्ध हुए । आपका गाँव एक

प्रगतिशील तथा ब्राह्मण प्रधान गाँव था ।

श्रील गुरुदेव के मामा लोग भी इसी कांचनपाड़ा गाँव में रहते थे इसलिए कांचन पाड़ा को श्रीगुरुदेव के मामा का घर भी कहते हैं ।

श्रील गुरुदेव जी के पूर्वाश्रम के पितृवंश का परिचय इस प्रकार मिलता है - आपके पितामह श्री चण्डी प्रसाद देवशर्मा बन्द्योपाध्याय थे और आपके पिता जी का नाम श्री निशिकान्त देवशर्मा बन्द्योपाध्याय था । आपके पिता जी का घर ढाका के भराकर गाँव में था जो विक्रमपुर परगना के टेंगिबाड़ी थाने के अन्तर्गत था । आपके पिता जी तथा दादा जी विक्रमपुर मे प्रसिद्ध स्वधर्म निष्ठ थे । श्रीगुरुदेव जी की माता का नाम श्रीमती शैवालिनी देवी था । वह परम भक्तिमती और देव - द्विज - साधु सेवा परायण थीं । जब श्रीगुरुदेव चार वर्ष के हुए तो आपका अपने पिता जी से वियोग हो गया । तब आपकी माता जी आपको लेकर अपने भाईयों के घर चली आई और वहां ही आपका पालन पोषण करने लगी । यहाँ आपको मामा लोगों का बहुत प्यार मिला । पिता जी ने इनका नाम श्री हेरम्ब कुमार बन्द्योपाध्याय रखा था परन्तु आपको सभी स्नेह परवश होकर गणेश नाम से पुकारते थे ।

शैशव काल से ही श्रील गुरुदेव जी में दूसरे बालकों की

अपेक्षा अनेक असाधारण गुण प्रकाशित थे । आप कहीं भी किसी अवस्था में भी झूठ नहीं बोलते थे, बल्कि दूसरे बालकों को भी सत्य बात कहने के गुण और असत्य बात कहने के दोष बतलाते थे । बालक के इन असाधारण आचरणों को देख कर सभी आश्चर्यान्वित होते थे ।

शैशव काल से ही आप में संसार के विषयों के प्रति उदासीन भाव प्रकटित था । आप हमेशा अपना जीवन सुचारु रूप से नियन्त्रित रखते थे तथा दूसरे बालको को भी संयम युक्त जीवन बिताने के लिए उत्साहित करते थे; अन्यान्य बालकों की अपेक्षा आप में चारित्रिक वैशिष्ट्य का असाधारण गुण था । आप स्वयं दुःख और कष्ट सहकर भी दूसरों के दुःख तथा असुविधाओं को दूर करते थे । बाल्यकाल से ही आपके हृदय की विशालता तथा ज्ञान की प्रसारता को देख अनेक लोग यह कहते थे कि अवश्य ही यह बालक भविष्य में कोई असाधारण व्यक्तित्व सम्पन्न पुरुष होगा । आपकी माता जी से मैंने सुना है कि जब आप बालक थे तो आपको अच्छी वस्तुएं खाने के लिए देने पर आप उन वस्तुओं को उपस्थित बालकों में बांट देते थे; यदि वस्तु बच जाती तब स्वयं ग्रहण करते ।

विद्यार्थी काल में भी आपके अध्यापक आपकी ज्ञानयुक्त

बातें सुनकर विस्मित हो जाते थे । एक घटना इस प्रकार हुई - एक बार दोस्तों के साथ खेलकूद प्रतियोगिता के समय दौड़ में आप सबसे आगे निकल गए परन्तु एक वृक्ष से टकरा गए जिससे आपके शरीर में बहुत सी चोटें आ गयीं और खून की धाराएं बहने लगीं तो सह - प्रतियोगी बालकों ने ये बात आपके अध्यापकों को बतायी । सभी अध्यापक आपको चोट लगने की घटना सुनकर तुरन्त घटना स्थल पर दौड़े चले आए और आपको उठाकर आपके घावों को साफ करने व दवाई लगाने लगे तथा अनेक प्रकार से आपको समझाने लगे ताकि आपको अधिक कष्ट महसूस न हो । तब आपने उनसे कहा - ''आप मेरे विषय में ज्यादा चिन्ता न करें, मैं शीघ्र ही ठीक हो जाऊँगा । भगवान् जो भी करते हैं, सब मंगल के लिए ही करते हैं । मेरे तो आँख, नाक, कान सभी नष्ट हो जाने थे परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ । मेरे पूर्व जन्मो के बुरे कर्मों का फल और भी खराब था, परन्तु भगवान् की कृपा के कारण वैसा हुआ नहीं।'' बालक के मुख से यह अति अद्भुत ज्ञान की बात सुनकर अध्यापकों ने तत्काल सभी के सामने यह घोषणा की कि यह बालक सामान्य बालक नहीं है ।

उच्च श्रेणियों में पढ़ते समय आपने दरिद्र बालकों की सहायता के लिए बहुत परिश्रम करके एक पुस्तकालय (Library) और बिना मूल्य की पुस्तकों के वितरण की व्यवस्था भी की थी ।

रूप-लावण्ययुक्त सुदृढ़ देह, स्वभाव में मधुरता, अद्भुत न्यायपरायणता और सहनशीलता आदि गुण स्वाभाविक ही आप में थे। इसलिए बाल्यावस्था, किशोरावस्था, यौवनावस्था में सदा ही आपको प्रधान नेतृत्व पद प्राप्त होता रहा।

आपको नेतृत्व की प्राप्ति प्रार्थना करके या वोट द्वारा प्राप्त नहीं होती थी बल्कि स्वाभाविक ही अपने गुणों के प्रभाव से प्राप्त हो जाती थी। आपके गुणों से आकृष्ट होकर सब लोग, सभी अवस्थाओं में आपको नेता चुन कर सुख अनुभव करते थे। वास्तविकता यही थी कि उनकी स्वाभाविकी गुरुता, आदर्श प्रियता और योग्यता ही सदैव उनको नेतृत्व पद प्रदान करती थी। सुपुरुष तथा दीर्घाकृति रहने के कारण आप यौवनकाल में खेलों में बहुत ही निपुण थे। इसलिए खिलाड़ी भी सदा आपको अपना कप्तान बना लेते थे। नाटक आदि में अभिनय करने की भी आपमें अत्यन्त अद्भुत कुशलता थी जिससे आपको इस क्षेत्र में भी नेतृत्व पद प्राप्त होता रहा। इस प्रकार कोई ऐसा क्षेत्र नहीं था जिसमें आपको स्वाभाविक ही दक्षता और प्रवीणता प्राप्त नहीं हुई। यही नहीं, समस्त परोपकारी संस्थाओं में भी नेता के रूप में आप ही उनकी परिचालना करते रहे। देश की स्वाधीनता के आन्दोलन में भी आपने अपने आप को नियोजित किया था।

श्रीगुरुदेव आदर्श मातृ भक्त थे। आपकी माता जी आपको अपने पास बिठाकर विभिन्न शास्त्र-ग्रन्थों का स्वयं पाठ करतीं थीं एवं आपके द्वारा भी पाठ करातीं थीं। इस प्रकार वह धर्मपरायण माता, आपका धर्म विषय में तथा ईश्वर आराधना में उत्साह बढ़ातीं थीं। नियमित रूप से प्रतिदिन गीता पाठ करते-करते आपको 11 वर्ष की आयु में ही सारी गीता कण्ठस्थ हो गयी थी। श्रीगुरुदेव जी की शिक्षा कांचनपाड़ा ग्राम तथा भट्ट ग्राम में हुई थी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए उसके बाद आप कलकत्ता आ गये। कलकत्ता आने पर हृदय में भगवान् के लिए विरह-व्याकुलता बहुत तीव्र हो गयी। आपके पूर्वाश्रम के सम्बन्धी श्रीनारायण मुखोपाध्याय आपको आपके कमरे में व्याकुलता से भगवान् को पुकारते हुए और रोते हुए देखा करते थे। उस समय आप दिन में एक बार ही खाना खाते थे और सब समय भगवान् के चिन्तन में बिताते थे।

एक रात श्रीगुरुदेव जी ने एक अपूर्व स्वप्न देखा कि नारद ऋषि जी ने आकर आपको सांत्वना दी तथा मन्त्र प्रदान किया और कहा कि इस मन्त्र के जप से तुम्हें सबसे प्रिय वस्तु की प्राप्ति होगी..... परन्तु स्वप्न टूट जाने के पश्चात् बहुत चेष्टा करने पर भी वह सारा मन्त्र आपको याद नहीं हो पाया। मन्त्र भूल जाने पर आपके मन और बुद्धि में अत्यन्त क्षोभ हुआ और दुःख के कारण

आप मोहित हो गए । सांसारिक वस्तुओं से उदासीनता चरम सीमा पर पहुँच गई और आपने संसार को त्याग देने का संकल्प लिया । उस समय आपकी माता जी दुर्गापुर में रहती थीं । आप अपनी माता जी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए 'दुर्गापुर' - पहुँच गए । आपकी भक्तिमती माता जी ने भी आपके संकल्प में बाधा नहीं दी । तब क्या था - भगवान् के दर्शनों की तीव्र इच्छा को लेकर व संसार को त्याग कर आपने हिमालय की ओर प्रस्थान किया । लोहा जिस प्रकार चुम्बक द्वारा खींचे जाने पर किसी बाधा की परवाह नहीं करता, उसी प्रकार जब आत्मा में भगवान् का तीव्र आकर्षण उपस्थित होता है तब जगत् का कोई भी बन्धन या बाधा उसको रोकने में समर्थ नहीं होती ।

हृदय में तीव्र इच्छा को लेकर आप हरिद्वार आ गए । यहाँ से अकेले ही बिना किसी सहायता के हिमालय पर्वत पर चले गए । जंगलों से घिरे हुए निर्जन पहाड़ पर तीन दिन और तीन रात भोजन और निद्रा का त्याग करके आप एकाग्रचित्त होकर, अत्यन्त व्याकुलता के साथ मत्त होकर भगवान् को पुकारते रहे । भगवान् के दर्शनों की तीव्र इच्छा होने के कारण आपका बाह्य ज्ञान जैसे लुप्त प्रायः हो गया था । उसी समय वहां आकाशवाणी हुई, आप जहाँ पहले रहते थे वहाँ आपके होने वाले श्रीगुरुदेव जी का आविर्भाव हो चुका है, इसलिए आप आपने स्थान को वापस लौट

जाओ - दैववाणी के आदेश को शिरोधार्य करके आप हिमालय से नीचे हरिद्वार में आ गए । यहाँ आपने कुछ दिन ठहरने का निश्चय किया । यहीं पर एक दिन एक साधु पुरूष से आपकी भेंट हो गई । उनको आपने अपनी दैववाणी की कथा सुनाई और उन्हें उपदेश करने की प्रार्थना भी की, तो उन्होंने भी आपको घर लौट जाने की सम्मति दी और कहा कि वहां ही आपको श्री सद्गुरु की प्राप्ति होगी । तब आपने यह निश्चय किया कि कुछ दिन पवित्र तीर्थ - स्थान हरिद्वार में ठहर कर वापस कलकत्ता जाऊँगा । परन्तु दैवचक्र से कुछ दिन हरिद्वार में रहने की अभिलाषा में विघ्न आ उपस्थित हुआ । घटना क्रम से उन्हीं दिनों हिन्दीभाषी क्षेत्र का रहने वाला एक धनी व्यक्ति जो अपनी धर्म - पत्नी को साथ लेकर तीर्थ - स्नान व दर्शन करने आया था, की आपसे उस समय भेंट हुई जब आप ब्रह्मकुण्ड से स्नान करके आ रहे थे। आपकी यौवनावस्था और सुन्दरता को देखकर दोनों आकर्षित हुए और उन्होंने आपको बहुत से फल और मिठाई भेंट की तथा आपको अपने वास स्थान पर चलने के लिए बार - बार प्रार्थना की । प्रतिदिन इसी प्रकार भेंट देने और बार - बार अनुरोध करने पर, सदाचारता के नाते आप एक दिन उनके घर चले गए । सेठ और सेठानी ने आपको बहुत सी खाने की वस्तुएं दीं और आपके साथ बहुत प्यार और स्नेह का व्यवहार किया तथा बाद में यह प्रस्ताव रखा कि यदि

आप उनके प्रतिपाल्य पुत्र बन जाएं; (क्योंकि उनके कोई सन्तान न थी) तो आप उनकी सारी सम्पत्ति के अधिकारी बन सकते हैं।

आपके समक्ष वे ऐसा प्रस्ताव रखेंगे, आपने कभी सोचा भी न था। मन-ही-मन आपने चिन्ता की- "मैं तो संसार छोड़ कर आया हूँ, परन्तु माया मुझे एक अन्य तरीके से आकर्षण करना चाहती है।" आपने उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और आप उनके वास-स्थान से चले आए। किन्तु सेठ-सेठानी आपके प्रति इतने स्नेहाविष्ट हो गये थे कि वे प्रतिदिन आपके पास जाकर अपना प्रस्ताव स्वीकार करने के लिये हठ करने लगे। जिस हृदय में भगवान् को पाने की निष्कपट इच्छा व तीव्र व्याकुलता हो तो उस हृदय को जगत् का कोई भी प्रलोभन खींच नहीं सकता, परन्तु जो विषयों की अभिलाषा रखते हैं ऐसे पुरूषों द्वारा इस प्रकार विपुल सम्पत्ति का अधिकारी बनने के सुअवसर का परित्याग सम्भव नहीं है। हृदय में भोगों की आकांक्षा न होने एवं श्रीभगवान् की आराधना की निष्कपट तीव्र इच्छा होने के कारण आपने इस प्रस्ताव को विपदायुक्त समझा और उसे ग्रहण न करके हरिद्वार में अधिक ठहरने की इच्छा को छोड़ कर कलकत्ता वापस आ गये। यह घटना लगभग 1925 की है।

इसी वर्ष श्रील गुरुदेव अपने बचपन के दोस्त श्रीनारायण चन्द्र मुखोपाध्याय आदि के साथ श्रीमायापुर धाम में पहुँचे। वहीं श्रीचैतन्य मठ में आपने श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रथम दर्शन किये। श्रील प्रभुपाद जी के महापुरुषोचित अलौकिक व्यक्तित्व को देखकर आप उनकी ओर आकृष्ट हुए थे। उस समय हरिकथा कहते-कहते श्रील प्रभुपाद जी ने आपको कहा था कि श्री विग्रहों का दर्शन करना ठीक बात है। किन्तु दर्शन करने से पहले दर्शन करने का तरीका सीखना होगा। काम नेत्रों के द्वारा दर्शन नहीं होते हैं, प्रेम नेत्रों के द्वारा देखना होगा। उसी दिन एस. एन. घोष अपनी पत्नी सहित श्रील प्रभुपाद जी से दीक्षित हुए थे।

मायापुर से कलकत्ता वापस आकर आप प्रतिदिन नियमित रूप से श्रील प्रभुपाद जी के पास नम्बर 1 उल्टाडांगा, जंक्शन रोड पर स्थित मठ में हरिकथा सुनने के लिए जाने लगे। वैष्णव सेवा द्वारा हरिभजन में आने वाली सब बाधायें दूर होंगी और शीघ्र ही भगवतद् कृपा की प्राप्ति होगी, इस विचार से आप गुप्त रूप से वैष्णव सेवा के लिये मठ में बहुत सा द्रव्य भेजने लगे। उन दिनों आपने विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन की लीला भी प्रकाशित की। श्रील प्रभुपाद जी के मुखारविन्द से श्रीमहाप्रभु जी की शिक्षा और सिद्धान्त सुन कर, उसे अधिक युक्तिसंगत जानकर हृदयंगम् कर

लिया । 4 सितम्बर, सन् 1927, श्रीराधाष्टमी की शुभ तिथि को उल्टाडांगा, जंक्शन रोड पर स्थित श्रीगौड़ीय मठ में प्रभुपाद जी का चरणाश्रय लेते हुए श्रीहरिनाम और दीक्षा मन्त्र ग्रहण किया । दीक्षित होने के बाद आप हयग्रीव दास ब्रह्मचारी नाम से परिचित हुए । आपकी दीक्षा के समय वैष्णव - होम इत्यादि आचार्यदास देवशर्मा महोदय जी ने किया था ।

दीक्षा ग्रहण के कुछ समय बाद ही श्रील गुरुदेव कृष्ण व कार्ष्ण (भक्त) की सेवा में सम्पूर्ण रूप से आत्मनियोग करने के लिए मठवासी हो गये । आप आजीवन ब्रह्मचारी थे अर्थात् गृह परित्याग करते हुए नैष्ठिक ब्रह्मचारी तथा बृहद्व्रती रूप से आपने मठ में प्रवेश किया था । आपकी ऐकान्तिक गुरु - निष्ठा, विष्णु - वैष्णव सेवा के लिए सदैव तत्परता और सेवाओं में बहुमुखी योग्यता ने आपको बड़े थोड़े समय में ही श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के एक पार्षद् के रूप में गिनती करवा दी । आपकी आलस्यरहित महा - उद्यम - युक्त सेवा - प्रचेष्टा तथा सब कार्यों में आपकी सफलता को देख कर श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद जी ऐसा कहा करते थे कि आपमें अद्भुत Volcanic Energy है ।

श्रीलप्रभुपाद जी के विराट् प्रतिष्ठान को चलाने के लिए व पाश्चात्य देशों में श्रीमन् महाप्रभु जी की वाणी का प्रचार करने

के लिए बहुत अधिक खर्चा हुआ करता था, जो कि भिक्षा द्वारा संग्रह किया जाता था । संग्रहकारियों में हमारे श्रील गुरुदेव जी भी एक श्रेष्ठ संग्रहकारी थे । जिन लोगों को भी आपकी रमणीय गौर - कान्ति युक्त श्रीमूर्ति का दर्शन तथा आपके श्रीमुख से हरिकथामृत पान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वे लोग आपके प्रति आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सके । आपके दर्शन मात्र से बहुत से लोग अपने अन्दर आपको सेवा देने की स्वतः प्रेरणा प्राप्त कर सेवा देने को उतावले हो जाते थे । बहुत से लोग आपके द्वारा कुछ सेवा प्रदान किए जाने का आग्रह भी किया करते । श्रील प्रभुपाद जी के निर्देशानुसार मद्रास में दीर्घकाल तक अवस्थान करते हुए आपने मद्रास गौड़ीय मठ की ज़मीन संग्रह एवम श्रीमन्दिर, साधु निवास, सत्संग - भवन निर्माण आदि विषयों में मुख्य रूप से यत्न किया था । इस कार्य के लिए आपने अपने ज्येष्ठ सतीर्थ (बड़े गुरु भाई) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति रक्षक श्रीधर महाराज और परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति हृदय बन महाराज जी से विशेष प्रेरणा ली थी । इन सब कार्यों में होने वाले खर्चों के लिए आपने विपुल प्रचेष्टा की थी, इसलिए मद्रास के प्रधान - प्रधान व्यक्ति आपके साथ विशेष भाव से परिचित हो गए थे ।

जनसाधारण में भगवद् स्मृति उदय कराने के लिये श्रील

प्रभुपादजी ने कलकत्ता, ढाका, पटना, काशी आदि विशेष-2 स्थानों में सद्शिक्षा प्रदर्शनियों की व्यवस्था की, भारत के विभिन्न स्थानों में एवं विदेशों में भी मठ तथा प्रचार केन्द्रों की स्थापना की, श्रीब्रजमण्डल परिक्रमा और नवद्वीप धाम परिक्रमा के आयोजन किये, विभिन्न शहरों व ग्रामों में श्रीचैतन्य वाणी का प्रचार व नगर-संकीर्तन शोभा-यात्राओं की व्यवस्था की, श्रीमन् महाप्रभु जी के पदाँकपूत स्थानों की स्मृति संरक्षण हेतु भारत के विभिन्न स्थानों में पादपीठों की स्थापना की, व लुप्त तीर्थों का उद्धार किया, शुद्ध भक्ति शास्त्रों का प्रचार किया तथा दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक व मासिक पारमार्थिक पत्रिकाओं की विभिन्न भाषाओं में प्रकाशन की व्यवस्था की, इस प्रकार श्रीमन् महाप्रभु जी की वाणी के प्रचार के लिये श्रील प्रभुपाद ने जो महान् उद्योग किया था, हमारे श्रील गुरुदेव ने उन सभी सेवाओं में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। अधिकांश क्षेत्रों में श्रील प्रभुपाद जी श्रील गुरुदेव को पूर्व व्यवस्था के लिये पहले भेजते थे। श्रील प्रभुपाद जी को श्रीगुरुदेव जी के प्रति इस प्रकार दृढ़ आस्था व विश्वास था कि इन्हें किसी भी कार्य में भेजने से वह अवश्य ही सुचारु रूप से सम्पादित होगा। आन्ध्र प्रदेश में राजमहेन्द्री ज़िले के अन्तर्गत गोदावरी नदी के किनारे गोष्पद-तीर्थ के समीप ही श्रीमन् महाप्रभु के अन्तरंग पार्षद् श्री रायरामानन्द जी की स्मृति संरक्षण हेतु श्रील प्रभुपाद जी

ने जिस 'श्री रामानन्द गौड़ीय मठ' की स्थापना की थी, उसके लिए ज़मीन संग्रह और मठ निर्माणदि के कार्यों में श्रील गुरुदेव जी ने मुख्य रूप से चेष्टा की थी।

श्रील गुरुदेव जी की श्रीमूर्ति परम सुन्दर थी। आपका व्यक्तित्व अलौकिक था व आपका व्यवहार अतीव माधुर्यपूर्ण था। आप में अति आधुनिक युक्तियों और अकाट्य शास्त्र-प्रमाणों के द्वारा समझाने की ऐसी क्षमता थी कि बड़े से बड़ा व्यक्ति भी आपके वशीभूत हो जाता था व आपको सन्तुष्ट कर सकने पर अपने को कृतार्थ समझता था। श्रील प्रभुपाद जी की मनोऽभीष्ट सेवा ही श्रील गुरुदेव जी का ध्यान, ज्ञान, जप व सर्वस्व था। सेवा कार्य के लिये बिना खाए व बिना सोए प्राणपन से जिस प्रकार आपने परिश्रम किया, आधुनिक युग के सेवक उस सेवा परिश्रम की कल्पना भी नहीं कर सकते। आपका अपने गुरुदेव के प्रति जिस प्रकार ऐकान्तिक व निष्कपट आनुगत्य था, वह एक आदर्श है। आप अपने गुरुदेव जी के निर्देश के बगैर कभी भी किसी काम में उत्साही नहीं होते थे। चूंकि आप श्रील प्रभुपाद जी के पादपद्मों में सर्वतोभाव से प्रपन्न हुए थे, इसलिये श्रील प्रभुपाद जी ने भी आपमें अपनी समस्त शक्ति का संचार किया था।

श्रील गुरुदेव, श्रील प्रभुपाद जी के कितने आस्था-भाजन,

प्रिय व अन्तरंग सेवक थे, वह आसाम प्रदेश के सरभोग गौड़ीय मठ में हुये श्रीश्रीगुरु गौरांग गांधर्विका - गिरधारी जी के विग्रह प्रतिष्ठा उत्सव के अवसर पर कही गयी प्रभुपाद जी की उक्तियों से जाना जाता है। अपने प्रकट - काल में प्रभुपाद जी ने जिन 64 मठों की स्थापना की थी उनमें से आसाम प्रदेश के अन्तर्गत कामरूप ज़िला (वर्तमान में वरपेटा ज़िला के अन्तर्गत) सरभोग स्थित श्री गौड़ीय मठ भी एक है। श्रील प्रभुपाद जी ने गुरुदेव जी को उनके ज्येष्ठ सतीर्थ त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद् भक्ति रक्षक श्रीधर महारज तथा श्री जानकी बल्लभ आदि सेवकों के साथ महोत्सव की पूर्व व्यवस्था आदि के लिए सरभोग भेजा। उस समय गुरुदेव जी के ज्येष्ठ गुरु भाई त्रिदण्डि स्वामी श्री भक्ति विज्ञान आश्रम महाराज जी के ऊपर मठ का दायित्व था। मठ में पहुंच कर वे यह देख कर विस्मित हो गये कि वहां महोत्सव की कुछ भी व्यवस्था नहीं हुई थी। श्रील गुरुदेव जी का ऐसा अलौकिक व्यक्तित्व था कि वे किसी कार्य का दृढ़ संकल्प लेने के बाद पीछे नहीं हटते थे और न ही कभी निरुत्साहित होते थे। हुआ भी ऐसा ही। श्रील प्रभुपाद जी के अपने निजजनों के साथ मठ में पहुंचने से पहले ही श्रील गुरुदेव ने कठिन परिश्रम से प्रभुपाद व उनके पार्षदों के ठहरने के लिए अस्थायी व्यवस्था कर दी।

15 मार्च सन् 1936 को प्रातः 6.30 बजे जब श्रील प्रभुपाद

अपने निजजनों, जिनमें श्रीमद् कुंज बिहारी विद्या भूषण प्रभु, श्रीरमानन्द विद्यारत्न प्रभु, श्रीमद् वासुदेव प्रभु, श्रीमद् कीर्तनानन्द ब्रह्मचारी, श्रीमद् सज्जन महाराज तथा श्रीमद् कृष्ण केशव ब्रह्मचारी के नाम मुख्य हैं - के साथ सरभोग रेलवे - स्टेशन पर पहुँचे तो, श्रील गुरुदेव तथा स्थानीय भक्तों द्वारा उनका खूब धूमधाम के साथ स्वागत किया गया। श्रील प्रभुपाद तीन दिन वहां रहे। इन दिनों मठ में रोज़ महोत्सव होता रहा - जिसमें सैंकड़ों - सैंकड़ों - नर - नारियों को नाना प्रकार के प्रसाद से परितृप्त किया जाता रहा।

दूसरे दिन श्रीविग्रह - प्रतिष्ठा का समय आया। श्रीविग्रह प्रतिष्ठा की समस्त व्यवस्था का सेवा भार श्रील प्रभुपाद जी ने श्रीमद्भक्ति रक्षक श्रीधर महाराज जी पर दिया था। उन्होंने श्री श्रीगुरुगौरांग गांधर्विका - गिरिधारी जी के विग्रहों को मन्दिर के अन्दर पुष्प मालादि के द्वारा सुसज्जित करके रख दिया।

शुभ मुहूर्त के समय अर्थात् प्रातः 10 बजे जब श्रील प्रभुपाद जी ने मन्दिर में प्रवेश किया और देखा कि सभी विग्रह सुसज्जित हैं तो श्रीविग्रहों को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुए बोले - 'श्रीविग्रह तो प्रकाशित ही हैं।' श्रील प्रभुपाद जी के ये वाक्य सुनकर पूज्यपाद श्रीमद्भक्ति रक्षक श्रीधर महाराज अनुतप्त हो उठे और सोचने लगे कि श्रील प्रभुपाद जी को जो करना था

वह मैंने ही कर दिया है, इससे अवश्य ही मेरा अपराध हुआ है। इसके बाद श्री श्री गुरु-गौरांग-गांधर्विका-गिरिधारी जी के श्रीविग्रह संकीर्तन, वैष्णव होम आदि वैष्णव स्मृति के विधानानुसार महामहोत्सव के साथ प्रतिष्ठित हुए।

विग्रह-प्रतिष्ठा-उत्सव के अन्त में वहाँ के मठ रक्षक, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद् भक्ति विज्ञान आश्रम महाराज जी ने श्रील गुरुदेव जी से अनेक बार अनुरोध किया कि वे प्रभुपाद जी को बताएँ कि - ''निमानन्द प्रभु जी, जिन्हें विग्रह-प्रतिष्ठा-उत्सव की सारी व्यवस्था करने की ज़िम्मेवारी दी गई थी, वह उन्होंने नहीं निभाई।''

प्रभुपाद जी को सुन कर सुख नहीं होगा, ऐसा सोच कर पहले तो श्रीलगुरुदेव उनकी बात को टालते रहे परन्तु श्रीमद्भक्ति विज्ञान आश्रम महाराज जी के बार-बार अनुरोध करने पर, अपने बड़े गुरु-भाई के वाक्य की मर्यादा रक्षा करने के लिए-जब प्रभुपाद जी टहल रहे थे और आप उनके पीछे-पीछे चलकर पंखा करते हुए मक्खियां उड़ा रहे थे- उस समय और बात करते-करते आपने पूज्यपाद आश्रम महाराज जी की बात भी कह दी। घटना सुन कर श्रील प्रभुपाद जी क्रोधित हो उठे और उन्होंने आप को डांटा।

मेरी बात से श्रील प्रभुपाद जी को सन्तोष नहीं हुआ-ऐसा सोच कर श्रील गुरुदेव जी का हृदय संतप्त (दुःखी) हो उठा। परन्तु तुरन्त ही अपने भावों को बदलते हुए श्रील प्रभुपाद स्नेह सूचक वाक्यों से श्रील गुरुदेव जी की प्रशंसा करने लगे। अपनी प्रशंसा सुन कर श्रील गुरुदेव को सुख नहीं हुआ। कारण, गुरुदेव जी ने सोचा कि श्रील प्रभुपाद जी को आशंका हुई है कि शायद मैं उनकी डांट सहन नहीं कर सकूंगा। श्रील प्रभुपाद जी श्रील गुरुदेव जी को अनेक मूल्यवान् उपदेश देते हुए प्रकारान्तर से ये बताने लगे कि वे उनके अन्तरंग प्रियजन हैं। श्रील प्रभुपाद जी ने सबसे पहले ही कहा - 'अत चाओ केन, आर कष्ट पाओ केन'। अमुक व्यक्ति इतनी सेवा करेगा, इस प्रकार आशा करना ठीक नहीं है क्योंकि गुरु सेवा के जितने भी कार्य हैं वे सब तुम्हारे हैं। उसमें दूसरा यदि कोई कुछ सेवा करता है तो उसके लिए तुम्हें उसका कृतज्ञ रहना होगा। देखो, कृष्ण की गृहकत्री (Majordomo) श्रीमती राधिका जी हैं। श्रीमती राधिका जी समझती हैं कि कृष्ण की सभी सेवाएं उनकी ही करणीय हैं। यदि कोई किसी सेवा में उनकी कुछ सहायता करता है तो वे उसके पास कृतज्ञ रहती हैं। यहां श्रील प्रभुपाद जी का हृदयगत भाव ये है कि उनकी सब सेवाएं श्रील गुरुदेव जी द्वारा ही करणीय हैं। यदि कोई उसमें उनकी किसी प्रकार सहायता करता है तो वो

उनके कृतज्ञ रहें। श्रील प्रभुपाद जी के उक्त वाक्यों द्वारा श्रील गुरुदेव उनके अन्तरंग निजजन हैं, स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है। श्रील प्रभुपाद जी की जिस प्रकार आजानुलम्बित बाहु, दीर्घाकृति, गौरकान्ति तथा सौम्य मूर्ति थी, श्रील गुरुदेव जी की भी उसी प्रकार आजानुलम्बित बाहु, दीर्घाकृति, गौरकान्ति और सौम्य मूर्ति थी, जिसे देख अनेक लोगों को श्रील गुरुदेव जी के प्रति श्रील प्रभुपाद जी के पुत्र होने का भ्रम होता था।

शरणागति की महिमा को समझाने के लिए श्रील गुरुदेव अपने आश्रित वर्ग को उपदेश देते समय सरभोग गौड़ीय मठ की बात अक्सर कहा करते थे। वे कहते थे कि सरभोग गौड़ीय मठ में श्रीविग्रह प्रतिष्ठा के समय श्रील प्रभुपाद जी ने जो करना था वह गलती से पूज्यपाद श्रीधर महाराज जी द्वारा पहले ही सम्पन्न कर दिये जाने के कारण श्रीधर महाराज जी मन ही मन बहुत चिन्तित हो उठे थे कि उनका गुरु-चरणों में अपराध हो गया है। (अतः उन्होंने गुरुदेव जी को अपने मन की अशान्ति के बारे में बताया। उन्होंने कहा कि वे प्रभुपाद जी के पादपद्मों में मेरी ओर से क्षमा याचना करें और कहें कि अज्ञानता वश ही उनसे ये अपराध हो गया है।)

श्रील गुरुदेव जी ने पूज्यपाद श्रीधर महाराज का अनुरोध पत्र द्वारा श्रील प्रभुपाद जी के चरणों में निवेदन किया। श्रील

प्रभुपाद जी ने उसके उत्तर में लिखा- 'शरणागत का कभी भी अपराध नहीं होता।' शरणागत की त्रुटि शरण्य नहीं देखते, हमेशा सुधार करते हैं, कारण, शरणागत केवल शरण्य की सेवा के लिए, अन्य मतलब रहित समर्पितात्मा है; जबकि अन्य अभिलाषाओं से युक्त अशरणागत का कदम-कदम पर अपराध होने की आशंका है।

पश्चिम देशों में प्रचार के लिए भेजने का प्रस्ताव

पाश्चात्य देशों में भी श्रीमन्महाप्रभु जी की वाणी का प्रचार हो-श्रील प्रभुपाद का इस प्रकार आग्रह होने से उन्होंने श्रील गुरुदेव जी को इस कार्य के उपयुक्त समझकर उन्हें भेजना निश्चित किया।

श्रील प्रभुपाद जी के निर्देशानुसार श्रील गुरुदेव तथा अन्य दो सेवकों के फोटो खींचे गये तथा पासपोर्ट की व्यवस्था भी हो गयी। विदेश में प्रचार के लिए जाना जब पूरी तरह से निश्चित हो गया तभी राजर्षि कुमार शरदिन्दु नारायण राय जी ने प्रभुपाद जी को कहा-विलायत परियों का देश है। वहां कम उम्र के सुन्दर युवक को भेजना मैं उचित नहीं समझता हूँ। किसी वयस्क व्यक्ति को भेजना उचित होगा। श्रील प्रभुपाद जी ने राजर्षि शरदिन्दु की बात को गम्भीरता से लिया और श्रील गुरुदेव की बजाए श्रीमद्भक्ति

प्रदीप तीर्थ महाराज जी को भेजना निश्चित किया तथा श्रील गुरुदेव जी को विदेश प्रचार में होने वाले खर्चे का संग्रह करने की आज्ञा दी। श्रील गुरुदेव जी को मन – मन में आशंका थी कि श्रील प्रभुपाद अब अधिक दिन प्रकट नहीं रहेंगे। इसलिए जब उन्हें विदेश में भेजना निश्चित हुआ था तो वे इसी चिन्ता में व्याकुल रहते थे कि जब वे वापस आएंगे तो पता नहीं उन्हें श्रील प्रभुपाद जी के दर्शन हो सकेंगे या नहीं। जब श्री राजर्षि शरदिन्दु नारायण के परामर्श से श्रील प्रभुपाद जी ने उनका विदेश जाना रोक दिया तो श्रील गुरुदेव इसमें अपना मंगल अनुभव करने लगे।

आप में भक्ति – सिद्धान्तों के प्रतिकूल विचारों को खण्डन करने, भक्ति के अनुकूल विचारों को स्थापन कर समझाने की अति – अद्भुत क्षमता एवं आपका अमानी – मानद स्वभाव देखकर श्रील प्रभुपाद जी ने आपको 4 अक्तूबर सन् 1936 में बंगाल के श्रेष्ठ पंडित श्री पंचानन तर्करत्न, जो कि नेहाटी भट्ट पल्ली में रहते थे, के साथ साक्षात्कार करने के लिए भेजा। पंडित श्रीपंचानन तर्करत्न महोदय का ब्राह्मण व पंडित अभिमान अत्यन्त प्रबल था। उन्होंने श्रील प्रभुपाद जी के शास्त्र युक्ति सम्मत देववर्णाश्रम धर्म विचार की तीव्र समालोचना की थी। तर्करत्न की इस प्रकार गलत समालोचना से अनेक श्रेय प्रार्थी जीवों का अकल्याण हो सकता है, इस आशंका से ही श्रील प्रभुपाद जी ने श्रीगुरुदेव जी

को यह दायित्व दिया था। पंचानन तर्करत्न महोदय ब्राह्मण को छोड़ और किसी को भी मर्यादा नहीं देते थे। इसलिए श्रील प्रभुपाद जी ने श्रील गुरुदेव को अपने पूर्वाश्रम के श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल का परिचय व नाम बतलाने को कहा, यहां तक कि प्रभुपाद जी ने आपको वैष्णव चिन्हों से रहित होकर जाने को कहा।

प्रभुपाद जी के निर्देश को शिरोधार्य करके आप निश्चित तिथि को प्रातः 8.30 बजे नेहाटी काठालपाड़ा निवासी श्री प्रफुल्ल कुमार चट्टोपाध्याय के साथ श्री पंचानन तर्करत्न महाशय के घर पहुँचे। वहां पर सर्वप्रथम आपका साक्षात्कार उनके योग्य पुत्र श्री जीव न्यायतीर्थ (एम. ए.) के साथ हुआ। बाद में तर्करत्न महाशय की आपके साथ लगभग दो घण्टे जो शास्त्रालोचना हुई व पंडित महाशय के साथ शास्त्रालोचना करने से उन्हें जो अभिज्ञता हुई वह आपने बातचीत के प्रसंग में अपने आश्रित वर्ग (शिष्यों) को भी बताई। आपने कहा, "श्री पंचानन तर्करत्न महोदय का अगाध पांडित्य था, इसमें कोई सन्देह नहीं। बहुत से शास्त्रों के श्लोक उनको कण्ठस्थ थे परन्तु सिद्धान्त – विषय में वे अनेक स्थानों पर सुसमाधान न दे सके, वे विचार करते – करते blind lane में पहुंच कर प्रश्नों के सही उत्तर देने में असमर्थ हो गये थे।"

इतने बड़े पंडित होते हुए भी ऐसा कैसे हुआ ? इस सम्बन्ध में बोलते हुए श्रील गुरुदेव जी ने कहा कि पंडित महाशय का शुद्ध भक्त संग या वास्तविक साधु संग नहीं हुआ था । शुद्ध साधु के आनुगत्य व उनके संग को छोड़कर सिद्धान्त विषय में पारंगति नहीं हो सकती ।

श्री पंचानन तर्करत्न के साथ श्रील गुरुदेव जी की जो दीर्घ आलोचना हुई थी, उसके मुख्य-मुख्य विषय श्रीगौड़ीय मठ से प्रकाशित 'पारमार्थिक' साप्ताहिक पत्रिका के 15वें वर्ष की 13वीं तथा 15वीं संख्या में प्रकाशित हुए थे, जो कि उस समय श्रील प्रभुपाद जी के निर्देशानुसार बंगला भाषा में प्रकाशित होती थी ।

यह सन् 1930 की बात है, जब श्रील प्रभुपाद जी प्रकट थे । श्रीप्रभुपाद जी के प्रकट काल में कलकत्ता के बाग बाज़ार स्थित श्रीगौड़ीय मठ में, श्री कृष्ण-जन्माष्टमी के उपलक्ष्य में विशाल धर्म-सम्मेलन होता था जो कि एक महीने तक चलता था । इस सम्मेलन में प्रतिदिन कोई न कोई विशिष्ट व्यक्ति सभापति का आसन ग्रहण करता था । उक्त धर्म सम्मेलन में भारत के विख्यात वैज्ञानिक डा0 सी. वी. रमन के छात्र भी श्री गौड़ीय मठ के विद्वान स्वामियों के प्रवचनों को सुनने के लिए आते थे । एक दिन सभी छात्र मिल कर श्रील प्रभुपाद जी के पास

गये और उन्होंने निवेदन किया कि हम देखते हैं कि आपके इस धर्म सम्मेलन में प्रतिदिन कलकत्ता के किसी न किसी विशिष्ट व्यक्ति को सभापति के आसन पर बैठने के लिए निमन्त्रित किया जाता है परन्तु हमारे अध्यापक डा0 सी. वी. रमन जी को निमन्त्रित नहीं किया जाता । ऐसा क्यों ? उनका नाम तो सारे विश्व में विख्यात है ।

छात्रों की बात सुनकर श्रील प्रभुपाद जी ने कहा कि उनको निमन्त्रण करने में हमें कोई आपत्ति नहीं है । ऐसा कह कर श्रील प्रभुपाद जी ने हमारे गुरुदेव जी को निर्देश दिया कि वे डा0 सी. वी. रमन जी को धर्म-सम्मेलन में सभापति पद ग्रहण करने के लिए निमन्त्रण दें ।

श्रील गुरुदेव जी डा0 रमन जी से मिलने पहले उनके घर गये परन्तु डा0 रमन उस समय घर पर नहीं थे । उनकी स्त्री ने बताया कि इस समय वे सरकुलर रोड पर स्थित अपनी Laboratroy (गवेषणागार) में होंगे । श्रीमती रमन का जवाब सुन कर श्रील गुरुदेव जी एक चपरासी के साथ, जो कि श्रीमती रमन ने ही श्रील गुरुदेव जी के साथ भेजा था, डा. रमन जी की लेबोरेटरी पर पहुँचे। डा0 रमन जी के साथ जब श्रील गुरुदेव जी का साक्षात्कार हुआ, उस समय वे अपनी लेबोरेटरी की दूसरी मंजिल में स्थित एक बड़े

हाल के कोने में बैठे हुए अकेले ही कुछ गवेषणा कर रहे थे। डा. रमन बंगला या हिन्दी अच्छी तरह नहीं जानते थे, इसलिए श्री गुरुदेव जी की उनके साथ अंग्रेज़ी में ही बातचीत हुई।

सर्वप्रथम डा0 रमन जी ने श्री गुरुदेव जी से उनके आने का कारण पूछा तो श्रीगुरुदेव जी ने कहा - "कलकत्ता के बाग बाज़ार स्थित श्रीगौड़ीय मठ में, श्रीकृष्ण - जन्माष्टमी के उपलक्ष्य में मासव्यापी धर्म - सम्मेलन होता है, जिसमें प्रतिदिन कलकत्ता के कोई न कोई विशिष्ट सज्जन सभापति का आसन ग्रहण करते हैं। आप भी एक दिन सभापति के आसन को अलंकृत करें, ये ही हमारी प्रार्थना है।"

श्रीगुरुदेव जी की बात सुन कर डा0 रमन जी ने कहा - "तुम्हारे केष्टविष्ट् को (यानि कृष्ण - विष्णु को) मैं नहीं मानता हूँ, इन्द्रियों द्वारा जो प्रत्यक्ष नहीं होती, ऐसी काल्पनिक वस्तुओं के लिए मैं समय नहीं दूंगा। मेरा समय बहुत कीमती हैं। हाँ, विज्ञान या शिक्षा के विषय में कोई सभा होने से मैं जा सकता हूँ।"

श्रील गुरुदेव : आपके छात्र प्रतिदिन बाग बाज़ार स्थित गौड़ीय मठ में स्वामी जी लोगों के भाषण सुनने के लिए आते हैं। उसी सभा में हम कलकत्ता के विशिष्ट व्यक्तियों को सभापति बनाते हैं। आपके छात्रों की ही इच्छा है कि एक दिन आप भी सभापति

का आसन ग्रहण करें। अपने गुरूदेव जी के निर्देशानुसार मैं आपको निमन्त्रण देने आया हूँ। आप हमारी प्रार्थना को मंजूर कर लीजिए।

डा0 रमन : क्या तुम अपने भगवान् को दिखा सकते हो ? यदि दिखा सको, तो जाऊँगा।

[जिस हाल (Hall) में बातचीत हो रही थी, उस हाल की एक ओर कोई भी खिड़की या दरवाजा नहीं था, सिर्फ एक लम्बी दीवार थी जिसके दूसरी ओर पूरा उत्तरी कलकत्ता था]।

श्रील गुरुदेव : अपने सामने खड़ी इस दीवार के पीछे मैं कुछ नहीं देख पा रहा हूँ, यदि मैं कहूँ कि इस दीवार के पीछे कुछ नहीं है, तो क्या मेरी बात सच होगी ?

डा0 रमन : तुम नहीं देख सकते हो, परन्तु मैं अपने यंत्र के द्वारा देख लूंगा।

श्रील गुरुदेव : यन्त्र की भी तो एक सीमा है। जितनी दूर यन्त्र की योग्यता है, माना, वहां तक आपने देख लिया परन्तु उसके बाद कुछ नहीं है - ऐसा कहना क्या सच होगा ?

डा0 रमन : हो या न हो, लेकिन इसके लिए मैं समय नहीं दूंगा। मेरे Sense Experience में न आने तक मैं उस विषय

में ध्यान नहीं दूंगा । क्या तुम भगवान् को दिखा सकते हो ? यदि दिखा सको तो समय दूंगा ।

श्रील गुरुदेव : आपने जो वैज्ञानिक सत्य अनुभव किये हैं, आपके छात्र यदि आपसे ये प्रश्न करें कि पहले हमें वैज्ञानिक सत्य का अनुभव कराओ बाद में हम आपकी शिक्षा की ओर ध्यान देंगे, तब आप उन्हें क्या कहेंगे ?

डा० रमन : (उच्च स्वर से) I shall make them realised; (मैं उन्हें अनुभव करा दूंगा) ।

श्रील गुरुदेव : न, पहले आप अनुभव करा दें, बाद में वे आपके पास शिक्षा ग्रहण करेंगे ?

डा० रमन : नहीं, जिस पद्धति को अवलम्बन करके मैंने वैज्ञानिक सत्यों का अनुभव किया है, वही पद्धति उन्हें भी ग्रहण करनी होगी । (No, they are to come to my process through which I have realised the truth) पहले उन्हें फलाँ विषय को लेकर B.Sc. पढ़नी होगी, उसके बाद M.Sc. करनी होगी । उसके बाद यदि पांच - छः साल वह मेरे पास पढ़ें, तब मैं उनको समझा सकता हूँ ।

श्रील गुरुदेव : आपने जो बात कही, क्या भारतीय ऋषि - मुनि

लोग उस बात को नहीं कह सकते ? (कि) उन्होंने जिस पद्धति से आत्मा - परमात्मा - भगवान् को अनुभव किया है, आप भी उसी पद्धति को अवलम्बन करके देखें कि भगवान् को अनुभव किया जा सकता है या नहीं ? आप तो अपने उपलब्ध वैज्ञानिक सत्य को अपने छात्रों को अनुभव नहीं करा पा रहे हैं । वैज्ञानिक सत्य अनुभव करने के लिए उन्हें आपका तरीका अपनाना पड़ रहा है । इसलिए जिस उपाय से भगवान् की उपलब्धि होती है आप भी उसी उपाय को ग्रहण करके देखो - होती है या नहीं ? यदि उपलब्धि न हो तो आप छोड़ देना परन्तु पहले ही आप कैसे मना कर रहे हैं ।

डा० रमन : (कोई जवाब न दे सके) ।

कुछ समय पश्चात् डा. रमन कहने लगे कि वे कृष्ण संबंध में कुछ नहीं जानते, वहां जाकर वे क्या कहेंगे ? इस विषय को जो जानते हैं उन्हें निमन्त्रण करना अच्छा है ।

* * * * *

श्रील गुरुदेव जी का प्रत्युत्पन्नमतित्व एवं उपस्थित बुद्धि इस ार थी कि उनके सामने कोई अयुक्ति की बात कहकर टिक ।हीं सकता था । केवल तथाकथित पांडित्य के द्वारा ये असाधारण

योग्यता सम्भव नहीं है । जो शिष्य गुरुदेव के प्रति समर्पित - आत्मा हैं, जिन्होंने गुरुदेव जी की कृपा से सत्य वस्तु को साक्षात् अनुभव कर लिया है, गुरु शक्ति के प्रभाव से वे एक प्रकार की ऐसी ईश्वरीय शक्ति प्राप्त कर लेते हैं जिसके सामने भगवद् - अनुभूतिरहित व्यक्तियों की बुद्धिमता नहीं चल पाती ।

* * * * *

श्रील प्रभुपाद जी ने अपने आश्रित शिष्यों को आश्रय विग्रह (गुरुपादपद्म) के आनुगत्य में रहते हुये, एक ही उद्देश्य से एक साथ रहकर रूप - रघुनाथ जी की वाणी का प्रचार करने का उत्साह प्रदान किया था । श्रील प्रभुपाद जी के अप्रकट होने के बाद जो लीला प्रदर्शित हुई, उसे देखकर अनर्थयुक्त, अदूर दृष्टि सम्पन्न व्यक्तियों में ये भावना आ सकती है कि इन घटनाओं से श्रील प्रभुपाद जी की आज्ञाओं का उल्लंघन हुआ है । परन्तु, मंगलमय श्रीहरि की इच्छा से जो होता है मंगल के लिए होता है । पारमार्थिक जीवन का यह मूल विषय ध्यान में न रहने के कारण हम दुःखी होते हैं । श्रीभगवान् की इच्छा न होने से कुछ भी नहीं हो सकता । दूसरी ओर चूंकि भगवान् मंगलमय हैं, अत: उनकी इच्छा से जो भी होता है, उसमें मंगल अवश्य ही निहित होता है । किसी भी विराट् उद्देश्य की पूर्ति के लिए भगवान् की इच्छा

से एक के बाद एक जो घटनाएं होती हैं, बहुत से अदूर दृष्टि वाले व्यक्ति उन्हें समझ नहीं पाते हैं ।

"पृथ्वी ते आछे यत नगरादिग्राम ।
सर्वत्र प्रचार हइवे मोर नाम।।"

श्रीमन्महाप्रभु जी की उपरोक्त वाणी की सत्यता को दिखाने के लिए श्रीमन्महाप्रभु व उनकी अभिन्न प्रकाशमूर्ति श्रील प्रभुपाद की इच्छा से ही ऐसा हुआ अर्थात् श्रील प्रभुपाद जी ने सारी पृथ्वी में महाप्रभु जी की वाणी का प्रचार कराने के लिए अपनी कृपा शक्ति संचारित की तथा दिग्विजयी शिष्यों को अलग - अलग रहकर प्रचार करने की प्रेरणा प्रदान की । श्रील प्रभुपाद जी ने जगत् का मंगल करने के उद्देश्य से ही ऐसा किया । वे आचार्य शक्ति सम्पन्न अपने शिष्यो को एक ही स्थान में आबद्ध रख कर उनकी योग्यता को एवं प्रचार की व्यापकता को संकुचित नहीं करना चाहते थे । आज श्रील प्रभुपाद जी के आश्रित शिष्यों की अलौकिक शक्ति के प्रभाव से सारी पृथ्वी पर श्रीमन् महाप्रभु जी की वाणी प्रचारित, समादृत व गृहीत होने के कारण श्रीमन् महाप्रभु जी की भविष्यवाणी सार्थक हो रही है ।

यदि वे (प्रभुपाद जी के कृपा शक्ति संचारित शिष्य) गुरू - आनुगत्य रहित अनर्थयुक्त जीव होते तो उनके द्वारा इस प्रकार का व्यापक

प्रचार सम्भव नहीं था । भगवान् के उद्देश्य के बारे में न जानने वाले दुर्भागे व्यक्ति ही एक की वन्दना व एक की निन्दा करके परमार्थ पथ से गिर जाते हैं व अपराध रूपी दलदल में फस जाते हैं । श्रील प्रभुपाद जी के सभी पार्षदों ने अपनी - अपनी योग्यता के अनुसार श्रील प्रभुपाद जी की आज्ञा पालन करने के लिए निष्कपट यत्न किया व कर रहे हैं । उनके निष्कपट प्रचार के फल स्वरूप ही आज बहुत से दुर्भाग्यशाली बद्ध जीवों ने श्रीमन् महाप्रभु जी की शिक्षा के प्रति आकृष्ट होकर भक्ति - सदाचार ग्रहण करते हुए शुद्ध भाव से श्री कृष्ण भजन में नियोजित होकर अपने जीवन को धन्य किया है ।

सन् 1942 में जब श्रील गुरु महरारज जी का संन्यास नहीं हुआ था, अर्थात् संन्यास से कुछ समय पूर्व आप अपने गुरु भाईयों - पूज्यपाद त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद् भक्ति विचार यायावर महाराज और पूज्यपाद त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद् भक्ति कुमुद सन्त महाराज जी के साथ मेदिनीपुर शहर में आये तो आप लोगों के प्रचार के प्रभाव से वहां श्रीगौड़ीय मठ की स्थापना हुई । श्रील गुरु महाराज जी ने व उनके गुरु भाइयों ने जब मेदिनीपुर में शुद्ध भक्ति का प्रचार आरम्भ किया तो श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की शुद्ध भक्ति शिक्षा को सुन कर वहां के अनेकों विशिष्ट नर - नारियों ने महाप्रभु जी की बतायी शिक्षा पद्धति से भजन करने का दृढ़

संकल्प लिया। इसके फलस्वरूप थोड़े दिनों में ही वहां के जाने - माने धनी व्यक्ति अपने शहर में श्रीगौड़ीय मठ की एक शाखा खोलने के लिए उत्साही हुए । इन्हीं लोगों की सहायता से ही मेदिनीपुर शहर के शिव बाज़ार में प्राप्त ज़मीन के साथ एक विशाल दो मंजिला मठ स्थापित हुआ । इन व्यक्तियों में विशेष रूप से श्री गोवर्धन पिड़ि महोदय उल्लेखनीय हैं । कारण, इस सेवा के साथ - साथ वे किस प्रकार से श्रीगौड़ीय मठ के साथ जुड़ गये, किस प्रकार उनके जीवन में अद्भुत मोड़ आया; सब कुछ छोड़ - छाड़ कर किस प्रकार से उन्होने श्रीकृष्ण व श्रीकृष्ण भक्तों की सेंवा की - ये सब इतिहास जो हमने अपने गुरु महाराज जी से सुना, वो निम्न प्रकार से हैं -

एक दिन श्रील गुरु महाराज जी ने अपने सभी गुरु भाइयों के आगे प्रस्ताव किया कि हमें यहां के धनी व्यक्ति श्री गोवर्धन पिड़ि महोदय से मिलना चाहिए व उनसे मठ के लिए कुछ सेवा लेनी चाहिए ।

आपके इस प्रस्ताव को सुन कर स्थानीय लोगों ने कहा - नहीं, वो बहुत ही कंजूस व्यक्ति है, किसी भिखारी को भी एक पैसा नहीं देता । यदि आप उसके पास जाएंगे तो वह आपका अपमान भी कर सकता है । अतः आप कभी भी उसके पास मत जाना ।

सबकी बात सुनने के बाद, सभी को समझाते हुए श्रील गुरुदेव जी ने कहा – ''साधु का मान-अपमान क्या होता है ? चलो मान लिया गोवर्धन पिड़ि बहुत कंजूस है, तब तो साधु को अवश्य ही चेष्टा करनी चाहिए कि वह कंजूस न हो बल्कि एक सज्जन व्यक्ति बने । अच्छे व्यक्ति को अच्छा बनाने की जरूरत नहीं पड़ती; यदि खराब व्यक्ति को अच्छा बनाया जा सके, तभी तो प्रचार का सही फल समझा जाएगा ।''

एक दिन श्रील गुरुदेव जी श्री गोवर्धन जी के पास पहुँच गये । आपको देखते ही गोवर्धन जी खड़े हो गये, उन्होने आपका स्वागत किया व बैठने के लिए उपयुक्त आसन भी प्रदान किया । आने का कारण पूछने पर आपने कहा कि आपके मेदिनीपुर शहर में श्रीगौड़ीय मठ का प्रचार केन्द्र खुल रहा है – ये बात बता कर आपने श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की शिक्षा के माध्यम से उन्हें समझाया कि किस प्रकार जीवों का वास्तविक मंगल हो सकता है। आपके श्रीमुख से प्रभावशाली हरिकथा सुन कर श्री गोवर्धन जी बहुत प्रभावित हुए व उत्साह भरे स्वर में बोले – "हमारे गृह देवता राधा-कृष्ण ही हैं, यहाँ प्रतिदिन उनकी सेवा-पूजा होती है । यदि आप उनका दर्शन करना चाहें तो चलें ।"

गोवर्धन जी का उत्साह देखकर हाँ, क्यों नहीं, कहकर आप

गोवर्धन जी के साथ उनके घर के ऊपर बने मंदिर में गये । श्री राधा-कृष्ण के मनोरम विग्रह को देखकर आप बहुत प्रसन्न हुए और गोवर्धन जी से कहने लगे – "हमारे आराध्य भी राधा-कृष्ण जी हैं परन्तु अभी तक हमारे मठ में राधा-कृष्ण जी के विग्रह स्थापित नहीं हुए हैं । यदि आप इन विग्रहों को देकर हमें इनकी सेवा प्रदान कर दें तो हम बहुत खुश होंगे व आपके कृतज्ञ रहेंगे ।"

आपकी बात सुनकर श्री गोवर्धन जी ने कहा – "यह तो हमारे गृह देवता हैं । यहां तो इनके नाम से बहुत सी सम्पत्ति है । इन्हें आपके मठ में सेवा-पूजा के लिए हम कैसे दे सकते हैं ? हाँ, यदि आप अपने मठ क लिए कहीं और से विग्रह ले आयें तो मैं उनका खर्चा दे सकता हूँ ।"

गोवर्धन जी की बात सुनकर आपने कहा, गौड़ीय मठ के विग्रह तो जयपुर से आते हैं ।

कोई बात नहीं, जो खर्च होगा वो मैं दूंगा – गोवर्धन जी ने कहा ।

मठ में आकर गोवर्धन जी से हुई सारी बातचीत आपने अपने गुरु भाईयों को बतायी । सारी घटना सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो गये । कंजूस कहलाने वाले गोवर्धन जी ने ही विग्रहों को जयपुर

से लाने का, उनकी प्रतिष्ठा का, उनके अलंकारों का एवं विग्रहों के प्रतिष्ठा-समारोह में हुए उत्सवादि का सारा खर्चा दिया। इतना ही नहीं, जब उन्हें हरिकथा सुनने के लिए निवेदन किया गया तो उन्होंने प्रतिदिन हरिकथा सुनने के लिए मठ में आना प्रारम्भ कर दिया। प्रतिदिन के सत्संग के प्रभाव से धीरे-धीरे उन्हें संसार की असारता का अनुभव होने लगा व साथ ही साथ उन्हें ये भी लगा कि वास्तव में भगवान् का भजन करना ही मनुष्य जीवन का एकमात्र कर्त्तव्य है व हरिभजन से ही नित्य शांति लाभ हो सकती है। इन सब बातों को विचार करते हुए उन्होंने अपनी सभी गंदी आदतों को छोड़ दिया व शुद्ध भक्ति के सदाचार को अवलम्बन करके मठ से हरिनाम-मन्त्र आदि लेकर हरिभजन का दृढ़ संकल्प लिया। श्री गोवर्धन बाबू के इस प्रकार के परिवर्तन को देख कर स्थानीय लोग बहुत विस्मित व उल्लसित हुए।

एक दिन गोवर्धन बाबू की धर्म पत्नी मठ में आयी और गुरुदेव जी को प्रणाम करती हुई व्याकुल भाव से कहने लगी - "आप लोगों की कृपा से मेरे पति में परिवर्त्तन हुआ है। हमारी सारी अशांतियां दूर हो गयी हैं।"

इस प्रकार श्रील गुरु महाराज जी को देखकर कितने लोग उनकी

ओर आकर्षित हुए, आपके सुमधुर व्यवहार से कितने लोग मुग्ध हुए व कितने लोगों के जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ-इसका एक छोटा सा नमूना उपरोक्त घटना में उल्लखित हुआ।

संन्यास लेने से कुछ समय पूर्व आप ज़िला बांकुड़ा के केथेर डांगा, उन्दा झान्टिपहाड़ी व बांकुड़ा इत्यादि तथा मेदिनीपुर ज़िले के गड़वेंता आदि विभिन्न स्थानों पर शुद्ध भक्ति का प्रचार करने के लिये गये थे। आपके व्यक्तित्व, आदर्श चरित्र तथा आपके श्रीमुख से वीर्यवती कथा सुन कर वहां के बहुत से नर-नारी श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा के प्रति आकृष्ट हुए। जब आप प्रचार में थे तो उस समय श्रीमद् कृष्ण केशव ब्रह्मचारी, श्रीमद् राम गोविन्द ब्रह्मचारी, श्री कुंज लाल प्रभु और श्री हरि विनोद प्रभु इत्यादि गुरु भाई प्रचार में आपके सहायक के रूप में थे। 'केथेर डांगा' में श्री राधा गोविन्द सीट एवं 'उन्दा' में श्री अविनाश पाल जी ने भी श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की वाणी के प्रचार में सहायता की थी। यद्यपि श्रील प्रभुपाद जी की आपको त्रिदण्ड संन्यास देने की इच्छा थी परन्तु भिक्षा आदि कार्यों में कुशल व व्यस्त रहने के कारण आप संन्यास नहीं ग्रहण कर पाये। श्रील प्रभुपाद जी की अन्तर्धान लीला के बाद पूज्यपाद श्रीकुंजबिहारी विद्याभूषण प्रभु, पूज्यपाद भक्ति प्रकाश अरण्य महाराज; पूज्यपाद भक्ति सर्वस्व

गिरि महाराज, पूज्यपाद श्री भक्ति सर्वस्व पर्वत महाराज, पूज्यपाद श्री भक्ति प्रसून बोधायन महाराज, श्री कृष्ण केशव ब्रह्मचारी तथा श्री सुन्दर गोपाल ब्रह्मचारी आदि गुरु भाइयों के विशेष अनुरोध से आप शुद्ध भक्ति प्रचार के अनुकूल त्रिदण्ड संन्यास लेने के लिए कृतसंकल्प हुए ताकि प्रभुपाद जी की इच्छा की भली - भांति पूर्ति हो सके । अतः सन् 1944 फाल्गुनी पूर्णिमा को गौर आविर्भाव तिथि पर आपने श्री टोटा गोपीनाथ जी के मंदिर (श्री पुरुषोत्तम धाम, उड़ीसा) में अपने गुरुभाई परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद् भक्ति गौरव वैखानस महाराज जी से सात्वत विधान के अनुसार त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया । तब आपकी उम्र 40 वर्ष की थी । संन्यास के बाद आप परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपके संन्यास के समय पूज्यपाद कुंज बिहारी विद्याभूषण प्रभु, पूज्यपाद श्री परमानन्द विद्यारत्न प्रभु, पूज्यपाद श्री पर्वत महाराज तथा पूज्यपाद श्री बोधायन महाराज आदि गुरु भाई उपस्थित थे ।

श्री पुरुषोत्तम धाम में त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण करने के बाद, श्री श्यामानन्द गौड़ीय मठ में शुभ पदार्पण करने पर विश्ववैष्णव राजसभा द्वारा आप विशेष रूप से सत्कारित हुए । श्री विश्ववैष्णव राजसभा से जो लिखित अभिनन्दन पत्र आपको प्राप्त हुआ था

उसमें आपकी निर्भीकता, सत्साहस एवं प्रचार में जन - साधारण को मुग्ध करने की क्षमता तथा इसके इलावा सर्वोपरि श्रील प्रभुपाद जी के आनन्द - वर्धनकारी व वैष्णव - प्रीति आदि महान् गुणावली कीर्तित हुई ।

गुरु - निष्ठा तथा गुरुदेव जी के वैभव (गुरु भाईयों) में प्रीति आपका एक आदर्श थी । श्रील प्रभुपाद जी के अप्रकट हो जाने के बाद यदि कभी आपके गुरु भाई किसी विपरीत परिस्थिति में पड़ जाते थे तो आप हमेशा अपने सुख - दुःख की चिंता न करके उनकी सेवा करने के लिए उनके पीछे खड़े हो जाते थे । उस समय मठ की बाहरी अवस्था अनुकूल न होने के कारण व उस विपरीत परिस्थिति से सामन्जस्य न बिठा पाने के कारण प्रभुपाद जी के बहुत से योग्य - योग्य शिष्य मठ छोड़ कर वापस घर जाने की सोच रहे थे तो आपने बड़ी मुश्किल से उनको समझा - बुझाकर मठ में रखा । यहां तक कि, जो गुरु भाई घर चले गये थे उनके घर जा - जा कर स्वयं क्लेश सहन करते हुए भी उन्हें किसी तरह से समझा - बुझा कर वापस मठ में लाये । वे जिस - जिस को घर से वापस लाये थे उनमें से कोई - कोई तो आज भी आचार्य पद पर अधिष्ठित हैं ।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण के वैभव (कृष्ण भक्तों) में प्रीति

द्वारा ही श्रीकृष्ण प्रीति का यथार्थ प्रमाण पाया जाता है, उसी प्रकार गुरुदेव जी के वैभव (गुरु भाइयों) में प्रीति द्वारा ही गुरु प्रीति की पराकाष्ठा प्रदर्शित होती है। श्रील गुरुदेव जी की गुरु भाईयों में प्रीति की पराकाष्ठा उनके आदर्श जीवन के शेष मुहूर्त तक सुस्पष्ट रूप में अभिव्यक्त थी।

संन्यास ग्रहण करने के बाद श्री गुरुदेव जी ने सम्पूर्ण भारत में शुद्ध भक्ति का प्रचार तो किया ही, इसके इलावा वे बंगला देश में भी उसके स्वतन्त्र होने से कुछ पहले व बाद में भी जाते रहे। जब आप बंगला देश में शुद्ध भक्ति के प्रचार के लिए जाते थे तो अक्सर आपके साथ श्री मिहिर प्रभु, श्री संकर्षण प्रभु, श्री कृष्ण केशव ब्रह्मचारी, श्री राम गोविन्द ब्रह्मचारी, श्री त्रैलोक्य प्रभु, श्रीमहेन्द्र प्रभु, श्री ब्रह्म, श्री प्यारीमोहन ब्रह्मचारी, श्री यज्ञेश्वर दास बाबा जी महाराज आदि होते थे। आपने वहां के मंमन सिंह ज़िले में श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की वाणी का खूब प्रचार किया। इस ज़िले के बालिहाटी, ढाका, नवाबगंज, कलाकोपा ग्राम, जामुकि, पाकुल्ला तथा चूड़ाइन आदि स्थान मुख्य थे–जहां आपने प्रचार किया।

प्रचार के दिनों में आप भाग्यकुल की राजबाड़ी में तथा कलाकोपा के श्री शम्भू साहा के घर में भी ठहरे थे। नवाबगंज

(ढाका) के कॉलेज में आपके प्रवचन को सुन कर वहां के अध्यापक लोग बहुत प्रभावित व विस्मित हुए थे तथा आपके असाधारण व्यक्तित्व की ओर आकृष्ट हुए थे।

बाघराय की एक दरिद्र महिला भक्त, श्रीमती कुसुम कुमारी देवी की अद्भुत वैष्णव-सेवा प्रवृत्ति देख कर सभी चमत्कृत हो उठे थे। हुआ ऐसा कि जब गुरु महाराज जी अपनी प्रचार पार्टी के साथ बंगला देश पहुंचे तो उक्त महिला ने गुरु महाराज जी से अनेक बार अनुनय-विनय की कि वे इस बार उसके घर ठहरें। गरीब महिला का भक्ति भाव देख कर गुरु महाराज जी ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। अपने घर में ठहरा कर उक्त गरीब महिला ने जिस भाव से सभी वैष्णवों की खूब सेवा की, वह धनी घरों में भी देखने को नहीं मिलती। बाद में पता चला कि उक्त महिला ने अपना वह मकान, जिसमें वह स्वयं रहती थी किसी को बेच दिया था और उसी पैसे से गुरु वैष्णवों की सेवा की। जिसको उसने मकान बेचा उससे इस बात की अनुमति ले ली थी कि जब तक गुरु वैष्णव लोग यहां रहेंगे तो वे उचित व्यवहार करेंगे, महात्माओं के चले जाने के बाद वे मकान पर कब्जा कर सकते हैं। बिक्री किए गए मकान में ही उक्त गरीब महिला ने श्रीगुरु व वैष्णवों की सेवा की। उसने सेवा का सुयोग प्राप्त करने के लिए ही आर्ति के साथ, यह जानते हुए भी कि उसके बाद वृक्ष

के नीचे रहने वाले रास्ते के भिखारियों की तरह रह कर उसे अपनी बाकी ज़िन्दगी बितानी पड़ेगी – प्राणपन से सेवा की । गुरु महाराज जी को जब यह सब मालूम पड़ा तो वे अत्यन्त दुःखित और मर्माहत हो उठे ।

श्री गुरु महाराज जी ने जब उस महिला से इस विचार – रहित कार्य को करने का कारण पूछा तो महिला ने कहा – "वैष्णव – सेवा द्वारा ही जीव का वास्तविक मंगल होता है । क्या पता फिर अपने इस जीवन में कभी गुरु – वैष्णव – सेवा का ऐसा स्वर्ण अवसर मिलेगा या नहीं ? सो, मैंने अपने जीते – जीते व सामर्थ्य रहते – रहते ये अतिशय शुभ सेवा कार्य पूरा कर लिया है । अब मृत्यु भी हो जाए तो मुझे कोई दुःख नहीं होगा ।"

महिला की बात सुन कर गुरु महाराज जी विस्मित हो उठे और सोचने लगे कि हृदय में वैष्णव – सेवा की ऐसी प्रवृत्ति होना दुर्लभ है ।

इस घटना के कुछ समय पश्चात् कुसुम कुमारी देवी ने श्रीगुरु महाराज जी से हरिनाम – मन्त्र आदि ग्रहण किया व बाकी का अपना जीवन श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की जन्मलीला भूमि श्रीधाम मायापुर के योगपीठ में बिताया । वहां पर उसने ऐकान्तिक निष्ठा द्वारा गौर भजन का कठोर व्रत लिया व उस व्रत के अन्तर्गत

तीव्र भजन करते – करते उस महिला ने अपने शरीर को छोड़ दिया व स्वधाम को प्राप्त हो गयी ।

श्रीगुरु महाराज जी अपने आश्रितों को हरिकथा सुनाते समय आदर्श वैष्णव – सेवा एवं गौरांग निष्ठा का दृष्टांत देने के लिए अक्सर कुसुम कुमारी की बात सुनाया करते थे ।

मैमन सिंह ज़िला के अन्तर्गत जामुकी पाकुल्ला स्थित उच्च अंग्रेज़ी विद्यालय के प्रांगण में हुई एक विराट् धर्म – सभा के आयोजन के अवसर पर श्री महाराज जी ने जो योगदान किया था – उसका उल्लेख श्रील गुरुदेव जी हरिकथा प्रसंग में करते थे –

बात उस समय की है जब पूर्व पाकिस्तान स्वतन्त्र राष्ट्र हो चुका था । कॉलेज के प्रांगण में एक विराट् धर्म – सभा का आयोजन हुआ । सभा में उपस्थित श्रोताओं में कॉलेज के अनेक छात्र, अध्यापक तथा हिन्दू – मुसलमान जाति के बहुत से नर – नारी उपस्थित थे । स्थानीय पुलिस विभाग के कुछ मित्र भाव वाले व्यक्ति गुरुदेव जी के पास आए । उन्होंने कहा – "देखिए स्वामी जी ! अब तो पूर्व पाकिस्तान स्वाधीन राष्ट्र बन चुका है; यहा की सरकार आपकी प्रत्येक गतिविध व भाषण पर नज़र रख रही है। स्वामी जी का ये वाक्य पाकिस्तान के स्वार्थ के विरूद्ध है – पाकिस्तान सरकार के पास गया बस इतना वाक्य ही आपको जेल

में डलवा देगा।" पुलिस द्वारा दी गयी चेतावनी से व कई पुलिस ऑफिसरों को सभा में बैठे देख गुरुदेव जी थोड़ा चिन्तित हुए कि यदि किसी भी कारण को दिखा कर ये मुझे जेल में बन्द कर देते हैं तो वहां भक्ति-सदाचार के प्रतिकूल वस्तु के संस्पर्श में रहने की आशंका है।

विभिन्न प्रकार के श्रोता होने के कारण भाषण के दौरान किसी न किसी का पक्ष तो ज़रूर होगा ही। इस आशंका से अपना भाषण प्रारम्भ करने से पूर्व श्रोताओं को निवेदन करते हुए गुरु जी ने कहा - "देखिए! भाषण सुन कर यदि किसी के मन में कोई शंका उत्पन्न हो तो वह भाषण के अन्त में पूछ सकता है, भाषण के बाद प्रश्नों के उत्तर के लिए 15 - 20 मिनट रखे जाएंगे परन्तु यदि भाषण में व्यक्त किए गए विचारों के इलावा किसी का प्रश्न हो तो वह मेरे वास स्थान पर आ सकता है। भाषण के बीच में कोई भी प्रश्न न करे। आपके ऐसा करने से सभी श्रोताओं को सुख नहीं होगा।" आपने अपना प्रवचन प्रारम्भ किया ही था कि लगभग आधे घण्टे बाद ही एक मौलवी साहब जिनके हाथ में एक उर्दू की किताब थी, अपने स्थान पर खड़े हो गए और प्रश्न करने लगे कि हिन्दुओं में जो बुत परस्तवाद है अर्थात् हिन्दू लोग जो बुत (मूर्ति) पूजा करते हैं, क्या युक्ति है इसकी ?

सभा के बीच में मौलवी साहब के प्रश्न से अनेकों श्रोता अप्रसन्न

हुए और उन्होंने गुरुदेव जी को प्रश्न का उत्तर न देने के लिए कहा। परन्तु गुरुदेव जी ने मौलवी साहब के प्रश्न का स्वागत किया और कहा कि मौलवी साहब ने जो प्रश्न किया है, वह एक अच्छा प्रश्न है। सभी को इसका उत्तर सुनना चाहिए। वे जो विषय बोल रहे हैं, उन्हें इससे अलग नहीं होना होगा बल्कि प्रश्न का उत्तर देने से वक्तव्य विषय और भी स्पष्ट हो जाएगा। अतः वे मौलवी साहब के प्रश्न का सभा में ही उत्तर देंगे।

गुरुदेव जी ने मौलवी साहब के प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व उनको ही एक प्रश्न कर दिया - "मौलवी साहब! आप खुदा को मानते हैं या नहीं ?"

गुरुदेव जी द्वारा इस प्रकार पूछने पर मौलवी साहब ने कहा - निश्चय ही मानता हूँ।

गुरुदेव जी ने दुबारा प्रश्न पूछा - खुदा की कोई शक्ति है या नहीं?

उत्तर में मौलवी साहब ने कहा - खुदा सर्वशक्तिमान् है।

मौलवी साहब के जवाबों को सुन कर गुरुदेव जी हंसते हुए कहने लगे - मौलवी साहब ने तो अपने आप ही अपने सवाल का जवाब दे दिया।

'सर्वशक्तिमान्' शब्द के गंभीर तात्पर्य को न समझ पाने के कारण ही मौलवी साहब की समझ में नहीं आया कि उनके प्रश्न का उत्तर कैसे हो गया है। तभी आपने मौलवी साहब को व अन्यान्य लोगों को समझाने के लिए एक उदाहरण देते हुए कहा – कपड़े सिलने वाली एक छोटी सुई में, जिसके अन्दर 90 नम्बर का धागा भी सुगमता से न घुस पाता हो, क्या मौलवी साहब का खुदा उस सुई के छेद से मैमन सिंह ज़िले के विशाल हाथी को इस पार से उस पार ला सकता है या नहीं बशर्ते कि हाथी के शरीर में ज़रा सा भी ज़ख्म न होने पाए, उसका एक बाल भी न टूटे।

मौलवी साहब को चुपचाप देख कर आपने कहा – मौलवी साहब के खुदा में कितनी शक्ति है, मैं नहीं जानता। लेकिन जिसको मैं भगवान् मानता हूँ, उनके लिए सब कुछ संभव है।

कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तु यः समर्थः स एव ईश्वरः।

भगवान् सर्वसमर्थ हैं। वे सब कुछ कर सकते हैं, वे किए हुए को उल्टा कर सकते हैं, उल्टे किए हुए को फिर पलट सकते हैं। उन सर्वशक्तिमान् के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। सर्वशक्तिमान् सब कुछ करने में समर्थ हैं। हम जो-जो शक्ति भगवान् में स्थापित करेंगे, उस-उस शक्ति से ही भगवान युक्त होंगे, ऐसे

में उन्हें सर्वशक्तिमान् नहीं कह सकते हैं। हमारी कल्पना के अन्दर और बाहर समस्त शक्ति वाले तत्व को ही सर्वशक्तिमान् कह सकते हैं। जब एक बार भगवान् को सर्वशक्तिमान् मान लिया तो वह उस कार्य को कर सकते हैं और उस कार्य को नहीं कर सकते हैं, ऐसी बात कहने का हमारा अधिकार नहीं है। सर्वशक्तिमान् अपने भक्त की इच्छा को पूर्ण करने के लिए जिस किसी मूर्ति को धारण करके तथा जिस किसी भी स्थान पर आ सकते हैं। यदि कहें कि वे ऐसा नहीं कर सकते तो भगवान् को सर्वशक्तिमान् कहना निरर्थक है। मनुष्य कर्त्तारूप से मिट्टी द्वारा, धातु द्वारा अर्थात् पंचमहाभूत द्वारा जो निर्माण करेंगे; अथवा जड़ीय मन द्वारा साकार व निराकार जो भी चिन्ता करेंगे - सब जड़ ही होगी। उसको ही बुत (पुतुल) कहा जाएगा। सनातन धर्म में बुत पूजा की व्यवस्था नहीं है। सनातन धर्म पालन करने वाले 'श्रीविग्रह' की आराधना करते हैं। भक्त के प्रेम के वशीभूत होकर सर्वशक्तिमान् भगवान् जो विशेष मूर्ति ग्रहण करते हैं; उसको ही श्रीविग्रह कहते हैं। 'श्रीविग्रह' और 'पुतुल' (बुत) में ज़मीन - आसमान का अन्तर है। श्रीविग्रह चिदानन्दमय साक्षात् भगवान् ही हैं। भगवान् की माया से मोहित कामातुर बद्ध जीव श्रीविग्रह का चिन्मय स्वरूप दर्शन करने में असमर्थ होते हैं। यहां तक कि यदि भगवान् साक्षात् उनके सामने उपस्थित हो जाएं तो

भी वह उनको भगवान् रूप से पहचान नहीं सकेंगे । शुद्ध भक्ति नेत्रों द्वारा ही भगवत् अनुभूति हो सकती है। भगवान् के दर्शनों के लिए जो योग्यता चाहिए, उसको अर्जित किए बिना भगवत् - दर्शन नहीं होता है ।

आसाम के नर - नारियों में साधुओं के प्रति श्रद्धा व उनके हृदयों की सरलता को देख कर श्रील प्रभुपाद जी की आसाम में शुद्ध भक्ति प्रचार करने की इच्छा थी । यहां तक कि उन्होंने इस महान् कार्य के लिए श्री गुरु महाराज जी को निर्देश भी दिया था। इसी निर्देश को स्मरण करते हुए श्री गुरु महाराज जी ने संन्यास ग्रहण एवं बंगला देश में शुद्ध भक्ति का प्रचार करने के पश्चात् अपनी प्रचार पार्टी के साथ सरभोग, ज़िला कामरूप (अब जिला बरपेटा) में शुभ पदार्पण किया । उस समय आपकी पार्टी में श्री भुवन प्रभु, श्री उद्धारण प्रभु तथा श्रीमद् कृष्ण केशव ब्रह्मचारी प्रभु थे । प्रभुपाद जी के अप्रकट हो जाने के बाद सरभोग श्री गौड़ीय मठ की परिचालना व्यवस्था के परिवर्तन होने की वज़ह से तथा वहा पर ठहरने की असुविधा के कारण गुरु महाराज जी श्रीमन् कृष्ण केशव प्रभु के पूर्व आश्रम के बड़े भाई के घर पर ही ठहर गये थे । बहुत वर्षा होने के कारण उस समय चारों ओर पानी ही पानी दिखाई देता था । सड़कों पर घुटने - घुटने तक व कहीं - कहीं इससे भी अधिक पानी था । यहां तक कि घरों में भी

पानी भरा हुआ था। अतः बिस्तर इत्यादि समान बैलगाड़ी में रख कर लाया गया व सभी पानी के बीच ही पैदल चल कर आये, सभी के ठहरने के लिए व शौचादि के लिए बांसों के ऊँचे - ऊँचे मचान बनाए गए । शौचादि के लिये मचान, रहने वाले मचान से कुछ दूरी पर बनाया गया था । ऐसी परिस्थितियों में रसोई का सारा कार्य श्रीमद् कृष्ण केशव प्रभु जी की पूर्वाश्रम की भक्तिमती व सेवा परायण माता जी ने किया । उन्होंने पानी के मध्य ही तमाम प्रकार के अन्न, व्यंजनादि रसोई करके वैष्णव - सेवा की यथोपयुक्त व्यवस्था की ।

एक ओर तो चारों ओर पानी ही पानी - ऐसी अवस्था में रहना, खाना व शौचादि जाना सभी कष्टप्रद था तो दूसरी ओर उन्हीं दिनों में जापान के साथ युद्ध आरम्भ हो चुका था । जापानी सेना बर्मा देश को पार करके आसाम की सीमा पर पहुँच गयी थी । इधर अंग्रेज़ों के अधीन भारतीय सेना, आसाम की सीमा से लगे गांवों को भारतीय सेना के ठहरने के लिए खाली करवा रही थी । सेना जिन गावों को खाली करवाकर उनमें ठहरने की व्यवस्था कर रही थी उनमें श्रीमद् केशव प्रभु जी के पूर्वाश्रम का वह घर भी था जिसमें गुरु महाराज जी अपनी पार्टी के साथ ठहरे हुए थे । अतः श्री गुरु महाराज जी को वह घर छोड़ना पड़ा और वे अपनी प्रचार पार्टी के साथ सरभोग के पास ही के एक गांव में

ठहर गये । इतना कष्ट होने पर भी श्री गुरु महाराज जी निराश नहीं हुए । अपने गुरु जी के आदेश को पालन करने के लिए व कृष्ण विमुख जीवों का कल्याण करने के लिए आप जिस किसी त्याग को स्वीकार करने व क्लेश को वरण करने से कभी भी विमुख नहीं हुए – ये सब घटनाएं हमारे लिए उदाहरण – स्वरूप हैं ।

इस प्रकार की असुविधाओं के होते हुए भी सात दिन के प्रचार के बाद श्रीगुरु महाराज जी सरभोग में ही श्री गोपाल प्रभु के घर ठहर गये । वहां के अवस्थान काल में स्थानीय विद्यालय के अध्यापक व विशिष्ट व्यक्ति श्री चिन्ताहरण पाटगिरी महोदय के घर पर प्रतिदिन "श्रीमद् भागवत" पाठ की व्यवस्था हुई । सरभोग प्रचार के समय जिन्होने श्रीगुरु महाराज जी का चरणाश्रय ग्रहण किया था उनमें श्री गोपाल दासाधिकारी एवं उनकी पत्नी, श्री शिवानन्द दासाधिकारी, श्री खगेन दासाधिकारी व अच्युतानन्द दासाधिकारी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । जिन दिनों श्री गुरु महाराज जी श्री चिन्ताहरण पाटगिरि जी के घर में हरिकथा करते थे, उन्हीं दिनों एक स्थानीय युवक श्री कमलाकान्त गोस्वामी प्रतिदिन श्री गुरु महाराज जी से हरिकथा सुनने आता था । हरिकथा सुनते – सुनते वह श्रीमन् महाप्रभु जी की शिक्षा के प्रति इतना आकृष्ट हुआ कि घर – द्वार छोड़ कर प्रचार पार्टी के साथ ही

सहयोग देने लगा । श्री चिन्ताहरण जी के घर में प्रोग्राम समाप्त होने के बाद श्री गुरु महाराज जी श्री शिवानन्द प्रभु व उनके बहनोई के विशेष आग्रह पर भवानीपुर – तापा में ठहरे । कमलाकान्त गोस्वामी भी गुरुदेव जी के साथ तापा आ गया । कमलाकान्त के पिता जी श्री घनकान्त गोस्वामी जैसे – तैसे वहां पहुंच गये व अपने लड़के को खूब डांटने लगे एवं ज़बरदस्ती उसे घर ले गये । श्री घनकान्त गोस्वामी में वहां के समाज में प्रचलित ब्राह्मण संस्कार प्रबल थे । इसलिए वे गौड़ीय मठ के दैववर्णाश्रम धर्म का समर्थन नहीं कर पाये । उन्होंने विचार किया कि गौड़ीय मठ का भोजन करने के कारण उनके पुत्र की जाति नष्ट हो गयी है । अतः अपने पुत्र को प्रायश्चित कराने के लिए उन्होने कमलाकान्त को घर से बाहर ही रखा । जिन दिनों कमलाकान्त श्री गुरु महाराज जी से हरिकथा सुनने आते थे तो उन्हीं दिनों उन्होंने श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में आविर्भूत श्रील गुरुदेव जी से हरिकथा प्रसंग में ब्राह्मणों व वैष्णवों में अन्तर व वैष्णवों की सर्वोत्तमता सुनी थी । उन्होंने ये भी सुना हुआ था कि वैष्णव (भगवान् का भक्त) तो किसी भी कुल में व किसी भी जाति में आ सकता है । इन्ही शुद्ध भक्ति सिद्धान्तों को श्रवण करने के कारण वह समझ नहीं पा रहा था कि उसने गौड़ीय वैष्णवों के द्वारा, जिनका आचरण व व्यवहार शास्त्र विधि के अनुसार है- तैयार किया हुआ या दिया हुआ भोजन

किया तो इसमें उसने क्या दोष किया ? अतः पिता के द्वारा किया गया वैष्णव-मर्यादा हानिकर व्यवहार कमलाकान्त को सहन नहीं हुआ और वह वैष्णव-अपराध से छुटकारा पाने के लिए अगले दिन ही दुबारा घर छोड़कर श्री गुरु महाराज जी के श्रीचरणों में उपस्थित हो गया । उस समय श्रीगुरु महाराज जी तापा नामक स्थान पर ही थे । तापा गांव सरूपेटा रेलवे स्टेशन के नज़दीक ही है, यद्यपि कमलाकान्त ने श्री गुरु महाराज जी से हरिनाम-दीक्षा देने की प्रार्थना की थी परन्तु परिवार के लोग बाधा उपस्थित कर सकते हैं-ऐसा सोचकर श्री गुरु महाराज जी ने उन्हें वहां पर हरिनाम इत्यादि देना उचित न समझा । यहां के ही एक धनी मारवाड़ी व्यक्ति ने श्री गुरुदेव जी के प्रति आकृष्ट होकर श्री चैतन्य वाणी के प्रचार व वैष्णव सेवा के लिए आन्तरिक भाव से यत्न किया था ।

शिवानन्द प्रभु गृहस्थ में रहते हुए भी विषय-विरक्त थे । वे ज़्यादातर समय ध्यान-धारणादि में व्यतीत करते थे । पिता ने अपने पुत्र को स्वेच्छा से श्री गुरु सेवा के लिए समर्पित किया हो, ऐसे उदाहरण कम ही देखे जाते हैं परन्तु उन्हीं दिनों श्री शिवानन्द प्रभु ने अपने पुत्र श्री लोकेश को श्री श्रीगुरु गौरांग की सेवा में नियोजित करने के लिए श्री गुरु-पादपद्म में समर्पित किया था । अतः वहीं श्री तुलाराम बाबू के घर पर श्रीशिवानन्द प्रभु का

भान्जा श्रीलोहित तथा पुत्र श्रीलोकेश श्रीगुरुदेव जी के हरिनामाश्रित हुए । कुछ समय पश्चात् यानि कि आसाम से कलकत्ता वापस आने के कुछ दिन पहले मेदिनीपुर मठ में श्रीलोहित, श्रीलोकेश व कमलाकान्त की मन्त्र-दीक्षा भी हुई जिससे वे क्रमशः श्रीललिता चरण ब्रह्मचारी, श्रीलोकनाथ ब्रह्मचारी व श्रीकृष्ण प्रसाद ब्रह्मचारी नाम से पहचाने जाने लगे । कई वर्षों के बाद जब श्री गुरु महाराज जी के द्वारा इन तीनों का संन्यास वेष हुआ तो तीनो क्रमशः त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद् भक्तिललित गिरि महाराज, त्रिदण्डि स्वामी भक्तिसुहृद दामोदर महाराज एवं त्रिदण्डि स्वामी भक्तिप्रसाद आश्रम महाराज के नामों से प्रसिद्ध हुए ।

कलकत्ता वापस आने से पूर्व श्रील गुरु महाराज जी गोहाटी (आसाम) में कुछ दिन रहे । उन दिनों श्रीमद् कृष्ण केशव प्रभु व श्री चिन्ताहरण पाटगिरि जी की विशेष सेवा प्रचेष्टा से श्रील गुरु महाराज जी वहां के अनेकों विशिष्ट व्यक्तियों के पास जाने का व उन्हें हरिकथा परिवेशन करने का सुयोग प्राप्त कर सके । जिन विशिष्ट व्यक्तियों से श्री गुरु महाराज जी मिले, उनमें आसाम के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री गोपीनाथ बड़दलई, श्री दुर्गेश्वर शर्मा, श्री कुमुदेश्वर गोस्वामी, श्री भुवन गोस्वामी, श्री कनकेश्वर गोस्वामी, श्री रोहिणी चौधरी, श्री नवीन बड़दलई, श्री गिरजादास, श्री धीरेन देव, श्री चरित्र बाबू तथा श्री नरेन्द्र बाबू इत्यादि मुख्य थे ।

श्री गोपीनाथ बड़दलई जी, जो कि आसाम के मुख्यमंत्री थे, के निवास पर भागवत पाठ की व्यवस्था हुई थी। श्रीगुरु महाराज जी के श्रीमुख से शुद्ध भक्ति सिद्धान्त सम्मत एवं सुयुक्तिपूर्ण श्रीमद् भागवत की अपूर्व हृदयग्राही व्याख्या सुन कर सभी श्रोता मुग्ध हो जाते। एक दिन श्री गोपीनाथ बड़दलई भागवत पाठ के समाप्त होने पर श्री गुरु महाराज जी की भागवत व्याख्या की हार्दिक प्रशंसा करते हुए कहने लगे – "आपसे भागवत पाठ सुन कर मुझे ऐसा लगता है कि आपके भागवत पाठ का उद्देश्य एवं महात्मा गांधी जी के भाषणों का उद्देश्य एक ही है। आप भी अनेक शास्त्र-प्रमाणों एवं युक्तियों द्वारा बहुत कुछ समझाने के बाद सभी से कृष्ण नाम करवाते हैं और गांधी जी भी अपने भाषणों में अनेक प्रसंग सुना कर अन्त में सभी को 'रामधुन' करवाते हैं। आप दोनो का ही उद्देश्य है – सभी को हरिनाम करवाना। मैं तो आप दोनों में कोई भी अन्तर नहीं देखता हूँ – आपका इस सम्बन्ध में क्या मत है, मैं जानना चाहता हूँ।"

श्री गोपीनाथ बड़दलई की श्री गुरुदेव जी के प्रति श्रद्धा व प्रीति होने की वजह से श्री गुरु महाराज जी ने सोचा कि यदि अब इन्हें अप्रीतिकर सत्य बात कही जाये तो ये सहन न कर पायेंगे। कई बातें सत्य होने से भी वह सभी को, सभी समय नहीं कही जा सकती। इसलिए, विद्वान् व्यक्ति ग्रहण करने का

अधिकारी देखकर, उसके अधिकार के अनुसार ही उसे उपदेश देते हैं।

श्रील गुरु महाराज जी ने मुस्कराते हुए श्री बड़दलई को कहा – "यदि आप नाराज़ न हों तो मैं अपना अभिमत व्यक्त करूँ ?"

उत्तर में श्री गोपीनाथ बड़दलई जी ने कहा – 'आपके मूल्यवान उपदेशों को सुन कर हम कृतार्थ हुए हैं। हमने इस प्रकार की ज्ञान से परिपूर्ण भागवत व्याख्या कभी किसी से नहीं सुनी थी। आप हमारे मंगल के लिये कुछ कहें और हम असन्तुष्ट हों, ये हो ही नहीं सकता। आप स्वच्छन्दतापूर्वक अपना अभिमत व्यक्ति कर सकते हैं।'

तब श्रील गुरुदेव जी ने कहा – जब मैं पूर्वाश्रम में था तो तब कांग्रेस के स्वाधीनता आंदोलन से भी कुछ जुड़ा हुआ था। उस समय साबरमती से कांग्रेस की 'Young India' नामक एक अंग्रेजी पत्रिका प्रकाशित होती थी। मैं उस पत्रिका को पढ़ता था। उसमें एक बार एक लेख में मैंने पढ़ा था कि गांधी जी ने किसी स्थान पर अपने भाषण में, अपने देशवासियों को अपना देश-प्रेम जताने के लिये कहा था कि यदि जरूरत पड़े तो वे देश के लिये अपनी अत्यन्त प्रिय 'रामधुन' का भी परित्याग कर

सकते हैं । श्री गुरु महाराज जी ने कहा कि जहां तक मुझे याद है, पत्रिका में लिखा था - I can Sacrifice 'Ramdhun for my Country, किन्तु हम लोग ठीक इसके विपरीत हैं - We can Sacrifice Country for Ramdhun' हमारे आराध्य 'राम' किसी के लिये नहीं हैं; वे स्वयं अपने लिये हैं एवं समस्त वस्तुएं उनके लिये हैं । पाश्चात्य दार्शनिकों ने भी 'Absolute' को इसी प्रकार की संज्ञा दी है - 'Absolute is for itself and by itself'. हम लोग It God नहीं कहते । हमारे भगवान् परम पुरुष 'He God' हैं । इसलिये हम लोग कहते हैं कि 'Absolute is for Himself and by Himself'. भगवान् से ही अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड आते हैं; भगवान् में ही उनकी स्थिति है तथा भगवान् के द्वारा ही उनका संरक्षण होता है - इसलिए अनन्त करोड़ विश्व ब्रह्माण्ड भगवान् के लिये हैं । **भगवान् की आराधना करने के लिये भगवद्तत्त्व को समझने की ज़रूरत है ।**

श्री गोपीनाथ बड़दलई श्रील गुरुदेव जी के असामान्य व्यक्तित्व से इस प्रकार आकृष्ट हुए थे कि उन्होंने अपने सकंल्प की बात गुरुदेव जी के समक्ष व्यक्त की कि वे संसार को छोड़ कर मठ में रहेंगे तथा सर्वतोभाव से अपने आपको भगवत् सेवा में लगाएंगे; परन्तु दुर्भाग्यवशतः उनके मित्रों ने उन्हें उस समय राजनीति

से संन्यास न लेने दिया परन्तु कुछ समय बाद उनका देहान्त हो जाने की वज़ह से वे अपने संकल्पानुसार कार्य न कर सके । **राजनीति एक ऐसा चक्र है कि जिसमें घुस जाने से उससे छुटकारा पाना बहुत मुश्किल है ।**

गोहाटी के कई विशिष्ट व्यक्ति श्री गुरुदेव जी के व्यक्तित्व से व उनकी वाणी से बहुत प्रभावित हुए जिससे गोहाटी से बाहर व वहां के स्थानीय लोगों पर प्रचार का बहुत प्रभाव पड़ा । गोहाटी में प्रचार करने के बाद श्रील गुरुदेव जी वापस कलकत्ता आ गये ।

सन् 1947 में श्रील गुरुदेव जब पुनः आसाम प्रचार में आये तो आसाम के महकुमा सदर (आजकल नाम है ग्वालपाड़ा ज़िला सदर) ग्वालपाड़ा के ही रहने वाले श्री गौड़ीय मठ के आश्रित गृहस्थ भक्त श्री राधामोहन दासाधिकारी जी के विशेष निमन्त्रण पर एक बार फिर श्री गुरु महाराज जी ग्वालपाड़ा में गये । उस समय उनके साथ पार्टी में जो - जो थे उनमें उल्लेखनीय हैं - श्रीमद् कृष्ण केशव ब्रह्मचारी, श्री माधवानन्द ब्रह्मचारी तथा रथारूढ़ दास ब्रह्मचारी । प्रचार के दौरान श्रील गुरु महाराज जी अन्यान्य वैष्णवों के साथ श्री राधारमण प्रभु के घर में ठहरे और शहर के विभिन्न स्थानों में धर्म सभाओं का आयोजन किया गया ।

स्थानीय हरि सभा में जो विशेष आयोजन हुआ, उसके सभापति हुए थे वहां के विशेष वकील क्षीरोदसेन महोदय। इनके अलावा वहां के विशिष्ट व्यक्ति व Govt Pleader श्री कामाख्याचरण सेन तथा Pleader of Mechpada State श्री प्रिय कुमार गुहराय आदि शहर के प्रतिष्ठित्त व्यक्ति, सभाओं में विशिष्ट व्यक्तियों के रूप में उपस्थित हुए थे। वहां के श्री धीरेन्द्र कुमार गुहराय के पुत्र श्री कामाख्या चरण, जो बाद में श्री कृष्ण बल्लभ ब्रह्मचारी एवं उसके पश्चात् श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ महाराज के नाम से परिचित हुए की श्रीगुरु महाराज जी से प्रथम मुलाकात श्री राधामोहन प्रभु के घर पर ही हुई थी। श्रीकामाख्या चरण वे उनके दोस्त श्री देवव्रत (रवि) तावजिज्ञासु होकर श्री गुरु महाराज जी के पास श्री राधामोहन जी के घर आये। अपने बन्धु के साथ श्री कामाख्याचरण जी भगवद्-प्राप्ति के लिए सुनिश्चित पथ के निर्देशन की प्रार्थना से युक्त अन्तःकरण के साथ जब गुरु महाराज जी के पास आये, उस समय वे (श्रीगुरु महाराज जी) एक खाट पर बैठे थे। दोनों ने महाराज जी को प्रणाम किया। प्रणाम करते समय श्री कामाख्याचरण जी को ऐसा अनुभव हुआ कि उन पर श्री गुरु महाराज जी के शुभ-आशीर्वाद की वर्षा हो रही है। ऐसा अनुभव करके वे पुलकित हो उठे। इसी समय उन्होंने श्री गुरुदेव जी से इस प्रकार का एक प्रश्न पूछा- "हरिनाम

करते-करते मेरे मन में ऐसी भावना होती है कि जैसे थोड़ी देर बाद ही उनको भगवान् के दर्शन होंगे और फिर संसार में जिन-जिन के प्रति प्रीति सम्बन्ध है-उन्हें छोड कर चला जाना पड़ेगा- इसी आशंका से उस समय हरिनाम बंद हो जाता है, वह हरिनाम जैसे बंद न हो, उसके लिए मैं आपके उपदेश की प्रार्थना करता हूँ।"

यद्यपि प्रश्न स्वल्पमेधाप्रसूत' तथा गुरुत्व-रहित था, तथापि उत्साह प्रदान करने के लिये श्रील गुरुमहाराज जी ने प्रश्न की प्रशंसा की व एक उदाहरण देकर समझाते हुए कहा-कीचड़ व दुर्गन्ध से युक्त एक कच्चा तालाब था जो कि बत्तखों (पाति हंसो) का विहार स्थान था। वे उस गन्दगी में रहकर कीचड़ में रहने वाल शामूक, गुगली व केंचुवे आदि प्राणियों को खाकर अपना जीवन निर्वाह करते थे। एक दिन उन्होंने देखा कि आकाश में काफी ऊंचाई पर उनके जाति-भाई हंस उड़ कर जा रहे हैं। वे हंस देखने में बहुत सुन्दर थे, आकार में भी बड़े थे व उनके पंख भी बड़े विचित्र व मनोहर थे। बत्तखों ने इस प्रकार विचार किया कि उड़ने वाले ये हंस जहां रहते हैं, निश्चय ही वह स्थान अत्यन्त रमणीक होगा। यदि हमको भी उनके साथ रहना मिलता तो हमारा चेहरा भी सुन्दर हो जाता एवं हम भी परम सुखी हो सकते थे।

आकाश में उड़ने वाले हंस, जाति से राजहंस थे। वे समुद्र

में गये थे और अभी लौटकर मान सरोवर में जा रहे थे। जब बत्तख अत्यन्त करुण भाव से उन्हें देख रहे थे तो एक राजहंस को बत्तखों की दुरावस्था देख कर दया आ गयी। वह आकाश में घूम-घूम कर ज़मीन पर उतरने लगा। बत्तख राजहंस का अपूर्व प्रकाण्ड रमणीक चेहरा देख कर आश्चर्यान्वित हो गये। वे हंस से, जहां वे रहते हैं, उन्हें भी वहां ले चलने के लिए प्रार्थना करने लगे। राजहंस ने कहा - आप सभी को इस दुर्गन्ध वाले स्थान से उद्धार करने के लिये ही मैं आया हूँ। जब राजहंस ने उन बत्तखों को अपने साथ चलने के लिये कहा तो उन्होंने अपनी मज़बूरी बताते हुये कहा कि वे ज्यादा ऊपर नहीं उड़ सकते। बत्तखों की मज़बूरी समझ कर राजहंस को और भी दया आ गयी। उसने अपने दर्यार्द्रचित से कहा कि आप मेरी पीठ पर चढ़ जाइये, मैं आप सबको ले जाऊँगा। राजहंस की बात सुन कर सारे बत्तख चिन्तित हो उठे व आपस में काफी देर तक विचार-विमर्श करते रहे और राजहंस से पूछने लगे कि वे उन्हें जहां ले जा रहे हैं वहां खाने के लिए शामूक, गुगली व केंचुवे इत्यादि प्राणी मिलते हैं कि नहीं ?

उत्तर में राजहंस ने कहा कि वे हिमालय के मान-सरोवर में रहते हैं। वहां इस प्रकार की गन्दी चीज़ें नहीं होतीं। वहां पर तो वे कमल के मृणाल का भोजन करते हैं। राजहंस की बात सुन कर बत्तखों के मुख से चीख निकल गयी। वे घबराहट के साथ

कहने लगे कि वहां क्या खाकर ज़िन्दा रहेंगे ....। अन्त में यह निर्णय हुआ कि वे राजहंस के साथ नहीं जाएंगे। **बत्तखों की इतर आसक्ति ही राजहंसों के रमणीक स्थान में जाने के लिए बाधक बनी। ठीक इसी प्रकार भगवान् की बहिरंगा माया द्वारा रचित नश्वर देह व देह सम्बन्धी व्यक्तियों के प्रति आसक्ति ही भगवान् के पास जाने के लिए बाधक स्वरूप होती है।** भगवान् निर्गुण, मंगलमय व परमानन्द स्वरूप हैं। उनका धाम भी उसी प्रकार का है वहां पर गन्दी-घृणित व नाशवान वस्तुओं का अधिष्ठान नहीं है। जो भगवान् के लिए अन्य वस्तुओं की आसक्ति को नहीं छोड़ सकते, भगवान के अतिरिक्त अन्यान्य मायिक वस्तुओं को जो जकड़ कर रखना चाहते हैं, वे कभी भी भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकते। भगवान् और माया दो विपरीत वस्तुएं हैं। साधु-संग के द्वारा भगवान् व उनकी भक्ति को छोड़ कर अन्यान्य वस्तुओं की मांग से छुटकारा न मिलने तक जीवों का यथार्थ मंगल नहीं हो सकता।

"ततो दुःसंगमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान्।
सन्त एवास्य छिन्दन्ति मनोव्यासंगमुक्तिभिः ॥"
भा. 11/26/26

अतएव बुद्धिमान् व्यक्ति दुःसंग को परित्याग करके सत्संग

करेंगे और साधु लोग अपने साधु - उपदेशों के द्वारा उनकी भक्ति की तमाम प्रतिकूल वासनाओं का छेदन करेंगे ।

श्रीमद् राधामोहन प्रभु, श्री श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' जी के दीक्षित शिष्य थे । वे दीक्षित होने के बाद 'श्रीराधामोहन ब्रह्मचारी' के नाम से श्री गौड़ीय मठ में कुछ दिन रहे थे । गृहस्थाश्रम में प्रवेश होने के बाद वे श्री राधामोहन दासाधिकारी के नाम से श्री गौड़ीय मठाश्रित व्यक्तियों में परिचित हुये । उनकी भजन - निष्ठा एवं भक्ति सिद्धान्त विषयों में पारंगति देखकर ग्वालपाड़ा अंचल के भक्त लोग उनमें बहुत श्रद्धा करते थे । शहर के स्थानीय व्यक्तियों में वे 'राममोहन दा' नाम से परिचित थे । वे श्री कामाख्या चरण (श्रीमद्भक्ति बल्लभ तीर्थ) के पूर्वाश्रम के चाचा के ऑफिस में काम करते थे, गांव के सम्बन्ध से भी उन्होंने श्रीमद्भक्ति बल्लभ तीर्थ के पारमार्थिक कल्याण के लिये जो स्नेह प्रदर्शन किया व यत्न किया, उसकी कोई तुलना नहीं की जा सकती । श्रीमद्भक्ति बल्लभ तीर्थ महाराज जी के गौड़ीय मठ में आने के मूल पथ - प्रदर्शक गुरु के रूप में वे ही थे । उनके लिए उन्हें न जाने कितनी कटुक्तियां सहन करनी पड़ीं व न जाने कितने लोगों द्वारा की गयी विरुद्ध समालोचना का सामना उन्हें करना पडा । श्रील गुरु महाराज जी के साथ श्री कामाख्याचरण का जो पत्रालाप होता था, उसका उत्तर भी

राधामोहन प्रभु के घर के पते पर ही आता था । राधामोहन प्रभु की भक्तिमती सहधर्मिणी एवं उनके परिजन वर्ग का स्नेह - ऋण अपरिशोधनीय है अर्थात् उनके स्नेह के ऋण को उतारा नहीं जा सकता ।

श्रील गुरु महाराज जी ने अपने स्नेहपूर्ण कृपा - आशीर्वाद रूप पत्रों में श्रीभक्ति बल्लभ तीर्थ के प्रश्नों के उत्तर देते हुए तमाम संशयों को मिटाया तथा श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी द्वारा लिखित "जैव धर्म" ग्रन्थ का अध्ययन करने का उपदेश दिया था । जैव धर्म ग्रन्थ के पाठ करने से श्रील भक्ति बल्लभ तीर्थ के बहुत दिनों के संचित संशयों का निवारण हो गया था । निवृतिमार्गी, एकान्त पारमार्थिक जीवन धारण करने वालों के लिए सरकारी नौकरी करना उचित नहीं है, किन्तु प्रवृत्ति मार्ग में, घर में रहकर भजन करने की इच्छा होने पर सरकारी नौकरी करना ठीक है - इस प्रकार का उपदेश भी पत्र द्वारा श्रील गुरु महाराज जी ने प्रदान किया था । घर के परिवेश में रहकर भजन सम्भव नहीं होगा - ऐसा विचार कर श्रीभक्ति बल्लभ तीर्थ ने गृह - त्याग का संकल्प लिया ।

हमारे परम गुरु - पादपद्म नित्य लीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर, जो कि

श्री चैतन्य मठ एवं श्री गौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता थे, ने भी अपने पार्षदों के साथ ग्वालपाड़ा शहर में पदार्पण किया था। उनके निर्देशानुसार उनके ही आश्रित गृहस्थ शिष्य पूज्यपाद श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु द्वारा ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर हुलूकान्दा पहाड़ के ऊपर रमणीय स्थान में 'श्रीप्रपन्नाश्रम' नामक श्रीगौड़ीय मठ की एक शाखा स्थापित हुई थी परन्तु सेवकों के अभाव में वे अनेकों असुविधाओं के कारण वह शाखा धीरे - धीरे लुप्त हो गयी। परवर्ती काल में जब श्रीमद् शरत कुमार नाथ जी ने ग्वालपाड़ा में मठ की स्थापना के लिए मकान सहित ज़मीन देने की इच्छा व्यक्त की तो श्रील प्रभुपाद जी का अभिप्राय समझ कर श्रील गुरु महाराज जी ने उनकी ज़मीन व मकान को लेने की स्वीकृति दे दी तथा वहां पर श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ की एक शाखा स्थापित कर दी।

श्रील गुरुदेव जी ने ग्वालपाड़ा एवं कामरूप ज़िले के भक्तों के आमन्त्रण पर जिन - जिन स्थानों पर शुभ पर्दापण किया उनमें बिजनी, भाटिपाड़ा, हाउली, बरपेटा इत्यादि स्थान उल्लेखनीय हैं। हाउली में जो धर्म सभा हुई थी उसमें हिन्दू व मुसलमान परिवार के सहस्त्राधिक नर - नारी उपस्थित थे। प्रवचन के बीच में श्रोताओं की ओर से प्रश्न उठ सकते हैं, इस आशंका से श्रील गुरु महाराज जी ने अपने प्रवचन के प्रारम्भ में ही कह दिया कि यदि किसी का कोई प्रश्न हो तो वह प्रवचन के बीच में न पूछे।

प्रश्नों के उत्तर के लिये सभा के बाद 15 - 20 मिनट का समय दिया जायेगा। इतना कहने पर भी प्रवचन के बीच में एक मौलवी साहब ने प्रश्न किया - "क्या आत्मा - परमात्मा को किसी ने देखा है ? आप आत्मा - परमात्मा की बात कहकर दुनियां के लोगों को धोखा नहीं दे रहे हैं - इसका प्रमाण क्या है ?"

मौलवी साहब का प्रश्न सभा के नियम के प्रतिकूल था, इसलिये उनके प्रश्न से श्रोता नाराज़ हो गये और उन्होंने श्री गुरु महाराज जी को प्रश्न का उत्तर देने के लिये मना कर दिया। परन्तु उक्त प्रश्न का उत्तर न देने से शायद अज्ञ व्यक्ति यह न समझें कि इसका उत्तर ही नहीं, अतः श्रील गुरुदेव जी ने सभा में ही मौलवी साहब के प्रश्न का उत्तर दिया।

मौलवी साहब के हाथ में एक पुस्तक थी। श्रील गुरुदेव जी ने मौलवी साहब से पूछा - आपके हाथ में जो पुस्तक है, उसका नाम क्या है ?

मौलवी साहब पुस्तक को किताब कहते हैं व किताब का नाम बताते हैं।

बंगला, आसामी, हिन्दी तथा अंग्रेज़ी इत्यादि भाषाओं का ज्ञान व आँखें ठीक होने पर भी वे (श्री गुरु महाराज) उस किताब का 'वो' नाम नहीं देख पा रहे हैं - क्यों ? मौलवी साहब मुझे

धोखा नहीं दे रहें हैं, इसका क्या प्रमाण है ? - श्रील गुरुदेव जी ने पूछा ।

श्रील गुरु महाराज जी के प्रश्न को सुनकर मौलवी साहब के आसपास जो लोग बैठे थे उन्होंने भी किताब को अच्छी तरह से देखा और श्रील गुरु महाराज से कहा कि मौलवी साहब किताब का जो नाम बता रहे हैं वह ठीक है ।

इसके उत्तर में श्रील गुरु महाराज जी ने कहा कि आप सब लोग एक साथ मिल कर मुझे धोखा दे रहे हो।

मौलवी साहब कुछ आश्चर्यान्वित हुये और उन्होंने जानना चाहा कि श्रील गुरुदेव क्या देख रहे हैं व उनके इस प्रकार बोलने का अभिप्राय क्या है ?

तो श्रील गुरु महाराज जी ने कहा कि मै तो देखता हूँ कि कोई एक कौवा स्याही पर बैठा रहा होगा । बाद में वही आपकी इस किताब के ऊपर बैठ गया होगा, ये उसी के पैरों के निशान हैं ।

श्रील गुरुदेव के इस प्रकार के मंतव्य को सुन कर मौलवी साहब ने कहा कि आप निश्चय ही उर्दू नही जानते होंगे।

श्रील गुरू महाराज जी ने स्वीकार किया कि हाँ, मैं उर्दू नहीं

जानता हूँ ।

मौलवी साहब ने कहा तब आप उर्दू लेख को कैसे समझ सकोगे ? आपको उर्दू सीखनी होगी तब आप भी देख पाओगे कि इस किताब का नाम वही है जो मैं बता रहा हूँ ।

श्रील गुरुदेव जी ने मौलवी साहब की बात पर ही मौलवी साहब को समझाते हुए कहा कि बहुत सी भाषाएं जानते हुए भी, बहुत सा ज्ञान होने पर भी, उर्दू भाषा को समझने के लिये उर्दू ज्ञान आवश्यक है, आँखों की दृष्टि शक्ति ठीक रहने पर भी, दृष्टि शक्ति के पीछे उर्दू का ज्ञान न रहने पर उर्दू शब्द के रूप को व अर्थ को समझा नहीं जा सकता, देखा नहीं जा सकता, उसी प्रकार दुनियाँदारी की बहुत सी अभिज्ञता व योग्यता रहने पर भी, आत्मा व परमात्मा को समझने की विशेष योग्यता जब तक अर्जित नहीं हो जाती, तब तक आत्मा व परमात्मा की अनुभूति नहीं होती ।

दर्शन भी दो प्रकार का होता है - वेद दृक् व माँस दृक अर्थात् ज्ञानमय दर्शन व माँसमय दर्शन । माँसमय नेत्रों से अर्थात् जड़ नेत्रों से जड़ वस्तु छोड़ कर अन्य वस्तु नहीं देखी जा सकती । जड़ातीत, इन्द्रियातीत वस्तु जब स्वयं प्रकाशित होती है तो उसके कृपा-आलोक से ही उसे दर्शन किया जा सकता है ।

शरणागत्त के हृदय में ही तत्त्व वस्तु का आविर्भाव होता है।

हाउली में कुछ व्यक्ति जो श्रील गुरुदेव जी के चरणाश्रित होकर भक्ति सदाचार को ग्रहण करते हुए गौर विहित भजन करने के लिए व्रती हुए उनमें श्री रामेश्वर वर्मन का नाम उल्लेखनीय है जो दीक्षित होने के बाद श्री रामेश्वर दासाधिकारी के नाम से परिचित हुए।

श्रील प्रभुपाद जी के निर्देश को स्मरण करते हुए श्रील गुरु महाराज जी प्रतिवर्ष ही आसाम में जाते थे एवं अपने गुरु भाइयों एवं त्यागी व गृहस्थ शिष्यों के सहित आसाम के शहरों व गांवों में श्री चैतन्य महाप्रभु की वाणी का प्रचार करते थे। वहां पर प्रचार करने से वहां के सैंकड़ों नर-नारी भक्ति सदाचार ग्रहण करते हुए श्रील गुरुदेव जी के चरणाश्रित हुए। कई-कई क्षेत्रों में अत्यन्त प्रतिकूल अवस्था आने पर भी आप अविचलित होकर निर्भीक भाव से प्रचार करते रहे। श्री कृष्ण में समर्पितात्मा महाभागवत लोग सर्वत्र निश्चिन्त भाव से विचरण करते रहते हैं, कोई भी प्रतिकूल अवस्था उनकी हरिसेवा की प्रवृत्ति को रोक नहीं सकती क्योंकि वह अहैतुकी है, इसलिए अप्रतिहता है।

"तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्

भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्ध सौहृदाः।

त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया

विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥"

भा. 10/2/33

अर्थात् माधव के स्तवकारी, माधव के अनन्याश्रित भक्त हो जाने पर वे कभी भी भक्ति पथ से च्युत नहीं होते। वे तो माधव के द्वारा रक्षित होकर विघ्नकारियों के सिर पर पैर रखकर सर्वत्र निश्चिन्तता से विचरण करते हैं।

जीवों के दुःखों से कातर होकर श्रील गुरुदेव उनके आत्यन्तिक मंगल के लिये व उन्हें कृष्णोन्मुख करने के लिये अनेक कष्ट सहन करते हुए कभी पैदल व कभी बैलगाड़ी में भ्रमण करते थे। जिन-जिन स्थानों में आपका शुभ पदार्पण हुआ, उनमें जितना मुझे स्मरण है, उसका विवरण निम्न प्रकार से है :-

1. ज़िला ग्वालपाड़ा के - ग्वालपाड़ा, धुवड़ी, वासुगाउँ, विलासी पाड़ा, काशी कोटरा, सिदली, आगिया, देपालचुँ, बड़दामाल, लक्ष्मीपुर, कृष्णाई तथा सुदुनई इत्यादि।

2. ज़िला कामरूप (वर्तमान कामरूप व बड़पेटा) के - गौहाटी, सरभोग, चक्चका बाज़ार, केतकी बाड़ी, हाउली, बड़पेटा, बड़पेटा रोड, पाठशाला चिहुँ, विजनी, रंगिया, नलवाड़ी, जालाहघाट,

भाटिपाड़ा, उन्निकुड़ी तथा आमिनगाऊँ इत्यादि स्थान ।

3. ज़िला दरं के - तेजपुर, टांला, बिन्दुकुड़ि, रांगा, टंकुयाजुलि, मंगलदै ।

4. ज़िला काच्छाड़ के - शिलचर, हाइलाकन्दि, शिलं एवं शिव सागर इत्यादि ।

आसाम में आदिवासी लोग अधिकतर भागवत् धर्मावलम्बी हैं । श्री शंकर देव, श्री माधव देव, श्री दामोदर देव एवं श्री हरिदेव इत्यादि वैष्णव आचार्यों ने वहां पर भागवत धर्म का प्रचार किया । श्री शंकर देव सम्प्रदाय के तब के श्रेष्ठ आचार्य (जिन्हें आसाम में सत्राधिकारी कहा जाता है) श्री नारायण देव मिश्र, परमाराध्य श्रील गुरुदेव जी में बहुत श्रद्धा करते थे । श्रील गुरुदेव जी ने जब बड़पेटा में शुभ पदार्पण किया तब स्कूल व कॉलेज में जो धर्म सभाओं का आयोजन हुआ उनका पौरोहित्य किया था श्री नारायण देव मिश्र जी ने ।

आपके अगाध पाण्डित्य व व्यक्तित्व को देखकर श्री नारायण देव मिश्र आपकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुए थे । वे आपको अपने मकान में भी ले गये थे । आप बड़पेटा में श्री अमिय कान्तिदास राय और श्री हरे कृष्णदास के घर में ठहरे थे । श्रील गुरुदेव जी से दीक्षा होने के बाद श्री अमिय कान्तिदास व श्रीहरे कृष्णदास,

श्री अघदमन दास व श्री हरिदास नाम से परिचित हुए थे । सन् 1945 में जब आपने बड़पेटा में शुभ पदार्पण किया तब आप श्री अमिय कान्ति दास राय के घर में ठहरे थे । उस समय आपकी प्रचार पार्टी में श्रीमद् कृष्ण केशव ब्रह्मचारी, श्री गोपाल कृष्ण दासाधिकारी, श्री त्रैलोक्य नाथ ब्रजवासी, श्री माधवानन्द ब्रजवासी तथा श्री भुवन मोहन दासाधिकारी थे ।

चिहूँ के प्रसिद्ध नामी व्यक्ति श्रील जीवेश्वर गोस्वामी भी श्रील गुरुदेव जी के असामान्य व्यक्तित्व से आकृष्ट हुए । उन्होंने गुरुदेव जी के सामने ही अपने हृदय के विचारों को व्यक्त करते हुए कहा था कि वे आसाम प्रदेश के किसी गृहस्थ तेजस्वी प्रचारक से रूढ़भाषा (कर्कश भाषा) में अन्य सम्प्रदाय के विचारों का खण्डन सुनकर अत्यन्त क्षुब्ध हुए थे परन्तु आपसे शुद्ध भक्ति के विरुद्ध अपसिद्धान्तों का दूरीकरण सुन कर दुःखी तो हुए ही नहीं बल्कि सुखी हुए हैं । आपकी कथा में जिस प्रकार का माधुर्य था वह महापुरुषोचित, अलौकिक व्यक्तित्व के द्वारा ही सम्भव हो सकता है ।

श्रील गुरुदेव जी के द्वारा विपुल प्रचार के फलस्वरूप उनके प्रकटकाल में ही आसाम में तीन मठ संस्थापित हो चुके थे । जिनमें सर्वप्रथम मठ तेजपुर में, उसके बाद गोहाटी में एवं अन्त

में ग्वालपाड़ा में एक मठ की संस्थापना हुई ।

वास्तविक गुरुत्त्व या भक्तत्त्व को प्राकृत किसी भी प्रयास से ढका नहीं जा सकता। जगत के जीवों के प्रति अधिकतर कल्याण का प्रसारण करने के लिये बाहरी रूप से प्रतिकूलता का वातावरण पैदा कर श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रील गुरुदेव जी को संकुचित अवस्था से ऊपर निकाल कर आत्मसात् किया ताकि वह निःसंकोच श्रीमन्महाप्रभु जी की शुद्धभक्ति धर्म की वाणी का सर्वत्र प्रचार कर सकें। अधिक आयु में श्रीचैतन्य मठ से बाहर आकर भी उन्होंने भारत में सर्वत्र विशाल रूप से प्रचार करते हुये असंख्य नरनारियों को श्रीमन्महाप्रभु जी द्वारा आचरित और प्रचारित शुद्ध भक्ति धर्म की ओर आकर्षित किया तथा थोड़े समय में ही भारत के विभिन्न स्थानों पर विशाल-2 मठों की स्थापना की। अलौकिक शक्ति के बिना इस प्रकार के महान दायित्त्वपूर्ण कार्य थोड़े समय में कभी भी सम्भव नहीं हो सकते। स्वप्रकाशित सूर्य को जैसे बादलों का छोटा सा टुकड़ा ढक नहीं सकता उसी प्रकार जहां पर गुरुत्त्व वास्तविक रूप में प्रकाशित है उसे भी किसी प्रकार मात्सर्यपूर्ण प्रतिकूलता से आवृत नहीं किया जा सकता। जो ऐसा करने का प्रयास करता है वह अपराध रूपी कीचड़ में धंस जाता है। श्रीलगुरुदेव जी के श्रीमुख से निःसृत वीर्यवती हरिकथा श्रवण से आकृष्ट होकर कलकत्ता के दो विशिष्ट व्यक्ति श्रीमनिकण्ठ मुखोपाध्याय एवं होम्योपैथिक फैक्लटि

के प्रैजिडेन्ट डा0 एस.एन.घोष प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मठ की सेवा परिचालना और उनकी वृद्धि के कार्यों में श्रील गुरुदेव जी के दाएं हाथ के रूप में खड़े रहे थे। श्रीलगुरुदेव जी की सौम्य मूर्ति, उनके व्यक्तित्त्व और उनकी हरिकथा से आकृष्ट होकर कलकत्ता के विशिष्ट अधिवक्ता श्री जयन्त कुमार मुखोपाध्याय जी ने श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के लिये निष्कपट चेष्टा में लग गये ।

थोड़े ही दिनों में श्रीलगुरुदेव जी ने बहुत से मठ, शिक्षाकेन्द्र, ग्रन्थागार, धर्मार्थ चिकित्सालय और शुद्धभक्तिग्रन्थों का प्रचार करने के लिये प्रैसों की स्थापना की।

श्रील गुरुदेव जी द्वारा प्रतिष्ठित मठों की तालिका

1) श्रीश्यामानन्द गौड़ीय मठ, मेदिनीपुर (पश्चिम बंगाल) सन् 1942

परमाराध्य श्रील गुरुदेव एवं उनके गुरु भाईयों पूज्यपाद त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद् भक्ति विचार यायावर महाराज जी एंव पूज्यपाद त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद् भक्ति कुमुद सन्त महाराज दोनों के प्रयास से इस मठ की स्थापना हुयी थी।

2) श्रीगौड़ीय मठ, पो. तेजपुर (आसाम) सन् 1948

3) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, पल्टन बाजार, गोहाटी (आसाम) सन् 1953

4) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, 86 ए,
रासबिहारी एविन्यु, कलकत्ता - 26 सन् 1955

5) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, ईशोद्यान,
श्रीमायापुर नदिया (पं. बंगाल) सन् 1956

6) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, सर्वेश्वर
हवेली वृन्दावन (उ. प्र.) सन् 1956

7) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, गोयाड़ी बाजार,
कृष्णनगर, नदिया सन् 1960

8) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, मथुरा रोड,
वृन्दावन, ज़िला - मथुरा सन् 1960

9) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, 35 सतीश
मुखर्जी रोड, कलकत्ता - 26
पुराने घर में प्रवेश सन् 1961
नवमन्दिर में प्रवेश सन् 1967

10) श्री गौड़ीय सेवाश्रम, मधुवन महोली पो.
जि. मथुरा (उ0प्र0) नव मन्दिर में प्रवेश सन् 1961

11) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ उर्दुगली, पाथरघाटी,
हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश) सन् 1962

12) श्रील जगदीश पण्डित का श्रीपाट, पो. यशड़ा,
वाया - चाकदह ज़िला नदिया (प. बंगाल) सन् 1962

13) श्री विनोदवाणी गौड़ीय मठ, 32,
कलियदह, वृन्दावन (उ0प्र0) सन् 1967

14) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, पो. और जि.
ग्वालपाड़ा (आसाम) सन् 1969

15) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, सैक्टर 20 - बी,
चण्डीगढ़ सन् 1970

16) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, दीवान देवड़ी,
हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश) सन् 1972

17) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, ग्रांड रोड़ पो.
ज़िला - पुरी (उड़ीसा) सन् 1974

18) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, गोकुल महावन,
ज़िला मथुरा (उ0प्र0) सन् 1975

19) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, श्री जगन्नाथ
मन्दिर अगरतला (त्रिपुरा) सन् 1976

20) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, 187, डी एल
रोड, देहरादून (उ. प्र.) सन् 1977

शिक्षा केन्द्र समूह

1. श्रीचैतन्य सारस्वत चतुष्पाठी
श्रीश्यामानन्द गौड़ीय मठ, पो. जिला मेदिनीपुर सन् 1946

2. श्री सिद्धांत सरस्वती प्राथमिक विद्यालय
ईशोद्यान, श्री मायापुर, नदिया सन् 1959

3. श्री गौड़ीय संस्कृत विद्यापीठ
ईशोद्यान, श्रीमायापुर, नदिया सन् 1959

4.श्रीचैतन्य गौड़ीय वृन्दावन विद्यामन्दिर सन् 1961
(प्राथमिक और माध्यमिक)86 ए, रासबिहारी एविन्यु, कलकता

5.श्रीचैतन्य गौड़ीय संस्कृत महाविद्यालय
86 ए रासबिहारी एविन्यु, कलकता-26 सन् 1968

6.श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ संस्कृत विद्यालय,
सैक्टर 20बी, चंडीगढ़ सन् 1972

7.श्रीचैतन्य गौड़ीय पाश्चात्य भाषा शिक्षालय,
86-ए रास बिहारी एविन्यु, कलकता-26 सन् 1967

8.श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, आर्न्तप्रादेशिक शिक्षा विभाग,
सैक्टर 20 बी, चंडीगढ़ सन् 1972

ग्रन्थागार

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ ग्रन्थागार (विश्वधर्म तुलना मूलक अनुसंधान के लिए)

35, सतीश मुखर्जी रोड, कलकता-26 सन् 1970

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, ग्रन्थागार,
सैक्टर 20 बी, चंडीगढ़ सन् 1972

दातव्य चिकत्सालय

1. श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ दातव्य चिकित्सालय,
ईशोद्यान, श्री मायापुर नदिया। सन् 1959

2. श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ दातव्य चिकित्सालय,
सैक्टर 20 बी, चंडीगढ़ सन् 1972

3.श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ दातव्य चिकित्सालय,
ग्रांड रोड, पुरी (उड़ीसा) सन् 1978

मुद्रण केन्द्र

1.श्री चैतन्यवाणी प्रेस, 25/1 प्रिन्स गुलाम मुहम्मद रोड, टालिगंज कलकता सन् 1964

34/1 A-ए, महिम हालदार स्ट्रीट,
कलकता-26 सन् 1966

मासिक पत्रिका

1. श्रीचैतन्य वाणी पत्रिका
35, सतीश मुखर्जी रोड, कलकता - 26 सन् 1961

श्रीलगुरुदेव जी की सेवा प्रचालना के अधीन दो मठ

1. श्रीसरभोग गौड़ीय मठ, पो: चकचका बाजार, ई0 1955
जि0 कामरूप (वर्तमान जि0 वरपेटा) आसाम

2. श्रीगदाई गौरांग मठ, पो: बालियाटी, जि० ढाका ई. 1955 (बंगलादेश)

श्रील गुरुदेव जी के अलौकिक महापुरुषोचित व्यक्तित्व से हैदराबाद और पंजाब में मायावाद छिन्न-भिन्न हो गया था। सैकड़ों नर-नारियों ने श्रीमन्महाप्रभु जी के विशुद्ध भक्ति सिद्धान्त और भक्ति सदाचार को ग्रहण कर गौरमहाप्रभु जी के बताये रास्ते पर चलने का व्रत लिया था। पुरुषोत्तम धाम में विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ और श्रीगौड़ीय मठों के प्रतिष्ठाता परमगुरु पादपद्म श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी के आविर्भाव स्थान का मकान मिलना, चण्डीगढ़ जैसे शहर में सैक्टर 20-बी में ज़मीन का मिलना और अगरतला में प्रतिष्ठान के केन्द्र की स्थापना के लिये श्री जगन्नाथ बाड़ी की सेवा मिलना - ये तीनों अद्भुत कार्य केवल श्रील गुरुदेव जी के असाधारण व्यक्तित्व के कारण ही हुये हैं। मुख्य रूप से श्रील गुरुदेव जी के प्रयास और उनके गुरुभाइयों की सहायता से आज श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी की शतवार्षिकी भारत के विभिन्न स्थानों में व्यापक रूप से मनायी जा रही है।

राष्ट्रपति, गवर्नर, न्यायाधीश, मन्त्री, बैरिस्टर, एडवोकेट, वाइस चान्सलर, प्रोफेसर, मेयर, चीफ कमिश्नर, आई.जी.पी., डाक्टर तथा धनाढ्य व्यक्ति, विश्व धर्म सम्मेलन में योगदान करने वाले विदेशी व्यक्ति एवं विभिन्न सम्प्रदायों के प्रधान

इत्यादि देश का ऐसा कोई भी विशिष्ट व्यक्ति नहीं था जो श्रील गुरुदेव जी से भेंट कर उनके गौरकान्ति वाले शरीर एवं महापुरुषोचित व्यक्तित्व से आकर्षित न हुआ हो। श्रील गुरुदेव जी का पावन चरित्र जो कि अलग ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित हुआ है, उसे पढ़ने से विस्तरित रूप से श्रील गुरुदेव जी के अवदान के वैशिष्ट्य के बारे में जाना जा सकेगा। श्रीगुरुदेव जी के अद्वितीय असाधारण आदर्श चरित्र में, अपरिसीम वात्सल्य में, अत्यन्त अद्भुत सहनशीलता और क्षमा गुण से खिंच कर बहुत से शिक्षित एवं प्रतिष्ठाशाली व्यक्तियों ने संसार की माया का परित्याग करके त्रिदण्ड सन्यास वेश का आश्रय लेकर श्रीकृष्ण व कृष्णभक्तों की सेवा में अपने आप को नियुक्त किया जिसके फलस्वरूप थोड़े समय में ही प्रतिष्ठान का व्यापक प्रसार हो पाया है।

12 नवम्बर 1967 श्रीउत्थान एकादशी के दिन कलकत्ता 35, सतीश मुखर्जी रोड पर स्थित श्रीमठ में सायंकालीन धर्मसभा में श्रील गुरुदेव जी ने अपने आश्रित शिष्यों के लिये उपदेशामृत प्रदान करते हुये कहा-

"आज श्रीउत्थान एकादशी की तिथि को हमारे पूर्वाचार्य परमहंस श्री मद्गौरकिशोर दास बाबा जी की विरहतिथि पूजा है। उनके अलौकिक चरित्र और उनकी शिक्षा के सम्बन्ध में पूज्यपाद श्री मद् पुरीमहाराज जी से आपने बहुत सी बातें सुनीं मैं सिर्फ उनका नाम लेकर उनकी कृपा प्रार्थना कर रहा हूं

कम को तू या तुम कहा। जिसको वे 'प्रभु' या 'आप' कह कर सम्बोधन कर रहे हैं फिर उसे डांटते भी रहे हैं। जिसको प्रभु बोला जा रहा है उस पर क्या शासन भी किया जाता है क्या ये Paradoxical नहीं हैं? ये कपटता भी लग सकती है किन्तु ये कपटता है नहीं। जब प्रभु कह रहे हैं तब ठीक ही कह रहे हैं, और जब और भाव आ रहा है तब फिर शासन भी कर रहे हैं। एक विचार से गुरुदेव शासक हैं और दूसरे विचार से वे उनके बन्धु, हितकर्त्ता और प्रियतम् हैं।

जिन्होंने मुझ पर आशीर्वाद किया, मैं उनका कृतज्ञ हूँ। उनके आशीर्वाद से जैसे मेरी चित वृत्ति केवल मात्र कृष्ण और उनके भक्तों की सेवा में ही लगी रहे। यदि किसी ने मेरी पूजा की है तो समझो वास्तविक रूप से उसने मेरे गुरुदेव जी की ही पूजा की है। गुरुदेव जी की सेवा साक्षात् भगवान की सेवा है। क्योकि मैंने गुरुदेव जी में भगवान को प्रसन्न करने के अतिरिक्त और किसी भाव को कभी देखा ही नहीं। कृष्ण सेवा को छोड़कर जीव का और भी कोई स्वार्थ हो सकता है, वे जानते ही नहीं थे यदि जानते तो मेरे जैसे व्यक्ति को मठ में नहीं रख सकते थे।

वाचोवेगं मनसः क्रोधवेगं जिह्वावेगमुदरोपस्थवेगम् ।
एतान् वेगान् यो विषहेत धीरः। सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात्॥

श्रील रूप गोस्वामी उपदेशामृत का प्रथम श्लोक

जिन्होंने इन छः वेगों पर विजय प्राप्त कर ली है वे ही दूसरों पर शासन कर सकते हैं। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी के मतानुसार उपरोक्त उपदेश गृहस्थियों के लिये है, गृहत्यागियों के लिये नहीं है। कारण, जो गृहत्याग करेंगे, ऐसा सोचना होगा कि उन्होंने पहले ही इन पर विजय पा ली है। छः वेगों को दमन किये बिना त्यागी होने से वान्ताशी होने की सम्भावना है किन्तु श्रील प्रभुपाद जी ने मेरे जैसे व्यक्ति को जिसके अभी छः वेग दमन नहीं हुये, उसे त्यागी क्यों बनाया? मैं भूल कर सकता हूं, किन्तु वे भूल नहीं कर सकते । मेरे हिताकांक्षी बन व मेरे शासक, पालक बन उन्होंने मुझे मठ में क्यों रखा? क्योंकि निश्चय ही वे समझते थे कि वैष्णव सेवा को छोड़कर जीव के मंगल का और दूसरा रास्ता नहीं है। वैष्णव सेवा और शास्त्रादि श्रवण करने के फलस्वरूप ही जीव को भगवान् की महिमा का अनुभव होता है और तब ही वह भगवान की उपासना में आग्रहान्वित होता है। स्थूल रूप से तमाम इन्द्रियों को दमन करके हरि भक्त बना जाता है, इसकी कोई भी Guarantee नहीं है। यदि ऐसा होता तो संसार में जो बहुत से हिजड़े हैं, वे सभी हरि भक्त होने चाहिए थे। हरिप्रिया - कृष्णप्रिया - कृष्णप्रीति को छोड़ श्रील प्रभुपाद जी को और कोई सत्ता नहीं थी। यदि कृष्ण न हलो, आमार प्रभुर सेवा न हलो - अर्थात मेरे क्रियाकलापों से यदि भगवान श्रीकृष्ण में प्रीति न हो पायी व मेरे द्वारा भगवान की सेवा न हुई तो ऐसे त्याग का एक कौड़ी भी मूल्य नहीं है। ये तो फल्गुत्याग है।

इस प्रकार बहिर्मुखी त्यागी, ब्रह्मचारी की अपेक्षा भगवान की सेवा परायण व्यक्ति मेरा प्रिय है और वह सभी गुणों में श्रेष्ठ है, कारण, पूर्व कर्मानुसार कुछ दिन उसमें इन्द्रियों की चंचलता दिखने पर भी श्रेष्ठ रस के आस्वादन से धीरे-2 उसकी इन्द्रियों का वेग कम हो जायेगा। कृष्ण के अतिरिक्त और-और विषयों में उसका कोई मोह या अनुराग नहीं रहेगा।

"विषयाविनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते ।।" - गीता

उपवास रखने से ही खाने की प्रवृति क्या खत्म हो जायेगी? विषयों को ग्रहण नहीं करने से ही विषय ग्रहण करने की प्रवृति दूर नहीं होती। श्रेष्ठ रस का आस्वादन मिलने से और-और रसों के प्रति फिर मोह नहीं रहता।

इसी को युक्त वैराग्य कहते हैं। इसलिये नारद जी ने युधिष्ठर महाराज जी को उपदेश दिया था- 'येनकेनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेश्येत्' अर्थात हे युधिष्ठर महाराज! जिस किसी भी उपाय से भी हो सके, अपने मन को कृष्ण में लगा दो। मैं वैराग्य कर रहा हूं इसका मतलब मैं संकल्प विकल्पात्मक मन का संग कर रहा हूं, कृष्ण का संग नहीं कर रहा हूं। उस से मेरी क्या सुविधा होगी ? जो मेरी पूजा कर सकता है, स्तव स्तुति कर सकता है उस का संग मेरा हितकारी नहीं है, बल्कि जो शासन करता है, नियन्त्रित करता है, मेरी गल्तियां मुझे

बताता है, उसका संग ही मेरे लिये हितकर है।

हरिभक्ति सांसारिक ज्ञान और अज्ञान पर निर्भर नही करती है। जिन्होंने ये समझ लिया है कि कृष्ण भजन ही जीवन का एक मात्र प्रयोजन है उनके लिये पढ़ने लिखने में समय खर्च करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। मुझे एक बात याद आती है, तब मैं मद्रास गौड़ीय मठ में था। श्रीपाद श्रीधर महाराज व श्रीपाद वन महाराज जी इत्यादि गुरुभाई वैष्णव भी उस समय वहीं थे। पहले-पहले मुझे प्रायः 10 वर्ष मद्रास गौड़ीय मठ में बिताने पड़े थे। हम सब के प्रयास से ही मद्रास गौड़ीय मठ का निर्माण हुआ। उस समय की ज़मीन देने वाले न्यायाधीश श्रीसदाशिव अय्यर के पुत्र श्रीराम चन्द्र अय्यर ने मद्रास में सर्वसाधारण के बीच में श्रीमन्महाप्रभु जी की वाणी का प्रचार करने के लिये मुझे तमिल भाषा सीखने का परामर्श दिया था और उस विषय में सहायता भी की थी किन्तु तीन दिन सीखने के पश्चात् गुरुदेव जी की Telegram आयी और मुझे पुरी जाना पड़ा। ये ठीक हे कि बाद में अवश्य प्रभुपाद जी के पास प्रस्ताव रखा गया था। छः महीने रहकर तमिल भाषा सीखने का। किन्तु तब प्रभुपाद जी ने कहा था- "भाषा के द्वारा कृष्ण भक्ति का प्रचार नहीं होता, हां विद्वता या पांडित्य का प्रचार हो सकता है। जिसमें भगवान की प्रीति है उसीसे भगवद् प्रीति का प्रचार होगा। तुम जो भाषा जानते हो उसी भाषा से प्रचार करो। भाषा सीखने के लिये

तुम्हारे बहुत मूल्यवान समय को नष्ट करने का परामर्श मैं नहीं दे सकता।" भगवद् प्रीति का अनुशीलन करने के लिये मठ है। भगवदप्रीति के अनुशीलन में ही अपना सुख है एवं वही सब के लिये सुखदायक है। जो भगवान से प्रेम करते हैं वे सब जीवों से ही प्रेम करते हैं साधु भक्तों के संग से ही भगवद् भक्ति उदित होती है-

"संगेनसाधु भक्तानामीश्वराराधनेन च"।

मेरे असमर्थ होने पर भी इष्ट देव समर्थ हैं। यदि आप मुझे कृष्ण और उनके भक्तों की सेवा में लगाये रखें तो मेरे इष्ट देव श्रील प्रभुपाद, श्रीमन्महाप्रभु और श्रीराधाकृष्ण आप पर अवश्य कृपा करेंगे। आप की जय हो। श्रील प्रभुपाद प्रसन्न हो।

श्रील गुरुदेव जी ने अपने द्वारा संस्थापित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान की सुचारु परिचालना के लिये प्रतिष्ठान की 9 अगस्त 1976 को पश्चिम बंग सोसाइटी रजिस्ट्रेशन एक्ट 1961 (Registration of Societies West Bengal Act XXVI of 1961) के अनुसार रजिस्ट्री की है। कलकता, 35 सतीश मुखर्जी रोड पर स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में 27 फरवरी 1979 मंगलवार को शुक्लप्रतिपदा तिथि को वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज और श्रील रसिकानन्द देव गोस्वामी प्रभु जी की तिरोभाव तिथि पूजा के समय सुबह 9 बजे महासंकीर्तन के

बीच में अपने गुरु भाइयों और अपने आश्रित शिष्यों को विरह सागर में निमज्जित करते हुये श्रील गुरुदेव श्रीराधा गोविन्द देव जी की पूर्वाह्नकालीन नित्यलीला में प्रविष्ट हो गये। इस दिन भक्तों ने 4 बजे संकीर्तन करते करते श्रील गुरुदेव जी के श्रीअंग के साथ श्रीमायापुर की यात्रा की एवं श्रीधाम मायापुर ईशोद्यान में स्थित मूल श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में यथाविधि शास्त्रीय विधानानुसार परम पूज्यपाद श्री मद् भक्ति प्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज जी के पौरोहित्य में समाधि - कार्य सुसम्पन्न हुआ एवं एक मार्च सन् 1979 को श्री धाम मायापुर ईशोद्यान स्थित श्री मूल मठ में विरह महोत्सव मनाया गया।

श्रील गुरुदेव जी की अन्तिम वाणी

स्थान - श्री चैतन्य गौड़ीय मठ, कलकता

समय - 14 पौष, 30 दिसम्बर, 1978 शनिवार प्रातःकाल

भूमिका - त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति बल्लभ तीर्थ महाराज जी ने अपने श्री गुरुपादपद्मों में निवेदन किया कि श्रीगौड़ीय वैष्णव सिद्धान्तों से अनभिज्ञ एक पश्चिम देशीय भक्त चंडीगढ़ मठ से श्री गुरु मुखनिःसृत उपदेश वाणी सुनने के लिए कलकता आया है किन्तु डाक्टर ने आपको अधिक बातें करने के लिए मना किया हुआ है इसलिए उसे आपसे उपदेशों को

सुनने का सुयोग हुआ ही नहीं। यदि आप उसे कुछ उपदेश दे सकते तो अच्छा होता।

परमाराध्य श्रील गुरु महाराज जी ने अपने आश्रित उक्त पश्चिम देशीय भक्त को उपलक्ष करके उपदेश देना प्रारम्भ किया । मैं अस्वस्थ हूँ, डाक्टरों ने मुझे ज्यादा बातें बोलने के लिए मना किया हुआ है। हो सकता है कि अब मैं ज्यादा दिन इस जगत में न रह सकूँ। मैं तुमको कहता हूं कि साधन भजन के लिए अपने आराध्य देव का ही भजन करना चाहिए । स्त्री जब पति परायणा न रहे दूसरे को प्रीति करे तो वह पति की सेवा में अपने को नियोग नहीं कर सकती क्योंकि उस में व्यभिचार दोष आ जाता है व निष्ठा का अभाव होता है । अतः एकान्त पति-भक्ति के लिए पति के स्थान पर और किसी को नहीं बैठाना चाहिए। सती स्त्री पति के सम्बन्ध युक्त देवर, जेठ किसी की निन्दा नहीं करती बल्कि हर एक का सम्मान करती है। इसी प्रकार अपने आराध्य देव का अनन्यभाव से भजन करना तथा जो अन्य-अन्य देवी-देवता हैं उनका यथायोग्य सम्मान करना, किन्तु अपने आराध्य देव के ऊपर उन्हें स्थापन न करना। मेरी यह बात तुम्हारे लिए (हनुमानप्रसाद जी के लिए ही) है। तुम इस विषय में काम के आदमी हो, योग्यता भी है लेकिन अपने सम्प्रदाय की बात तुम समझे नहीं हो। गौड़ीय सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय- कृष्णभक्ति का सम्प्रदाय है-यह चैतन्य सम्प्रदाय सिर्फ एकान्त कृष्णभक्ति

के लिए ही है। कृष्णभक्तगण एकमात्र कृष्ण का ही भजन करते हैं, और देव-देवी के बराबर कृष्ण को समझने से ठीक नहीं होगा; यह बात ध्यान में रखना कि सभी देवता समान नहीं हैं, सब अवतार नहीं हैं।

"एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयं।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे।।"

(भागवत् 1/3/28)

मत्स्य, कूर्म, रामव नृसिंहादि अवतारों के बारे में कहकर अन्त में उपसंहार के रुप मे वेदव्यास मुनि जी ने कहा कि यह कोई अंश, कोई अंश का भी अंश अर्थात् कला हैं। यह सब कृष्ण नहीं हैं, कृष्ण तो स्वयं भगवान हैं। जिनकी भगवत्ता से दूसरों की भगवत्ता होती है, उनको ही स्वयं भगवान कहते हैं । कृष्ण के बराबर कोई नहीं है, यह सब मन में रखकर भजन करना, नहीं तो निष्ठा नहीं होगी। बाहर में हल्लागुल्ला करने से भक्ति बढ़ती नहीं। साधन भजन के लिए हर एक को यह बात ध्यान रखनी होगी। हम लोग किसी देव देवी की निन्दा नहीं करेंगे, अपने आराध्य देव का निष्ठा के साथ भजन करेंगे और इस निष्ठा को प्राप्त करने के लिए देवी-देवताओं से आशीर्वाद की प्रार्थना करेंगे।

मैंने मठ की रजिस्ट्री की है, वह किसी की personal (व्यक्तिगत) सम्पति नहीं है, किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि मठ में रह कर हर एक आदमी हकूमत करेगा,

स्वेच्छाचारी हो जाएगा, ऐसा नहीं, ऐसा करने से जीवन बरबाद हो जाएगा। अतः मठ को चलाने के लिए एक Management Scheme होना आवश्यक है। वहां एक आदमी मठ का (आचार्य) होगा, आचार्य को प्रधान भी कहते हैं और President भी कहते हैं।

मेरे चले जाने से एक व्यक्ति मेरे स्थान पर बैठेगा। वह कौन बैठेगा? यह पद वोट से निश्चय किया जाये, यह हमारे गुरु जी का विधान नहीं है। वोट द्वारा आचार्य निर्णय करना हरिभक्ति नहीं है। आचार्य निर्णय होगा भगवान के द्वारा।

आचार्य भगवत् प्रिय होता है परन्तु यह कौन बोलेगा? यह भगवान ही बोलेंगे कि यह व्यक्ति मेरा प्रियतम है, यह व्यवस्था ही यथार्थ है। इसीलिए गुरु परम्परा में जो वाक्य हैं, वही आचार्य निर्णय का विधान है। ऊपर से जो order आया है वही ठीक है। यहां पर कुछ आदमियों ने वोट देकर एक व्यक्ति को आचार्य किया, किन्तु भगवान की तरफ से कोई भगवत् प्रेमी किसी व्यक्ति को आचार्य बना दे - तो उनको ही आचार्य रूप से मानना होगा, यही शास्त्र का विधान है ।

श्रील प्रभुपाद जी ने अपनी अस्वस्थ लीला के सामय Mr. J.N. Basu Solicitor को एक Constitution बनाने को कहा था । हमनें सुना था कि Constitution दो प्रकार से हो सकता है - By nomination or By election. दूसरे वाले तरीके के बारे में Mr. Basu ने

एक constitution लिख दिया था। परन्तु प्रभुपाद जी ने उसे पसन्द नहीं किया, उसे प्रभुपाद जी ने छोड़ दिया।

उस समय मैं और मेरे दो चार सतीर्थ वहां पर उपस्थित थे। बहुत आदमी कहेंगे यह होगा, यह नहीं होगा, वह होगा, वह नहीं होगा, इत्यादि। इसलिए वोट द्वारा साधु-निर्णय, आचार्य-निर्णय, महापुरुष निर्णय करना ठीक नहीं है। इसलिए ऊपर से अर्थात् भगवान की ओर से जिस व्यक्ति के प्रति आचार्य पद के लिए निर्देश होता है, उसको ही मानना चाहिए।

ऊपर से जो निर्देश (order) आ रहा है उसे मानना सिर्फ गौड़ीय सम्प्रदाय में ही नहीं बल्कि रामानुज, विष्णुस्वामी व निम्बाकाचार्य सब सम्प्रदायों का ये ही विधान है। अतएव आम्नाय गुरु परम्परा में उक्त व्यवस्था को अवलम्बन करना ही उचित है। अभी हम लोगों की जो गोष्ठी है, उस गोष्ठी में मेरे जो ज्येष्ठ गुरु भाई हैं, उनसे सलाह करके मैंने यही निश्चय किया है कि मेरे चले जाने के पश्चात् श्री मान भक्ति बल्लभ तीर्थ महाराज Next President - अग्रिम आचार्य, होंगे। मैं चला गया, हमारे गुरु महाराज चले गए, इसलिये हम लोग स्वेच्छाचारी हो जाएं, यह ठीक नहीं है।

भक्त का आनुगत्य ही वैष्णवता है। भक्त कौन है? भक्त के आनुगत्य में जो भगवान की प्रीति के लिए रहता है, वही श्रेष्ठ भक्त है। इसलिए भक्त का आनुगत्य करना ही भक्ति प्राप्ति का रास्ता है। भगवद्-कृपा, भक्त-कृपा

अनुगामिनी होती है। भक्त की कृपा जिन पर होती है, भगवान की कृपा भी उन पर ही होती है। यही धारा है। इसी प्रकार का विचार लेकर आप लोगों को चलना चाहिए। यही मेरा आप लोगों से संक्षेप में निवेदन है। मैंने और भी Detail रूप में लिख दिया है।

मठ में किसी से मेलजोल नहीं हुआ तो उसी समय साथ-साथ मठ से चले जाओ, यह बात बोलना ठीक नहीं। इससे Chaos (गड़बड़) हो जाएगा। पहले उसको समझाना पड़ेगा, उससे यदि वह नहीं समझता है तो पत्र देकर तथा रुपया पैसा देकर उसे दूसरे मठ में भेजना पड़ेगा। उच्छृंखल होने से नहीं चलेगा, श्रेष्ठ की आज्ञा, या Leader (मुखिया) की जो भी आज्ञा हो, वह माननी पड़ेगी। बात नहीं सुनना, इच्छा अनुसार चलना ठीक नहीं है, मठ रक्षक की बात माननी ही होगी। क्योंकि वे भगवद् सेवा के लिए ही बोलते हैं, इसे हमेशा याद रखना।

एक और बात मैं बोलता हूँ। हम लोग हरि भजन करने के लिए आए हैं। इसमें तीन रुकावटें हैं।

1. विषय स्पृहा- कनक, रुपये पैसे के लिए लोभ हरि भक्ति में पहली बाधा है। अपना अभिनिवेश, अपनी आसक्ति हरि के पाद पद्मों में रहेगी। यह छोड़कर किसी और विषय में आसक्ति होने से मैं पतित हो जाऊंगा। बाहर के आदमी तो समझेंगे नहीं। इसी लिये मैं रुपया पैसा जमा रख दूं, भविष्य में जरुरत

के समय अपने काम में लगाऊंगा, यह विचार ठीक नहीं है। जो लोग भिक्षुक हैं, वह लोग भिक्षा कर के रुपया मठ में हर रोज़ जमा करवाएंगे। मठ रक्षक के लिए कहना चहता हूं कि उसे चाहिये कि किसी की बीमारी होने से उसकी चिकित्सा के लिये पूरा यत्न करना चाहिए। जरूरत पड़ने पर मठ में रुपया नहीं होने पर उधार लेकर भी चिकित्सा की व्यवस्था करनी होगी।

इसी मठ में ऐसा समय भी बीता जब बाज़ार करने के लिये भी पैसा नहीं था। तब किसी को भी न बतला कर, छिपा कर कर्ज़ा कर के बाज़ार करने के लिए पैसा दिया। केवल उद्धारण प्रभु को मालूम था और किसी को नहीं। वो गृहस्थ के घर से रुपया पैसा उधार करके ले आता था। वो गृहस्थ थे- गोविन्द बाबू। उन के पास रुपया नहीं होने पर वह उन की स्त्री से मांग कर लाते थे। बाद में वही रुपया वापिस लौटा दिया। यह बात भला कितने व्यक्तियों को मालूम है?

गोस्वामी महाराज, नेमी महाराज और मैं, हम लोग मठ की सेवा के लिए सब Collection किया करते थे। मैं भिक्षा का पूरा रुपया मठ में देता था। मेरे पहनने के लिए पहले केवल फतुआ (कमरी) होता था। श्रीमद् भक्ति प्रदीप तीर्थ महाराज, यायावर महाराज, श्रीधर महाराज, जिन के साथ मैं रहता था, उनको जब किसी वस्तु की आवश्यकता होती थी, मैं खरीद कर देता था-परन्तु अपने लिये कोई वस्तु नहीं खरीदी

कलकत्ता मठ में जब मैं आता था तब अपने ज्येष्ठ गुरु भ्राता से जिस वस्तु की आवश्यकता समझता था, मांग लेता था। मैं उन्हें कहता - क्या मठ में कपड़ा है? यदि है तो कृपया एक कपड़ा दे दो, अनावश्यक भोग के लिए मैं नहीं कहता था। भिक्षा का रुपया तुम लोग अपने लिये जमा न करना। इससे हरि भक्ति नहीं होगी। यदि भिक्षा का रुपया हम लोग ले लेंगे, उससे मठ को कुछ हानि नहीं होगी। तम्हारा ही नुकसान होगा। मठ की रक्षा करेंगे कृष्ण, भक्त गण, वैष्णव गण। परन्तु भिक्षा के पैसे जो जमा करने की चेष्टा रखते हैं उनका सारा परमार्थ चूल्हे में चला जाएगा, हरि भजन नहीं होगा। पैसा जमा नहीं करना, जो भी हो उसे सारा मठ रक्षक के पास जमा करना होगा। जब कुछ असुविधा हो तो मठ रक्षक को कहना। कनक स्पृहा हरि भक्ति में बाधा है।

2. और एक हरि भक्ति में रुकावट है- स्त्री-संग। स्त्री के साथ स्थूल संग, सूक्ष्म संग, दोनों प्रकार का स्त्री-संग ही हरि भक्ति में बाधक हैं। साक्षात् स्त्री-संग तो करना ही नहीं चाहिए, ऐसा कि मन में भी उस के बारे में चिन्ता या ध्यान नहीं करना, क्योंकि हम लोग सब कुछ छोड़ कर हरि भजन करने के लिये आए हैं।

3. और एक रुकावट है-प्रतिष्ठा के लिये चेष्टा। गुरुदेव कहा करते थे-

"कनक कामिनी प्रतिष्ठा बाघिनी,
छाडियाछे यारे सेइ त' वैष्णव ।
सेइ अनासक्त सेइ शुद्ध भक्त,
संसार तथाय पाय पराभव ।।"

प्रभुपाद जी ने कनक, कामिनी और प्रतिष्ठा की बाघिनी (शेरनी) के साथ तुलना की है। प्रतिष्ठा खतरनाक है, लेकिन प्रतिष्ठा नहीं चाहते हुए जो लोग हरि भजन करते हैं उनके पास प्रतिष्ठा स्वयं आ जाती है । लोग स्वाभाविक रूप से उनका सम्मान करते हैं । प्रतिष्ठा के डर से श्रीपाद माधवेन्द्र पुरीपाद भाग गये थे । परन्तु कृष्ण प्रेमी होने के कारण प्रतिष्ठा उन के पीछे-2 चली । इस लिये तुम इन तीन बाधाओं को त्याग देना । यह बहुत आसानी से नहीं जाती हैं । ये सब चित्त को खींच लेती हैं । अर्थ की आकांक्षा, स्त्री-भोग की आकांक्षा, प्राकृत यश की आकांक्षा, ये तीन बद्धजीव की आकांक्षाएं हैं । अनर्थ युक्त साधक में ये तीन रहती हैं । लेकिन इन का हम वर्धन (सम्मादर) नहीं करेंगें ।

मेरा जाने का समय हो गया । तीर्थ महाराज सब समय नहीं रहते । इसलिये जगमोहन प्रभु पर देखभाल के लिए ज़िम्मेदारी है । मेरी हस्पताल में जाने के लिये इच्छा नहीं थी लेकिन वैष्णवों की इच्छा पूर्ति के लिए जा रहा हूं ।

मेरी कर्कश कथा के कारण तुम लोग दुख न मानना

मुझे क्षमा करना, जो वैष्णवजन हैं वो लोग मेरे सेव्य हैं । मैं सब की सेवा करने को चाहता हूं । तुम लोग सब निष्ठा के साथ हरि भजन करना । जैसी भी अवस्था में रहो हरि भजन कभी नहीं छोड़ना । यही मेरी तुम लोगों के पास प्रार्थना, अनुरोध, वांछा और उपदेश है । सर्व अवस्था में तुम लोग हरि भजन करना । श्रेष्ठ वैष्णव को हर समय सम्मान देना । इस में किसी प्रकार का संकोच न करना । इस से मंगल होगा ।

वाञ्छा कल्पतरुभ्यश्च कृपा सिन्धुभ्य एव च ।
पतितानाम् पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ।।

8 चैत्र 22 मार्च वृहस्पतिवार रात्रि 7 बजे 35 सतीश मुखर्जी रोड कलकता के श्रीमठके संकीर्तन भवन में परम पूज्यपाद परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्त हृदय वन गोस्वामी महाराज जी के पौरोहित्य में विरह सभा का आयोजन किया गया जिसमें अमृत बाज़ार पत्रिका के सम्पादक श्री तुषार कान्ति घोष ने प्रधान अतिथि का आसन ग्रहण किया था। श्रील गुरु महाराज जी के बहुत से गुरु भाई, वैष्णव-आचार्य एवं कलकता के विशिष्ट नागरिक लोग इस विरह सभा में उपस्थित थे।

श्रील गुरुदेव जी का स्वलिखित निर्देश पत्र

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान की सहायता करने वाले और

सेवक एवं आश्रित व्यक्तियों के प्रतिः-

मेरा शरीर खराब लग रहा है। जानता नहीं, रास्ते में कहां मेरा देहांत होगा। यदि कहीं भी देहान्त हो तो श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के तमाम त्यागी और गृहस्थ शिष्यों एवं मेरे प्रति स्नेह शील गुरुभाईयों से मेरा अन्तिम निवेदन है कि मैंने अपने सारे मठ मन्दिरों की Society Registration Act के अनुसार रजिस्ट्री करवा दी है। उसमें 12 सदस्य या ट्रस्टी बनाये गये हैं।

भक्ति विरुद्ध खतरनाक दोष एवं मठ के स्वार्थ के या प्रचार के विरोध में भयानक दोष के सिद्ध हुये बिना कोई भी Trustee परिवर्तित नहीं होगा। हां, स्वेच्छा से किसी के छोड़कर चले जाने पर नियम के अनुसार दूसरे सदस्य की नियुक्ति होगी। मेरी मृत्यु के पश्चात् श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रेज़िडेन्ट और आचार्य के रूप में मैं त्रिदण्डि भिक्षु श्रीमान् भक्ति बल्लभ तीर्थ महाराज को मनोनीत कर गया हूं। सब के द्वारा उन्हें मान कर चलने से प्रतिष्ठान का संरक्षण और भक्ति के प्रचार और आचार में यत्नवान रहने से मैं सुखी होऊंगा। इति।

निवेदक

त्रिदण्डि भिक्षु श्रीभक्तिदयित माधव

श्री उद्धव दास

"श्रीमानुद्धवदासोऽपि चन्द्रावेशावतारकः।।"

गौ:ग: 112

श्रीमान् उद्धवदास चन्द्रावेशावतार।।

"अतिदीनजने पूर्णप्रेमवित्तप्रदायकम्।
श्रीमदुद्धवदासाख्यं वन्देऽहं गुणशालिनम्।।"

शाखा निर्णयामृत ग्रन्थ, 35

(श्रील गदाधर पण्डित गोस्वामी के शिष्य श्रीयदुनाथ दास द्वारा रचित)

इनका नाम गदाधर पण्डित गोस्वामी जी की शाखा में गिना जाता है।

"श्रीनाथ चक्रवर्ती, आर उद्धव दास[2]।
जितामित्र, काष्ठकाटा जगन्नाथदास।।"

चै.च.आ. 12 / 83

श्रीवृन्दावनधाम में रहकर भजन करने के समय श्रीरूप गोस्वामी जी बूढ़े होने के कारण गोवर्धन में जाकर गोवर्धनधारी श्रीगोपालदेव का दर्शन कर पाने में असमर्थ से हो गये थे। इसलिये जब वे श्रीगोपालदेव जी के दर्शन पाने के

लिये व्याकुल से हो उठे, तब श्रीगोपाल जी ने म्लेच्छों का भय फैलाकर मथुरा में श्रीवल्लभ भट्ट के कनिष्ठ पुत्र श्रीविठ्ठलनाथ के घर आकर एक महीने तक अवस्थान किया और इस बहाने श्रीरूप गोस्वामी जी को भी मथुरा में श्रीगोपालदेव के दर्शनों का सौभाग्य मिल गया। एक महीने से भी अधिक समय तक श्रीगोपालदेव जी श्रीविट्ठलेश्वर के घर पर ही रहे। श्रीरूप गोस्वामी जी प्रतिदिन श्रीगोपाल जी का दर्शन करने के लिए जाते थे। श्रीरूप गोस्वामी जी जिन भक्तों के साथ मथुरा में श्रीविट्ठलेश्वर के घर श्रीगोपालदेव जी के दर्शनों को जाते थे, उनमें से एक श्रीउद्धव दास जी भी थे।

"श्रीउद्धवदास, आर माधव दुइजन।
श्रीगोपाल दास, आर दास नारायण।।"

चै०च०म० 18 / 51

"श्रीउद्धव दास, माधवादि ये ये छिला।
परस्पर मिलि' सबे महाहर्ष हैला।।"

भर. 5 / 1333

श्रीउद्धवदास जी श्रीवृन्दावन में रहते थे। श्रीनिवासाचार्य प्रभु जी और श्रीराघव गोस्वामी जी वृन्दावनधाम में परिक्रमा के समय इनकी ही कुटिया में आया करते थे तथा ये भी बड़े आदरभाव से उनका सेवा-सत्कार करते थे। श्रीजीव गोस्वामी जी ने तमाम गौड़ीय ग्रन्थों को एक बक्से में रखकर उसे श्रीनिवास आचार्य, श्रीनरोत्तम ठाकुर व श्रीश्यामानन्द प्रभु जी

के साथ एक बैलगाड़ी के द्वारा मथुरा से उत्तर बंगाल की ओर भेजा था। श्रीजीव गोस्वामी जी ने इन भक्तों को जब मथुरा से उत्तर बंगाल की ओर भेजा था तो उस समय ये उद्धवदास जी भी उन्हें विदा करने के लिए कुछ दूर तक गये थे।

श्रीनिवास जी की विदाई के समय इकट्ठे हुए वैष्णववृन्द -

"श्रीगोविन्द, वाणी कृष्णदास, अत्युदार।
श्रीउद्धव मध्ये मध्ये गौड़े गति यार।।"

- भ:र: 6/514

श्रीगँगादास पण्डित

"पुरासीद्रघुनाथस्य यो वशिष्ठमुनिर्गुरुः।
स प्रकाशविशेषेण गंगादास सुदर्शनौ।।"

- गौ:ग: 53

"पहले जो रघुनाथ (भगवान श्रीराम) जी के गुरु वशिष्ठमुनि थे, वही अब प्रकाशभेद से श्रीगंगादास और सुदर्शन नाम से जाने जाते हैं।"

"आचार्यः श्रीजगन्नाथो गंगादासः प्रभुप्रियः।

आसीन्निधुवने प्राग् यो दुर्वासा गोपिकाप्रियः।।"

- गौ:ग: 111

'श्री जगन्नाथ- आचार्य तथा प्रभु के प्रिय पात्र श्रीगंगादास, ये दोनों ही पहले निधुवन में गोपियों के प्रिय दुर्वासा जी थे।'

"प्रभुर अत्यन्त प्रिय पण्डित गँगादास।
याँहार स्मरणे हय सर्वबन्ध-नाश।।"

चै:च:आ 10/29

अर्थात श्रीगंगादास पण्डित महाप्रभु जी के अत्यन्त प्रिय थे, जिनके स्मरण मात्र से तमाम प्रकार के बन्धन कट जाते हैं।

श्रील वृन्दावनदास ठाकुर जी ने स्वरचित ग्रन्थ 'श्रीचैतन्यभागवत' में निर्देश किया है कि कृष्णलीला में कृष्ण जी ने जिनको गुरुरूप में वरण किया था, वे सान्दीपनि मुनि ही श्रीगंगादास पण्डित के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। यथा

"नवद्वीपे आछे अध्यापक-शिरोमणि।
गंगादास पण्डित ये-हेन सान्दीपनि।।"

चै:भा:आ: 8/26

अर्थात नवद्वीप में एक अध्यापक शिरोमणि श्रीगंगादास पण्डित जी रहते हैं जो कि सान्दीपनि मुनि से अभिन्न हैं।

श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में ग्रन्थकर्ता ने श्रीगौरगणोद्देश

दीपिका के वाक्य तथा श्रीचैतन्यभागवत के वाक्य में सामंजस्य बैठाकर लिखा है कि श्रीगंगादास पण्डित में पूर्वलीला के सान्दीपनि मुनि और श्रीरामचन्द्र जी के गुरु वशिष्ठमुनि का प्रवेश है। श्रीकविकर्णपूर ने गौरगणोद्देश दीपिका के 52वें श्लोक में केशव भारती जी को सान्दीपनि मुनिरूप से निर्देश किया है।

महाविष्णु जी के अवतार श्रीमद्अद्वैताचार्य जी ने सब जीवों का उद्धार कराने का विचार कर गोलोकपति श्रीहरि की निरन्तर पूजा द्वारा उनको जगत में प्रकट कराया था। श्रीअद्वैत सिंह की हुंकार से महाप्रभु जी का अवतरण हुआ।

श्रीमन्महाप्रभु जी की इच्छानुसार उनके प्रकट होने से पहले उनकी पहले की लीला के जो-जो नित्यसिद्ध पार्षद व गुरुवर्ग उनकी लीला की पुष्टि करने के लिये अवतीर्ण हुये थे, उनमें से एक श्रीगंगादास पण्डित हैं।

"राढ़देशे जन्मिला ठाकुर नित्यानन्द,
गंगादास पण्डित, गुप्त मुरारी, मुकुन्द।।"
चै०च०आ० 13/61

अर्थात श्रीनित्यानन्द प्रभु जी राढ़ देश में अवतीर्ण हुये तथा श्रीगंगादास पण्डित, श्रीमुरारी गुप्त तथा श्रीमुकुन्द आदि अपने असंख्य भक्तों को अवतीर्ण करवाया।

"निगूढ़े आर अनेक वैसे नदीयाय। पूर्वे सबे जन्मिलेन

ईश्वर-आज्ञाय। श्रीचन्द्रशेखर, जगदीश, गोपीनाथ। श्रीमान् मुरारि, श्रीगरुड़, गँगादास।।" - चै.भा.आ. 2/98-99

अर्थात : अनेक भद्रजन गुप्त भाव से नवद्वीप में रहते थे। श्रीभगवान की आज्ञा से उन्होंने आकर पहले ही नवद्वीप में जन्म लिया था। श्रीचन्द्रशेखर, श्रीगोपीनाथ, श्रीमान, श्रीमुरारि, श्रीगरुड़ तथा श्रीगंगादास आदि अनेक भक्त वहां रहते थे।

पुत्र निमाइ को गंगादास पण्डित के पास पढ़ाने की इच्छा से श्रीजगन्नाथ मिश्र ने निमाइ को ले जाकर श्रीगंगादास पण्डित के पास समर्पित किया। श्रीगंगादास पण्डित का स्थान गंगानगर के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि भगीरथ जी जिन गंगा जी को लेकर आये थे, उन गंगाजी ने श्रीमन्महाप्रभु जी के प्रकट न होने तक वहां प्रतीक्षा की थी, इसलिये उस स्थान का नाम गंगानगर हुआ है। श्रीनवद्वीपधाम-श्रीसीमन्तद्वीप की परिक्रमा के समय भक्तगण श्रीयोगपीठ मन्दिर के बिल्कुल नज़दीक एक स्थान पर बैठकर उक्त स्थान की महिमा सुनते हैं।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने चैतन्यभागवत के आदि खण्ड के 8वें अध्याय के 24वें पयार के गौड़ीय भाष्य में इस प्रकार लिखा है - 'श्रीगौरनारायण वैकुण्ठपति भगवान हैं, इसलिये वे सब शास्त्रप्रतिभा और पाण्डित्यैश्वर्य के एकमात्र आधार हैं । तथाकथित दुनियावी विद्वान माने जाने वाले लोग वास्तविक अर्थ को छोड़कर

मनोकल्पित अर्थ लगाते हैं। लौकिक लीला का अभिनय करते हुए भगवान श्रीगौरहरि जी ने दुनियावी विद्वानों की इस वृत्ति को निन्दनीय माना तथा उसे स्वीकार न करने की शिक्षा दी। यथार्थ पण्डित व विद्वान अथवा भक्तों की वास्तविक अर्थ लगाने वाली वृत्ति के विचारों की महिमा दिखाने के लिए जिस प्रकार श्रीकृष्ण जी ने सान्दीपनी मुनि जी से अध्ययन की लीला की थी, उसी प्रकार महाप्रभु जी ने भी गंगादास पण्डित जी से व्याकरणादि शब्द-शास्त्रों को पढ़ने की इच्छा की।

जब श्री जगन्नाथ मिश्र ने श्रीगंगा दास पण्डित के पास अपने पुत्र निमाई को समर्पित किया तो श्रीगंगादास पण्डित ने परमोल्लास के साथ निमाई को शिष्यरूप से ग्रहण कर लिया और पुत्र की भांति स्नेह से उसे शिक्षा देने लगे। निमाई की अद्भुत स्मृति-शक्ति और मेधा को देखकर पंडित गंगादास आश्चर्यचकित हो उठे। उन्होंने हजारों-हजारों छात्रों को पढ़ाया था, किन्तु इस प्रकार का अलौकिक मेधावी छात्र उन्होंने आज तक नहीं देखा था। शिष्य का गौरव बढ़ने से गुरु का गौरव भी बढ़ता है। श्रीगंगादास पण्डित ने निमाई को सभी शिष्यों में से श्रेष्ठ समझ लिया। श्रीमुरारि गुप्त, श्रीकमलाकान्त, श्रीकृष्णानन्द आदि जितने भी श्रीगंगादास पण्डित के शिष्य थे, उन सबसे निमाई अनेक प्रकार के न्याय की पहेलियां पूछते रहते। सूत्र की व्याख्या के समय जिसे वे स्थापन करते, उसे ही फिर खण्डन करके पुनः स्थापन कर देते

थे। विद्यार्थी निमाइ का अद्भुत पाण्डित्य देखकर विस्मित हो उठते थे। गंगादास पण्डित के घर पर ही निमाई की विद्याविलास लीला हुई।

एइ गंगादास पण्डितेर वाड़ी हय।
व्याकरण पड़े एथा शचीर तनय।।
दिने दिने व्याकरणे हैया चमत्कार।
व्याकरणे करये टिप्पनी आपनार।।
कृष्णानन्द श्रीकमलाकान्त मुरारिगुप्ते।
एथा रहि फांकि जिज्ञासये हर्षचिते।।
विद्यारसे मग्न हैया श्रीगौरसुन्दर।
करये ये क्रिया ब्रह्मादिर अगोचर।।

भ:र: 12/2185-88

'गंगादास पण्डित-स्थाने पड़ेन व्याकरण।
श्रवणमात्रे कण्ठे कैल सूत्रवृत्तिगण।।'

चै:च:आ 15/5

श्रीगंगादास पण्डित के टोल में श्रीमहाप्रभु जी व्याकरण पढ़ते थे। व्याकरण के सूत्र-वृत्ति आदि केवल सुनने मात्र से ही याद कर लेते थे।

गयाधाम से लौटने के बाद महाप्रभु जी में कृष्णविरह जनित जो प्रेम विकार दिखाई दिये, उन्होंने श्रीवास पण्डित, श्रीमान् पण्डित, श्रीगदाधर पण्डित, श्रीसदाशिव तथा श्रीशुक्लाम्बर

ब्रह्मचारी आदि भक्तों को परम आश्चर्य में डाल दिया था। विद्याविलासरस को भूलकर कृष्णभक्ति का अद्‌भुत प्रकाश महाप्रभु जी में देखकर भक्तगण परमानन्दित हुये। गुरुसेवा का आदर्श प्रदर्शन करने के लिये महाप्रभु जी ने एक दिन गुरु श्रीगंगादास पण्डित के घर जाकर उनकी चरण-वन्दना की। श्रीगुरुदेव ने भी स्नेह और गौरव से महाप्रभु जी को गले लगा लिया। यहां पर शिष्य के प्रति गुरु जी का व्यवहार भी प्रदर्शित हुआ है। वास्तविक विद्या का फल है कृष्णभक्ति का मिलना। यदि वह न हुई तो समझना होगा कि मनुष्यजीवन निरर्थक है। कृष्णभक्ति द्वारा ही पितृकुल, मातृकुल का उद्धार होता है। श्रीगंगादास पण्डित निमाई का यह परिवर्तन देखकर प्रसन्न हुये तथा उनको पढ़ाने के लिए आदेश दिया।

गुरु बले, "धन्य बाप, तोमार जीवन। पितृकुल मातृकुल करिला मोचन।। तोमान पढुया सब-तोमार अवधि। पुँथि केहो नाहि मेले ब्रह्मा बले यदि।। एखने आइला तुमि सबार प्रकाश। कालि हैते पढ़ाइवा, आजि याह बास।।" चै.भा.म. 1/122-24

अर्थात, "वत्स! तुम्हारा जीवन धन्य है, तुमने अपने पितृकुल और मातृकुल का उद्धार कर दिया। तुम्हारे विद्यार्थी सब तुम्हारी ही आज्ञा में बैठे हैं, तुम्हारे अतिरिक्त यदि स्वयं ब्रह्मा जी भी आकर उनसे पढ़ने को कहें तो भी वे पुस्तक नहीं खोलते। अब तुम आ गये हो, सबको आनन्द हुआ है। उन्हें

कल से पढ़ाना, आज घर जाओ।"

'गंगादास पण्डित-चरणे नमस्कार। वेदपति सरस्वती पति-शिष्य याँर।। आर किवा गंगादास पण्डितेर साध्य? याँर शिष्य चतुर्दश भुवन-आराध्य।।' चै.भा.म. 1/283-84

श्रीगंगादास पण्डित के श्रीचरण में मेरा नमस्कार है कि वेदपति और सरस्वतीपति महाप्रभु जिनके शिष्य हैं। श्रीगंगादास पण्डित के लिए इससे बढ़कर साध्य और लाभ और क्या हो सकता है कि चौदह भुवनों के आराध्य देव उनके शिष्य हैं।

जब पतितपावन श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जी ने श्रीवास पण्डित जी के द्वारा पूजित और स्तुत होकर बाल्यभाव से नदीया नगर में बालकों के साथ खेल किया था, तब उन्होंने खेल करते-करते एक दिन पण्डित गंगादास के घर शुभ पदार्पण भी किया था।

'श्रीमन्महाप्रभु जी ने जिस समय श्रीवास आंगन में विष्णु के सिंहासन पर बैठकर सात प्रहर अपनी महाप्रकाश लीला की थी उस महाप्रकाश लीला में महाप्रभु जी ने जिन-जिन भक्तों को बुलाकर उन पर कृपा की थी उनमें से एक श्रीगंगादास पण्डित भी थे।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीगंगादास पण्डित जी को एक दिन एक घटना की बात बतायी। घटना इस प्रकार थी कि यवन राजा के डर से श्रीगंगादास पण्डित अपनी स्त्री और

परिवार के साथ घर से रात में भागकर गंगा तट पर आ गये थे परन्तु नदी के घाट पर उस समय नदी पार होने के लिए कोई नाव न थी। नाव न पाकर श्रीगंगादास जी बहुत संकट में पड़ गये। रात बीत गई परन्तु कोई नौका ही न आयी। यवनगण स्त्री और परिवार को स्पर्श करके दूषित कर देंगे - इस डर से श्रीगंगादास पण्डित रोने लगे और ऐसा निश्चय किया कि आज वे गंगा में डूब कर अपना शरीर त्याग देंगे। अचानक उस समय क्या हुआ कि स्वयं महाप्रभु जी नाविक रूप से नौका लेकर गंगाघाट पर उपस्थित हो गये। नौका को देखकर श्रीगंगादास पण्डित प्रसन्न हो उठे और नाविक से प्रार्थना करने लगे -

'आरे भाई, आमारे राखह एइबार।
जाति, प्राण, धन, देह सकल तोमार।।
रक्षा कर, परिकर-सगे कर पार।
एक तंका, एक जोड़ बखशीष तोमार।।'

महाप्रभु जी ने श्रीगंगादास पण्डित को उनके परिजनों के साथ नौका में बिठाकर नदी पार कराई थी।

महाप्रभु जी ने श्रीगंगादास पण्डित को यह सारी घटना याद दिलाई तथा कहा कि वे उनको नदी पार कराकर वैकुण्ठ में ले गये थे। बस यह सुनते ही श्रीगंगादास पण्डित मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

कटवा-नगर में सन्यास लेने के बाद जब श्रीमन्महाप्रभु जी श्रीनित्यानन्द प्रभु जी की चतुरता से शान्तिपुर में अद्वैताचार्य के घर आये थे, तब महाप्रभु जी की संन्यासमूर्ति का दर्शन करने के लिये जो सब नवद्वीपवासी भक्तगण वहां पहुंचे थे, उनमें से एक श्रीगंगादास पण्डित भी थे।

श्रीजगन्नाथदेव जी की स्नानयात्रा के बाद अनवसर काल में (जगन्नाथ जी का अस्वस्थलीलाकाल में- इन दिनों मन्दिर बन्द रहता है) श्रीमन्महाप्रभु जी श्रीजगन्नाथ जी के दर्शनों के विरह में अलालनाथ जाकर रहते थे। गौड़देश से पुरुषोत्तमधाम में भक्तगण आये हैं - यह समाचार पाकर महाप्रभु जी अलालनाथ से पुरी में लौट आये। उस समय श्रीवासुदेव सार्वभौम ने राजा प्रतापरुद्र को महल के ऊपर लेजाकर गौड़देशीय वैष्णवों का परिचय देने के समय श्रीगंगादास पण्डित का नाम भी उल्लेख किया था।

'आचार्यरत्न इँह, पण्डित पुरन्दर।
गंगादास पण्डित इँह, पण्डित शंकर।।' चै.च.म. 11/85

श्रीगंगादास पण्डित के साथ पुरी में महाप्रभु जी का मिलन हुआ था। महाप्रभु जी ने भी सभी भक्तों का गुणगान करके उनको गले से लगाया था। 'आचार्यरत्न, विद्यानिधि, पण्डित गदाधर। गंगादास, हरिभट्ट, आचार्य पुरन्दर।। प्रत्यक्षे सबार प्रभु करि गुणगान। पुनः पुनः आलिंगिया करिल सम्मान।।' चै.च.म. 11/159-60 अर्थात श्रीआचार्य रत्न,

श्रीविद्यानिधि पण्डित श्रीगदाधर, श्रीहरिभट्ट, श्रीगंगादास, आचार्य श्रीपुरन्दर इत्यादि प्रत्येक भक्त का प्रभु ने गुणगान किया और हर एक को बार-बार आलिंगन कर सबका सम्मान किया। श्रीपुरुषोत्तमधाम में श्रीजगन्नाथ जी के आगे रथयात्रा के समय जिन सात सम्प्रदायों (मण्डलियों) ने कीर्तन किया था, उनमें इसी सम्प्रदाय में दो गायकों में से एक थे - श्रीगंगादास पण्डित। दूसरी सम्प्रदाय के मूल गायंक श्रीवास पण्डित एवं नाचने वाले नित्यानन्द प्रभु जी थे। 'श्रीवास - प्रधान आर सम्प्रदाय कैल।।गंगादास, हरिदास, श्रीमान्, शुभानन्द। श्रीराम पण्डित, ताहा नाचे नित्यानन्द।।' चै0च0म0 13/38-39 अर्थात दूसरी मण्डली में प्रभु ने श्रीवास को प्रधान कीर्तनीया किया। इस दूसरी मण्डली में श्रीगंगादास, श्रीहरिदास, श्रीमान शुभानन्द, श्रीराम पण्डित - ये पांच जने सहायक गायक थे और यहां श्रीनित्यानन्द प्रभु नृत्य कर रहे थे।

दामोदर पण्डित (दामोदर ब्रह्मचारी)

शैव्या यासीद्व्रजे चण्डी स दामोदर पण्डितः।
कुतश्चित् कार्यतो देवी प्राविशत्तं सरस्वती।।
- गौ0ग0 159

(श्रीकृष्ण लीला के समय) ब्रज में जो प्रखरा शैव्या थी,

वही इस गौरलीला में श्रीदामोदर पण्डित के रूप में आये थे।

श्रीदामोदर पण्डित श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के गणों में गिने जाते हैं।

'दामोदर पण्डित शाखा प्रेमेते प्रचण्ड। प्रभुर उपरे येंहो कैल वाक्यदण्ड।। दण्डकथा कहिब आगे विस्तार करिया। दण्डे तुष्ट प्रभु तांरे पाठाइल नदीया।।' चै0च0आ0 10/31-32

काटोया में संन्यास ग्रहण करने के पश्चात श्रीमन्महाप्रभु जी को, नित्यानन्द प्रभु जी चतुराई से जिस समय शान्तिपुर में अद्वैताचार्य जी के घर ले आये थे, उस समय वहां महाप्रभु जी के दर्शनों के लिए आये नवद्वीपवासी भक्तों में श्रीदामोदर पण्डित जी भी थे। उस समय महाप्रभु जी 10 दिन तक शान्तिपुर में रहे थे। शचीमाता जी की इच्छा के अनुसार महाप्रभु जी जब शान्तिपुर से नीलाचल धाम की ओर जाने लगे उस समय श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीमुकुन्ददत्त और श्रीजगदानन्द पण्डित जी के अतिरिक्त श्रीदामोदर पण्डित जी भी महाप्रभु जी के साथ थे। नीलाचल धाम में प्रथम बार शुभागमन कर श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन करते समय महाप्रभु जी मूर्च्छित होकर गिर पड़े थे तब वासुदेव सार्वभौम महाप्रभु जी को अपने घर ले आये थे। वासुदेव सार्वभौम मायावाद विचारों के थे किन्तु बाद में महाप्रभु जी के संग के प्रभाव से मायावाद विचारों का परित्याग कर शुद्ध भक्त हो गये थे। उसी समय उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु जी की महिमा सूचक दो श्लोक 'वैराग्य

विद्या निज भक्त योग......' 'कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः.......' तालपत्र पर लिखकर श्रीजगदानन्द पण्डित और श्री दामोदर पण्डित जी को दिये थे महाप्रभु जी को दिखाने के लिये। मुकुन्द दत्त जी ने महाप्रभु जी को देने से पहले तालपत्र के दोनों श्लोक बाहर दीवार पर लिख लिये थे। महाप्रभु जी को देने पर उन्होंने उन्हें पढ़ा और फाड़ कर फेंक दिया। बाहर दीवार पर लिखकर रखने के कारण श्लोक संरक्षित रह गये और भक्तों ने उन्हें याद कर लिया।

माघमास के शुक्लपक्ष में सन्यास ग्रहण कर प्रभु जी फाल्गुन मास में नीलाचल में आये। चैत्रमास में वासुदेव सार्वभौम जी का उद्धार किया। वैशाख मास में जब महाप्रभु जी ने अकेले दक्षिण भारत की यात्रा पर जाने का विचार कर नित्यानन्दादि भक्तों को कहा तो सभी भक्त विरह-सन्तप्त हो उठे। जब नित्यानन्द प्रभु जी ने भी साथ जाने की इच्छा व्यक्त की तो महाप्रभु जी ने निन्दा के छल से श्री नित्यानन्द प्रभु, श्री जगदानन्द पण्डित और श्री दामोदर पण्डित जी के गुणों का व्याख्यान किया था।

'आमि त संन्यासी, दामोदर ब्रह्मचारी। सदा रहे आमार उपर शिक्षादण्ड धरि।। इहार आगे आमि ना जानि व्यवहार। इंहारे ना भाय स्वतन्त्र चरित्र आमार।। लोकापेक्षा नाही इँहार कृष्ण कृपा हैते। आमि लोकापेक्षा कभु ना पारि छाड़िते।।'

चै. च. म. 7/25-27

अर्थात श्रीदामोदर तो ब्रह्मचारी हैं और मैं हूं सन्यासी, वह मेरे ऊपर सदा शिक्षादण्ड पकड़े रहता है। उसके सामने किसके साथ कैसा व्यवहार करना है यह मैं नहीं जान सकता और उसे मेरा स्वाधीन चरित्र भी अच्छा नहीं लगता और श्रीदामोदर पर श्रीकृष्ण कृपा है, जिससे वह लोकापेक्षा नहीं रखते अर्थात् जगत की निन्दा स्तुति की परवाह वे नहीं करते, परन्तु मैं तो लोकापेक्षा को नहीं त्याग सकता।

जिस समय महाप्रभु जी कृष्णदास (कालाकृष्ण दास) के साथ दक्षिण भारत का भ्रमण करने के पश्चात् अलालनाथ पहुंचे उस समय कृष्णदास को भेज कर नित्यानन्दादि भक्तों को अपने आने का सन्देश भेजा। कृष्णदास से महाप्रभु जी के आगमन का समाचार सुनकर श्रीनित्यानन्द, श्रीजगदानन्द, श्रीमुकुन्द दत्त आदि भक्तों के साथ श्रीदामोदर पण्डित जी भी महानन्द से आगे आकर महाप्रभु जी से मिले थे। 'प्रभुर आगमन शुनि नित्यानन्दराय। उठिया चलिया, प्रेमे थोह नाहिं पाय। जगदानन्द, दामोदर-पण्डित, मुकुन्द। नाचिया चलिला, देहे न धरे आनन्द।।' चै. च. म. 9/339-340

अर्थात श्रीमहाप्रभु का आगमन सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभु तो प्रेम से अस्थिर हो उठे और प्रभु के दर्शनों को चल दिये। श्रीजगदानन्द, श्रीदामोदर, श्रीमुकुन्द पण्डित फूले न समा रहे थे, सब नृत्य करते प्रभु के पास चले।

दक्षिण भारत से वापस आकर महाप्रभु जी ने कृष्णदास

के आचरण के सम्बन्ध में वासुदेव सार्वभौम जी को कहा। दक्षिण भारत में कालाकृष्णदास भट्टथारि स्त्रियों के प्रलोभन में फंस कर महाप्रभु का साथ छोड़कर चला गया था। महाप्रभु जी ने किसी प्रकार स्त्रियों के चंगुल से उस का उद्धार किया था । इसलिये अब काला कृष्णदास को साथ में न रखकर उसे विदा देकर जहां चाहे वहां जाने की आज्ञा दे दी। महाप्रभु जी द्वारा त्याग देने पर काला कृष्णदास क्रन्दन करने लगा। अब काला कृष्णदास के सम्बन्ध में क्या किया जाये, इस विषय में सोच विचार कर श्रीनित्यानन्द, श्रीजगदानन्द, व श्रीमुकुन्द जी के साथ श्रीदामोदर पण्डित जी ने एक योजना सोची जिस के अनुसार नवद्वीप में शचीमाता, अद्वैताचार्य आदि भक्तों को महाप्रभु जी के दक्षिण भारत से पुरी वापस आने का समाचार भेजने के लिये समाचार - वाहक रूप से कृष्णदास को भेजने का प्रस्ताव महाप्रभु जी के सामने रखा। महाप्रभु जी द्वारा मान लेने पर कृष्ण दास को गौड़देश में भेज दिया गया। श्रीअद्वैताचार्य आदि गौरभक्त कालाकृष्ण दास से महाप्रभु जी के दक्षिण भारत से पुरी आने का समाचार सुनकर परम आनन्दित हुये थे। बाद में पुरी से गौड़देश पहुंचकर श्रीदामोदर पण्डित जी भी काला कृष्णदास से मिले थे।

महाप्रभु जी की दामोदर पण्डित जी के प्रति सम्मानयुक्त प्रीति थी किन्तु श्रीदामोदर पण्डित जी के छोटे भाई शंकर के प्रति गौरवहीन शुद्ध प्रीति थी। श्रीदामोदर पण्डित जी के सामने

स्वच्छन्द व्यवहार सम्भव नहीं था ये जानकर छोटे भाई के हित के लिये श्रीमहाप्रभु जी ने शंकर पण्डित की देख रेख का भार श्रीदामोदर पण्डित जी के ऊपर सौंपा था।

'शंकरे देखिया प्रभु कहे दामोदरे। सगौरव - प्रीति आमार तोमार उपरे।। शुद्ध केवल - प्रेम शंकर उपरे। अतएव तोमार सगे राखह शंकरे।।' चै. च. म. 11/146-47

अर्थात श्रीदामोदर के छोटे भाई शंकर को देखकर प्रभु ने कहा - 'दामोदर! मुझे तुम पर तो गौरव सहित प्रीति है, किन्तु मेरी शुद्ध प्रीति तो इस शंकर पर है, इसलिए इसे मेरे पास रहने दो।'

अन्तिम लीला में शंकर पण्डित महाप्रभु जी के सामने रहते थे एवं रात को महाप्रभु जी के पास ही शयन करते थे। किसी-2 दिन महाप्रभु जी शंकर पण्डित जी के शरीर पर श्रीचरण रख कर शयन करते थे।

श्रीदामोदर पण्डित पुरी में सिद्ध बकुल के पास नामाचार्य हरिदास ठाकुर जी से मिलकर परमानन्दित हुये थे।

एक दिन महाप्रभु जी ने अपने आवास में भक्तों को भोजन करवाने के लिये स्वयं परिवेशन करना आरम्भ किया। महाप्रभु जी द्वारा परिवेशन करने पर भी भक्त लोग प्रसाद सेवन न कर हाथ ऊँचे करके बैठे रहे। श्रीस्वरूप दामोदर जी द्वारा प्रार्थना करने पर जब महाप्रभु जी नित्यानन्द प्रभु जी के

साथ प्रसाद सेवन करने के लिये बैठ गये तब भक्तों ने निसंकोच प्रसाद सेवन किया। तब श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीदामोदर पण्डित व श्रीजगदानन्द पण्डित जी ने प्रसाद परिवेशन की सेवा की थी।

दक्षिण भारत से महाप्रभु जी के पुरी में वापस आने पर राजा प्रतापरुद्र ने महाप्रभु जी के दर्शनों के लिये अत्यन्त हृदय की व्याकुलता प्रकट करते हुये कहा कि दर्शन न मिलने पर मैं राज्य छोड़कर भिखारी बन जाऊँगा। महाप्रभु जी के प्रति गजपति महाराज जी की प्रगाढ़ भक्ति को देखकर सभी विस्मित हो गये। महाराज जी को महाप्रभु जी से मिलवाने के लिये वासुदेव सार्वभौम जी ने श्रीनित्यानन्द आदि भक्तों के साथ मिलकर एक योजना बनाई। उन्होंने राजा को उनके साथ मिलने की बात न बता कर राजा के व्यवहार और राजा की प्रगाढ़ भक्ति की बात ही महाप्रभु जी को बतायी। श्रीनित्यानन्द प्रभु जी ने जब राजा के राजव्यवहार की और उसकी प्रगाढ़ भक्ति की बात महाप्रभु जी के समक्ष निवेदन की तो महाप्रभु जी अन्दर से तो द्रवीभूत हो गये किन्तु उन्होंने बाहर से कठोर वाक्यों का प्रयोग करते हुए श्रीदामोदर पण्डित के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा था - 'तोमा सभार इच्छा एइ, आमारे लञा । राजा के मिलह इह कटकेते गिया।। परमार्थ थाकुक, लोके करिबे निन्दन। लोके रहू, दामोदर करिबे भर्त्सन ।। तोमा सभार आज्ञाय आमि ना मिलि राजारे। दामोदर

कहे यबे तबे मिलि तारे।।'

'आप सब की इच्छा यही है कि हम सब यहां से कटक चलकर राजा को मिलें। (संन्यासी यदि राजा का दर्शन करे तो उसका संन्यास धर्म नष्ट होता है।) मेरा परमार्थ (सन्यास धर्म) जाता है तो जाने दो, लोग भी तो मेरी निन्दा करेंगे (कि अपने स्वार्थ के लिए राजा को जाकर मिले हैं) और फिर लोगों की निन्दा की बात रहने दीजिए दामोदर भी तो मेरा तिरस्कार करेंगे। (श्री दामोदर स्पष्ट-वक्ता थे और प्रभु को भी कहने-सुनने में वे कोई संकोच न करते थे) इसलिए मैं तुम सब की बात मानकर राजा से मिलूंगा नहीं, हां यदि दामोदर कह दें तो उनसे मिल सकता हूं।'

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने इस पयार के अमृत प्रवाह भाष्य में इस प्रकार लिखा है कि महाप्रभु जी सब को कहते हैं कि मैं केवल आपकी आज्ञा से राजा के साथ साक्षात्कार नहीं कर सकता, यदि दामोदर मिलने के लिये बोलें तो मिल सकता हूं। प्रभु के इस वाक्य का बहुत गूढ़ अर्थ है। दामोदर जी की भक्ति के वशीभूत होने पर भी उनका वाक्‌दण्ड कई बार महाप्रभु जी के लिए अयोग्य हो जाता था। इसलिये दामोदर को अपनी ये प्रवृत्ति छोड़नी होगी।

महाप्रभु जी के वाक्य सुनकर दामोदर पण्डित अभिमान से भर कर बोले - महाप्रभु स्वतन्त्र ईश्वर हैं, कर्तव्य अकर्तव्य

वे सब जानते हैं । मैं साधारण क्षुद्र जीव इस विषय में उन्हें क्या ज्ञान दूंगा। वे तो स्नेह के वशीभूत हैं और राजा उनसे स्नेह करते हैं। एक दिन अवश्य ही राजा के साथ मिलन होगा। पुरी में रथयात्रा के समय श्रीदामोदर पण्डित भी महाप्रभु जी के साथ थे। श्रीजगन्नाथ जी के रथ के आगे जो सात संकीर्तन मण्डलियां नृत्यकीर्तन कर रही थीं, उनमें से पहली मण्डली के कीर्तन में दामोदर पण्डित भी एक थे। मूल कीर्तन करने वाले स्वरूप दामोदर जी एवं अद्वैताचार्य जी नर्तक थे।

तीसरे वर्ष गौड़ देश के भक्त अपनी पत्नियों के साथ आये थे। भक्तों को विदा कर महाप्रभु जी ने जब गौड़देश से होकर वृन्दावन जाने का संकल्प लिया और नीलाचल से चल पड़े तो उस समय महाप्रभु जी के साथ चलने वालों में से श्रीदामोदर पण्डित जी भी थे। अवश्य ही उस वर्ष भी महाप्रभु जी रामकेलि ग्राम में सनातन गोस्वामी जी द्वारा कही बात को स्मरण कर कानाई नाटशाला तक जाकर वापस आ गये, वृन्दावन नहीं गये।

श्रीमन्महाप्रभु जी उत्तर भारत, वृन्दावन धाम भ्रमण करने के बाद जब बलभद्र के साथ दुबारा झाड़ीखण्ड के रास्ते से आठारानाला में वापस आये तो ये संवाद सुनकर भक्त लोग आनन्द से विह्वल हो उठे और नरेन्द्र सरोवर पर आकर महाप्रभु जी से मिले। महाप्रभु जी ने अत्यन्त प्रेम से सब को आलिंगन किया। जो सम्बन्ध मे बड़े थे, उनके चरणो की वन्दना की ।

उस समय महाप्रभु जी ने श्रीदामोदर पण्डित को भी आलिंगन किया था।

पुरुषोत्तम धाम में उड़ीसा की एक सुन्दर विधवा ब्राह्मणी का एक रूपवान पुत्र था। वह बालक प्रतिदिन महाप्रभु जी के पास आता था, महाप्रभु जी को प्रणाम करता एवं महाप्रभु जी के साथ बहुत प्रेम से बातें करता था। महाप्रभु जी उस लड़के के प्राणस्वरूप हो गये थे। धीरे-2 ऐसा हो गया कि वह महाप्रभु जी को देखे बिना रह नहीं सकता था। महाप्रभु जी भी उस लड़के को प्रेम करते थे। श्रीदामोदर पण्डित को उस लड़के के साथ महाप्रभु जी की ये घनिष्ठता अच्छी नहीं लगी। बार-2 मना करने पर भी लड़का महाप्रभु जी से मिलने के लिये आता था। महाप्रभु जी भी उस से महाप्रीति करते थे। बालक का स्वभाव होता है कि जहां प्रेम हो गया वहां जायेगा ही। सहन न कर पाने के कारण श्रीदामोदर पण्डित एक दिन सीधा-2 महाप्रभु जी से कह बैठे - 'आप दूसरों को उपदेश करते समय तो पंडित बनते हैं और सभी आपको गोसाई-2 कहते हैं। अब गोसाञि का गुण जब सब लोग गान करेंगे तब नीलाचल में गोसाई जी की ख्याति होगी। "अन्योपदेशे पंडित कहे गोसाञिर ठाञि। गोसाञि गोसाञि एवे जानिमु गोसाञि।। एवे गोसाञिर गुण सब लोके गाइवे। गोसाञि-प्रतिष्ठा सब पुरुषोत्तमे हइवे।।" चै0च0 अ 3/11-12

महाप्रभु जी ने जब पण्डित जी की इस बात का तात्पर्य

जानना चाहा तो दामोदर पण्डित जी ने विषय को खोलकर कहा – कि आप तो स्वतन्त्र ईश्वर हैं। जैसा चाहो वैसा आचरण कर सकते हो। किन्तु इस मुखर (बोलीबाज) जगत के लोगों का मुख कौन बन्द करेगा? आप विद्वान होते हुये भी न जाने क्यों विचार नहीं करते? विधवा ब्राह्मणी के बालक के साथ क्यों इतना प्रेम करते हैं? यद्यपि वह तपस्विनी और सती नारी है तथापि वह एक सुन्दर युवती है। इधर आप भी परमयुवा एवं परमसुन्दर हैं। आप लोगों को कानाफूसी करने का अवसर ही क्यों देते हैं?' इतना कहकर श्रीदामोदर पण्डित चुप खड़े हो गये और महाप्रभु जी अन्दर-2 अत्यन्त सन्तुष्ट होकर बोले – 'इहारे कहिये शुद्ध प्रेमेर तरंग। दामोदर सम नहीं मोर अन्तरंग।।' अर्थात इसे ही प्रेम की शुद्धतरंग कहते हैं। अर्थात जिस प्रेम के प्रभाव से भक्त अपने प्रभु के अपयश आदि की आशंका करके अपने प्रभु का भी शासन करता है वही प्रेम ही शुद्ध प्रेम है। एक दिन महाप्रभु जी ने श्रीदामोदर पण्डित को एकान्त में बुलाकर उन्हें शचीमाता के पास जाकर उनकी देखरेख का भार लेने के लिये कहा। 'तोमा बिना ताँहार रक्षक नाहि आन। आमाके ओ जाते तुमि कैला सावधान।। तोमा सम निपरेक्ष नाहि मोर गणे। निरपेक्ष नहिले धर्म न याय रक्षणे।।' चै0 च0 अ0 3/22-23

मेरे भक्तों में तुम जैसा निरपेक्ष और कोई नहीं है। इसीलिये तुमने मुझे सावधान कर दिया। हे दामोदर! निरपेक्ष

न होने पर अपने धर्म की रक्षा कोई भी नहीं कर सकता।

महाप्रभु जी ने श्रीदामोदर पण्डित जी को शीघ्र ही शचीमाता के पास नवद्वीप में जाने के लिये कहा और फिर दिलासा दिया कि बीच-2 में पुरी में आकर मेरे से मिलते रहना, और कहा कि दामोदर! जाकर शचीमाता को मेरा कोटि-2 नमस्कार कहना। महाप्रभु जी ने कहा कि माता जी को सुख प्रदान करने के लिये एक गूढ़ बात उन्हें बताना कि महाप्रभु जी बार-2 आपके घर में आते हैं और आपके द्वारा दिये मिष्ठान्न व्यंजनों का भोजन कर जाया करते हैं। किन्तु शचीमाता इसे स्वप्न ही समझती हैं। माता जी को बताना कि माघी संक्रान्ति को आप बार बार भोग लगाती थीं और महाप्रभु जी सब खा जाते थे। किन्तु खाली पात्रों को देख विरह दशा में भ्रान्तिवश सोचती थीं कि मैंने भोग लगाया ही नहीं। दुबारा फिर स्थान साफ कर भोग देतीं और महाप्रभु जी फिर वह भोजन कर लेते थे। शुद्ध प्रेम से आकर्षित होने के कारण महाप्रभु जी हमेशा ही आपके पास विराजित हैं।'

महाप्रभु जी ने दामोदर पण्डित को श्रीजगन्नाथ जी का प्रसाद दिया व नवद्वीप में जाकर शचीमाता और सब भक्तों में बांटने के लिये कहा। श्रीदामोदर पण्डित जी ने महाप्रभुजी की आज्ञा ज्यों की त्यों पालन की। श्रीदामोदर पण्डित के सामने भक्त डर के मारे संकोच से चलते थे। श्रीदामोदर पण्डित जी के सामने कोई भी मनमुताबिक व्यवहार नहीं कर सकता था।

प्रभु के गणों में से किसी की थोड़ी सी मर्यादा उल्लंघन होती देखते ही दामोदर पण्डित वाक्यदण्ड द्वारा उसे स्थापित करते थे। "एइ त'. कहिल दामोदरेर वाक्यदण्ड। याहार श्रवणे भागे अज्ञान पाषण्ड।।" चै. च. अ. 3/46

जिन सब गौरपार्षदों के प्रचार के फलस्वरूप कृष्णनाम-प्रेम का जगत में प्रचार हुआ था, उनमें से श्रीदामोदर पण्डित भी एक थे। महाप्रभु जी ने उनकी महिमा गुणगान करते समय इस प्रकार कहा है :-'कृष्णनाम - प्रेम कैला जगते प्रचार। इहा सवार संगे कृष्णभक्ति ये आमार।।'

चै0 च0 अ 7/50

भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में श्री नरहरि चक्रवर्ती महोदय ने श्रीमायापुर धाम में श्रीदामोदर पण्डित जी के साथ श्रीनरोत्तम ठाकुर जी के मिलन की बात कही है। श्रीनरोत्तम ठाकुर जी ने दामोदर पण्डित जी के दर्शन कर अधीर होकर उन्हें प्रणाम किया था। 'तथा दामोदर पण्डितेर दरशने। हइया अधैर्य प्रणमिला से चरणे।।' भ0 र0 8/93

श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी या श्रीनृसिंहानन्द

"आवेशश्च तथा ज्ञेयो मिश्रे प्रद्युम्न संज्ञके।"

गौरगणोद्देशदीपिका - 74

"श्रीप्रद्युम्न मिश्र को भी उनका आवेश जानना होगा।"

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत के अनुभाष्य में ऊपर कहे गये श्लोक को उड़ीसावासी श्रीप्रद्युम्न मिश्र के सम्बन्ध में प्रयोग न करके श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी के सम्बन्ध में प्रयोग किया है। श्री गौड़ीय वैष्णव अभिधान में भी गौरगणोद्देशदीपिका का 74वां श्लोक श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी के सम्बन्ध में प्रयुक्त हुआ है, उनको 'गौर का आवेश' कहा गया है।

"साक्षाद्दर्शन आर, योग्य भक्त-जीवे।
आवेश करये काहाँ, काहाँ आविर्भावे।।"

श्रीप्रद्युम्न नृसिंहानन्द के आगे प्रभु आविर्भूत हुए एवं अनेक जीवों का निस्तार कर दिया। (श्रीभगवान् इस प्रकार विविध उपायों से जीवों का क्यों निस्तार करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि जीवों का निस्तार करना श्री भगवान का स्वभाव अर्थात स्वरूप धर्म ही है।)

प्रद्युम्न-नृसिंहानन्द आगे कैला आविर्भाव।
लोक निस्तारिव-एइ ईश्वर स्वभाव।। चै.च.अ. 2/4-6

श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी में नृसिंहावेश लक्ष्य करके श्रीमन्महाप्रभु ने उनका नाम रखा था - 'श्रीनृसिंहानन्द'। श्रीचैतन्य शाखा में इनका भी नाम है। 'श्रीनृसिंह-उपासक-प्रद्युम्न ब्रह्मचारी। प्रभु ताँर नाम कैल 'नृसिंहानन्द' करि।।'

श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी श्रीनृसिंह भगवान के उपासक थे, श्रीमहाप्रभु ने उनका नाम श्रीनृसिंहानन्द रखा।
- चै.च.आ. 10/35

'प्रद्युम्न ब्रह्मचारी, ताँर निज नाम। 'नृसिंहानन्द' नाम ताँर कैल गौरधाम।।' - चै.च.अ. 2/53

वास्तव में इनका नाम श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी था, श्रीमहाप्रभु जी ने इनका नाम श्रीनृसिंह ब्रह्मचारी रखा था।

'श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी नृसिंहेर दास। याँहार शरीरे श्रीनृसिंहेर प्रकाश।। कीर्तने विहरे नरसिंह न्यासी रूपे। जानिया रहिला आसि प्रभुर समीपे।।" चै.भा.अ. 3/186-87

अर्थात श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी नृसिंहदेव के सेवक थे। उनके शरीर में नृसिंहदेव जी का प्रकाश था। कीर्तन-विहारी श्रीप्रभु को सन्यासी रूप में नृसिंहदेव समझकर उनके समीप रहने लगे। श्रीवृन्दावनदास ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य भागवत में जो लिखा

है उसे पढ़ने से पता चलता है कि प्रद्युम्न ब्रह्मचारी श्रीनृसिंहदेव जी के साथ साक्षात् रूप से बातें करते थे। रथयात्रा का दर्शन करने के लिये भक्तों के साथ नीलाचल में जाने के समय श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी का उक्त विषय के सम्बन्ध में उल्लेख हुआ है। 'चलिल प्रद्युम्न ब्रह्मचारी महाशय। साक्षात नृसिंह याँर संगे कथा कय।।' चै.भा.अ. 8/12

जो भगवान के स्वरूप को काल्पनिक व मायिक समझते हैं, भगवान की माया से मोहित वे नास्तिक लोग इन सब घटनाओं को अजीब समझकर ऐसे कटाक्ष करते हैं मानो वे बड़े ज्ञानी हों। ईश्वर विश्वासहीन, दुर्भाग्यशाली व्यक्ति अपने वास्तविक मंगल से वंचित हैं, उनको तो जन्म-मृत्युरूपी संसार का आवागमन रूप चक्र ही प्राप्त होता है।

जब श्रीमन्महाप्रभु जी ने कटवा में संन्यास लेने के बाद वृन्दावन की ओर यात्रा शुरु की तो श्रीनित्यानन्द प्रभु जी ने बड़ी कुशलता से उनका रास्ता बदल दिया और वे बड़े कौशल के साथ महाप्रभु जी को गंगा के किनारे पर बसे शान्तिपुर में ले आये। शान्तिपुर से श्रीमन्महाप्रभु जी जब पुरी पहुंचे तो उनके साथ थे - श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीदामोदर पण्डित और श्रीमुकुंद दत्त। पुरी से फिर श्रीमन्महाप्रभु जी दक्षिण भारत गये थे। दक्षिण भारत से आकर श्रीमन्महाप्रभु जी ने गौड़देश होकर वृन्दावन जाने का संकल्प किया। श्रीमन्महाप्रभु जी गौड़देश में पहुंचकर विद्यानगर में श्रीसार्वभौम

भट्टाचार्य के भाई श्रीविद्यावाचस्पति के घर रहे, कुलिया ग्राम में श्रीदेवानन्द पण्डित और श्रीगोपाल चापाल को अपराध से मुक्त किया तथा रामकेलि ग्राम में श्रीरूप सनातन को मिले। श्रीरूप सनातन से साक्षात्कार करके जब महाप्रभु जी ने वृन्दावन जाने के लिये यात्रा शुरु की, तब श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी (श्रीनृसिंहानन्द) ने ध्यान द्वारा कुलिया नगर से वृन्दावन तक का जो रास्ता है, उसको रत्नों के साथ सुसज्जित करना शुरु कर दिया, जिससे श्रीमन्महाप्रभु जी को किसी प्रकार का कोई कष्ट न हो, किन्तु गौड़ के निकटवर्ती 'कानाई की नाट्यशाला' तक तो सब ठीक था परन्तु उससे आगे के रास्ते को वे सुसज्जित न कर पाये तथा उनका ध्यान भंग हो गया। तभी श्रीनृसिंहानन्द समझ गये कि इस बार भी महाप्रभु जी कानाई की नाट्यशाला तक जाकर वापस आ जायेंगे, उनका वृन्दावन जाना नहीं होगा। द्रव्यमय सेवा से मानसिक सेवा श्रेष्ठ है। इसका पौराणिक दृष्टान्त भी है - प्रतिष्ठानपुर के गरीब ब्राह्मण ने मानसिक सेवा से शरीर सहित ही वैकुण्ठधाम में श्रीनारायण के पादपद्मों को प्राप्त किया था।

श्रीनृसिंहानन्द जी के प्रेम से आकृष्ट होकर श्रीमन्महाप्रभु जी कुमारहट्ट में श्रीशिवानन्द सेन जी के घर प्रकट हुये थे। श्रीचैतन्यचरितामृत में श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने अन्त्यलीला के दूसरे परिच्छेद में इस प्रसंग को सुन्दर रूप से वर्णन किया है। श्रीवृन्दावन से पुरुषोत्तम धाम में वापस आकर

श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीशिवानन्द सेन जी के भानजे श्रीकान्त को निर्देश दिया कि वह गौड़देश में जाकर सब भक्तों को यह बता दे कि इस बार पौष मास में वे स्वयं ही गौड़देश आ रहे हैं, इसलिये वहां के भक्तों को इस बार पुरी में आने की ज़रूरत नहीं है। जब यह समाचार श्रीकान्त ने गौड़देश में आकर भक्तों को सुनाया तब सब के सब आनन्दित हो उठे। किन्तु पौष मास के लगभग बीत जाने पर भी भक्तों ने देखा कि महाप्रभु जी आये नहीं। महाप्रभु जी के न आने पर श्रीशिवानन्द सेन जी और श्री जगदानन्द पण्डित हताश और दुःखित हो उठे। अचानक क्या हुआ कि श्रीनृसिंहानन्द जी उनके पास आ गये और उनको दुःखी देखकर तथा उनके दुःख का कारण जानकर उनको आश्वासन दिया और कहा कि वे और दुःख न करें, आज से तीसरे दिन वे महाप्रभु जी को यहां प्रकट करा देंगे। श्रीनृसिंहानन्द जी के प्रभाव को शिवानन्द जी और जगदानन्द पण्डित भली भाँति जानते थे, इसलिये उन्होंने उनकी बात पर विश्वास कर लिया। दो दिन तक ध्यानमग्न रहने के बाद श्रीनृसिंहानन्द जी ने शिवानन्द जी से कहा कि महाप्रभु जी पानिहाटी तक आ गये हैं, कल दोपहर को वे कुमारहट्ट होते हुए आपके घर आयेंगे। अगले दिन नृसिंहानन्द जी ने रसोई बनाने के लिए सामान देने के लिए कहा। शिवानन्द सेन जी ने रसोई का सब सामान दे दिया। श्रीनृसिंहानन्द जी ने नाना प्रकार के अन्न-व्यंजन व खीर आदि बनाकर श्रीचैतन्य महाप्रभु जी, श्री जगन्नाथदेव और श्रीनृसिंहदेव के

उद्देश्य से तीन अलग-अलग भोग निवेदन किये। भोग निवेदन करके श्रीनृसिंहानन्द जी ध्यान कर ही रहे थे कि उसी क्षण श्रीचैतन्य महाप्रभु जी वहीं प्रकट हो गये तथा उन्होंने तीनों भोगों को ग्रहण कर लिया। यह देखकर कि महाप्रभु जी ने सब खा लिया श्री नृसिंहानन्द जी आनन्द से विह्ल हो उठे।

यद्यपि नृसिंहानन्द जी के हृदय में प्रसन्नता तो हुई कि महाप्रभु जी ने तीनों भोग ग्रहण कर लिये तथापि बाहर से कुछ दुःख प्रकाश करते हुये कहने लगे कि महाप्रभु जी और जगन्नाथ जी एकतत्व होने के कारण महाप्रभु जी ने दोनों भोग ग्रहण कर लिये, यह तो बात ठीक हुई, परन्तु श्रीनृसिंहदेव जी का भोग उन्होंने क्यों ग्रहण किया। आज तो फिर श्रीनृसिंहदेव जी को भूखा रहना पड़ेगा। श्रीमन्महाप्रभु, श्रीजगन्नाथदेव और श्रीनृसिंहदेव एक ही तत्व हैं, इस तत्व को समझाने के लिये ही महाप्रभु जी ने इस प्रकार की भोजनलीला की। महाप्रभु जी भोजन पाकर पानिहाटी चले गये। श्रीनृसिंहानन्द जी जब दुःख प्रकट कर रहे थे तो श्रीशिवानन्द सेन जी ने उनसे पूछा कि आपके दुःख का क्या कारण है? जवाब में श्रीनृसिंहानन्द जी ने कहा कि महाप्रभु जी अकेले ही तीनों भोग पा गये, श्रीजगन्नाथदेव और श्रीनृसिंहदेव तो उपवासी ही रह गये। श्रीशिवानन्द सेन जी के चित्त में सन्देह हो गया। श्रीनृसिंहानन्द जी की इच्छा से शिवानन्द सेन जी ने फिर से रसोई का सब सामान दिया। नृसिंहानन्द ने

दोबारा रसोई तैयार करके श्रीनृसिंहदेव जी को भोग अर्पण किया।

वर्ष की समाप्ति पर जब श्रीशिवानन्द सेन जी भक्तों के साथ नीलाचल में महाप्रभु जी के पादपद्मों के पास पहुंचे तो महाप्रभु जी ने पौष मास में उनके घर जाकर श्रीनृसिंहानन्द द्वारा दिये भोग को पाने की बात सबको बताई। यह सुनकर सभी विस्मित हो उठे।

'एक दिन सभाते प्रभु बात चालाइला। नृसिंहानन्देर गुण कहिते लागिला।। गतवर्ष पौषे मोरे कराइल भोजन। कभु नाहि खाइ ऐछे मिष्ठान्न व्यञ्जन।। शुनि भक्तगण मने आश्चर्य मानिल। शिवानन्देर मने तबे प्रत्य जन्मिल।।' चै.च.अ. 2/77-79

अर्थात एक दिन श्रीमहाप्रभु जी ने सभा में कुछ बात चलाई एवं श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी के गुण बखान करने लगे और कहने लगे - 'गत वर्ष पौष मास में श्रीनृसिंहानन्द ने मुझे जो भोजन कराया वैसे मिष्ठान्न एवं व्यञ्जन मैंने कभी नहीं खाये हैं।' प्रभु की यह बात सुनकर सब भक्तों को आश्चर्य हुआ कि प्रभु गतवर्ष तो नीलाचल से बाहर कहीं गये ही नहीं, ये क्या कह रहे हैं - किन्तु श्रीशिवानन्द जी के मन में जो संदेह था, वह नष्ट हो गया।

श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी

'शुक्लाम्बरो ब्रह्मचारी पुरासीद्यज्ञपत्निका।
प्रार्थयित्वा यदन्नं श्रीगौरांगो भुक्तवान् प्रभुः।
केचिदाहुर्ब्रह्मचारी याज्ञिकब्राह्मणः पुरा।।'
– गौ ग. 191

पहले जो यज्ञपत्नी थीं, वही अब श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी हैं। श्रीगौरांग महाप्रभु जी ने इनसे अन्न मांगकर भोजन किया था। कोई-कोई कहते हैं कि यह पहले याज्ञिक ब्राह्मण थे।

इनका नाम भी श्रीचैतन्यशाखा में है। यह नवद्वीप के रहने वाले थे। भले ही ये गरीब भिक्षुक ब्राह्मण की लीला कर रहे थे, परन्तु श्रीमन्महाप्रभु जी में इनकी गाढ़ प्रीति थी। सांसारिक व्यक्तियों को एक दरिद्र भिक्षुक के रूप से दिखने पर भी यह भगवद्प्रेमिक भक्त होने के कारण तात्त्विक विचार से धनी थे।

'प्रेमधन बिना व्यर्थ दरिद्र जीवन। दास करि वेतन मोरे देह प्रेमधन।।' चै.च.अ. 20/37

अर्थात प्रेमधन के बिना ये दरिद्र जीवन व्यर्थ है, मुझे अपना दास बनाकर वेतन के रूप में अपना प्रेमधन दे दीजिये।

श्रीवृन्दावन दास ठाकुर जी द्वारा रचित 'श्रीचैतन्यभागवत'

ग्रन्थ में श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के सम्बन्ध में श्रीमन्महाप्रभु की उक्ति है –

'तुमि जन्मे जन्मे आमार दरिद्र भक्त'

अर्थात तुम तो जन्म-जन्म से मेरे दरिद्र भक्त हो। संसार में प्रवेश कर तुम्हारी गृहस्थी होने की वासना नहीं है। तुम तो ब्रह्मचारी रूप से द्वार-द्वार में भिक्षा करके मुझको अपनी भिक्षा के सब द्रव्य अर्पण करते हो। तुम नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो। गृहस्थ और वानप्रस्थ का जो प्राकृत शाब्दिक अहंकार है, उससे भी तुम निर्मुक्त हो। तुमने तो पारमहंस्यधर्म में अवस्थित होकर अकिंचन तूर्याश्रम वर्ण को ग्रहण किया है। इसलिये तुम पूर्ण शरणागत त्रिदण्डि भिक्षु हो। तुम कायमनोवाक्य द्वारा अपनी सम्पूर्ण चेष्टाओं को सम्पूर्ण भाव से मुझे अर्पण करने में समर्थ हुये हो। मैं तो सब समय तुम्हारे द्वारा अर्पित द्रव्यों की माग करता हूं। मुझे समर्पण करने के इलावा तुम्हारी दूसरी किसी भी वस्तु में भोग बुद्धि नहीं है। इसलिये मैंने अपनी ताकत को प्रदर्शित करके तुम्हारे सर्वस्व को छीन लिया है, जिस कारण तुम गरीब हो।' श्रीगौड़ीयभाष्य, चै.भा.म. 16/122-23

"शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी बड़ भागयवान्।
याँर अन्न मागि' काड़ि' खाइला भगवान्।।"
चै.च.आ. 10/38

जब श्रीमन्महाप्रभु जी गया से नवद्वीपधाम में लौटकर आये तब श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के घर में ही भक्तों के साथ आकर मिले थे।

"श्रीमान पण्डित चलिलेन गंगातीरे।

शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी ताहान मन्दिरे।।

शुनिया ए सब कथा प्रभु गदाधर। शुक्लाम्बर - गृह - प्रति चलिला सत्वर।। कि आख्यान कृष्णेर कहेन शुनि गिया। थाकिलेन शुक्लाम्बर - गृहे लुकाइया।। सदाशिव, मुरारि, श्रीमान्, शुक्लाम्बर। मिलिला सकल यत प्रेम - अनुचर।। हेनइ समये विश्वम्भर द्विजराज। आसिया मिलिला हेथा वैष्णव समाज।।" चै.भा.म. 1/78 - 82

अर्थात श्रीमान पण्डित, गंगा तट पर, जहां श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी की कुटिया थी, वहां पहुंचे। यह सुनकर गदाधर प्रभु भी शीघ्रता से श्रीशुक्लाम्बर के घर की ओर चल पड़े। 'श्रीकृष्ण का क्या चरित कहते हैं, जाकर सुनूं तो' - ऐसा विचार करके वे श्रीशुक्लाम्बर के घर में जाकर छिपकर बैठ गये। फिर श्रीसदाशिव, श्रीमुरारिगुप्त, श्रीमान आदि प्रेमी भक्तजन शुक्लाम्बर जी सें मिले। इसी समय द्विजराज विश्वम्भर भी वैष्णव समाज से आ मिले।

श्रीगदाधर पण्डित, श्रीसदाशिव, श्रीमुरारि, श्रीवास पण्डित, श्रीमान् पण्डित - भक्तगण शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के घर महाप्रभु

जी के अद्‌भुत प्रेम विकार को देखकर विस्मित हुये थे।

श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी प्रतिदिन भिक्षा से जो भी द्रव्य प्राप्त करते, वह श्रीकृष्ण को अर्पण करके उनके अवशेष को ग्रहण करते तथा उसके द्वारा अपने जीवन का निर्वाह करते थे। सब समय श्रीकृष्ण के नाम गुणकीर्तन में मस्त रहने के कारण उनको अपनी दरिद्रता का जरा सा भी दुःख न होता था। बर्हिमुख व्यक्ति उनको एक साधारण भिक्षुक ही समझते थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की कृपा के बिना उनके सेवकों को भी कोई नहीं पहचान सकता। एक दिन क्या हुआ कि महाप्रभु जी प्रेमावेश में बैठे हुये थे और उसी समय श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी भिक्षा का झोला कन्धे पर लिये महाप्रभु जी के सामने आकर कृष्णप्रेम में नाचने लगे। श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी का भाव देखकर महाप्रभु जी प्रसन्न हो उठे। वे श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के गुणों का बखान करते - करते उनकी झोली से मुट्ठी भर - भर के चावल लेकर चबाने लगे। यह देखकर कि महाप्रभु जी ये छोटे - 2 कण मिले हुए चावल खा रहे हैं श्रीशुक्लाम्बर अपराध के डर से व्याकुल से हो उठे, परन्तु महाप्रभु जी ने उनको आश्वस्त करके समझाया कि वे तो रोज ही भक्तों के द्रव्यों को परम आग्रह के साथ ग्रहण करते हैं जबकि वे अभक्त के द्रव्यों पर तो निगाह ही नहीं देते। श्रीशुक्लाम्बर के प्रति महाप्रभु जी की कृपा देखकर भक्तगण प्रसन्न हो उठे। महाप्रभु जी ने श्रीशुक्लाम्बर को प्रेमभक्ति का वर प्रदान किया।

"प्रभु बले – 'शुन शुक्लाम्बर-ब्रह्मचारी। तोमार हृदये आमि सर्वदा विहरि तोमार भोजने हय आमार भोजन। तुमि भिक्षाय चलिले, आमार पर्यटन।। प्रेमभक्ति विलाइते मोर अवतार। जन्म-जन्म तुमि प्रेमसेवक आमार।। तोमारे दिलाम आमि प्रेम भक्ति-दान। निश्चय जानिह 'प्रेम-भक्ति' मोर-प्राण।। शुक्लाम्बर वर शुनि' वैष्णव मण्डल। जय जय हरि ध्वनि करिल सकल।।" चै.भा.म. 16/134-38

अर्थात प्रभु बोले – 'शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी! सुनो, तुम्हारे हृदय में मैं सदा विहार करता हूं। तुम्हारे भोजन करने में मेरा भोजन होता है और तुम्हारे भिक्षा के लिए भ्रमण में मेरा भ्रमण होता है। प्रेम-भक्ति वितरण करने के लिए मेरा अवतार है। तुम मेरे जन्म-जन्म के प्रेमी सेवक हो। तुमको मैंने प्रेम-भक्ति दी। यह निश्चय जानो कि प्रेम-भक्ति मेरा प्राण है' शुक्लाम्बर के लिए वरदान को सुनकर सब वैष्णव-मण्डल 'जय-जय' 'हरि बोल' 'हरि बोल' की ध्वनि करने लगा।

'संकीर्तनावेशे प्रभु वैसे ए खट्टाय। भिक्षा करि शुक्लाम्बर आइला एथाय।। महाप्रीते प्रभु से झुलिते हात दिया। खायेन तण्डुल ता'रे 'सुदामा' वलिया।। कत दैन्य करि' ब्रह्मचारी शुक्लाम्बर। झुलि कांधे कीर्तने नाचये मनोहर।। श्रीशुक्लाम्बर प्रेम चेष्टानिरखिते। गण सह प्रभुर आनन्द वादे चिते।। श्रीवास आलये प्रभु एछे विलसिया। नगर-भ्रमणे चले

निजगृहे गिया।" - भक्तिरत्नाकर 12/2754-58

श्रीचैतन्यभागवत ग्रन्थ में (मध्यखण्ड 16वां अध्याय) भी श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के प्रेम से आकृष्ट होकर उनके पकाये हुये अन्न को ग्रहण करने की श्रीमन्महाप्रभु जी की लीला-कथा वर्णित हुई है। श्रीमन्महाप्रभु जी ने जब श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी से अन्न ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की तो श्रीशुक्लाम्बर डरे और संकुचित हो उठे। कारण, उनको चिन्ता हो गई कि भिक्षा से प्राप्त चावल तो अपवित्र हैं जोकि महाप्रभु जी के भोग में निवेदित होने के योग्य नहीं हैं। किन्तु श्रीमन्महाप्रभु जी के बार-बार मांगते रहने से वे मजबूर हो गये और भक्तों से इसका विधान पूछने लगे। भक्तों ने श्रीशुक्लाम्बर के भाग्य की प्रशंसा की और बड़ी शुद्धता के साथ रसोई बनाकर देने के लिए कहा। श्रीशुक्लाम्बर ने स्नानादि का काम पूरा किया और चूल्हे पर पात्र में जल को खूब गर्म करके उसमें बड़ी शुद्धता के साथ चावल और थोड़ (केले के बीच का डंडा, जिसकी सब्जी बनायी जाती है) डालकर बड़े भाव के साथ हरिनाम करने लगे। भक्त के अन्न पर लक्ष्मी देवी की कृपादृष्टि पड़ी। श्रीमन्महाप्रभु जी ने भक्तों के साथ श्रीशुक्लाम्बर के घर आकर अपने हाथों से उसी अन्न को विष्णु जी को निवेदन किया और भोजन के समय उस अन्न का अपूर्व आस्वादन करने लगे। श्रीशुक्लाम्बर के प्रति महाप्रभु जी के इस स्नेह को देखकर भक्तों की आंखों में बरबस आँसू

भर आये।

"शुक्लाम्बर प्रति देखि' कृपार वैभव। कान्दिते लागिला अन्योऽन्ये भक्त सब।। एइमत प्रभु पुनः पुनः आस्वादिया। करिलेन भोजन आनन्दयुक्त हैया।। ये प्रसाद पायेन भिक्षुक शुक्लाम्बर। देखुक अभक्त यत पापी कोटीश्वर।। धने जने पाण्डित्ये चैतन्य नाहि पाइ। 'भक्तिरसे वश प्रभु' सर्वशास्त्रे गाइ।।" चै.भा.म. 26/28-31

अर्थात श्रीशुक्लाम्बर के प्रति प्रभु की ऐसी विशेष कृपा को देखकर अन्य सब भक्त आनन्द के आँसू बहाने लगे। इस प्रकार प्रभु ने पुनः पुनः आस्वादन करते हुए बड़े आनन्दित होकर भोजन किया। जो प्रसाद (कृपा) एक भिक्षुक शुक्लाम्बर को प्राप्त हुआ, उसे पापी-अभक्त करोड़पति होने पर भी प्राप्त नहीं कर सकते। जरा लोग देख तो लें कि धन, जन, पाण्डित्य से श्रीचैतन्यदेव प्राप्त नहीं होते। भक्तिरस के ही वशीभूत हैं प्रभु - यही चारों वेद गाते हैं।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने इस विषय को अपने गौड़ीय भाष्य में इस प्रकार लिखा है - 'यज्ञेश्वर विष्णु जी ब्रह्मा जी के पवित्र यज्ञ में भोजन करते हैं। श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी विभिन्न स्थानों से भिक्षा इकट्ठी करते थे। बाहर में देखने से वह चावल स्पर्शदोषादि से युक्त थे। भिक्षा से अनेक बार ऐसा होता है कि साबुत चावल इकट्ठे नहीं होते, जिस कारण गृहस्थी लोग भिक्षुक के छुये हुये द्रव्यों

को ग्रहण नहीं करते हैं। यह सच है कि साबुत चावल स्पर्शदोष से युक्त चावलों की अपेक्षा पवित्र हैं, किन्तु भिक्षा में मिले चावल तो उससे भी ज्यादा पवित्र हैं, क्योंकि वह तो भगवत्कृपा से मिला हुआ दान है। बाहरी दृष्टि से उसमें स्पर्शदोषादि या मर्यादा-पथ का उल्लंघन नहीं दिखता, किन्तु श्रीगौरसुन्दर के प्रवर्त्तित विचार के अनुसार महाप्रसाद में हृदय की पवित्रता ही प्रधान प्रयोजनीय विषय है।

एक करोड़ मुद्राओं का मालिक होने पर ही भगवान को भोजन कराया जा सकता है, ऐसी बात नहीं है। निर्धन शुक्लाम्बर ने भिक्षा वृत्ति से इकट्ठे किये हुये चावलों के द्वारा श्रीगौरसुन्दर को तृप्त किया था। भक्तिहीन पापी सम्प्रदाय के लोग ये सब बातें नहीं समझ सकते हैं।

"हरिषे चलिला शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी याँर अन्न मागि खाइलेन गौरहरि।।" चै.भा.अ. 8/23

"एक दिन प्रभु अन्न मागि शुक्लाम्बरे। एइ पथे गणसह गेला तार घरे।। कि बलिब - एथा महा-कौतुक बाड़िल। भुजिलेन प्रभु, शुक्लाम्बर पाक कैल।।"

भक्तिरत्नाकर 12/3467-68

श्रीगोपीनाथ पट्टनायक

गोपीनाथ पट्टनायक जी भवानन्द राय जी के दूसरे पुत्र थे। श्रीगौरलीला में जो राय भवानन्द जी हैं, वे कृष्णलीला में पाण्डु तथा उनके पांच-पुत्र पांच पाण्डव थे। श्रीचैतन्यचरितामृत की आदिलीला का जो 10वां परिच्छेद है, उसमें राय भवानन्द जी के सम्बन्ध में श्रीमन्महाप्रभु जी ने कहा है 'तुम पाण्डु हो और पांच पाण्डव तुम्हारे ही पुत्र हैं।' राय भवानन्द जी के पांचों पुत्र महाप्रभु जी के प्रिय पात्र थे।

"रामानन्द राय, पट्टनायक गोपीनाथ। कलानिधि, सुधानिधि नायक वाणीनाथ। एइ पंचपुत्र तोमार-मोर प्रिय पात्र। रामानन्दसह मोर देह-भेदमात्र ।।" चै. च. आ. 10/133-35

अर्थात् श्रीरामानन्दराय, श्रीगोपीनाथ पट्टनायक, श्रीकलानिधि, श्रीसुधानिधि तथा श्रीवाणीनाथ नायक - ये जो तुम्हारे पांचों पुत्र हैं - ये सब मेरे प्रिय भक्त हैं। इनमें राय रामानन्द तो मेरा ही स्वरूप हैं, केवल देहमात्र का ही भेद है।

उड़ीसा के पुरी शहर के पश्चिम में 6 कोस की दूरी पर पुरी ज़िला में ही ब्रह्मगिरि-अलालनाथ है। ब्रह्मगिरि अलालनाथ से थोड़ी सी दूरी पर ही वेन्टपुर ग्राम है। इस ग्राम में राय भवानन्द जी ज़िमींदार के रूप में रहते थे। अभी तक भवानन्द

राय जी के वंशधर पट्टनायक पदवी पर विख्यात होकर वेन्टपुर ग्राम में रह रहे हैं।

गोपीनाथ पट्टनायक महाराज प्रतापरुद्र के अधीन मालजाठ्या दण्डपाट नामक (वर्तमान मेदिनीपुर) राज्यखण्ड के तहसीलदार थे। वह राजा को 2 लाख काहण कर आदि वसूल कर के देते थे। उस पर राजा को दो लाख काहण देना बाकी बचता था। उड़िया भाषा में महाराज के ज्येष्ठ पुत्र अर्थात युवराज को 'बड़-जाना' कहते हैं। उस समय यदि कोई बहुत बड़े दण्ड का भागी होता तो उस व्यक्ति को मंच पर चढ़ा दिया जाता था और उस मंच के निचले भाग में लगे एक बहुत बड़े खड्ग के ऊपर गिराकर उसके प्राणों का अन्त कर दिया जाता था। कर से प्राप्त धन न देने के कारण 'बड़-जाना' ने महाराज प्रतापरुद्र को गोपीनाथ पट्टनायक को चाग पर उठाकर नीचे खड़ग के ऊपर फेंककर उसकी हत्या करने का परार्मश दिया था। गोपीनाथ पट्टनायक के प्राणों को ऐसे संकट में देखकर राय भवानन्द जी के सम्बन्ध से जो उनके प्रति सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति थे, उन्होंने उसके प्राणों की रक्षा के लिये महाप्रभु जी से निवेदन किया। महाप्रभु जी ने जब दण्ड के आदेश का कारण जानना चाहा तो महाप्रभु जी के पास आये व्यक्तियों ने कहा - 'गोपीनाथ पट्टनायक का राजा के पास दो लाख काहण कर देना बाकी पड़ा है, वे कौड़ी नहीं दे पायेंगे, अपनी वस्तुओं को बेचकर

धीरे-धीरे ही उतार सकेंगे, इसलिए वे राजा के पास 10-12 घोड़े लेकर आये थे। महाराज ने अपने योग्य राजपुत्र को घोड़ों की कीमत तय करने के लिए भेजा था। राजपुत्र ने घोड़ों की कीमत बहुत कम बतायी, जिससे गोपीनाथ पट्टनायक को गुस्सा आ गया। जो राजपुत्र घोड़ों की कीमत निश्चित करने के लिए आया था उसकी एक बुरी आदत थी कि वह गर्दन उठाकर बार-बार ऊपर की ओर देखता था। इसलिए गोपीनाथ पट्टनायक ने क्रोध से राजपुत्र के प्रति कटाक्ष करके कहा कि यह बात ठीक है कि उसका घोड़ा गर्दन ऊपर की ओर उठाता है परन्तु ऊपर की ओर ताकता नहीं रहता, (अर्थात जैसे तुम्हें ऊपर ताकते रहने की आदत है वैसे मेरे घोड़ों को नहीं है)। इसलिए उसकी कीमत कम नहीं हो सकती, अर्थात राजपुत्र की तुलना में गोपीनाथ पट्टनायक के घोड़ों की कीमत ज्यादा है। इस व्यंग्य से राजपुत्र को गुस्सा आ गया। उसने जाकर राजधन लेने के लिए महाराज को ऐसा समझाया कि गोपीनाथ को चांग पर चढ़ाने की अनुमति ले ली। वे अब गोपीनाथ को चांग पर उठाकर नीचे खड्ग पर फेंककर उसके प्राणों का अन्त कर देंगे। इस बात का हल्ला चारों ओर फैल गया है। श्रीमन्महाप्रभु जी ने यह सारा वृतान्त सुनकर निरपेक्षता से प्रणयरोष से कहा कि राजधन नहीं दे सकता है तो इसमें राजा का क्या दोष है, दोषी व्यक्ति को तो दण्ड होगा ही, इसमें वे क्या कर सकते हैं? किन्तु भवानन्द राय की सारी

गोष्ठी को बांधकर ले गये हैं इत्यादि बातों के द्वारा बार-बार आवेदन आते रहने से तथा स्वरूप दामोदर आदि भक्तों के भी प्रार्थना करने पर महाप्रभु जी ने जो कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा करने में समर्थ हैं उन श्रीजगन्नाथदेव के श्रीपादपद्मों में शरण लेने का उपदेश दिया। श्रीमन्महाप्रभु जी की अन्तर्यामी रूप से प्रेरणा द्वारा प्रतापरुद्र के सेवक श्रीहरिचन्दन पात्र ने महाराज को शुरु से अन्त तक सारी घटना जैसे की तैसे कह सुनायी तथा गोपीनाथ पट्टनायक की मौत की सजा को माफ करवाने के लिये निवेदन किया। वास्तविक घटना से अवगत होने के कारण राजा ने मृत्युदण्ड माफ करने का आदेश दे दिया। 'गोपीनाथ पट्टनायक रामानन्द भ्राता। राजा मारितेछिल प्रभु हैल त्राता - चै०च०म 1/265। ये प्रसंग श्री चैतन्यचरितामृत अन्त्यलीला के 9वें परिच्छेद में वर्णित हुआ है।

वाणीनाथ पट्टनायकादि सब को जब बांध कर लाया गया तब वाणीनाथ ने क्या किया था-जब महाप्रभु जी ने यह जानना चाहा तो संवाददाता ने कहा-

"से कहे, वाणीनाथ निर्भये लय कृष्णनाम। 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' कहे अविश्राम।। संख्या लागि दुइ हाते अंगुलिते लेखा। सहस्रादि पूर्ण हैले अंगे काटे रेखा।। शुनि महाप्रभु हैल परम आनन्द। के बुझिते पारे गौरेर कृपा छन्दबंध।।"

- चै. च. अ. 9/56/58

वाणीनाथ तो निर्भय होकर श्रीकृष्ण नाम का उच्चारण कर रहा था। "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।" - वह इस महामन्त्र का निरन्तर जप करता हुआ जा रहा था। संख्या के लिये वह अपनी अंगुलियों पर गिनता जाता था। सहस्रादि पूर्ण होने पर वह अपने शरीर पर रेखा खींच देता था" यह बात सुनकर श्री महाप्रभु जी को परम आनन्द हुआ। भला, उनकी कृपा की भंगियों को कौन जान सकता है?

भवानन्द राय के वंशधारियों द्वारा राज-धन का बेइन्साफी से खर्च एवं उसके कारण राजदण्ड से छुटकारा पाने के लिये बार-2 आने की बात राजपुरोहित काशी मिश्र को बताते हुये महाप्रभु जी ने अलालनाथ जाने की इच्छा व्यक्त की। श्रीकाशी मिश्र ने बहुत समझा कर महाप्रभु जी को ऐसा न करने के लिये मना लिया। काशी मिश्र से उपरोक्त वृतान्त जानकर श्रीमहाप्रभु जी के संतोष के लिए महाराज प्रतापरुद्र ने गोपीनाथ को न केवल राजदण्ड से मुक्त कर दिया अपितु उसे सारे ऋण से भी मुक्त कर दिया और उसका वेतन भी दुगुना कर दिया। श्रीगोपीनाथ पट्टनायक ने श्रीमन्महाप्रभु की कृपा से मुक्त होकर राजसम्मानोचित राज-पगड़ी को धारण किये हुये महाप्रभु जी के चरणों में इस प्रकार निवेदन किया।

"बाकी कौड़ि बाद आर द्विगुण वर्त्तन कैला। पुनः 'विषय' दिया 'नेतधटी' पराइला। काहाँ चांगेर उपर सेइ मरण-प्रमाद।

कहां 'नेतधटी', पुनः, ए सब प्रसाद।। चांगेर उपरे तोमार चरण' ध्यान कैलुं। चरण-स्मरण-प्रभावे एइ फल पाइलुं। लोके चमत्कार मोर ए सब देखिया। प्रशंसे तोमार कृपा-महिमा गाइया।। किन्तु तोमार स्मरणेर नहे एइ 'मुख्य फल'। फलाभास एइ-याते विषय चञ्चल।। रामराये वाणीनाथे कैला 'निर्विषय'। सेइ कृपा आमाते नाहि याते ऐछे हय।। शुद्ध कृपा कर, गोसाञि, घुचाह विषय निर्विण्ण हइनु, मोते 'विषय' न हय।।"

अर्थात पिछला सब धन राजा ने माफ कर दिया है। मेरा वेतन दुगुना कर दिया है एवं पुनः राजाधिकार देकर मुझे अपने हाथों से यह राज पगड़ी पहनाई है। प्रभु! कहां तो राजा मुझे प्राण दण्ड देने के प्रमाद में था, कहां अब यह राज पगड़ी मुझे देकर इतनी मुझ पर कृपा कर दी है। प्रभो! सूली पर मैंने आपके चरणों का ध्यान किया था, उस आपके चरण स्मरण का यह सब फल मुझे प्राप्त हुआ है। मेरी इस घटना को देखकर सब लोक चमत्कृत हो उठे हैं और प्रभो! आपकी कृपा के गुण गान कर रहे हैं।

श्रीगोपीनाथ जी ने आगे कहा - "प्रभु! किन्तु आपकी कृपा का यह मुख्य फल नहीं है। ये विषय सुख चञ्चलता विधान करने वाला है और आपकी कृपा के फल का आभास मात्र है। आपने जैसी कृपा राय रामानन्द पर की है, वाणीनाथ पर की है जिससे वे विषयों से परे हो गये हैं,

वैसी कृपा आपने मुझ पर नहीं की है, तभी तो मुझे यह विषय प्राप्त हुए हैं। हे गोस्वामी ! आप मुझ पर अपनी शुद्ध कृपा कीजिये जिससे आप के चरणों की प्रीति प्राप्त हुआ करती है और मेरे इन विषयों को छुड़ाइये।

गोपीनाथ पट्टनायक जी के हृदय का दुःख सुनकर श्रीमन्महाप्रभु जी ने इस प्रकार कृपा उपदेश किया :-

"महाविषय कर, कि वा विरक्त उदास। जन्मे जन्मे तुमि पञ्च मोर निज दास।। किन्तु मोर करिह एक आज्ञा पालन। व्यय न करिह किछु राजार मूलधन।। राजार मूलधन दिया ये किछु लभ्य हय। सेई धन करिह नाना धर्मे -कर्मेव्यय।। असद्व्यय ना करिह, याते दुइ लोक याय।।"

तुम लोग चाहे महासुख सम्पत्ति का भोग करो, चाहे विरक्त उदासीन होकर रहो, तुम पाचों जन्म-2 के मेरे दास हो। श्रीमहाप्रभु जी ने कहा - 'गोपीनाथ! किन्तु एक मेरी आज्ञा का सदा पालन करना। वह यह है कि राजा के मूल-धन को कभी खर्च नहीं करना। राजा का मूलधन चुका कर, जो धन बाकी बचे उस धन को अनेक धर्म-कर्म में ही लगाना। ऐसे असद्कर्म नहीं करने चाहिएं कि जिन से इह लोक और परलोक दोनों बिगड़ते हैं।

श्रीसदाशिव पण्डित

इनका नाम भी श्रीचैतन्य शाखा में है। यह श्रीधाम नवद्वीप के वासी हैं। महाप्रभुजी ने जो संकीर्तनलीला की थी, यह उस संकीर्तनलीला के पार्षदों में से एक हैं। श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुजी जब नवद्वीप आये थे तो पहले इनके ही घर में रहे थे।

सदाशिव पण्डित यांर प्रभुपदे आश।

प्रथमे नित्यानन्देर यॉर घरे वास ।। - चै.च.आ. 10/34

एक सदाशिव पण्डित थे, जो सदा श्रीमहाप्रभु के चरणों का चिन्तन करते थे। नवद्वीप में आकर श्री नित्यानन्द सबसे पहले इनके घर में रहे थे।

सदाशिव पण्डित चलिल शुद्धमति।

यॉर घरे पूर्वे नित्यानन्देर वसति ।।

श्रील वृन्दावनदास ठाकुरजी द्वारा रचित श्रीचैतन्यभागवत-ग्रन्थ के मध्यखण्ड के 8वें अध्याय में आया है कि नवद्वीप में जो श्रीमन् महाप्रभु जी का कीर्तनविलास हुआ था, उस कीर्तनविलास के समय जो पार्षद रूप से महाप्रभुजी के साथ थे, उनमें सदाशिव पण्डित का नाम भी आया है।

"गोपीनाथ, जगदीश श्रीमान, श्रीधर ।

सदाशिव, वक्रेश्वर, श्रीगर्न, शुक्लाम्बर ।।"

– चै. भा. म. 8/115

अर्थात : गोपीनाथ, जगदीश, श्रीमान, श्रीधर, सदाशिव, वक्रेश्वर, श्रीगर्भ, शुक्लाम्बर आदि सब वहां कीर्तनमें सम्मिलित होते । जिस समय श्रीमन्महाप्रभु जी ने गंगा में अपने निज पार्षद भक्तों के साथ जलकेलि की, उस समय भी श्रीसदाशिव पण्डित उन साथियों में से एक थे । जब श्रीमन्महाप्रभुजी गया से नवद्वीप लौटे, तब महाप्रभुजी ने कृष्ण विरह में जो अलौकिक प्रेमविकार प्रकट किया उसको देखकर सदाशिव पण्डितादि तो आश्चर्यचकित हो उठे । श्रीहरि केवलमात्र भक्ति से ही वशीभूत होते हैं, किसी प्रकार के जागतिक गुणों के द्वारा नहीं । इसकी शिक्षा देने के लिये श्रीमन् महाप्रभुजी ने गरीब भिक्षुक की लीला का अभिनय करने वाले शुक्लाबर ब्रह्मचारी के भिक्षा के झोले से जोरपूर्वक तण्डुल (चावल) छीन लिये थे । श्रीचैतन्यभागवत - ग्रन्थ में जो वर्णन है उससे पता चलता है कि श्रीमन्महाप्रभुजी ने सदाशिव पण्डित आदि भक्तों को अपने प्रिय श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के घर में इकठ्ठे होने का आदेश किया था ।

कालि सबे शुक्लाम्बर - ब्रह्मचारी - घरे ।

तुमि आर सदाशिव आसिह सत्वरे ।।"

– चै. भा. म. 1/40

अर्थात : कल सब शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के घर सदाशिव के साथ शीघ्र ही आईये । ['तुमि' श्रीमान पण्डित]

"सदाशिव, मुरारि, श्रीमान्, शुक्लाम्बर ।

मिलिला सकल जत प्रेम अनुचर ।।"

– चै. भा. मा. 1/81

अर्थात : सदाशिव, मुरारि गुप्त, श्रीमान् आदि प्रेमी भक्तजन शुक्लाम्बर जी से मिले ।

श्रीसदाशिव पण्डित श्रीमन्महाप्रभुजी के कितने प्रिय थे, वह श्रीमन्महाप्रभुजी द्वारा कहे वचनों से पता चलता है । श्रीमन्महाप्रभुजी ने सदाशिव पण्डित के पास अपने हृदय का दुःख बताकर सुख प्राप्त किया था ।

"तुमि आर सदाशिव पण्डित मुरारि ।

तोमा सबा स्थाने दुःख करिब गोहारि ।।"

अर्थात : सदाशिव पण्डित तुम और मुरारि गुप्त आकर मिलना, तुम सबको मैं अपना दुःख सुनाऊँगा ।

श्रीनवद्वीप में श्रीचन्द्रशेखर आचार्य के घर श्रीमन्महाप्रभुजी ने व्रजलीला का अभिनय किया था। जब श्रीमन्महाप्रभुजी ने अभिनय और नाचने की इच्छा प्रकट की तो कौन क्या-क्या वेश धारण करेगा, महाप्रभुजी ने वैसी ही वेशभूषा तैयार करने का निर्देश दिया था श्रीसदाशिव पण्डित और बुद्धिमन्त खान को। महाप्रभुजी का ऐसा आदेश पाकर श्रीसदाशिव पण्डित प्रेमानन्द से विह्वल हो उठे।

"सदाशिव बुद्धिमन्त खानेरे डाकिया।
बलिलेन प्रभु काच सज्ज कर गिया।।"

- चै. भा. म. 18/7

'आज्ञा शिरे करि' सदाशिव बुद्धिमन्त।
गृहे चलिलेन आनन्देर नाहि अन्त।।'

- चै: भा: 18/14

'सदाशिव बुद्धिमन्त खान दुईजने। नानावेश द्रव्य सज्ज कैल एइखाने।। लक्ष्मी आदि काचे नाचिवेन गौरराय। हइवे कीर्तन याते जगत माताय।।'' - भक्ति रत्नाकार 12/2903, 4

[एइ खाने अर्थात : चन्द्रशेखर आचार्य-भवन में।]

श्रीगोपालगुरु गोस्वामी

श्रीगोपालगुरु गोस्वामीजी उड़ीसा के एक ब्राह्मणकुल में आविर्भूत हुये थे। श्रीमुरारि पण्डित इनके पिता थे। माता जी का परिचय अज्ञात है। गोपालगुरु गोस्वामी जी के पिता जी ने जो पहले नाम दिया था - वह था श्रीमकरध्वज पण्डित। श्रीमकरध्वज पण्डित ने श्रीगौरांग महाप्रभु जी के सेवक श्रीगोविन्द जी के साथ रहकर बचपन से ही श्रीमन्महाप्रभु जी की सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया था। श्रीमन्महाप्रभु जी स्नेहवशतः उसको 'गोपाल' कह कर बुलाते थे। श्रीचैतन्यचरितामृत और श्रीचैतन्यभागवत में गोपालगुरु के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। श्रीमन्महाप्रभु जी के पार्षद श्रीक्षेत्रवासी भक्तों में, जिन्होने श्रीमन्महाप्रभु जी की अन्तरंग सेवा की थी, उनमें से एक हैं - श्रीवक्रेश्वर पण्डित। श्रीमकरध्वज पण्डित के दीक्षागुरु श्रील वक्रेश्वर पण्डित गोस्वामी जी हैं। श्रील मकरध्वज पण्डित को श्रीमन्महाप्रभु जी ने जो नाम दिया, वह 'गोपाल' है, फिर उसके साथ 'गुरु' नाम कैसे जुड़ा? उसकी एक बात लोगों में सुनी जाती है। घटना कुछ इस प्रकार की है कि एक नाम भजनकारी सज्जन ने इस प्रकार से भजन का अभ्यास किया था कि उसकी जिह्वा से स्वतः ही निरन्तर हरिनाम स्फूर्त्त होता रहता था। पुरुषोत्तमधाम की बात है कि उसी

नामभजनकारी ने मलत्याग के समय अपनी जिह्वा को पकड़कर रखा था, जिससे अपवित्र काम के समय हरिनाम उच्चारित न हो । दैववश गोपाल उधर ही था । बालक गोपाल ने इस प्रकार से जिह्वा को पकड़कर रखने का कारण समझकर उस से कहा – 'अरे ! आप यह क्या कर रहे हैं ? हरिनाम करने में स्थान, काल, व्यवहारिक पवित्र – अपवित्र आदि का विचार नहीं है, सभी अवस्थाओं में ही हरिनाम किया जा सकता है । बाहर जाने के समय यदि आप हरिनाम बन्द रखें और अचानक उसी समय मृत्यु हो जाये, तब आपका कैसे मंगल होगा ? बालक गोपाल का सुसिद्धान्तपूर्ण वाक्य सुनकर महाप्रभुजी सन्तुष्ट हो गये तथा उन्होंने भक्तों के पास घोषणा की कि गोपाल ने गुरु का काम किया है । उस दिन से ही मकरध्वज पण्डित या श्रीगोपाल 'गोपाल गुरु' नाम से विख्यात हो गये । वास्तव में गोपाल गुरु आचरण द्वारा प्रचार करने के कारण आचार्य या गुरु पद पर अधिष्ठित हैं । सर्वत्र गोपालगुरु की ख्याति फैल जाने से एक बार अभिराम ठाकुर जी उसकी परीक्षा लेने के लिये परुषोत्तमधाम में आये थे । अभिराम ठाकुर जी की इस प्रकार महिमा थी कि यदि विष्णुशिला – असली शालग्राम या विष्णु जी की असली अर्च्चामूर्त्ति नहीं होगी तो उसको प्रणाम करने से वह साथ ही साथ विदीर्ण या चूर्ण हो जाती थी । शुद्ध वैष्णव को छोड़कर कोई भी उनका प्रणाम सहन नहीं कर

सकता था, उसी क्षण उसकी मृत्यु हो जाती थी । परन्तु जब यह सुना कि अभिराम ठाकुर गोपालगुरु की परीक्षा लेने आ रहे हैं, तब वैष्णवगण चिन्तित हो उठे । वैष्णवों की चिन्ता का कारण समझकर महाप्रभुजी ने गोपाल के मस्तक पर अपने पादपद्म अर्पण करके उसे पदाकृति तिलक कर दिया । गोपाल बहुत दुःखी चित्त से महाप्रभु जी की गोद में जा बैठा । जिससे अभिराम ठाकुर जी का प्रणाम गोपालगुरु का कुछ भी नुकसान न कर सका । तब से गोपालगुरु के अनुयायी श्रीहरिपदाकृति तिलक धारण करते हैं । गोपाल के सम्बन्ध में 'वक्रेश्वर चरित' ग्रन्थ में ऐसा वर्णित है –

'चन्द्रशेखर, शंकरारण्य आचार्य एइ दुइजन । गोविन्दानन्द, देवानन्द नाहिक कथन ।। गोपालगुरु गोस्वामीर गुणेर नाहि लेखा । वक्रेश्वर पण्डितेर एइ पंच शाखा ।'

महाराज प्रतापरूद्र जी के पिता श्रीपरुषोत्तमेदव कांची से अन्यान्य मूर्त्तियों के साथ श्रीराधाकान्त जी की मूर्त्ति भी लाये थे । श्रीजगन्नाथदेव के छत्रभोग मन्दिर के पश्चिम – उत्तर कोने में एक मन्दिर है, जिसमें पहले कभी श्रीराधाकान्त जी की मूर्त्ति अधिष्ठित थी । महाराज प्रतापरुद्र जी से उनके गुरुदेव श्रीकाशी मिश्र महोदय ने पूजा के लिये श्रीराधाकान्त विग्रह को माँग लिया था । श्रीकाशी मिश्र जी ने श्रीमन्महाप्रभु जी के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण किया था । चूंकि वे सन्तान हीन थे इसलिये

गया है । श्रीराधाकान्त मठ से प्रकाशित 'श्रीगुरु प्रणाली' ग्रन्थ में गोपालगुरु गोस्वामी प्रभु को 'श्रीमंजुमेधा' सखी के रूप से निर्देशित किया गया है । गोपालगुरु गोस्वामी जी के समय 1460 शकाब्द से 1470 शकाब्द तक श्रीराधाकान्त मन्दिर का फिर से संस्कार हुआ है ।

गोपालगुरु गोस्वामी जी के सम्बन्ध में कुछेक अलौकिक घटनाएं सुनी जाती हैं -

श्रीगोपालगुरु गोस्वामी जी ने बूढ़े होने पर अपने शिष्य श्रीध्यानचन्द्र गोस्वामी जी को श्रीराधाकान्त मन्दिर की सेवा समर्पित कर दी थी । समर्पण के बाद गोपालगुरु द्वारा अप्रकट-लीला करने से श्रीध्यानचन्द्र गोस्वामी जी विरह से व्याकुल हो गये । श्रीगोपालगुरु के श्रीअंगो का अन्तिम संस्कार करने के लिये उसे स्वर्गद्वार पर लाया गया । इधर क्या हुआ कि शासन विभाग के राजपुरुषों ने यह दोष प्रदर्शित कर दिया कि सरकार की अनुमति के बिना ही श्रीराधाकान्त मठ की गद्दी समर्पित हुई है जिस कारण राधाकान्त मठ को चारों ओर से घेर लिया गया । ध्यानचन्द्र गोस्वामी जी ने जब यह समाचार सुना तो वे रोते-रोते स्वर्गद्वार पर शमशान में श्रील गुरुदेव के पादपद्मों में आकर गिर पड़े । श्रील गोपालगुरु जी अपने प्रिय शिष्य की कातर प्रार्थना सुनकर शमशान

से ही उठकर संकीर्त्तन करते-करते वापस आ गये । राजपुरुष इस अलौकिक घटना की बात को पहले ही जान गये और गोपालगुरु गोस्वामी जी के आने से पहले ही श्रीराधाकान्त का मन्दिर खोलकर वहां से भाग गये । श्रीगोपालगुरु गोस्वामी जी ने ध्यानचन्द्र गोस्वामी जी को गद्दी पर सुदृढ़ रूप से प्रतिष्ठित किया और पुनः कार्त्तिकी नवमी तिथि में तिरोधान लीला की ।

श्रीगोपालगुरु गोस्वामी जी के तिरोधान के अगले साल रथ यात्रा के बाद जब ब्रजवासी वैष्णवगण पुरी से ब्रज में लौट आये तो वे वंशीवट के पास पाकुड़वृक्ष के नीचे गोपालगुरु गोस्वामी जी को भजन करते देखकर विस्मित हो उठे । उन्होंने पुरी में ध्यानचन्द्र गोस्वामी जी को यह संवाद सुनाया । ध्यानचन्द्र गोस्वामी जी यह समाचार सुनते ही तेज़ी से वृन्दावन पहुँचे और श्रीगुरुपादपद्म में निपतित हुये । श्रील गुरुदेव को रोते-रोते प्रार्थना करने पर भी गोपालगुरु ने पुरी में वापस जाने के लिये अपनी अनिच्छा प्रकाश की । उन्होंने कहा तुम्हारा यदि मेरे लिये इतना ही विरह होता है, तब नीम लकड़ी से मेरी मूर्त्ति बनाओ और उसे गर्भ मन्दिर के सामने रखकर उसकी पूजा करो ।' तब से श्रीगोपालगुरु गोस्वामी जी की श्रीमूर्त्ति श्रीमन्दिर के सामने बरामदे में रखी हुई है । श्रीनीलाचल में श्रीनरोत्तम ठाकुर जी के साथ श्रीगोपालगुरु का साक्षात्कार हुआ था ऐसा भक्ति-रत्नाकर ग्रन्थ का पढ़ने से

जाना जाता है ।

'नरोत्तम गेला काशीमिश्रेर भवन। श्रीगोपालगुरु सह हइल मिलन ।। श्रीगोपालगुरु अति अधैर्य हियाय । नरोत्तमे कोले लइया कान्दे उभराय ।।' - भक्तिरत्नाकर 3/382,389

कार्त्तिकी शुक्ला नवमी तिथि में ही श्रीगोपालगुरु गोस्वामी की तिरोधान तिथि मनायी जाती है ।

श्रील गोपालगुरु गोस्वामी प्रभु जी का परिचय देने वाला भजन -

आरे मोर गोपालगुरु भकतिकल्पतरु,

मकरध्वज नाम याँहार ।

श्रीकृष्णचैतन्य याँके, 'गोपाल' बलिये डाके,

देखि' शिशु-चरित्र उदार ।।

गौरांगेर सेवारसे, सदाइ आनन्दे भासे,

गोरा बिनु नाहि जानें आन ।।

तिलेक ना देखि याँरे, धैरय धरिते नारे,

गोरा येन गोपालेर प्राण ।।

गोपाल-शिशुर प्रति, शिक्षा दिल एक रीति,

प्रभु प्रेमावेशे ढुलि' ढुलि' ।।

कहे सबे - 'आरे आरे, आजि हैते गोपालेरे

डाकिबा 'गोपाल-गुरु' बलि' ।।

गोपाले करुणा देखि', सबार सजल आँखि,

सुखेर समुद्र उछलिल ।

सबे कहे अनुपाम, 'श्रीगोपालगुरु' नाम,

प्रभु-दत्त जगते व्यापिल ।।

गोपालेर गुरुभक्ति, कहिते नाहिक शक्ति,

सदाइ प्रसन्न वक्रेश्वर ।

महामत्त निजगीते, नाहिक उपमा दिते,

सर्व-चित्ताकर्ष कलेवर ।।

देखिल सकल ठाँइ, एमन दयालु न इ,

केवा ना जगते यश घोषे ।।

सबे कैल प्रेमपात्र, हइल वंचित मात्र

नरहरि-निज-कर्मदोषे ।।

श्रीवासुदेव सार्वभौम

'भट्टाचार्यः सार्वभौमः पुरासीद्‌गीष्पतिर्दिवि।।'

– गौ.ग. 119

देवलोक में जो पहले वृहस्पति जी थे, वही इस समय गौरलीला में श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी के रूप में आये हैं।

श्रीचैतन्य चरितामृत की आदि लीला के दसवें परिच्छेद में श्रीलकृष्ण दास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीपरमानन्द पुरी, श्रीस्वरूप दामोदर इत्यादि श्रीगौरांग महाप्रभु जी के प्रधान पार्षदों का नाम उल्लेख करने के बाद जब नीलाचल में आये हुये गौड़देशवासी भक्तों के नामों का उल्लेख किया तो उस समय श्रीवासुदेव सार्वभौम को 'सार्वभौम भट्टाचार्य' लिखा है –

'बड़ शाखा एक, सार्वभौम भट्टाचार्य ।
ताँर भग्नी पति श्रीगोपीनाथ आचार्य।।'

– चा0च0आ0 10/130

इस पयार के अनुभाष्य में श्रीलभक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने लिखा है –

'इनका नाम श्रीवासुदेव था। ये वर्तमान नवद्वीप

या चाँपाहाटी से 2½ मील दूर विद्यानगर नामक मुहल्ले में रहने वाले महेश्वर विशारद के पुत्र थे। कहा गया है कि इन्होंने उस समय के मिथिला के विख्यात न्याय विद्यालय के प्रधान-अध्यापक एवं भारत के सर्वप्रधान न्यायशास्त्रवेत्ता पक्षधर मिश्र से सारे न्यायशास्त्र को कंठस्थ कर लिया था। यही नहीं, इन्होंने थोड़े ही दिनों में नवद्वीप में न्याय के विद्यालय की स्थापना करके वहां पढ़ाना शुरु कर दिया था। न्यायशास्त्र के इतिहास में ये एक क्रान्ति ले आये थे।

जो भी हो, सार्वभौम जी ने न्याय और वेदान्तशास्त्र में अगाध पाण्डित्य प्राप्त कर लिया था। गृहस्थ आश्रम में रहते हुये भी ये क्षेत्र सन्यास लेकर नीलाचल में वेदान्त पढ़ाते थे। महाप्रभु जी को शंकराचार्य भाष्य अनुमोदित वेदान्त सुना कर बाद में महाप्रभु जी द्वारा बताये जाने पर ये वेदान्त के वास्तविक अर्थ से अवगत हुये।

श्रीवासुदेव सार्वभौम राढ़ीय श्रेणी के उत्तम ब्राह्मण कुल में आये थे। श्री गौड़ीय वैष्णव अभिधान में इस प्रकार लिखा है कि श्रीसार्वभौम जी 14वीं शकाब्द के प्रथम भाग में आविर्भूत हुये थे। श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान को पढ़ने से ऐसा ज्ञात होता है कि मिथिला के पण्डित लोग अपने देश के गौरव को बनाये रखने के लिये न्यायशास्त्र के छात्रों को पढ़ाने के बावजूद भी उन्हें ग्रन्थलिपि नहीं देते थे। इसलिये उन दिनों बंगाल में न्याय का अध्ययन और अध्यापन बन्द था। किन्तु

अद्भुत शक्ति सम्पन्न श्रीवासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य जी ने न्याय के सारे ग्रन्थ को कण्ठस्थ कर लिया और अपने घर वापस आकर दुबारा उसी प्रकार के ग्रन्थ के रूप में पूरा का पूरा ग्रन्थ लिख डाला। किन्तु श्री दिनेश चन्द्र भट्टाचार्य जी का मत अलग है। उनके मत में श्रीवासुदेव सार्वभौम जी ने अपने पिता विशारद जी से ही न्यायशास्त्र पढ़ा था। वे इसके लिए मिथिला नहीं गये। श्रीवासुदेव सार्वभौम जी के अद्भुत पाण्डित्य की बात सुनकर उड़ीसा के महाराज प्रताप रुद्रदेव जी बड़े सम्मान के साथ उन्हें नवद्वीप से पुरी लाये थे और उन्होंने उन्हें अपनी सभा का सभापण्डित बनाया था।

अपनी योग्यता के बल पर अद्भुत पाण्डित्य प्राप्त करने के कारण गृहस्थ होते हुये भी ये मायावादी-सन्यासियों के गुरु थे। श्रीमन्महाप्रभु जी की मायावाद-उद्धारलीला की पुष्टि के लिये ही देवगुरु वृहस्पति जी श्रीवासुदेव सार्वभौम रूप से प्रकट हुए थे। इसलिये यदि सार्वभौम जी अद्वितीय पण्डित हैं तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? शुद्ध भक्ति सिद्धान्त के अन्तर्गत श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं सारे वैष्णवाचार्यों ने भगवान, भगवान का भजन करने वाले और भजन - तीनों का नित्यत्व स्वीकार किया है। जहां पर इन तीनों की नित्यता को स्वीकार नहीं किया गया है वहां पर भक्ति नित्य नहीं है। वह शुद्ध भक्ति-सिद्धान्त सम्मत नहीं हो सकती। शुद्धभक्ति सिद्धान्त में उपास्य भगवान के नित्यस्वरूप एवं उनके नाम,

रूप, गुण लीला का नित्यत्व भी स्वीकार हुआ है। मायावादी ज्ञानी-सम्प्रदाय के आचार्यों ने भगवान के नित्य चिन्मयस्वरूप एवं उनके नाम-रूप-गुण लीला आदि के नित्यत्व और चिन्मयता को स्वीकार नहीं किया है। वे इन सबको मायिक समझते हैं। 'माया' रूपी 'वाद' की अवतारणा करने के कारण उन्हें मायावादी कहा जाता है। वे इस प्रकार से कहते हैं कि निम्न स्तर के साधकों के हित के लिये ही ब्रह्म के रूप की कल्पना की गयी है। उनके विचार में निराकार, निर्विशेष, निःशक्तिक ब्रह्म ही चरम तत्व है। एक ब्रह्म को छोड़ और कुछ भी नहीं है एवं जीव ही ब्रह्म है। मायावादी लोगों का विचार है कि ब्रह्म में लीन होने की अवस्था को प्राप्त करने के लिये ही निम्नस्तर के व्यक्तियों को भक्ति का पथ स्वीकार करना पड़ता है। चरम अवस्था में भक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार के विचार पन्चम पुरुषार्थ-भगवत्प्रेम की प्राप्ति में बहुत बड़ी बाधा हैं। इसलिये श्रीमन्मध्वाचार्य, श्रीरामानुज आचार्य, श्रीविष्णुस्वामी व श्रीनिम्बार्काचार्य - चारों वैष्णव आचार्यों ने एवं अन्त में स्वयं भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने शंकराचार्य जी के विवर्तवाद विचार - मायावाद विचारों का खण्डन किया। श्रीकृष्ण द्वैपायन वेद्व्यास मुनि जी का शक्ति-परिणामवाद विचार, वैष्णवों एवं नित्य मंगल चाहने वालों के लिए ग्रहण करने योग्य है। महावदान्य श्रीचैतन्य महाप्रभु जी बिना ऊँच-नीच के भेदभाव के, सभी को उन्नत-उज्जवल रस-मधुर रस के अन्तर्गत कृष्ण सेवा प्रदान

करने के लिये ही धन्य कलियुग में अवतीर्ण हुये हैं जो कि किसी युग में भी दिया नहीं गया। श्रीमन्महाप्रभु जी ने उसी सर्वोत्तम प्रेम को बिना योग्यता-अयोग्यता देखे सब को दिया। भगवान की प्राप्ति की बाधास्वरूप तमाम सांसारिक वासनाओं का नाश कर प्रत्येक जीव के हृदय में भगवत् प्रेम की प्रतिष्ठा के लिए श्रीचैतन्य महाप्रभु जी इच्छा और शक्ति लेकर आविर्भूत हुये थे।

मायावाद विचार, भगवत् प्रेम प्राप्ति में बहुत बड़ी रुकावट है। महाप्रभु जी ने मायावादी श्रीवासुदेव सार्वभौम का भी उद्धार किया। किस प्रकार उद्धार किया, उसे व्यासाभिन्न विग्रह श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य भागवत में एवं श्रीलकृष्ण दास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत में सुन्दर रूपसे वर्णन किया है। श्री चैतन्यभागवत और श्री चैतन्य चरितामृत में वर्णित इस विषयका संक्षिप्त सार नीचे दिया जा रहा है :-

24 साल की आयु में, माघ मास के शुक्ल पक्ष की शुभ घड़ी में महाप्रभु जी ने श्रीकेशव भारती जी से सन्यास लिया। श्रीकेशव भारती जी से सन्यास लेने के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु जब शान्तिपुर से पुरुषोत्तम धाम की ओर गये तो जब वे जगन्नाथ पुरी के पास आठारनाला पहुंचे तो उन्होंने वहां से जगन्नाथ मन्दिर के शिखर पर श्रीकृष्ण के दर्शन किये। श्रीकृष्ण के दर्शन करते ही महाप्रभु जी प्रेम में विह्वल हो गये।

ऐसी अवस्था में जब महाप्रभु जी जगन्नाथ जी के मन्दिर में श्री जगन्नाथ जी को आलिंगन करने के लिये दौड़े तो मूर्च्छित होकर गिर पड़े। श्रीमन्दिर के सेवक महाप्रभु जी को मन्दिर के अन्दर पड़ा देख उन्हें मारने के लिए उनकी ओर दौड़े तो श्रीवासुदेव सार्वभौम जी ने उनको रोका। श्रीवासुदेव सार्वभौम श्रीमन्महाप्रभु जी के अपूर्व रूप और प्रेम विकार के दर्शन कर विस्मित् हो गये। वे समझ गये कि ये कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। श्रीवासुदेव सार्वभौम शिष्यों की सहायता से महाप्रभु जी को बेहोश अवस्था में ही अपने घर ले आये तथा उन्हें होश में लाने के लिए प्रयत्न करने लगे। तमाम प्रयत्नों के बाद भी होश न आने पर श्रीसार्वभौम बड़े चिन्तित हो गये। चिन्तित होकर उन्होंने महाप्रभु जी के नाक के आगे रुई रखी। रुई के थोड़ा हिलने पर श्रीसार्वभौम जी की जान में जान आयी। उन्हें विश्वास हो गया कि महाप्रभु जी जीवित हैं। श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीदामोदर पण्डित और श्रीमुकुन्द दत्त महाप्रभु जी के पीछे-2 चलते हुये श्रीजगन्नाथ जी के मन्दिर के सिंहद्वार पर पहुंचे। वहां लोगों से मालूम पड़ा कि महाप्रभु जी को बेहोशी की अवस्था मे ही श्रीवासुदेव सार्वभौम जी के घर ले जाया गया है। वहां श्रीसार्वभौम जी के बहनोई गोपीनाथ आचार्य के साथ उनकी भेंट हुई। मुकुन्द जी से महाप्रभु जी द्वारा सन्यास लेकर नीलाचल में आने और श्रीवासुदेव सार्वभौम जी के घर जाने की बात सुनकर गोपीनाथ आचार्य

हर्षान्वित हो उठे और सब को लेकर श्रीसार्वभौम जी के घर आ पहुंचे। श्रीसार्वभौम जी के घर महाप्रभु जी को देखकर सभी भक्तों को बड़ा आनन्द हुआ। भक्तों के उच्च संकीर्तन को सुनकर महाप्रभु जी उठ खड़े हुए। महाप्रभु जी के द्वारा भेजे जाने पर सभी भक्त जगन्नाथ जी के दर्शनों के लिये गये। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी ने स्नेह परवश हो महाप्रभु जी को अकेले जगन्नाथ जी के दर्शनों के लिये जाने का निषेध किया। उन्होंने महाप्रभु जी को, नित्यानन्द प्रभुजी को, एवं महाप्रभु जी के साथी भक्तों को दोपहर के भोजन के लिए निमन्त्रण दिया और समुद्र में स्नान करके आने के लिये कहा।

महाप्रभु जी जब भक्तों के साथ समुद्र में स्नान करके वापस आये तो श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी ने विचित्र महाप्रसाद के द्वारा सभी को परितृप्ति के साथ भोजन करवाया। श्रीमन्महाप्रभु जी का पिछला परिचय मालूम होने पर श्रीवासुदेव सार्वभौम जी बड़े प्रसन्न हुये क्योंकि श्रीमन्महाप्रभु जी के नाना श्री नीलाम्बर चक्रवर्ती के साथ श्रीवासुदेव सार्वभौम जी के पिता श्री महेश्वर विशारद जी की विशेष मित्रता थी। आयु में श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी महाप्रभु जी की अपेक्षा बहुत बड़े थे। वे स्नेह में भर कर बोले – 'तुम्हारा कृष्णचैतन्य नाम सर्वोत्तम है, किन्तु तुमने जो भारती सम्प्रदाय से सन्यास लिया है, वह मध्यम सम्प्रदाय है। मैं तुम्हें उत्तम सम्प्रदाय का बना दूगा। ये सुनकर गोपीनाथ आचार्य आदि भक्त बड़े दुःखी हुये। श्रीगोपीनाथ

आचार्य जी ने सीधा-2 प्रतिवाद भी किया कि – श्रीमन्महाप्रभु स्वयं भगवान हैं, उन्हें सम्प्रदाय की अपेक्षा नहीं है। श्रीगोपीनाथ आचार्य के साथ श्रीवासुदेव सार्वभौम एवं उनके शिष्यों का उपरोक्त विषय पर बड़ा तर्क-वितर्क हुआ जिसे श्रीलकृष्ण दास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत की मध्यलीला के छटे परिच्छेद में विस्तृत रूप से वर्णन किया है। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीगोपीनाथ आचार्य को वासुदेव श्रीसार्वभौम जी से तर्क करने को मना किया। उन्होंने भक्तों को समझाया कि श्रीसार्वभौम जी स्नेहपरवश हो मेरे हित के लिये ही उपदेश कर रहे हैं। इसमें आप लोगों को क्या आपत्ति है? स्वयं सम्मान की इच्छा न कर दूसरों को मान देने के स्वभाव वाले महाप्रभु जी ने श्रीवासुदेव सार्वभौम जी का उपदेश सुनने की इच्छा व्यक्त की। श्रीवासुदेव सार्वभौम जी ने उन्हें कहा कि तुम्हें अपने परम सुन्दर शरीर, नवीन यौवन व सन्यास धर्म की रक्षा के लिये वेदान्त सुनना होगा। वेदान्त सुनने से तुममें वैराग्य उत्पन्न होगा। श्रीवासुदेव सार्वभौम जी ने महाप्रभु जी को सात दिन वेदान्त सुनाया। वेदान्त कठिन ग्रन्थ है, वेदान्त का अर्थ समझ मे न आने पर दुबारा पूछना पड़ता है – श्रीवासुदेव सार्वभौम जी द्वारा महाप्रभु जी के प्रति ऐसा कहने पर महाप्रभु जी ने कहा – 'आपने मुझे सुनने के लिये कहा, समझ में न आने पर पूछने के लिये नहीं कहा। वेदान्त सूत्रों को समझने में मुझे कष्ट नहीं होता क्योंकि वेदान्त सूत्रों का अर्थ सूर्य की

तरह स्वतः सिद्ध रूप से प्रकाशित है। किन्तु आपकी व्याख्या मैं समझ नहीं सका। मुझे ऐसा लगा कि जैसे आकाश में बादल सूर्य को ढक लेते हैं, उसी प्रकार आपकी व्याख्या वेदान्त सूत्रों के स्वतः सिद्ध अर्थों को ढक रही है। महाप्रभु जी की इस प्रकार की बात सुनकर श्रीवासुदेव सार्वभौम जी ने इसे अपना अपमान समझा एवं क्षुब्ध हो उठे। श्रीवासुदेव जी के साथ महाप्रभु जी का 'ब्रह्म' शब्द पर विचार-विमर्श हुआ। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीवासुदेव सार्वभौमजी की निर्विशेष मत की व्याख्या का खण्डन किया तथा ब्रह्म के सविशेषत्व को स्थापन किया। 'आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूत गुणो हरिः' - महाप्रभु जी ने भागवत के इस श्लोक की व्याख्या सुनने की इच्छा की तो वासुदेव सार्वभौम जी ने इस श्लोक की नौ प्रकार से व्याख्या की। श्रीमन्महाप्रभु जी ने उस नौ प्रकार की व्याख्या को स्पर्श न कर अठारह प्रकार की व्याख्या की। श्रीमन्महाप्रभु जी के अलौकिक पाण्डित्य को देखकर श्रीवासुदेव सार्वभौम जी अत्यन्त विस्मित् और हक्के-बक्के रह गये। अब उन्हें महाप्रभु जी का ईश्वरत्त्व अनुभव होने लगा। वे अपनी धृष्टता के लिये पश्चाताप करने लगे, महाप्रभु जी के पादपद्मों में गिर पड़े। महाप्रभु जी ने उन्हें अपनी षड्भुज मूर्त्ति (पहले चतुर्भुज, बाद में श्यामवंशीधारी द्विभुज रूप) दिखाया।

"सार्वभौम प्रति आगे करि' परिहास।

शेषे सार्वभौमेरषड्भुज प्रकाश।।"

- चै.भा..आ. 1/159

"अपूर्व षड्भुजमूर्त्ति कोटि सूर्यमय।

देखि' मूर्च्छा गेला सार्वभौम महाशय।।"

- चै०भा०अ० 3/107

षड्भुज मूर्ति का दर्शन करके श्रीवासुदेव सार्वभौम जी ने महाप्रभु जी की कृपा से एक सौ श्लोकों से महाप्रभु जी की स्तुति की। उन सौ श्लोकों में से दो श्लोक उन्होंने ताल पत्र में लिख कर जगदानन्द पण्डित जी के माध्यम से महाप्रभु जी के पास भेजे। जगदानन्द पण्डित जी ने उन दो श्लोकों को पहले बाहर दीवार पर लिख लिया फिर अन्दर जाकर वह तालपत्र महाप्रभु जी के करकमलों में सौंपा। महाप्रभु जी ने दोनों श्लोकों को पढ़ा और फिर फाड़कर फेंक दिया। किन्तु भक्तों ने दीवार से देखकर दोनों श्लोकों को कण्ठस्थ कर लिया।

'वैराग्यविद्या-निजभक्तियोग-शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः
श्रीकृष्णचैतन्य-शरीरधारी कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये।।'

अर्थात वैराग्य का विधान (सन्यासी के आचरण) एवं अपने (श्रीकृष्ण विषयक) भक्तियोग की शिक्षा देने के निमित्त जो करुणासिन्धु एक (अद्वितीय) पुराण-पुरुष (आदि

पुरुष-सर्वकारण-कारण) श्रीकृष्ण चैतन्यरूप से अवतीर्ण हुए हैं, मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूं।

"कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्त्तुं कृष्णचैतन्यनामा।

आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे गाढं लीयतां चित्तभृंगः।।"

काल प्रभाव से प्रायः विनष्ट हुआ अपना भक्ति-योग पुनः प्रचार करने के लिये श्रीकृष्णचैतन्य नाम से जो अवतीर्ण हुए हैं, उनके चरण-कमलों में मेरा मन-मधुकर अति गाढ़ रूप से आसक्त हो।

अभी भी श्रीजगन्नाथ मन्दिर में श्रीमन्महाप्रभु जी की षड़्भुजमूर्त्ति पूजित हो रही है। एक दिन महाप्रभु जी अरुणोदय के समय श्रीजगन्नाथ जी का महाप्रसाद लेकर श्रीवासुदेव सार्वभौम जी के पास गये। वहां जाकर उन्होंने वह प्रसाद श्रीवासुदेव सार्वभौम जी को दिया। श्रीवासुदेव सार्वभौम जी ने स्नान व आन्हिक किये बगैर, यहां तक कि दांत साफ किये बिना ही उसे मुंह में डाल लिया और ग्रहण कर गये।

"शुष्कं पर्युषितं वापि नीतं वा दूरदेशतः।

प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं नात्र कालविचारणा।।"

श्रीवासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य जी ने पद्मपुराण के उपरोक्त श्लोक का उच्चारण करते करते परमानन्द के साथ महाप्रसाद ग्रहण किया था। श्रीवासुदेव सार्वभौम जी का

महाप्रसाद में विश्वास हो गया है, यह देख कर महाप्रभु आनन्द से नृत्य करते हुये बोले :-

"आजि मुञि अनायासे जिनिलु त्रिभुवन।

आजि मुञि करिनु वैकुण्ठे आरोहण।।

आजि मोर पूर्ण हैल सर्व अभिलाष।

सार्वभौमेर हैल महाप्रसादे विश्वास।।"

- चै.च.म. 6/230-231

अर्थातः आज मैंने त्रिभुवन पर विजय प्राप्त कर ली है तथा वैकुण्ठ लाभ कर लिया है। आज मेरी समस्त अभिलाषाएं पूर्ण हो गई हैं। क्योंकि सार्वभौम की महाप्रसाद में निष्ठा और विश्वास उत्पन्न हुआ है।

श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी ने जब श्रेष्ठ व्यक्ति के साधनांग के बारे में जानने की इच्छा की तो महाप्रभु जी ने वृहन्नारदीय पुराण का हरेर्नाम हरेर्नाम......... श्लोक उच्चारण कर 'नामसंकीर्तन' करने के लिए उपदेश दिया।

श्रीमन्महाप्रभु जी की कृपा से श्रीसार्वभौम जी के चित्त में ऐसा परिवर्तन हुआ कि उन्होंने भागवत के 'तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्ष्यमानो......' इस श्लोक के अन्तिम अंश में 'मुक्तिपद' के स्थान पर 'भक्तिपद' कह कर महाप्रभु जी को सुनाया। श्लोक सुनकर महाप्रभुजी ने कहा कि श्रीमद्‌भागवत के शब्द

महाराज प्रतापरुद्र जब महाप्रभु जी के दर्शनों के लिये व्याकुल हो उठे तो श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने उन्हें समझाते हुये कहा कि महाप्रभु जी विरक्त संन्यासी हैं, वे राजदर्शन नहीं करते। दक्षिण भारत से वापस आने के बाद जैसे भी हो सकेगा मैं उनके साथ तुम्हें मिलाने की व्यवस्था कर दूंगा।

महाराज प्रतापरुद्र के साथ परामर्श करने के पश्चात् श्रीवासुदेव जी ने पक्का कर लिया कि श्रीकाशीमिश्र जी का भवन ही महाप्रभु जी के ठहरने के उपयुक्त होगा।

दक्षिण भारत की यात्रा से वापस आने के पश्चात् श्रीवासुदेव सार्वभौम जी के द्वारा की गयी व्यवस्था के अनुसार महाप्रभु जी श्रीकाशीमिश्र जी के भवन में ठहर गये। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी ने श्रीक्षेत्रवासी वैष्णवों का महाप्रभु जी से परिचय करवा दिया।

श्रीईश्वरपुरीपाद जी के पूर्व निर्देशानुसार श्रीगोविन्द और श्रीकाशीश्वर पण्डित ईश्वर पुरी जी के अप्रकट होने के बाद ही महाप्रभु जी की सेवा के लिये उनके पास पुरी में आ पहुंचे। गोविन्द के लौकिक परिचय से परिचित होने के पश्चात् श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने महाप्रभु जी से प्रश्न किया था कि ईश्वर पुरीपाद जी ने शूद्र जाति के व्यक्ति को सेवक क्यों रखा? उसके उत्तर में महाप्रभु जी ने कहा कि ईश्वर परम स्वतन्त्र हैं, ईश्वर की कृपा जाति व कुल आदि का विचार नहीं करती, मर्यादा से स्नेह-सेवा कोटिगुणा श्रेष्ठ है। विदुर के

घर श्रीकृष्ण जी ने परमानन्द से भोजन किया था, गुरुर सेवक हन मान्य आपनार अर्थात गुरु का सेवक पूजनीय होता है, उससे अपनी सेवा करवाना उचित नहीं है, फिर गुरु जी ने जो आज्ञा की है उसका उल्लंघन भी नहीं किया जा सकता, ऐसी अवस्था में क्या करणीय है। महाप्रभु जी ने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी से जब यह पूछा तो उन्होंने कहा कि गुरु आज्ञा ही बलवान है, उसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता - यही शास्त्र सम्मत है। महाराजा प्रतापरुद्र जी को महाप्रभु जी के साथ मिलाने के लिए काफी चेष्टा करने पर भी श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी सफल नहीं हुये। बाद में श्रीनित्यानन्द प्रभु जी भक्तों को लेकर महाप्रभु जी के पास गये और राजा की महिमा और व्यवहार की बातें बोल कर महाप्रभु जी के चित्त को द्रवित करने लगे। परन्तु तब भी महाप्रभु जी ने स्वीकार नहीं किया। हाँ, अपने पहने हुये बहिर्वास वस्त्र को देने में कोई भी आपत्ति नहीं की। श्रीनित्यानन्द प्रभु जी ने वह बहिर्वास वस्त्र श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी के माध्यम से महाराज प्रतापरुद्र जी के पास भेजा। उस वस्त्र का स्पर्श कर प्रतापरुद्र जी प्रेमाविष्ट हो गये।

चातुर्मास के बाद गौड़देश के भक्तों द्वारा गौड़देश वापस चले जाने पर एक दिन श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी ने हाथ जोड़ कर महाप्रभु जी को अपने घर पर एक मास तक भोजन करने के लिये निवेदन किया। किन्तु महाप्रभु जी ने उस प्रस्ताव को

अस्वीकार कर दिया। फिर श्रीवासुदेव जी ने 20 दिन के लिए निवेदन किया परन्तु महाप्रभु जी ने इसे भी अस्वीकार कर दिया। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी द्वारा बार-बार प्रार्थना करने पर अन्त में पाँच दिन भिक्षा करनी स्वीकार की। श्रीवासुदेव सार्वभौम जी ने पाँच दिन परमानन्द पुरी को, चार दिन स्वरूप दामोदर को एवं 8 संन्यासियों को दो दो दिन करके सोलह दिन, इस प्रकार एक मास के लिये अपने घर में भिक्षा की व्यवस्था की। बहुत से सन्यासियों के आने से सेवा सुचारु रूप से नहीं हो पायेगी, इसीलिये महाप्रभु जी को अकेले या किसी दिन श्रीस्वरूप दामोदर जी के साथ आकर भिक्षा ग्रहण करने के लिये निवेदन किया। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी की पत्नी (षाठी की माता) महाप्रभु जी के प्रति अनन्य भक्ति वाली थी व महाप्रभु जी भोजन करने घर में आयेंगे, सुनकर परमोल्लासित हो उठी। रसोई बनाने में पारंगत षाठी की माता ने बहुत प्रकार का पीठापाना (बंगाल की एक मिठाई) तैयार किया। श्रीभट्टाचार्य जी ने घर में प्रसाद सेवन की व्यवस्था की।

महाप्रभु जी श्रीभट्टाचार्य के घर श्री श्रीराधागोविन्द जी के भोग की अपूर्व परिपाटी एवं अन्न-व्यन्जनादि देखकर विस्मित हो गये और उन्होंने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी की सेवा का ढंग देखकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। महाप्रभु जी अभी प्रसाद सेवन करने के लिये बैठे ही थे कि उसी समय श्रीभट्टाचार्य जी का दामाद - अमोघ, महाप्रभु जी के भोजन

को देखने आया। श्रीभट्टाचार्य अमोघ के स्वभाव को पहले से ही जानते थे इसलिये छड़ी हाथ में लेकर दरवाजे पर बैठे थे ताकि अन्दर न आ पाये। वे जब महाप्रभु जी को विचित्र-2 प्रसाद सेवन कराने में व्यस्त थे और उनका ध्यान भी केवल उसी में था, उसी समय अमोघ अन्दर घुस आया और अन्न व्यन्जनादि को देख कर निन्दा करता हुआ कहने लगा - 'एइ अन्ने तृप्त हय दश बार जन। एकेला सन्यासी करे एतेक भोजन।' अर्थात जितना भोजन 10-12 आदमी खाते हैं उतना ये अकेला संन्यासी खा रहा है। भट्टाचार्य जी द्वारा क्रोधित होकर छड़ी मारने के लिये उसके पीछे दौड़ने पर अमोघ भाग गया। महाप्रभु जी की निन्दा सुनकर षाठी की माता सिर और छाती को पीट-2 कर क्रन्दन करने लगी और बार-बार कहने लगी कि मेरी बेटी विधवा हो जाये। अमोघ की निन्दा सुनकर महाप्रभु जी मुस्कराये एवं भट्टाचार्य और उनकी पत्नी के दुःख को देखकर उनको सान्त्वना प्रदान करने लगे। अगले दिन अमोघ को हैज़ा हो गया। इस व्याधि की बात सुनी तो अपराधी को आवश्यक दण्ड मिला है, सोचकर भट्टाचार्य जी सुखी हुये। गोपीनाथ आचार्य जी ने महाप्रभु जी को आकर बताया कि श्रीभट्टाचार्य और उनकी पत्नी ने तब से कुछ खाया नहीं है एवं उनके दामाद को हैज़ा हो जाने के कारण मृत्युशैय्या पर पड़ा है। ये सुनते ही करुणामय महाप्रभु जी उसी समय अमोघ के पास गये और उसकी छाती पर श्रीहस्त स्पर्श करते हुये कहने लगे -

'सहजे निर्मल एई ब्राह्मण-हृदय। कृष्णेर वसिते एइ योग्यस्थान हय।। मात्सर्य चण्डाल केने इ'हा बसाइला। परमपवित्र स्थान अपवित्र कैला। सार्वभौम-सगे तोमार कल्मष हैल क्षय। कल्मष घूचिले जीव कृष्णनाम लय।। उठह अमोघ! तुमि लओ कृष्णनाम। अचिरे तोमारे कृपा करिवे भगवान्।।' चै.च. म. 274-77

अर्थात् "यह ब्राह्मण-हृदय तो सहज ही शुद्ध होता है, यह श्रीकृष्ण के विराजमान होने योग्य स्थल है। तुमने, अमोघ! मात्सर्यरूप (ईर्ष्या-द्वेषरूप) चण्डाल को यहाँ (हृदय में) कैसे बिठा लिया? इस परमपवित्र स्थान को तुमने अपवित्र कैसे कर दिया? श्रीसार्वभौम परमभक्त के संग से तुम्हारे सब पाप नाश हो गये हैं और जब पाप नष्ट हो जाते हैं तभी जीव श्रीकृष्ण नाम उच्चारण करता है अमोघ! उठो, तुम कृष्ण नाम कहो। श्रीभगवान तुम पर शीघ्र कृपा करेंगे।

श्रीमन्महाप्रभु जी के स्पर्श से अमोघ उसी समय स्वस्थ हो गया और उठकर कृष्ण कृष्ण कहता हुआ नृत्य करने लगा एवं उसके शरीर में अष्टसात्त्विक विकार प्रकट हो गये। अपने अपराध की बात याद कर अनुताप की अग्नि में जलते हुए थप्पड़ मार-2 कर उसने अपने दोनों गाल फुला लिये। श्रीगोपीनाथ आचार्य जी ने उसका हाथ पकड़ कर उसे रोका। महाप्रभु जी ने अमोघ को सान्त्वना प्रदान करते हुये कहा कि श्रीसार्वभौम जी के सम्बन्ध से अमोघ उनके स्नेह का पात्र है।

"सार्वभौम-गृहे दास-दासी, ये कुक्कुर।
सेह मोर प्रिय अन्यजन रहु दूर।।"

महाप्रभु जी ने भट्टाचार्य जी एवं उनकी पत्नी के पास जाकर बहुत प्रकार से सान्त्वना प्रदान की; बालक अमोघ के अपराध क्षमा करने के लिए कहा एवं उनको बिठा कर भोजन करवाया।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीवल्लभ भट्ट के सामने अपने पार्षदों की महिमा वर्णन करते समय सार्वभौम के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा -

'षड्दर्षनवेत्ता भट्टाचार्य-सार्वभौम। षड्दर्शने जगद्गुरु भागवतोत्तम। तेंह देखाइला मोरे भक्तियोगे पार। ताँर प्रसादे जानिलु कृष्णभक्तियोग सार।।' - चै.च.अ. 7/21-22

श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य छः दर्शनों के वेत्ता हैं। षड़-दर्शनों के लिये तो वे जगद्गुरु हैं और परम भक्त हैं। उन्होंने मुझे भक्ति योग की सीमा का दर्शन करवाया है। उनकी कृपा से ही मैंने श्रीकृष्ण के भक्ति योग के रहस्य को जाना है।

कूर्म – विप्र

श्रीमन्महाप्रभु जी ने दक्षिण भारत के जीवों का उद्धार करने के लिये पुरूषोत्तमधाम से वैशाख मास में दक्षिण की यात्रा की थी। श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु जी की विशेष प्रार्थना से उन्होंने सेवकरूप में कृष्णदास विप्र को भी साथ ले लिया था। कृष्णप्रेम बांटते – बांटते श्रीमन्महाप्रभुजी कूर्म स्थान [23] में जा पहुंचे, जहाँ पर उन्होंने 'कूर्म' नामक वैदिक ब्राह्मण पर कृपा की थी। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने अपने रचित श्रीचैतन्यचरितामृत की मध्यलीला के सातवें परिच्छेद में कूर्म विप्र का नाम उल्लेख किया है। उसके इलावा उनके परिचयादि के सम्बन्ध में कुछ भी लिखा नहीं है। श्रीभगवत्लीला की पुष्टि करने के लिये जो सब भगवत् पार्षद जगत में आते हैं, उनका स्वरूप अप्राकृत होने के कारण अक्सर उनके प्राकृत जगत का परिचयादि अज्ञात रहता है। जागतिक ऐतिहासिकगण चेष्टायुक्त होने पर जो उनके

23. कूर्मस्थान – दक्षिण पूर्व रेल लाइन से गंजाम ज़िला में 'श्रीकाकुलम रोड' स्टेशन से 8 मील पूर्व की ओर ही ये कूर्माचल या श्रीकूर्म नामक स्थान है। ये तैलेंगदेशीय व्यक्तियों का सर्वोत्तम तीर्थ है। प्रपन्नामृत में ऐसा कहा है कि जब पुरुषोत्तम धाम में श्रीरामानुजाचार्य जी ने श्रीजगन्नाथ देव जी के सेवकों को भक्ति–सदाचार की शिक्षा देने का प्रयास किया तो श्री जगन्नाथ देव जी ने श्रीरामानुजाचार्य जी को रात के समय उठाकर कूर्मक्षेत्र में गिरा दिया।

पिता – माता का परिचयादि जान पायें, ऐसी सम्भावना कम है। महाप्रभु जी के पार्षदों का जागतिक बाह्य परिचय जानने के लिये अधिक उत्कंठित न होकर उनके पूत चरित्र का शिक्षणीय विषय ही हमारे ग्रहण करने योग्य है।

कूर्म विप्र की प्रगाढ़ भक्ति से वशीभूत होकर श्रीमन्महाप्रभु जी ने उनकी सभी सेवाओं को ग्रहण किया था। विप्र को यह सौभाग्य मिला कि वे श्री महाप्रभु जी को अपने घर लाये और उनके श्रीचरणकमलों को जल से धोकर वह धौत जल सपरिवार पान किया तथा उनको अति प्रीति के साथ भोजन कराकर उनका अवशेष प्रसाद पाया।

"कूर्म नामे सेइग्रामे वैदिक ब्राह्मण। बहु श्रद्धाभक्त्ये कैल प्रभुर निमन्त्रण ॥ घरे आनि प्रभुर कैल पादप्रक्षालन। सेइ जल वंश सहित करिल भक्षण ॥ अनेक प्रकार स्नेह भिक्षा कराइल। गोसाञिर प्रसादान्न सवंशे खाइल ॥"

विप्र ने स्तव – स्तुति द्वारा महाप्रभुजी को प्रसन्न किया और उनका विरह सहन करने में असमर्थ होने के कारण प्रभु के साथ जाने की उत्कण्ठा प्रकट की। लेकिन श्रीमन्महाप्रभु जी ने ऐसी आकांक्षा का समर्थन न करके उनको घर में रहकर निरंतर कृष्णनाम करने एवं आचार्यरूप से सबको कृष्णनाम कराने का आदेश किया।

प्रभु कहे – "ऐछे बात कभु ना कहिबा। गृहे वसि कृष्णनाम निरन्तर लैवा।। यारे देख – तारे कह कृष्ण उपदेश। आमार आज्ञाय गुरु हैया तार एइ देश।। कभु ना बाधिवे तोमार विषय – तरंग। पुनरपि एइ ठाजि पावे मोर संग।।"

अर्थात: श्रीमहाप्रभु ने कहा – ''ऐसी बात कभी नहीं कहना। घर में रहकर निरन्तर श्रीकृष्णनाम – संकीर्त्तन करो एवं जिसे देखो उसे ही श्रीकृष्णनाम का उपदेश करो। मेरी आज्ञा से गुरु बन कर इस देश का उद्धार करो। इस प्रकार तुम कभी भी विषय – तरंगों के बन्धन में न आओगे। मैं फिर तुम्हें इसी स्थान पर आकर मिलूंगा।

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने श्रीमन्महाप्रभु जी के उक्त आदेश के तात्पर्य विषय को अपने रचित अनुभाष्य में लिखा है –

''श्रीमन्महाप्रभु जी के लिये जो अपना सब कुछ त्यागकर एकान्त भाव से उनका आश्रय लेकर सेवा करने का संकल्प लेता है, भगवान् श्रीगौरसुन्दर भी उसके भजन को स्वीकार कर यह शिक्षा देते हैं कि घर में रहकर अर्थात् 'उत्कट – भजन – परायण' अभिमान को छोड़कर गृहवास रूपी दीनता के साथ निरन्तर कृष्णनाम ग्रहणरूपी आचरण करके शुद्धकृष्णनाम का भजन और प्रचार करो। 'मैं सर्वोत्तम वैष्णव हूँ, इस अभिमान से शिष्य करने से, मैं कृष्णदास हूं यह शुद्ध अभिमान नष्ट हो जाता है। इसलिए मैं

सर्वोत्तम वैष्णव हूं इस अभिमान को त्यागकर दीनता के साथ शुद्ध नाम का प्रचार और आचरण करने से जड़ अभिमान रूपी विषय की तरंग बढ़ नहीं सकती। श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीजीव और श्रीरघुनाथ दास आदि पार्षद महात्माओं ने ग्रन्थ लिखकर जो उपदेश – प्रदान किया है तथा श्रीमन् नरोत्तम, श्रील मध्व – रामानुजादि ने जो बहुत से शिष्य बनाये हैं उसको भक्त्यंग का बाधक और विषय – तरंग कहकर कल्पना करने वाले अनेक निर्बोध लोक वास्तविक अकिंचन भक्तों के चरणों में अपराध कर बैठते हैं। इसलिये इन हरिविमुख व्यक्तियों के प्रति प्रतिशोध की भावना को न दिखाकर अपने भजन में वृद्धि के लिए प्रयास करें, जगद्गुरु आचार्य के रूप में श्रीगौरांग महाप्रभु जी की यही शिक्षा है।

इसी कूर्मक्षेत्र में ही श्रीमन्महाप्रभु जी कुष्ठी[24] वासुदेव विप्र की अनन्य भक्ति और आर्ति से आकृष्ट हुये थे तथा उसका

---

24. 'बहु स्तुति करि' कहे शुन दयामय। जीवे एइ गुण नाहिं तोमाते एइ हय।। मोरे देखि मोर गन्धे पलाय पामर। हेन मोरे स्पर्श तुमि, – स्वतंत्र ईश्वर।। किन्तु आछिलाङ भाल अधम हइया। एबे अहंकार मोर जन्मिबे आसिया।। चै.च.म. 7/144 – 46

वासुदेव विप्र के चरित्र द्वारा भगवान् जगत् वासियों को यह शिक्षा दे रहे हैं कि वे केवल अनन्यभक्ति द्वारा ही जीते जा सकते हैं। लौकिक किसी भी प्रकार के गुण द्वारा नहीं जीते जाते। अनन्य भक्त की बाहरी कोई भी कुरूपता या नीच अवस्था भगवान नहीं देखते हैं।

उद्धार करने के लिये उसको गले लगाकर परमसुन्दर किया था साथ ही प्रसन्न होकर आश्वासन दिया कि सुन्दर शरीर पाकर उनको किसी प्रकार का अभिमान नहीं होगा, कृष्णनाम के उपदेश द्वारा सभी जीवों के उद्धार के लिये भी उनको आदेश किया था। कृष्णबहिर्मुख जीवों की दुर्दशा देखकर उनके उद्धार के लिये भगवान तथा भगवान के निजजनों का कैसा असीम स्नेह और करूणा है वह श्रीमन्महाप्रभु जी की उक्ति और श्रील सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी की उक्ति से स्पष्टरूप से प्रतीत होती है। श्रीमन्महाप्रभु जी के कूर्मक्षेत्र से प्रस्थान करने पर कूर्म विप्र और वासुदेव विप्र दोनों एक दूसरे को आलिंगन करके महाप्रभु जी के गुणा और महिमा का कीर्त्तन करते-करते प्रेमाविष्ट हो गये।

श्रीसनोड़िया विप्र

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी विरचित श्रीचैतन्य चरितामृत की मध्यलीला के 17वें और 18वें परिच्छेद में सनोड़िया विप्र के प्रसंग में उनके साथ श्रीमन्महाप्रभु जी का मिलन संक्षिप्त रूप से वर्णित हुआ है। सनोड़िया विप्र का जन्मस्थान तथा पिता-माता का परिचय प्राप्त नहीं है। श्रीसनोड़िया विप्र के साथ श्रीमन्महाप्रभु जी के वार्तालाप और व्यवहारादि से जो शिक्षणीय है, वही हमारे लिये ग्रहण करने योग्य है।

जब श्रीमन्महाप्रभु जी काशी से होते हुये प्रयाग के रास्ते मथुरामण्डल में आये तब वहां भ्रमण करते-करते मथुरा के विश्रामतीर्थ पर पहुंचे। महाप्रभु जी ने वहां पर स्नान किया तथा स्नान के बाद श्रीकृष्ण की जन्मस्थली पर गये, जहां 'आदिकेशव' का दर्शन करते ही वे प्रेम में उन्मत्त होकर नाचने लगे। महाप्रभु जी के इस अद्भुत नृत्य को देखकर सभी दर्शनार्थी आश्चर्यचकित और चमत्कृत हो उठे। उसी समय क्या हुआ कि एक विप्र श्रीमन्महाप्रभु जी के पादपद्मों में उपस्थित हुआ। उसने महाप्रभु जी को प्रणाम किया और उनके साथ नाचने लगा। महाप्रभु जी के साथ नाचते-नाचते वह प्रेम में विभोर हो गया और प्रेमाविष्ट होकर गिर पड़ा। नाचने के आवेश में दोनों ने एक दूसरे को गले लगाया और

हाथ ऊपर उठाकर 'हरि' 'कृष्ण' के नामों का ऊँचे स्वर से कीर्तन करने लगे, जिसे देखकर दर्शनार्थी भी उनका अनुसरण करते हुए ऊँचे स्वर से कीर्तन करने में उन्मत्त हो गये। 'आदिकेशव' मन्दिर में भीषण कोलाहल सा मच गया। कीर्तन समाप्त होने के बाद उस ब्राह्मण को एकान्त में ले जाकर महाप्रभु जी ने पूछा –

"आर्य सरल तुमि वृद्ध ब्राह्मण।
काहाँ हइते पाइले तुमि एइ 'प्रेमधन'।।"

अर्थात आर्य! आप वृद्ध ब्राह्मण हो एवं बहुत सरल हो; तुमने यह 'प्रेमधन' कहाँ से पाया है।

बूढ़े ब्राह्मण ने उसके उत्तर में कहा कि जब श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी भ्रमण करते–करते यहां मथुरा नगर में आये थे तब उन्होंने अनुग्रहपूर्वक मेरे घर में शुभपदार्पण किया था। उन्होंने मुझको मन्त्र देकर शिष्य बनाया तथा उन्होंने मेरे द्वारा पकाया हुआ भोजन भी ग्रहण किया था। उन्होंने गोपालदेव जी को प्रकट करके उनकी सेवा को प्रकाशित किया था जोकि आज भी गोवर्धन में पूजित हो रहे हैं। उस बूढ़े ब्राह्मण का परिचय पाते ही महाप्रभु जी ने साथ–ही–साथ उसकी चरण–वन्दना की। महाप्रभु जी के ऐसे व्यवहार से बूढ़ा ब्राह्मण डर गया और वह भी महाप्रभु जी के पादपद्मों में गिर पड़ा। 'गुरुदेव के गुरुभाई श्रीगुरु की भांति पूज्य हैं' –

इसकी शिक्षा देने के लिए महाप्रभु जी ने बूढ़े विप्र से कहा – 'आप गुरु होकर क्यों मेरे जैसे तुच्छ शिष्य को प्रणाम कर रहे हो, यह ठीक नहीं है।' बूढ़े विप्र ने विस्मित होकर दीनता प्रकाश करते हुये कहा – 'आप तो संन्यासी हैं, संन्यासी के लिए मेरे जैसे दीन हीन कंगाल को प्रणाम करना उचित नहीं है।' महाप्रभु जी के प्रेम विकार को देखकर बूढ़े ब्राह्मण ने अनुमान लगाया कि निश्चय ही इनका श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद जी के साथ सम्बन्ध है। श्रीबलभद्र भट्टाचार्य जी से महाप्रभु जी के गुरुदेव का परिचय जानकर बूढ़ा ब्राह्मण महोल्लास से नाचने लगा। ब्राह्मण की प्रार्थना और आग्रह से महाप्रभु जी उसके घर गये। ब्राह्मण को भी महाप्रभु जी की साक्षात् सेवा पाने का सौभाग्य मिला। महाप्रभु जी जब उस ब्राह्मण के घर पहुंचे तो पहले ब्राह्मण ने मन–मन में यह निश्चय किया था कि वे महाप्रभु जी को दोपहर में भोजन कराने के लिये अपने हाथों से रसोई न बनाकर भट्टाचार्य के द्वारा बनवायेंगे। परन्तु महाप्रभु जी ने लोकशिक्षा के लिए बूढ़े विप्र से कहा – 'पुरी गोसाञि ने आपके घर में भोजन किया है अतः मुझे भी अपने हाथों से रसोई बनाकर भिक्षा कराओ, यही उनकी शिक्षा है। बूढ़े विप्र का जन्म तो सनोड़िया कुल में हुआ था जबकि संन्यासी लोग सनोड़िया विप्र के घर भोजन नहीं करते हैं। किन्तु श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद जी ने सनोड़िया विप्र की वैष्णवता देखकर उसको शिष्य बनाया था और फिर उसके

घर भोजन किया। इधर बूढ़े विप्र ने चिन्ता की कि उस समय की सामाजिक प्रथानुसार संन्यासी यदि उनके घर भोजन कर लेगा तो मूर्ख लोग संन्यासी की निन्दा कर सकते हैं, इसलिये वे महाप्रभु जी को भोजन कराने के लिये संकुचित हो गये। महाप्रभु जी ने पुनः समझाया कि श्रुति-स्मृति और ऋषियों में मत का पार्थक्य है; किन्तु धर्मसंस्थापन हेतु साधुओं के आचरण को समझकर उसके अनुसार चलना ही वास्तविक धर्म है। महाप्रभु जी की इच्छा थी कि ब्राह्मण उन्हें अपने घर पर भोजन करवाये अतः महाप्रभु जी की इच्छा पूरी करने के लिए सनोड़िया विप्र ने अपने हाथों से रसोई बनाकर महाप्रभु जी को अर्पित की।

नीलाचल से वृन्दावन की ओर जाने वाले रास्ते में महाप्रभु जी का प्रेमावेश सौ गुणा हो जाता था और मथुराधाम में पहुंचने पर वह हज़ार गुणा तथा व्रजमण्डल के बारह वनों में घूमते समय वह लाख गुणा बढ़ जाता था। श्रीक्षेत्र से झाड़िखण्ड के निर्जन वन के रास्ते से वृन्दावन की ओर यात्रा के समय महाप्रभु जी की सेवा के लिये श्रीरायरामानन्द और श्रीस्वरूप दामोदर ने श्रीबलभद्र भट्टाचार्य तथा उनके साथ एक ब्राह्मण को सेवक रूप से दिया था। बारह वनों की यात्रा के समय 'कृष्णदास' नाम का एक राजपूत वैष्णव भी महाप्रभु जी के प्रति आकृष्ट होकर उनका साथी हो गया था। जब महाप्रभु जी अक्रूरघाट पर आये तो प्रेमोन्मत्त होकर उन्होंने

यमुना जी में छलांग लगा दी और बहुत देर तक उसमें डूबे रहे। यह देखकर कृष्णदास तो डर के मारे चिल्ला उठा। बलभद्र भट्टाचार्य ने उसी क्षण आकर महाप्रभु जी को जल से बाहर किया। महाप्रभु जी के प्रेमविकार देखकर बलभद्र भट्टाचार्य भी डर गये। उन्होंने श्रील माधवेन्द्रपुरीपाद जी के शिष्य श्रीसनोड़िया विप्र के साथ परामर्श करके निश्चित किया कि महाप्रभु जी को श्रीव्रजमण्डल में और ज्यादा भ्रमण के लिए रखना उचित नहीं होगा। माघमास की मकर-पंचदशी पूर्णिमा स्नान के योग की बात कहकर वृन्दावन से गंगातट के पथ द्वारा सौरों-क्षेत्र होकर महाप्रभु जी को प्रयाग में ले जाना होगा। राजपूत कृष्णदास और माथुर विप्र (सनोड़िया विप्र) गंगातट के मार्ग के विषय में अनुभवी थे। श्रीमन्महाप्रभु जी सनोड़िया विप्र को अपने गुरुदेव के गुरु भाई मानकर पूज्यबुद्धि रखते थे जिस कारण महाप्रभुजी ने विप्र के परामर्श को मान लेने में कोई आपत्ति नहीं की। हर समय कृष्णप्रेम में निमग्न रहने के कारण वृन्दावन से स्थूलतः बाहर आने पर भी क्या होगा। महाप्रभुजी सर्वत्र कृष्णमय देखने लगे तथा पुनः उनमें प्रेम के विकार प्रकट हो गये। महाप्रभु जी को रास्ते में कुछ थकावट हुई तो वे रास्ते में ही एक वृक्ष के नीचे विश्राम के लिये बैठ गये। जब वे वृक्ष के नीचे बैठे थे तो उन्होंने वहां कुछ गायों को घूमते हुए देखा । बस, उनको देखते ही महाप्रभु जी को व्रजलीला याद आ गई। तभी अकस्मात किसी

गोप ने वंशीध्वनि कर दी, बस फिर क्या था उस वंशीध्वनि को सुनते ही महाप्रभु जी महाप्रेमावेश में मूर्च्छित हो कर गिर पड़े। प्रेम के विकारों के कारण उनके मुख से झाग निकलने लगी और श्वास का आना जाना भी कुछ रुक सा गया। जब यह घटना हुई तो उसी समय पठान मुसलमान बिजली खान, दस अश्वारोही सैनिकों को लेकर वहां उपस्थित हो गया। महाप्रभु जी की ऐसी अवस्था देखकर बिजली खान ने समझा कि शायद इस संन्यासी के पास बहुत सा धन था और इन चार लुटेरों ने इसको धतूरा खिलाकर मार डाला है और सारा धन लूट लिया है। वे उन चारों को बांधकर जब मारने लगे तो उनमें से दो व्यक्ति जो बंगाल से आये थे (बलभद्र भट्टाचार्य और उनके साथी) भय से कांपने लगे। लेकिन राजपूत कृष्णदास तथा मथुरा के सनोड़िया विप्र ने निर्भीक भाव से उपस्थित बुद्धि का प्रयोग किया। सनोड़िया विप्र ने बिजली खान को समझाते हुये कहा – 'आप जिस संन्यासी को मूर्च्छित पड़ा देख रहे हैं, मैं इसका गुरु हूं। बीमारी की वजह से यह संन्यासी कभी मूर्च्छित हो जाता है तो कभी स्वस्थ हो जाता है। यदि विश्वास न हो तो आप हमें बांधकर रख दो। थोड़ी देर में जब इसे होश आ जाएगा तो आप इससे पूछ लेना। तब तुम लोग वास्तविक बात जान पाओगे। हम लोग जहां से आ रहे हैं, उस बादशाह के पास एक सौ आदमी हैं।' बिजली खान ने माथुर ब्राह्मण को निर्भीक भाव से बात बोलते देखकर सन्देह चित्त से कहा

– 'तुम्हारी भाषा सुनकर मैं समझ गया हूं कि तुम तो मथुरा के ब्राह्मण हो, किन्तु यह दोनों यहां के लोग नहीं हैं, देखो न, भय से कांप रहे हैं। निश्चय ही यह दोषी होंगे।' राजपूत कृष्णदास ने इस आई विपद को भांप लिया तथा दिमाग से काम लिया तथा बड़ी चतुरता से पठान को भय दिखाते हुए कहा – 'हमारा घर यहां पास के ही ग्राम में है। हमारे दो सौ सैनिक हैं, एक सौ तो तोपें ही हैं। एक आवाज़ लगाने के साथ-साथ अभी आकर वे तुम्हारा सब कुछ छीन लेंगे। ये गौड़ीय लोग ठग हैं या तुम लोग ठग हो।'

राजपूत के निर्भीक वाक्यों को सुनकर पठान डर गया। इसी बीच महाप्रभु जी को चेतना आ गयी और वे महाप्रेमावेश में ऊँचे स्वर से 'हरि', 'हरि' पुकारते हुये नाचने लगे। महाप्रभु जी के अत्यद्भुत कीर्तन को सुनकर और नृत्य को देखकर पठानों ने भय पाकर उन चारों को बन्धन से मुक्त कर दिया। महाप्रभु जी अपने जनों को बन्धन में देख न पाये। पठान भी महाप्रभु जी की अपूर्व श्रीमूर्त्ति और प्रेमोन्मत्त भाव देखकर उनकी ओर आकृष्ट हो उठे। उन्होंने जब अपने सन्देह की बात बतायी तो महाप्रभु जी ने कहा कि व्याधि से अगर कभी मैं अचेतन होकर गिर जाता हूं तो यह चारों व्यक्ति ही मुझ पर दया करके मेरी रक्षा और पालन करते हैं।

सौरोंक्षेत्र में आकर महाप्रभु जी ने गंगा स्नान किया व बाद में गंगातट के मार्ग से प्रयाग जाने की इच्छा व्यक्त की।

सनोड़िया विप्र और राजपूत कृष्णदास को महाप्रभु जी ने कहा "आप रास्ता दिखाने के लिए मथुरा से मेरे साथ काफी कष्ट सहते हुए आये हैं। आप लोगों को और ज्यादा कष्ट देने की मेरी इच्छा नहीं है। आप यहीं से वापस चले जायें।" सनोड़िया विप्र और राजपूत कृष्णदास ने महाप्रभु जी को समझाते हुये कहा – "आपका संग न जाने फिर कब हमारे भाग्य में होगा, यह हम नहीं जानते हैं। यही नहीं, म्लेच्छ देश होने के कारण रास्ते में अनेक प्रकार के उत्पातों की सम्भावना है। बलभद्र आचार्य यहां की भाषा नहीं जानते हैं। इसलिये हम लोग आपके साथ प्रयाग तक जाने की इच्छा करते हैं।" सनोड़िया विप्र तथा राजपूत कृष्णदास जी की बात को सुनकर महाप्रभु जी ने मुस्कराते हुये उनकी बात का अनुमोदन कर दिया।

श्रीबुद्धिमन्त खान

"श्रीचैतन्येर अतिप्रिय बुद्धिमन्त खान।
आजन्म आज्ञाकारी तेंहो सेवक-प्रधान।।"

– चै.च.आ. 10/74

श्रीबुद्धिमन्त खान का नाम भी श्रीचैतन्य शाखा में है। श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर जी ने अपने रचित श्रीनवद्वीपधाम माहात्म्य में गोद्रुमद्वीप के अन्तर्गत श्रीसुवर्णविहार के माहात्म्य वर्णन में लिखा है – 'सत्ययुग में श्रीसुवर्ण सेन नाम का एक धार्मिक राजा सुवर्ण विहार में रहा करता था। उसने नारद जी की कृपा से श्रीराधाकृष्ण और श्रीराधाकृष्ण मिलित तनु श्रीगौरांग महाप्रभु जी में प्रेमभक्ति प्राप्त की थी। सुवर्णसेन राजा ने एक दिन नींद के समय सपार्षद श्रीगौरगदाधर का दर्शन पाया। नींद के टूट जाने पर वे विरह में व्याकुल होकर रोने लगे। उस समय दैववाणी हुई कि श्रीगौरांग महाप्रभु जी फिर से कलियुग में जब प्रकट होंगे तब वे बुद्धिमन्त खान के नाम से उनके पार्षद रूप में गिने जायेंगे और गौरलीला की पुष्टि करेंगे। यह नवद्वीप नगर में रहा करते थे। उस समय नवद्वीप में श्रीबुद्धिमन्त खान तथा मुकुन्द संजय धनवान और सम्मानित व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध थे। वे गरीब व्यक्तियों को दवाई देते और चिकित्सा की व्यवस्था करवाते।

एक दिन श्रीमन्महाप्रभु जी ने गृहस्थ की लीला के समय कृष्णप्रेम के विकारों को प्रकट किया। इन विकारों से ग्रस्त होने पर निमाई के रिश्तेदारों ने उसे वायुव्याधि समझकर निमाई की चिकित्सा के लिये श्रीबुद्धिमन्त खान को बुलाया था।

जब श्रीमन्महाप्रभु जी का दूसरा विवाह राजपण्डित श्रीसनातन मिश्र की पुत्री विष्णुप्रिया देवी के साथ हुआ तो उस समय जितना भी खर्च था वह सब श्रीबुद्धिमन्त खान ने स्वयं ही किया। श्रीबुद्धिमन्त खान श्रीवास पण्डित के घर में, श्रीचन्द्रशेखर के भवन में, महाप्रभु जी की संकीर्तन लीला में तथा जगाई-मधाई के उद्धार के बाद सभी पार्षदों के साथ महाप्रभुजी की जलकेलि लीला में संगी हुये थे। जब श्रीचन्द्रशेखर आचार्य के घर श्रीमन्महाप्रभु जी ने ब्रजलीला का अभिनय करने के समय महालक्ष्मी जी के वेश में नाचने की इच्छा व्यक्त की, तब श्रीबुद्धिमन्त खान को वेशभूषा तैयार करने का सेवाभार मिलने से उन्होंने महाप्रभु जी को सुसज्जित किया था।

'सत्वर चलह बुद्धिमन्त खान तुमि। काच् सज्ज कर गिया नाचिबाङ आमि।। आज्ञा शिरे करि' सदाशिव बुद्धिमन्त। गृहे चलिलेन, आनन्देर नाहि अन्त।। सेईक्षणे काथियार-चान्दोया टानिया। काच सज्ज करिलेन सुन्दर करिया।। लइया यतेक काच बुद्धिमन्त खान। थुइलेन लज्जिया ठाकुरेर विद्यमान।।' चै.भा.म. 18/13-16

'एइ देख चन्द्रशेखराचार्य-भवन। तथा उपनीत प्रभु

संगे प्रियगण।। सदाशिव बुद्धिमन्त खान दुइजने। नानावेश द्रव्य सज्ज कैल एइखाने।।' भक्तिरत्नाकर 12/2902-3

श्रीमन्महाप्रभु जी ने जब कटवा ग्राम से संन्यास लेने के बाद शान्तिपुर में श्रीअद्वैताचार्य के घर शुभागमन किया तब जो सब भक्त श्रीमन्महाप्रभु जी के साथ मिलने के लिए वहां गये थे, उनमें एक श्रीबुद्धिमन्त खान भी थे। वे गौड़देश के भक्तों के साथ महाप्रभु जी का दर्शन करने के लिए पुरुषोत्तम धाम में भी गये थे। गौड़देश के भक्तगण महाप्रभु जी की सेवा के लिए जो सब वस्तुएं लेकर पुरी में आते थे, महाप्रभु जी हरेक नैवेद्य को प्रीति के साथ पाते थे। उन सब प्रेमिक भक्तों में श्रीबुद्धिमन्त खान भी शामिल थे।

'चलिलेन बुद्धिमन्त खान महाशय।

आजन्म चैतन्य-आज्ञा याहार विषय।।'

चै.भा.अ. 8/30

श्रीरंगपुरी के साथ श्रीमन्महाप्रभु जी की कुछ दिन तक इष्टगोष्ठी हुई। उसके पश्चात श्रीरंगपुरी जी ने द्वारका की ओर यात्रा की।

'माधवेन्द्र पुरी प्रेमभक्ति रसमय। याँर नाम स्मरणे सकल सिद्धि हय।।' श्रीईश्वरपुरी, रंगपुरी आदि यत। माधवेर शिष्य सबे भक्तिरसेमत्त।' भक्तिरत्नाकर 5/2272-73

कोई-कोई कहते हैं कि दक्षिण भारत से जब श्रीमन्महाप्रभु जी पुरी में लौट आये तब श्रीरंगपुरी के साथ उनका मिलन हुआ था। श्रीरंगपुरी ने अपने जीवन के बचे हुये क्षण पुरी में ही बिताये थे।

श्रीरामचन्द्र पुरी

विभीषणो यः प्राभासीद्रामचन्द्रपुरी स्मृतः।
उवाचातो गौरहरिर्नैतद्रामस्य कारण।
जटिला राधिका श्वश्रु कार्यतोऽविशदेव तं
अतो महाप्रभुर्भिक्षा संकोचादि ततोऽकरोत्। (गौ.ग.दीपिका 92-93)

जो पहले श्रीरामचन्द्र जी के प्रिय विभीषण थे वे ही अब रामचन्द्र पुरी हैं। किसी कार्यवश श्रीमती राधाजी की सास का भी इनमें प्रवेश हुआ है। इसिलिए महाप्रभु जी भिक्षा करने में संकोच: आदि करते थे।

"तं वन्दे कृष्णचैतन्यं रामचन्द्रपुरी भयात्।

लौकिकाहारतः स्वं यो भिक्षान्नं समकोचयत्।।"

- चै.च.अ. 8/1

अर्थात्: जिन्होंने श्रीरामचन्द्र पुरी के भय से अपना भोजन कम कर दिया था, मैं उन्हीं श्रीकृष्णचैतन्य की वन्दना करता हूं। श्रीमन्महाप्रभु जी की लीला में, श्रीरामचन्द्रपुरी जी ने व्यतिरेक भाव से जो भूमिका निभाई थी उससे कल्याण चाहने वालों के लिए क्या-क्या शिक्षणीय है, उसे चित्त में धारण करना चाहिए।

1. दूसरे के दोषों को ढूंढते रहना, विशेष भाव से विष्णु व वैष्णवों के दोषों को ढूंढना अथवा उनकी निन्दा करना भक्ति के प्रतिकूल होता है। साधकों को चाहिए कि वे दूसरों के दोषों को ढूंढने के स्वभाव को परित्याग करके अपनी कमियों की ओर ध्यान दें। ऐसा करने से ही वे संशोधित होकर भजन के रास्ते में अग्रसर हो पायेंगे।

"यदि वैष्णव-अपराध उठे हाती माता।

उपाड़े वा छिण्डे तार शुखि याय पाता।।"

अर्थात: यदि वैष्णव अपराध रूपी मतवाला हाथी आ जाये तो वह भक्तिलता को उखाड़ फेंकता है जिससे वह सूख जाती है। श्रील रूप गोस्वामी को अवलम्बन करके महाप्रभु जी की ये शिक्षा शुद्धभक्ति चाहने वाले साधकों को हमेशा याद रखनी चाहिए।

2. सद्गुरु के चरणाश्रित सभी शिष्य एक बराबर नहीं होते। बाहरी रूप से गुरु पदाश्रय करते हुए मन्त्र ग्रहण करने से ही उसकी गिनती वास्तविक शिष्यों में अथवा सद्शिष्य के रूप में नहीं होती है। स्निग्ध व सेवापरायण शिष्य पर ही गुरु कृपा करते हैं या यूं कह सकते हैं कि स्निग्ध व सेवापरायण शिष्य ही गुरु कृपा प्राप्त कर सकते हैं। अपना निश्चित कल्याण चाहने वाले साधकों को चाहिए कि वे श्रील रूप गोस्वामी जी द्वारा निर्देशित चौंसठ प्रकार के भक्ति अंगों में से 'विश्रम्भेन गुरोः सेवा' रूपी भक्ति के अंग का विशेष रूप से चिन्तन करें।

3. गुरु वैष्णवों की मर्यादा लंघन करना भक्ति साधन-पथ के प्रतिकूल है। 'मर्यादालघन प्रभु सहिते ना पारेन' - अर्थात कोई अपने से बड़ों की मर्यादा का उल्लंघन करे, यह महाप्रभु को सहन नहीं होता - इसे स्मरण रखें। दुर्भाग्य से ही अनर्थयुक्त जीव भगवान की माया से मोहित होकर अपने आपको श्रेष्ठ व ज्ञानी मानता है तथा इसी घमण्ड से गुरु-वैष्णवों को सुधारने व उन्हें उपदेश देने की धृष्टता करता है।

4. ठीक तरह से भक्ति में उन्नति करने की जिनकी इच्छा है वे स्निग्ध तथा स्वजातीय वैष्णवों का संग करेंगे तथा उनकी सेवा करेंगे।

'स्वजातीयाशये स्निग्धे साधौ संगः स्वतो वरे'

विष्णु-वैष्णव सेवा परायण साधु के संग से ही विष्णु-वैष्णव सेवा की प्रवृत्ति बढ़ती है।

5. गुरुदेव का सम्बन्ध धारण करने वाले गुरुजी के गुरुभाई भी गुरुजी की तरह पूज्य हैं। उन्हें हमेशा मर्यादा प्रदान करना ही कर्तव्य है। उनका आदेश व निर्देश उचित न लगने पर भी उनके साथ रूखा व्यवहार नहीं करना चाहिए और न ही उन पर शासनात्मक वाक्यों का प्रयोग करना चाहिए। स्वयं श्रीमन्महाप्रभु जी ने ये आचरण करके शिक्षा दी।

'गोरार आमि, गोरार आमि मुखे बलिले नाहि चले।
गोरार आचार गोरार विचार लइले फल फले।।'

अर्थात: मैं गौरांग महाप्रभुजी का हूं, मैं गौरांग महाप्रभु जी का हूं - सिर्फ मुंह से बोलने से नहीं चलेगा। श्रीगौरांग महाप्रभु जी का जो आचरण है व श्रीगौरांग महाप्रभु जी के जो विचार हैं उन पर अमल करने से ही सही रूप में उनका हुआ जायेगा।

श्रीरामचन्द्रपुरी जी के पिता-माता के बारे में कहीं भी

मालूम नहीं पड़ता। वे श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी के दीक्षित शिष्य थे - उनका ये परिचय ही प्रसिद्ध है। श्रील कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत की अन्त्यलीला में रामचन्द्रपुरी जी के बारे में वर्णन किया है।

श्रीरामचन्द्रपुरी श्रीलमाधवेन्द्र पुरीपाद जी के दीक्षित शिष्य थे, ऐसा कहकर श्रीमन्महाप्रभु और श्रील परमानन्द पुरीपाद उन्हें मर्यादा दिया करते थे। श्रीरामचन्द्र पुरी श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी के शिष्य होने पर भी शुष्क ज्ञानी सम्प्रदायी लोगों के संग में रहने के कारण भक्ति-विरुद्ध सिद्धान्तों में रुचि रखते थे।

श्रीमन्महाप्रभु जी के पार्षद श्री जगदानन्द पंडित जी ने पुरुषोत्तम धाम में श्रीमन् महाप्रभु, श्रील परमानन्दपुरी व श्रील रामचन्द्रपुरी जी को आपस में दण्डवत् प्रणाम करते देखकर व उन्हें आपस में बैठकर विचार विमर्श करते देखकर उन्हें अपने यहां भोजन के लिए निमन्त्रण दिया। उनके द्वारा निमन्त्रण स्वीकार करने पर जगदानन्द जी ने भगवान श्रीजगन्नाथ जी का प्रसाद लाकर सभी की सेवा की। प्रसाद पाने के बाद श्रीरामचन्द्र पुरी ने श्रीजगदानन्द जी को बचा हुआ प्रसाद पाने के लिए निर्देश दिया और स्वयं बार-बार आग्रह कर करके उन्हें प्रसाद परिवेशन कर-करके खिलाया। जब जगदानन्द जी ने श्रीरामचन्द्र पुरी के बार-बार आग्रह करने पर कुछ ज्यादा प्रसाद खा लिया तो वे श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के गणों

को कटाक्ष करते हुए कहने लगे -

"शुनि, चैतन्यगण करे बहुत भक्षण।
सत्य ऐइ वाक्य साक्षात् देखिलु एखन।।
संन्यासीरे एत खोआइया करे धर्म नाश।
वैरागी हइया एत खाय वैराग्येर नाहि भास।।"

अर्थात सुना था कि श्रीचैतन्य महाप्रभु के भक्त बहुत ज्यादा खाते हैं परन्तु आज उस वाक्य की सत्यता को मैंने अपनी आंखों से देख लिया। इतना खाना तो सन्यासी के संन्यास धर्म को नाश कर देगा। ये वैरागी होकर इतना खाते हैं। वैराग्य की ज़रा सी गन्ध भी इनमें नहीं है।

गुरु के चरणों में अपराध करने से ही दूसरों के दोष देखना, दूसरों की निन्दा करने व शुष्क ज्ञान का उपदेश करने की प्रवृत्ति होती है। श्रील माधवेन्द्रपुरीपाद जब रेमुणा में रहते थे तो अपने अन्तर्धान से पहले वे उस प्रकार के भावों में विभावित होकर रो रहे थे, जिस प्रकार व्रजधाम से श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर उनके साक्षात् दर्शन न पाकर श्रीमती राधारानी जी की विरह-कातर अवस्था हुई थी :

'अयि दीनदयार्द्रनाथ! हे मथुरानाथ्! कदावलोक्यसे।
हृदय त्वदलोककातर दयित भ्राम्यति कि करोम्यहम्।।'

श्रील माधवेन्द्रपुरीपाद जब इस प्रकार की विरह कातर अवस्था में क्रन्दन कर रहे थे तो उस समय श्रीरामचन्द्रपुरी और

श्रीईश्वरपुरी भी वहां उपस्थित थे। अपने गुरुदेव को रोते देखकर, उनके हृदयगत भावों को न समझकर व उन्हें साधारण मरणशील मनुष्य मानकर श्रीरामचन्द्र पुरी ने उनकी मर्यादा को उल्लंघन करते हुए, उन्हें उपदेश देने की धृष्टता की थी। माधवेन्द्र पुरीपाद जी को उपदेश देते हुए रामचन्द्रपुरी जी ने कहा था - 'आप स्वयं पूर्ण ब्रह्म व पूर्णानद स्वरूप हो, ऐसा समझकर अपने आपका स्मरण करो। ब्रह्म के तत्त्व को जानते हुए भी आप रो क्यों रहे हैं? रामचन्द्रपुरी के अज्ञान से भरे धृष्टतापूर्ण वाक्यों को सुनकर जनसाधारण को शिक्षा देने के लिए श्रील माधवेन्द्रपुरीपाद क्रोधित से होते हुए कहने लगे -'दूर, दूर, पापिष्ठ बलि भर्त्सना करिल। 'कृष्ण कृपा' ना पाइनु, ना पाइनु, मथुरा। आपन-दुःखे मरो - एइ दिते आइल ज्वाला। मोरे मुख ना दिखावि तुई, याओ यथि तथि। तोरे देखि' मैले, मोर हवे असद्गति। कृष्ण ना पाइनु, मरों आपनार दुःखे। मोरे 'ब्रह्म' उपदेशे एइ छार मूर्खे।।'

अर्थातः श्रीरामचन्द्रपुरी जी की भर्त्सना करते हुए श्रील माधवेन्द्र पुरी जी कहने लगे - पापिष्ठ! तू मेरी नजरों से दूर हो जा। मुझे श्रीकृष्ण के दर्शन न मिलें और न ही मथुरा की ही मुझे प्राप्ति हुई, मैं पहले से ही अपने इस दुःख में दुःखी हूँ, तू और ज्वाला बढ़ाने आया है। तू मेरी नज़रों से दूर हो जा। खबरदार! तू मुझे अपनी शक्ल मत दिखाना। तू अभी चला जा यहां से, चाहे जहां मर्ज़ी चला जा। तुझे देखकर मरने से

तो मेरी असद्गति होगी। मुझे श्रीकृष्ण की प्राप्ति नहीं हुई, इस कारण मैं पहले से परेशान हूं तो ऊपर से ये निरा मूर्ख मुझे ब्रह्म का उपदेश देने चला है।

माधवेन्द्र पुरीपाद जी के चरणों में अपराध करने के कारण रामचन्द्र पुरी गुरुकृपा से वंचित हो गये तथा उनके अन्दर सांसारिक-वासना जाग उठी। यही नहीं, कृष्ण - सम्बन्धहीन शुष्क ज्ञानी बनकर वे तमाम लोगों की निन्दा करने में ही प्रवृत हो गये।

इस सम्बन्ध में श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने लिखा है कि श्रीरामचन्द्रपुरी अपने गुरुजी श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद जी को श्रीकृष्ण विरह कातर अवस्था में देखकर भी उनकी अप्राकृत विप्रलम्भ-स्फूर्ति को समझ न पाये। यही कारण था कि उन्होंने माधवेन्द्र पुरीपाद जी को एक साधारण मरणशील मनुष्य समझकर उन्हें किसी दुनियावी अभाव के कारण शोक करता हुआ समझा तथा इसी कारण वे उन्हें निर्विशेष ब्रह्म की अनुभूति करवाने लग पड़े।

इधर ईश्वर पुरीपाद जी ने अपने गुरुदेव (श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद) जी की शारीरिक सेवा, वाणी सेवा व उनकी हर प्रकार की सेवा निष्ठा के साथ की। उसके फलस्वरूप अपने गुरुदेव जी के कृपा-आशीर्वाद से कृष्ण-प्रेम में निमज्जित हो गये। महात्मा माधवेन्द्र पुरी जी से ईश्वर पुरी जी को बड़ा अनुग्रह प्राप्त हुआ था। जबकि रामचन्द्र पुरी जी को केवल

मात्र निग्रह (दण्ड) प्राप्त हुआ। लोकशिक्षा के लिए ईश्वर पुरीपाद और श्रीरामचन्द्र पुरी गुरु-वैष्णवों की कृपा व दण्ड प्राप्ति के दो उदाहरण हैं।

'महदनुग्रह-निग्रहेर साक्षी दुईजने।
एइ दुइ द्वारे शिखाइला जगजने।।'

गुरु कृपा से वंचित होकर श्रीरामचन्द्र पुरी संन्यासी लोग कहां-कहां रहते हैं, क्या-क्या करते हैं व कितना-कितना भोजन खाते हैं, बस यही हर समय देखते रहते व उनके दोष निकालते रहते थे। भक्त लोग अलग-अलग दिनों में महाप्रभु जी को भोजन के लिए अपने-अपने घरों में निमन्त्रण देते थे। यदि कोई अपने घर भोजन न करा पाता तो उस समय की प्रथा के अनुसार चार पण कौड़ी दिया करता था। श्रीरामचन्द्रपुरी महाप्रभु जी को दुनिया का मनुष्य समझते थे और इसी भाव से वह उनके गुणों को न देखकर उनके रहने, उनके रिवाज, उनका खाना, उनका सोना व उनका चलना-फिरना आदि सभी क्रिया कलापों में दोष ढूंढने लगे। संन्यासियों को मिठाई खाता देखकर वह कटाक्ष करते हुए सबको कहते कि ऐसी भोग प्रवृत्ति से कभी भी इन्द्रिय संयम नहीं हो सकता। निन्दा करने का स्वभाव होने पर भी वे प्रतिदिन महाप्रभु जी का दर्शन करने के लिए आते थे। महाप्रभु जी भी उन्हें गुरुवर्ग रूप से काफी मर्यादा दिया करते थे।

एक दिन प्रातःकाल रामचन्द्रपुरी जी महाप्रभ जी के

पास आये और कटाक्ष करते हुए कहने लगे - ज़रूर रात को यहां गुड़ रहा होगा, इसीलिए यहां आस-पास चींटियां घूमती-फिरती दिखायी दे रही हैं। देखो विरक्त सन्यासियों में भी कैसी इन्द्रिय लालसा है। वैसे तो चीटिया सभी जगह घूमती रहती हैं, तब भी रामचन्द्र पुरी जी का ये कटाक्षात्मक वाक्य सुनकर महाप्रभु जी को बहुत संकोच सा हुआ। इसी संकोच के कारण महाप्रभु जी ने अपने भोजन की मात्रा बहुत कम कर दी। यदि कोई प्रेमपूर्वक जबरदस्ती निश्चित परिमाण से ज्यादा खाने को कहता तो महाप्रभु जी यह कहकर सभी को डर दिखलाते कि यदि मुझे बार-बार खाने के लिए कहोगे तो मैं यहां से कहीं और चला जाऊँगा। श्रीरामचन्द्रपुरी व महाप्रभु जी के इस व्यवहार को सुनकर भक्तों को बड़ा धक्का लगा। उन्हें तो ऐसा अनुभव हुआ मानो उनके सिर पर वज्रपात हो गया हो। सभी भक्त रामचन्द्र पुरी के इस व्यवहार से बड़े मर्माहत हुए। महाप्रभु जी एवं गोविन्द जी को आधी मात्रा में भोजन करता देख, किसी किसी भक्त ने तो दुःख से भोजन करना ही छोड़ दिया। महाप्रभु जी ने अपना भोजन आधा कर दिया है तथा सभी भक्त दुःखी हैं; ये सुनकर रामचन्द्रपुरी महाप्रभु जी के पास आये और कहने लगे -

'संन्यासीर धर्म नहे इन्द्रिय तर्पण।
यैछे तैछे करे मात्र उदर भरण।।
तोमारे क्षीण देखि शुनि कर अर्द्धाशन।

एइ शुष्क वैराग्य नहे संन्यासीर धर्म।।
यथायोग्य उदर भरे ना करे विषय भोग।
संन्यासीर तबे सिद्ध हय ज्ञान योग।।'[25]

अर्थात: इन्द्रिय तर्पण करना सन्यासी का धर्म नहीं है। वे लोग तो जैसे-तैसे खाकर सिर्फ अपना पेट भरते हैं। आपका शरीर जब मैंने थोड़ा कमजोर सा देखा तो कुछ भक्तों से मैंने उसका कारण पूछा, उन्होंने बताया कि आपने अपने भोजन की मात्रा को आधा कर दिया है। देखो, ये शुष्क वैराग्य वैरागी का धर्म नहीं है। जितनी जरूरत है उतना खाकर अपना पेट भरो। हां, विषयभोग मत करो। ऐसा करने से ही सन्यासी का ज्ञान-योग सिद्ध हो पायेगा।

धीरे-धीरे महाप्रभु जी तक भी बात पहुंच गयी कि

25. नात्यश्नतोऽपि योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।
श्रीमद्भगवद् गीता 6/16-17

हे अर्जुन, ज्यादा भोजन करने से योग नहीं होता और बिल्कुल भोजन न करने से भी योग में सिद्धि नहीं मिलती। खाना-पीना, घूमना-फिरना व सोना-जागना इत्यादि सभी क्रियाएं यदि उपयुक्त मात्रा में नियमानुसार की जाएं तब जाकर तमाम दुःखों को नाश करने वाला 'योग' पूर्ण होता है।

सभी भक्तों ने अपने भोजन की मात्रा आधी कर दी है। एक दिन भक्तों को साथ लेकर श्रीपरमानन्दपुरी महाप्रभु जी के पास आये और दीनतापूर्वक महाप्रभु जी को समझाते हुए कहने लगे कि 'रामचन्द्रपुरी स्वभावेते निन्दुक।'

अर्थात: रामचन्द्र पुरी तो स्वभाव से ही निन्दक है आपने उसके कहने पर अपना अन्न खाना बन्द करके उचित नहीं किया है। उसका तो ऐसा खराब स्वभाव है कि जो खाना नहीं चाहता, वह उसे जबरदस्ती खिलाएगा और बाद में निन्दा करेगा कि ये इतना ज्यादा खाता है।

'परस्वभाव कर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत।
विश्वमेकात्म कं प्रश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च।'

रामचन्द्र पुरी का स्वभाव ये है कि अगर किसी में सौ गुण हैं तो पुरी उसके गुणों को न देखकर उसके दोषों को देखेगा और दोष न होने पर उसके गुणों को ही दोष के रूप में प्रस्तुत करेगा। मैं तो ये सोचता हू कि रामचन्द्रपुरी के कहने पर भोजन छोड़ना उचित नहीं है। आप कृपा करके पहले की तरह ही भोजन ग्रहण करें।

जवाब में लोकशिक्षा के रूप में महाप्रभु जी ने कहा - रामचन्द्र की बातों से नाराज़ होने की तो कोई बात नहीं। सचमुच सन्यासी के लिए जिह्वा की लालसा अन्याय ही है। उन्होंने ठीक ही कहा है कि सिर्फ प्राणों की रक्षा के लिए ही

अर्थात अपने गुरुजी की उपेक्षा करने से बड़ा भयानक फल होता है। यह भयंकर अपराध भगवान तक जाता है। यद्यपि गुरुवर्ग की भावना के कारण महाप्रभु जी ने रामचन्द्रपुरी जी का अपराध नहीं लिया तथापि लोकशिक्षा के लिए उन्होंने रामचन्द्रपुरी के जीवन में उसका फल भी दिखाया।

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी ने स्वरचित चैतन्य भागवत में उल्लेख किया है कि वाराणसी में श्रीमन्महाप्रभु जी दो महीने श्रीरामचन्द्र पुरी के घर में छिपकर रहे थे।

"रामचन्द्रपुरीर मठेते लुकाइया। रहिलेन दुईमास वाराणसी गिया।।" चै.भा.म. 19/105 श्रीगौरसुन्दर जी वाराणसी में श्रीचन्द्रशेखर जी के घर पर ठहरे थे। शूद्र चन्द्रशेखर जाति से वैद्य थे। श्रीचैतन्य भागवत के लेखक वृन्दावन दास ठाकुर जी वाराणसी में श्रीमन्महाप्रभु जी द्वारा श्रीरामचन्द्रपुरी जी के मठ में गुप्त रूप से रहने के तथ्य के बारे में अवगत थे। रामचन्द्रपुरी जी श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी के एक कपटी शिष्य थे। इनका मायावाद के प्रति बहुत झुकाव था। रामचन्द्रपुरी के यहां ठहरने की बात का केवल प्रचार करके महाप्रभु जी कृष्ण भक्तों के साथ कहीं और रहते थे। श्रीरामचन्द्र पुरी साम्प्रदायिक सन्यासी थे और मठ में रहते थे। इसलिए उनके सन्यास। जीवन में महाप्रभु जी द्वारा उनके मठ में वास करने से दुनियावी दोषारोपण का कोई अवसर न था।

- श्रीलभक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी

इस ग्रन्थ

को पढ़ने से हम
अपने अनियमित जीवन को
संयत व नियमित करना सीख
कर व्रज पथ के पथिक बन पाएंगे
तथा हमें अपने अधन्य जीवन को
भक्त और भगवान की कृपा से
धन्य करने का सौभाग्य प्राप्त
होगा।

भगवान कहते हैं कि साधु मेरा
हृदय है और मैं साधुओं का हृदय
हूँ। शुद्ध भक्त-साधु भगवान के
बहुत प्रिय होते हैं इसलिए भगवद्
भक्त के चरितामृत का आस्वादन
श्री भगवान की कृपा प्राप्ति का
सर्वोत्तम साधन है।

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' जी के प्रिय शिष्य
परमपूज्यपाद श्री श्रीमद् भक्ति प्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज जी की लेखनी से...

श्रीरंगपुरी

'श्रीरंगपुरी-सह ताहाञि मिलन।

रामदास विप्रेर कैल दुःख विमोचन।।'

चै०च०म 1/113

दक्षिण भारत में भीमा नदी के तट पर पाण्डरपुर या पण्ढरपुर नगर में श्रीमन्महाप्रभु जी के साथ श्रीरंगपुरी का मिलन हुआ (ताहाञि - पाण्डरपुर)। (मुम्बई प्रदेश के शोलापुर नगर से 38 मील सीधा पश्चिम में पाण्डरपुर है।) पाण्डरपुर में विठ्ठल या विठवा देव ठाकुर हैं। वे चतुर्भुज श्रीनारायण मूर्ति हैं। पन्द्रहवीं शक शताब्दी में यहां पर एक विख्यात वैष्णव साधु थे, जिनका नाम था तुकाराम।' - श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर।

पाण्डरपुर में एक विप्र ने महाप्रभु जी को अपने घर में जिमाकर प्रीति के साथ उनकी अनेक प्रकार के द्रव्यों द्वारा सेवा की थी। उनके पास ही, किसी दूसरे विप्र के घर, श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी के शिष्य श्रीरंगपुरी के रहने की बात सुनी तो श्रीमन्महाप्रभु जी उनके दर्शनों के लिये वहां चले गये। महाप्रभु जी दण्डवत करते ही प्रेमाविष्ट हो उठे। अद्भुत प्रेम विकारों का दर्शन करके श्रीरंगपुरी विस्मित होकर विचार करने लगे कि निश्चय ही इनका मेरे गुरुदेव श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद जी

के साथ सम्बन्ध होगा, अन्यथा ऐसे अष्टसात्त्विक प्रेमविकार सम्भव नहीं हैं। उन्होंने महाप्रभुजी को उठाकर गले लगा लिया और दोनों ही प्रेमाविष्ट होकर अश्रु बहाने लगे।

"तथा हैते पाण्डव पुरे आइला गौरचन्द्र।

बिठ्ठल - ठाकुर देखि' पाइला आनन्द।।"

जब यह जाना कि इनका श्रीईश्वरपुरीपाद जी के साथ सम्बन्ध है तो श्रीरंगपुरी जी का श्रीमन्महाप्रभु जी के प्रति प्रेम उमड़ आया। दोनों ही एक दूसरे का स्पर्श करके प्रेम की बाढ़ में गोते खाने लगे! कृष्ण कथा-कीर्तन में ही दोनों ने वहां सात दिन बिता दिये। नवद्वीप में महाप्रभु जी की आविर्भावस्थली के बारे में सुनकर श्रीरंगपुरी को प्रसन्नता हुई। तब उन्होंने महाप्रभु जी को पहले की घटना सुनाते हुए कहा - 'मैंने एक बार अपने गुरुदेव के साथ नदिया में जाकर श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर भोजन किया था। श्रीजगन्नाथ मिश्र जी की महा-पतिव्रता पत्नी शचीदेवी ने अपूर्व मोचार घण्ट (बंगाल का एक व्यंजन) की रसोई बनाकर खिलायी थी। उस वात्सल्यमयी जगन्माता ने संन्यासी को पुत्र की भांति स्नेह से भोजन कराया था। श्रीजगन्नाथ मिश्र के एक योग्य पुत्र ने तो सन्यास लेकर श्रीशंकरारण्य नाम प्राप्त किया था। उसने इसी पाण्डरपुर में ही शरीर त्यागा था। महाप्रभु जी ने विरह से सन्तप्त होकर बताया कि श्रीशंकरारण्य सन्यासी उनके बड़े भाई विश्वरूप तथा श्रीजगन्नाथ मिश्र उनके ही पिता हैं।

तो जम्बीर के वृक्ष पर कदम्ब के फूल देखकर अत्यन्त विस्मित हो गये। जल्दी-जल्दी उन्होंने कदम्ब के फूलों को पेड़ से उतारा और उनकी माला तैयार करके नित्यानन्द प्रभु को पहनायी। कुछ समय के बाद ही दमनक पुष्प की सुगन्ध से सारी दिशायें महक उठीं तो नित्यानन्द प्रभु ने कहा कि श्रीगौरसुन्दर दमनक फूलों की माला पहन कर कीर्त्तन श्रवण करने के लिये नीलाचल से यहाँ आये हैं। नरहरि चक्रवर्ती ठाकुर ने भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में इस अद्‌भुत नृत्यकीर्तन लीला का उल्लेख किया है –

"प्रथमेइ नित्यानन्द प्रियगण संगे ।
पाणिहाटी ग्रामेते आइला महारंगे ।।
राघव पण्डित, श्रीमकरध्वज कर ।
सबार हइल महाउल्लास-अन्तर ।।
राघव पण्डित गृहे ये नृत्यकीर्तन ।
ताहा वर्णिवारे शक्ति धरें कोन्‌जन ।।"

भ.र. 12/3645-47

"रामदास, गदाधर दासादि सहित ।
पाणिहाटी ग्रामे प्रभु हैला उपनीत ।
प्रथमे राघव पण्डितेर आलयेते ।
संकीर्तनारम्भ सुख व्यापिल जगते ।
महाभक्त राघवेर जनम तथाई ।
भक्त-जन्म स्थानेर महिमा अन्त नाई ।।"

भ.र. 8/156-58

श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के आदेश से रघुनाथ दास गोस्वामी जी ने जिस समय पाणिहाटी में गंगा के किनारे दही और चिड़वे का महोत्सव किया था, उस समय राघव पण्डित निःसक्ड़ि प्रसाद के साथ वहाँ उपस्थित हुए थे और वहाँ नित्यानन्द प्रभु जी की पुलिन भोजन-लीला देखकर विस्मित हो उठे थे। दही-चिड़वे के महोत्सव के बाद नित्यानन्द जी ने कुछ समय वहां विश्राम किया तथा विश्राम करने के पश्चात सायँ काल के समय वे श्रीराघव पण्डित के प्रेम से आकर्षित होकर उनके घर चले गये और वहां जाकर उन्होंने नृत्य आरम्भ कर दिया। नित्यानन्द प्रभु के दर्शनों के लिये वहां श्रीगौरांग महाप्रभु जी का आविर्भाव हुआ। राघव पण्डित जी के सौभाग्य को प्रदर्शन करते हुए राघव पण्डित जी के घर में श्रीमन् महाप्रभु और नित्यानन्द प्रभु जी आसन पर बैठ गये तथा दोनों ने आसनों पर बैठ कर राघव पण्डित जी द्वारा प्रदत्त अमृत के समान पिठापायस, शैला-चावल और विविध व्यन्जनादि समस्त द्रव्य परम तृप्ति के साथ सेवन किए। राघव पण्डित जी ने स्नेह परवश होकर महाप्रभु जी का अवशेष प्रसाद रघुनाथ दास गोस्वामी जी को प्रदान किया।

श्रीपुरुषोत्तम धाम में गुन्डिचा मन्दिर मार्जन लीला में, श्रीजगन्नाथ देव जी की रथयात्रा में एवं जलकेलि लीला में राघव पंडित जी महाप्रभु जी के साथ ही थे। रथ के आगे सात संकीर्तन के टोलों में से प्रथम टोले में स्वरूप दामोदर जी मूल गायक थे जबकि श्रीमद् अद्वैताचार्य नृत्य करने वाले थे एवं